



Tibetan Buddhist Resource Center

Text Scan Input Form - Title Page

Work:	W4CZ307975	ImageGroup:	I4CZ308208
LCCN:	n/a	ISBN:	n/a

Title:	ནལ་འབྱོར་མ་ཀུན་ཏུ་སྟོན་པའི་རྒྱུད་དང་སྟོབ་དཔོན་ཏ་རྒྱ་གཏ་རྒྱུ་ཏས་མཛད་པའི་བཤད་སྒྲུབ། rnal 'byor ma kun tu spyod pa'i rgyud dang slob dpon ta hA gata rak+Si tas mdzad pa'i bshad sbyar /
Author:	ཏ་རྒྱ་གཏ་རྒྱུ་ཏ ta thA ga ta rak+Shi ta
Descriptor:	copy made available from the Library of Tibetan Works and Archives, LTWA acc No:28164
Original Publication:	rare buddhist texts ;21
Place:	sarnath, varanasi, u.p.
Publisher:	central institute of higher tibetan studies
Date:	1998
Volume:	1
Total Volumes:	1
TBRC Pages:	2
Introductory Pages:	n/a
Text Pages:	n/a
Scanning Information:	Scanned at Tibetan Buddhist Resource Center, 1430 Massachusetts Avenue, Cambridge, MA 02138 US.

D28164

योगिनीसञ्चारतन्त्रम्

सञ्चारनिबन्धेन

पण्डिताचार्य-अलककलशप्रणीतया च
उपदेशानुसारिणीव्याख्यया सहितम्

ནྟལ་འབྱེར་མ་ཀུན་དུ་སྒྲིབ་པའི་བྱུང་དང་།
སྒྲིབ་དཔེན་དཔྱལ་དུ་སྒྲིབ་མཛད་པའི་བཤད་སྤྲུལ་



भोट विद्या संस्थानम्

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी

བོད་ཀྱི་དཔེ་མཛད་ཁང་།

Class No. 33

Acc. No. 28164

योगिनीसञ्चारतन्त्रम्

आचार्यतथागतरक्षितप्रणीतेन

सञ्चारनिबन्धेन

पण्डिताचार्य-अलककलशप्रणीतया च

उपदेशानुसारिणीव्याख्यया सहितम्

ཀུལ་འཁོར་མ་ཀུན་ཏུ་སྤྱོད་པའི་སྐུ་དང་།

སློབ་དཔོན་ཏཱ་ལཀ་ཏུ་སྒྲིགས་མཛད་པའི་བཤད་སྐུ་།

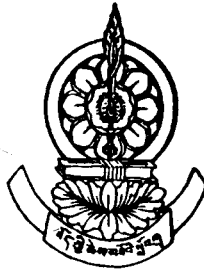
दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थमाला-२१

योगिनीसञ्चारतन्त्रम्

आचार्यतथागतरक्षितप्रणीतेन
सञ्चारनिबन्धेन

पण्डिताचार्य-अलककलशप्रणीतया च
उपदेशानुसारिणीव्याख्यया सहितम्

ནལ་འབྱོར་མ་ཀུན་དུ་སྤྱོད་པའི་རྒྱ་དང་།
སློབ་དཔོན་ཏུ་སྤྲུག་ཏེ་རྒྱ་མཚན་པའི་བཤད་སྒྲུབ།



भोट विद्या संस्थानम्

सम्पादकः

जनार्दनशास्त्री पाण्डेय:

कार्यकारी योजनानिदेशकः

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थमाला - २१

सहायक-मण्डल

ठाकुरसेन नेगी
ठिनलेराम शाशनी
छेरिंग डोलकर

विजयराज वज्राचार्य

बनारसी लाल
छोग दोर्जे
रंजन कुमार शर्मा

प्रधान सम्पादक : भिक्षु समदोङ् रिन्पोछे

प्रथम संस्करण : ५५० प्रतियाँ, १९९८

मूल्य सजिल्द : रु० १७०.००
 अजिल्द : रु० १४०.००

© केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान,
सारनाथ, वाराणसी- २२१ ००७, १९९८

प्रकाशक

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान,
सारनाथ, वाराणसी-२२१ ००७

Rare Buddhist Texts Series- 21

YOGINĪSAÑCĀRATANTRAM
with
NIBANDHA OF TATHĀGATARAKSITA
and
UPADEŚĀNUSĀRIṆĪVYĀKHYĀ
of
ALAKAKALAŚA



Editor

Janardan Shastri Pandey

Acting Project Director

RARE BUDDHIST TEXTS RESEARCH PROJECT

CENTRAL INSTITUTE OF HIGHER TIBETAN STUDIES
SARNATH, VARANASI

Rare Buddhist Texts Series- 21

Co-Editors

Thakur Sain Negi
Thinlay Ram Shashni
Tsering Dolkar

Vijay Raj Vajracharya

Banarsi Lal
Chhog Dorjee
Ranjan Kumar Sharma

Chief Editor: *Prof. Samdhong Rinpoche*

First Edition: 550 Copies, 1998

Price : Rs. 170.00
Rs. 140.00

© Central Institute of Higher Tibetan Studies, Sarnath -221 007
Varanasi (U.P.) India, 1998.

Publisher:

Central Institute of Higher Tibetan Studies,
Sarnath, Varanasi-221 007, India.

प्रकाशकीय

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना के इक्कीसवें पुष्प के रूप में दो व्याख्याओं सहित “योगिनीसञ्चारतन्त्र” के प्रकाशन पर हमें अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है। बौद्धतन्त्र ग्रन्थों में इसका अपना विशिष्ट स्थान है। व्याख्याकारों ने इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की है—

क्रमद्वय (उत्पत्तिक्रम और निष्पन्नक्रम) की भावना द्वारा विकल्पों का प्रहाण ही योग है। उस योग से युक्त अर्थात् अविकल्प संविदात्मिका प्रज्ञाएं योगिनी कहलाती हैं। मण्डलचक्रादि में स्थित उन योगिनियों का योगिशरीर के तीन या पाँच चक्रों में सम्यग् विचरण अथवा आलम्बित सत्त्वों के हितार्थ चर्या करना ही योगिनी संचर्या या योगिनीसञ्चार है। इस सञ्चार की विधि अर्थात् पञ्चाकाराभि-सम्बोधि आदि क्रम से यथासंभव उसके उत्पादन के उपाय की जिस तन्त्र में देशना की गई है वह योगिनीसञ्चारतन्त्र है। ये योगिनियाँ तीन प्रकार की बताई गई हैं— क्षेत्रज्ञ, मन्त्रज्ञ और सहज। इनकी पूजा भी तीन प्रकार की है— बाह्य, आन्तर और गुह्य।

यह लक्षाभिधानतन्त्र से उद्धृत है। इसके प्रारम्भ में ही प्रतिज्ञा की गई है कि मूलतन्त्र में जो विषय गुह्य रखे गये थे उन्हें भी इसमें प्रकारान्तर से स्पष्ट किया गया है। इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की दो व्याख्याएं हमें उपलब्ध हुई हैं— १. तथागत-रक्षित का सञ्चारनिबन्ध और २. पण्डिताचार्य अलककलश की उपदेशानुसारिणी व्याख्या। मूलग्रन्थ और सञ्चारनिबन्ध का भोटानुवाद भी उपलब्ध है, जो यहाँ दिया जा रहा है। व्याख्या का भोटानुवाद उपलब्ध नहीं है। इसके सम्पादन में निम्नलिखित पाण्डुलिपियों से सहायता ली गई है—

योगिनीसञ्चारतन्त्र

(क) नेपाल-जर्मन मैनुस्क्रिप्ट प्रिजर्वेशन प्रोजेक्ट
(व्यक्तिगत प्रति धर्मरत्न वज्राचार्य, काठमाण्डू)

रील सं० ई० 652/11, पत्र संख्या 17+4

लिपि, नेवारी, आधार— ताड़पत्र

(ख) राष्ट्रिय अभिलेखालय काठमाण्डू, नेपाल
 लगत सं० 4/20, वि० सं० 66
 पत्र सं० 10, लिपि— नेवारी, आधार— ताड़पत्र
 रील सं० ए० 48/5

(ग) राष्ट्रिय अभिलेखालय काठमाण्डू, नेपाल
 लगत सं० 4/78, पत्र सं० 16
 लिपि— नेवारी, आधार— ताड़पत्र(जीर्ण)
 रील सं० ए० 43/11

भो० भोट संस्करण— तो० 375
 (पाठभेद में संकेत— दे० = देगे, फु० = फुडग, ल्ह० = ल्हासा, नर० =
 नरथङ्ग, पे० = पेकिंग।)

सञ्चारतन्त्रनिबन्ध

(क) राष्ट्रिय अभिलेखालय काठमाण्डू, नेपाल
 लगत सं० 5/22, पत्र सं० 9
 लिपि— प्राचीन नेवारी, आधार— ताड़पत्र
 रील सं० ए० 47/20

भो० भोट संस्करण— तो० 1442

उपदेशानुसारिणी व्याख्या

(क) राष्ट्रिय अभिलेखालय काठमाण्डू, नेपाल
 लगत सं० 3/683, पत्र सं० 90
 लिपि— नेवारी, आधार— ताड़पत्र
 रील सं० ए० 1279/2

(ख) नेपाल-जर्मन मैनुस्क्रिप्ट प्रिजर्वेशन प्रोजेक्ट
 (व्यक्तिगत प्रति मनवज्र वज्राचार्य, काठमाण्डू)
 रील सं० ई० 1476/5
 पत्र सं० 78+15 = 93
 लिपि— नेवारी

व्याख्या की एकमात्र क. प्रति उपलब्ध है, जो प्राचीन और ताड़पत्र पर है। इसके कुछ पत्र नष्ट हो गये हैं, कुछ टूट जाने से खण्डित हो गये हैं, जो हैं वे भी अस्तव्यस्त हैं, ऐसी स्थिति में योजना के कार्यकारी निदेशक जनार्दन पाण्डेय जी ने डॉ० बनारसीलाल एवं ठिनलेराम शाशनी के सहयोग से प्रत्येक पत्र की पृथक्-पृथक् प्रतिलिपि करवा कर प्रसङ्ग और प्रतीकों के आधार पर इसकी प्रेस कापी तैयार की है। ख. प्रति क. की ही प्रतिलिपि है जो अंश उसमें नष्ट हुआ है वह इसमें भी छोड़ दिया गया है। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण व्याख्या है, किन्तु दुर्भाग्य से खण्डित और अपूर्ण ही रह गयी है।

इस ग्रन्थ का उपोद्घात योजना के पूर्व उपनिदेशक तन्त्रशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् प्रो० ब्रजबल्लभ द्विवेदी जी ने लिखा है और सम्पादन में भी उनका पूर्ण सहयोग रहा है, एतदर्थ हम उनका आभार व्यक्त करते हैं। इसमें जिन पाण्डुलिपियों का उपयोग किया गया है, उनकी उपलब्धि में सहायक व्यक्तियों एवं संस्थाओं का भी आभार स्वीकार करते हैं। दुर्लभ ग्रन्थ शोध योजना में कार्यरत विद्वानों को, जिन्होंने सुरुचिपूर्ण ढंग से पाठ-संकलन और सम्पादन कर ग्रन्थ को परिष्कृत रूप में प्रस्तुत किया है, हम उनको धन्यवाद देते हैं।

गुणग्राही विद्वान् पाठकों से निवेदन करते हैं कि यदि अलककलश प्रणीत व्याख्या की सम्पूर्ण प्रति उपलब्ध हो तो हमें सूचित करें ताकि अगले संस्करण में हम उसका उपयोग कर सकें।

बुद्ध पूर्णिमा
 ११ मई १९९८

स० रिन्योछे
 निदेशक

པར་སྐྱོན་པའི་ཆེད་བཅོམ་།

༡༡། །ནང་པའི་ཆེས་དཀོན་པའི་གསུང་རབ་ཉམས་ཞིབ་ལས་གཞིའི་པོད་
ཕྱིང་ ༣༡ པར་**རྣལ་འབྱོར་མ་ཀུན་དུ་སྤྱོད་པའི་རྒྱུད་**དང་། དེའི་**འབྲེལ་པ་**
གཉིས་བཅས་པར་སྐྱོན་ཐུབ་པར་དགའ་ཚོར་ཆེན་པོ་བྱུང་། ནང་པའི་རྒྱུད་སྤེའི་ནང་
གཞུང་འདི་ཁྱད་འཕགས་ཤིག་དུ་བཞུགས་ཤིང་། **འབྲེལ་བྱེད་རྣམས་**ཀྱིས་རྒྱུད་འདིའི་
མཚན་དོན་འཆད་སྐབས་སྤྱོད་ཚོགས་རིམ་གཉིས་བསྒྲམས་པ་ལས་བརྟན་ནས་ཀུན་
རྟོག་སྤོང་བ་ཉིད་རྣལ་འབྱོར་དང་། དེ་ལྟའི་རྣལ་འབྱོར་དང་ལྷན་པའི་རྟོག་བྲལ་སོ་སོ་
རང་རིག་གི་ཤེས་རབ་ལ་རྣལ་འབྱོར་མ་ཞེས་བཅོམ་ཅིང་། དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་འཁོར་
ལོ་ལ་སོགས་པར་གནས་པའི་རྣལ་འབྱོར་མ་དེ་དག་རྣལ་འབྱོར་པའི་ལུས་ཀྱི་ཅ་
འཁོར་གསུམ་མཐུ། ལྟའི་ནང་ཡོངས་སུ་རྒྱ་བའམ། ཡང་ན་དམིགས་ཡུལ་སེམས་
ཅན་རྣམས་ལ་ཕན་པའི་དོན་དུ་སྤྱོད་པ་ཉིད་རྣལ་འབྱོར་མ་ཀུན་དུ་སྤྱོད་པ་ཡིན་ཞིང་།
ཀུན་དུ་སྤྱོད་པ་འདི་ཉིད་མངོན་པར་བྱང་ཆུབ་པ་རྣམ་པ་ལྡེ་ལ་སོགས་པའི་རིམ་པས་
ཇི་ཅམ་རྣམས་པ་སྤྱོད་པའི་ཐབས་དང་ཆོ་ག་གང་དུ་སྟོན་པའི་རྒྱུད་ལ་རྣལ་འབྱོར་མ་
ཀུན་དུ་སྤྱོད་པའི་རྒྱུད་ཞེས་བཅོམ་པར་བཤད། རྣལ་འབྱོར་མའང་ཞིང་སྤྱིས་དང་།
ཐུགས་སྤྱོད། ལྷན་སྤྱིས་ཀྱི་དབྱེ་བས་གསུམ་དང་། དེ་དག་གི་མཚན་པའང་ཕྱི་ནང་
གསལ་གསུམ་གྱི་མཚན་པ་རྣམ་པ་གསུམ་མོ།

རྒྱུད་འདི་མངོན་པར་བཅོམ་པ་འབུམ་པའི་རྒྱུད་ལས་ཟུར་དུ་བྱུང་བ་ཞིག་
ཡིན་པས་འདི་ཉིད་ཀྱི་དབྱར་ཅོམ་པར་དམ་བཅའི་སྐབས་ཅ་རྒྱུད་ནང་བཅོམ་བྱ་གང་
ཞིག་སྤྱོད་པའི་ཆུལ་གྱིས་བསྟན་པ་དེ་དག་སྐབས་འདིར་རྣམ་པ་གཞན་གྱི་སྟོན་ནས་
གསལ་བར་མཛད་ཆུལ་གསུངས་ཡོད། གལ་གནད་ཆེ་བའི་རྒྱུད་འདིའི་འབྲེལ་པ་
གཉིས་ཉིད་སོན་བྱུང་བ་ནི་དཔྱག་དཔྱིད་མཛད་པའི་རྣལ་འབྱོར་མ་ཀུན་དུ་སྤྱོད་

པའི་བཤད་སྒྲུབ་དང་། སློབ་དཔོན་ཨལ་ཀལ་ལཤམ་མཛད་པའི་མན་ངག་ཆེས་འབྲང་
གི་འབྲེལ་བཤད་བཅས་ཡིན། རྣལ་འབྱོར་མ་ཀུན་དུ་སྦྱོང་པའི་རྒྱུད་དང་།
ཏཱ་ལྷ་པོ་རྒྱུ་མཛད་པའི་བཤད་སྒྲུབ་གཉིས་པོ་དུ་འབྱུང་ཡོད་པ་འདི་མཉམ་
བཞེད་ཡོད་སློབ་དཔོན་ཨལ་ཀལ་ལཤམ་མཛད་པའི་འབྲེལ་པ་དེ་སྤྱོད་དུ་བསྒྲུབ་མི་
འདུག་ཀྱང་འདིའི་མ་དཔེ་ཞུ་སྒྲིག་སྐབས་ཉི་ཤེར་སྤྱོད་སྤྱོད་ཅང་ཞིབ་གསལ་བཞེད་པ་
ལྟར་གྱི་མ་ཕྱི་ལག་གིས་མ་ཁག་མང་པོ་དང་མཚུངས་བསྒྲུབ་བྱས་ཡོད།

སློབ་དཔོན་ཨལ་ཀལ་ལཤམ་མཛད་པའི་འབྲེལ་པའི་མ་དཔེ་གཅིག་རང་རྟེན་
པ་དེ་ནི་གིང་ལོའི་སྤྱང་དུ་བྱིས་པའི་ཡི་གེ་ཏ་ཅང་རྟེན་པ་ལས་པར་བཤུས་བྱས་པ་
ཡིན་སྐབས། ཆ་ཤས་ཆུད་ཐོས་སྤང་བ་དང་། འགའ་ཤས་རྒྱལ་ཆག་དུ་སྤང་བེན་
འདུག་པ་མ་ཟད། གང་ཡོད་པ་དེའང་ཤོག་སྤེབ་གོ་རིམ་འཁྲུགས་ཏེ་མཐར་ཆགས་སུ་
མི་འདུག་པ་དེ་བཞིན་ལས་གཞི་འདིའི་ངེས་སྟོན་པ་པརྟེན་ཇརྟེན་པརྟེན་པ་མཚོག་
གིས་ཤོག་ཏེ་ར་བརྟེན་སྤྱོད་དང་། སྤྱོད་པས་འཕྲིན་གཉིས་ཀྱི་
མཐུན་འབྱུང་ལ་བརྟེན་ནས་ཅ་ཆིག་གི་གོ་རིམ་དང་ཆིག་འགྲོས་ལ་གཞིགས་ཏེ་
བསྒྲུབ་དུ་སྤྱོད་སྒྲིག་གིས་པར་ཅ་བྱ་སྒྲིག་གནང་རུང་། ཅ་བརྟེན་སྤང་བེན་པ་དེ་དག་མ་
དཔེ་གཞན་མ་རྟེན་སྐབས། དེ་མུར་འཛོག་པ་ལས་བྱ་བ་ཐབས་གཞན་མ་བྱུང་། འབྲེལ་
པ་འདི་ཏ་ཅང་ཅ་ཆིག་ཞིག་ཡིན་རུང་། ཆ་ཆང་མ་རྟེན་པ་སྤྱོད་པས་གཞན་སུ་གྱུར།

རྒྱུད་གཞུང་འདིའི་སྤྱང་བཛྲ་ཆེས་དཀོན་གསུང་རབ་ཉམས་ཞིབ་ལས་
གཞིའི་ཉེ་བའི་ངེས་སྟོན་པ་བྱར་པ་གསང་སྤྱགས་ལ་གིན་དུ་མཁས་པའི་པརྟེན་
སྤྱང་བསྐྱེད་པའི་མཚོག་གིས་ལྷགས་ཅོམ་མཛད་ཅིང་། པར་ཅ་ཞུ་སྒྲིག་ལས་དོན་
ལའང་ཁོང་གི་ལམ་སྟོན་དང་གྲོགས་དན་གནང་བར་བཀྱིན་ཆེས་དྲན་གྱི་ཐུགས་ཆེ་
ཞུ་རྒྱུ་ཡིན། འདིར་འཁོད་རྒྱུད་གཞུང་ཅ་འབྲེལ་ཁག་གི་མ་དཔེ་འཚོལ་སྤྱོད་ལ་མཐུན་
འབྱུང་གནང་མཁན་སྤྱི་སྤྱོད་ཆང་མར་ཡང་ཐུགས་ཆེ་ཞུ་རྒྱུ་ཡིན།

ཐུང་གཞུང་འདིའི་དག་ལུས་ཞིབ་འཇུག་མཇུག་སྐྱོང་གནང་སྟེ་པར་སྐྱུན་ཐུབ་
 པར་ནང་པའི་ཆེས་དཀོན་གསུང་རབ་ཉམས་ཞིབ་ལས་གཞིའི་ལས་བྱེད་མཁས་
 དབང་རྣམ་པར་ལེགས་སའི་བཞུགས་བརྗོད་ལྟ་བུ་ཡིན།

ཕྱག་དཔེ་འདིའི་སྟོག་པ་པོ་མཆིན་ཡོན་ཅན་རྣམས་ལ། གལ་ཏེ་སློབ་དཔོན་
 ཨལ་ཀལ་ལས་མཇུག་པའི་འབྲེལ་པ་འདིའི་མ་དཔེ་ཆ་ཆང་གཞན་ཉིད་སོན་བྱུང་ཆེ་
 མཐོ་སློབ་འདིར་བརྟེན་ལན་གནང་སྐྱོང་ཡོང་བའི་རེ་བསྐྱེད་ལྟ་བུ་བཅས། ལྷ་ཁ་དབུས་
 བོད་ཀྱི་ཆེས་མཐོའི་གཙུག་ལག་སློབ་ཁང་གི་ངེས་སྟོན་པ་ཟམ་གདོང་སྟོ་བཟང་བསྟན་
 འཛིན་གྱིས་ ༡༩༩༥ ཕྱི་ཟླ་ ༥ ཆེས་ ༡༡ བཟང་པོར་བྲིས་པ་དགེ་བར་གྱུར་ཅིག།

उपोद्घात

भारतीय विद्या, विशेषकर बौद्ध तन्त्रशास्त्र के अनुशीलन में निरत विद्वानों के समक्ष दो टीकाओं के साथ योगिनीसञ्चारतन्त्र को प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष की अनुभूति हो रही है। योगचार, योगसंचर अथवा योगसंचार के नामों से एक ही ग्रन्थ तन्त्रालोक और तन्त्रसार में अभिनवगुप्त द्वारा तथा तन्त्रालोकविवेक में जयरथ द्वारा उद्धृत है। इन वचनों का संग्रह और उद्धृत वचनों के स्थान का निर्देश लुप्तागमसंग्रह के प्रथम (पृ० १०९-११२) एवं द्वितीय (पृ० १४३) भाग में किया गया है। लुप्तागम उपोद्घात (पृ० ६०) में नेपाल के वीर पुस्तकालय की सूची (भा०-२, पृ० ११२) में योगिनीसञ्चार की मातृका की सूचना दी गयी है। वह प्रस्तुत बौद्धतन्त्र की मातृका है, उक्त योगसञ्चार नामक शैवतन्त्र की नहीं। ये दोनों ग्रन्थ पूरी तरह से एक दूसरे से भिन्न हैं, क्योंकि उक्त स्थल पर संगृहीत वचनों में से एक भी वचन प्रस्तुत तन्त्र में उपलब्ध नहीं है।

इस तन्त्र में सत्रह निर्देश हैं और प्रत्येक निर्देश के अन्त में दिये गये पुष्पिका-वाक्यों में उस निर्देश में मुख्य रूप से प्रतिपाद्य विषय का उल्लेख कर दिया गया है। टीकाकार ने भी सभी निर्देशों के प्रतिपाद्य को प्रस्तुत किया है (पृ० ३-४)। विषय सूची में मूल ग्रन्थ के साथ दोनों टीकाओं में विशेष रूप से प्रतिपादित विषयों का भी समावेश किया गया है। अतः अब यहाँ पूरे ग्रन्थ के संक्षेप को प्रस्तुत न कर केवल कुछ विशेष विषयों की ही चर्चा की जा रही है।

सम्पादन में प्रयुक्त मातृकाओं का सूक्ष्म विश्लेषण हम पाश्चात्य पद्धति के विद्वानों के लिये छोड़ देते हैं और प्रस्तुत तन्त्र की भाषा के विषय में भी विमलप्रभाकार पुण्डरीक को उद्धृत कर देना ही पर्याप्त समझते हैं। वे कहते हैं—
“तेषां च सुशब्दवादिनां सुशब्दग्रहविनाशाय अर्थशरणतामाश्रित्य क्वचिद् वृत्तेऽपशब्दः, क्वचिद् वृत्ते यतिभङ्गः क्वचिदविभक्तिकं पदम्, क्वचिद् वर्णस्वरलोपः, क्वचिद् वृत्ते दीर्घो ह्रस्वः, ह्रस्वोऽपि दीर्घः, क्वचित् पञ्चम्यर्थे सप्तमी चतुर्थ्यर्थे षष्ठी, कुत्रचित् परस्मैपदिनि धातावात्मनेपदम्, आत्मनेपदिनि परस्मैपदम्, क्वचिदेकवचने

बहुवचनं बहुवचने एकवचनम्, पुँल्लिङ्गे नपुंसकं नपुंसके पुँल्लिङ्गम्, क्वचित् तालव्यशकारे दन्तमूर्धन्यौ क्वचिद् मूर्धन्ये दन्ततालव्यौ, क्वचिद् दन्त्ये तालव्यमूर्धन्यौ। एवमन्येऽप्यनुसर्तव्यास्तन्त्रदेशदेशको(नो)पदेशकेन” (भा० १, पृ० २९) इति। परवर्ती काल में बंगाल में विकसित शाक्त तन्त्रों की भाषा पर भी यह उक्ति पूरी तरह से चरितार्थ होती है। संभव है, इसकी कड़ी महायान-सूत्रों की भाषा संकर-संस्कृत से जुड़ी हुई हो।

तन्त्रों की इस प्रकार की भाषा को देखकर ही प्रो० विन्टरनित्ज़ ने कहा है कि पुराणों और तन्त्रों का अध्ययन कोई आनन्ददायक कार्य नहीं है। यह बात तन्त्रों के बारे में अधिक सही है। ये सारे के सारे हीन कोटि के लेखकों की कृतियाँ हैं और प्रायः असंस्कृत और व्याकरण के नियमों से अछूती भाषा में लिखे गये हैं^१। इसका उत्तर पुण्डरीक के उक्त उद्धरण के प्रारम्भ में ही मिल जाता है कि भाषा की शुद्धता भी एक प्रकार का आग्रह है। शब्दों का प्रयोग अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिये किया जाता है^२। अभिनवगुप्त का कहना है कि दूसरे व्यक्ति तक अपने ज्ञान को पहुँचाने के लिये शब्द से सहायता ली जाती है। योगसूत्र-व्यासभाष्य (१.७) में यह वचन आनुपूर्वी से मिल जाता है। अशुद्ध शब्दों के प्रयोग से भी अर्थ-बोध में प्रायः कोई बाधा नहीं आती। इसी अभिप्राय की नैयायिकों की एक उक्ति भी प्रसिद्ध है— “अस्माकूणां नैयायिकेषामर्थरि तात्पर्यं न तु शब्दरि”।

इतना सब होते हुए भी टीकाकारों ने इस प्रकार की भाषा का प्रयोग नहीं किया और अनेक स्थानों पर वे अपनी कृतियों में मूल ग्रन्थ में स्थित शब्द का शुद्ध स्वरूप बताना नहीं भूलते। यह भी एक प्रकार से विचारों का संघर्ष ही था और अब इसमें से एक ही पक्ष बचा रह गया है। साथ ही यह भी कि प्रो० विन्टरनित्ज़ की उक्ति के विपरीत आजकल तन्त्रशास्त्र का अध्ययन एक रुचिकर

१. प्राचीन भारतीय साहित्य (हिन्दी संस्करण) भा० १, ख० २, पृ० २६२, मोतीलाल बनारसी-दास, वाराणसी, सन् १९६६

२. “आगमो हि नामाद्यं शब्दनसंक्रान्तिशरीरः । यथाह भगवाननन्तः— परत्र स्वबोधसंक्रान्तये शब्देनोपदिश्यते” (ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी, भा० १, पृ० ८९)।

विषय बन गया है। यह भी कहना सही नहीं है कि तन्त्रशास्त्र के सभी ग्रन्थों की भाषा असंस्कृत और व्याकरण के नियमों से बँधी हुई नहीं है।

मूल ग्रन्थ में एवं इसकी दोनों टीकाओं में इस तन्त्र के विषय में अनेक सूचनाएँ मिलती हैं। उनका समष्टि रूप में विश्लेषण कर लेना जरूरी लगता है। जैसा कि पृ० २ पर यहाँ बताया गया है कि खसमतन्त्र के बाद इस तन्त्र की प्रवृत्ति हुई है। पृ० ८५ एवं पृ० १२३ के मूल एवं टीका के वचनों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि खसमतन्त्र और लक्षाभिधानतन्त्र अभिन्न है और इसमें एक लाख श्लोक थे। मूलतन्त्र (पृ० ५-७, ९-१२, १२६, १३०), विस्तरतन्त्र (पृ० ८१-१०६) और महातन्त्र (पृ० १२७)— ये सब एक ही तन्त्र के नाम हैं, ऐसा प्रतीत होता है। मूलतन्त्र के भी बृहत् और सूक्ष्म (६-९, ११-१२) रूप दो भेदों की चर्चा मिलती है। इनमें बृहन्मूलतन्त्र (पृ० ४, ७, १२६) और सूक्ष्मतन्त्र (पृ० ५, ९, १२) का अलग-अलग उल्लेख भी मिलता है। तन्त्र शब्द से यहाँ (पृ० १५०) योगिनीसञ्चारतन्त्र का ग्रहण किया गया है और बताया गया है कि बृहत्तन्त्र के पश्चात् इस तन्त्र का उपदेश हुआ (पृ० ४)। आनन्तर्य पद की व्याख्या करते हुए यहाँ (पृ० ५) बताया गया है कि बृहत्तन्त्र के मध्य में इसकी स्थिति है अथवा मूलतन्त्र की देशना के बाद इस तन्त्र की देशना हुई है (पृ० ५)। यहाँ

-
३. खसमतन्त्र एवं योगिनीसंचारतन्त्र दोनों ही संवरतन्त्र के व्याख्यातन्त्र हैं। परम्परागत मान्यतानुसार खसमतन्त्र भी व्याख्या तन्त्र के एक पृथक् विभाजन में संगृहीत है। भोट अनुवाद कन्युर संग्रह में खसमतन्त्र के नाम से दो भिन्न तन्त्र हैं—एक खसमतन्त्रराज (तो. ३८६) जो संवर का व्याख्यातन्त्र है तथा दूसरा (तो. ४४१) जिस पर रत्नाकरशान्ति ने खसमा नाम की टीका रचित की। इसको प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय ने सम्पादित कर संकाय पत्रिका संस्कृत विश्वविद्यालय से प्रकाशित किया है।
 ४. यद्यपि उद्धरणों से इनकी अभिन्नता प्रतीत होती है, तथापि परम्परागत मान्यतानुसार लक्षाभिधान संवरतन्त्र का मूलतन्त्र है। संवरतन्त्र की गणना प्रज्ञातन्त्रों में हेरुककुल के अन्तर्गत आती है। इसका विस्तरतन्त्र अथवा बृहन्मूलतन्त्र एक लाख परिच्छेदात्मक, मध्यममूलतन्त्र एक लाख श्लोकात्मक और संक्षिप्त मूलतन्त्र इक्यावन परिच्छेदों में सात सौ श्लोकात्मक है। इसे लघुतन्त्र भी कहा जाता है। जैसे संक्षिप्त रूप को कालचक्रतन्त्र में भी लघुकालचक्रतन्त्र कहा गया है। संवरतन्त्र के बृहन्मूलतन्त्र और मध्यम मूलतन्त्र का भोटानुवाद भी उपलब्ध नहीं है।

“बृहत्तन्त्रमध्यमण्डलत्वादस्य” (पृ० ५) इस वचन का क्या यह अर्थ लगाया जायगा कि बृहत् और सूक्ष्म तन्त्र के मध्य में इसकी देशना हुई। यदि ऐसा है तो यह जानना आवश्यक हो जायगा कि सूक्ष्म तन्त्र के नाम से किस तन्त्र को ग्रहण किया जायगा।

विस्तरतन्त्र को यहाँ (पृ० ५५, ६९) गोप्यतन्त्र भी कहा गया है। गोप्यतन्त्र के रूप में यहाँ मूलतन्त्र का उल्लेख इस लिये हुआ है कि वहाँ जिन विषयों को गुप्त रखा गया है, उनकी यहाँ प्रकट रूप से देशना की गई है। उदाहरण के रूप में यहाँ (पृ० ६७) स्पष्ट किया गया है कि मूलतन्त्र के षष्ठ पटल में उपहृदय आदि मन्त्र-भेदों के निरूपण की प्रतिज्ञा करने के उपरान्त भी वहाँ उनका स्वरूप नहीं बताया गया था। अब इस तन्त्र में उनका निरूपण किया जा रहा है। पृ० ५५ पर बताया गया है कि इसको गोप्यतन्त्र इसलिये कहा गया है कि ५१ पटलों वाले मूलतन्त्र का उपदेश कर भगवान् ने इसको गोपनीय तन्त्र घोषित कर दिया। पृष्ठ ६ पर भी इस विषय की स्पष्ट चर्चा है कि लक्षाभिधानतन्त्र में जिन विषयों को गुप्त घोषित किया गया है, उनकी यहाँ स्पष्ट देशना की गई है।

इस परम्परा का निर्वाह अन्य तन्त्रों में भी किया गया है। शाक्त सम्प्रदाय के तन्त्र योगिनीहृदय (१.१-२) में बताया गया है कि वामकेश्वर तन्त्र में अनेक विषय अस्पष्ट रह गये हैं, उनका उपदेश यहाँ किया जा रहा है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पूर्व काल में आविर्भूत तन्त्रों में जो विषय अस्पष्ट रह जाते हैं अथवा जिनका उपदेश नहीं हुआ है, परवर्ती काल में प्रवृत्त तन्त्रों में उनका निरूपण किया जाता है।

इस प्रसंग में अभिनवगुप्त की यह ^५उक्ति भी विशेष रूप से अवधेय है कि रहस्य को एक जगह पूरी तरह से स्पष्ट नहीं कर देना चाहिये और वह रहस्य नष्ट न हो जाय, अतः उसकी सुरक्षा के लिये उसको अनेक स्थलों पर टुकड़े-टुकड़े में बताना चाहिये। वामतन्त्र, कौलतन्त्र आदि से सम्बद्ध विषयों का अपने

५. “न अतिरहस्यमेकत्र ख्याप्यम्, न च सर्वथा गोप्यमिति हि अस्मद्गुरवः” (तन्त्रसार, पृ० ३१)

तन्त्रालोक नामक बृहद् ग्रन्थ के विभिन्न आह्निकों में उन्होंने इसी पद्धति से वर्णन किया है। प्रस्तुत तन्त्र (१.२) में भी इसी पद्धति की ओर इंगित किया गया है।

गुह्यसमाजतन्त्र (१८.३३-३४) में हेतु, फल और उपाय के भेद से त्रिविध तन्त्रों की चर्चा मिलती है। उनका लक्षण यहाँ (पृ० ६) भी बताया गया है। गुह्यसमाज के वज्रमाला आदि व्याख्यातन्त्र माने गये हैं। उसी पद्धति से यहाँ (पृ० ७) भी बिना किसी नाम के व्याख्यातन्त्र का उल्लेख है और बताया गया है कि सञ्चारविधि को पूर्व उपदिष्ट व्याख्यातन्त्र में गुप्त रखा गया था, उसका यहाँ स्पष्ट रूप से विवरण दिया गया है। इस व्याख्यातन्त्र का नाम गवेषणीय है।

कृष्णपाद के गुह्यतत्त्वप्रकाश नामक ग्रन्थ की (पृ० १०), कृष्णपाद एवं रत्नवज्र के मत की (पृ० ४१), आचार्य रत्नाकर शान्तिपाद की हेवज्रपञ्जिका के अष्टम पटल की (पृ० ८०) और डाकिनीजालसंवरतन्त्र की (पृ० ८५) चर्चा यहाँ है। अस्मत्परमगुरुपाद (पृ० १४) एवं अस्मद्गुरुपाद (पृ० ४०) कह कर टीकाकार ने अपने परमगुरु और गुरु के मत का उल्लेख किया है। “गुरुभिव्याख्यातत्वात्” (पृ० ११९) यहाँ भी इन्होंने अपने गुरु को स्मरण किया है। यह इतना संक्षिप्त उल्लेख है कि हम न तो इनके गुरु एवं परमगुरु के नामों से और न उनकी कृतियों से ही परिचित हो सकते हैं। कृष्णपाद के गुह्यतत्त्वप्रकाश को वसन्ततिलकटीका (पृ० १७, ८९) में भी उद्धृत किया गया है। वसन्ततिलक कृष्णपाद की ही रचना है। इनका तथा इनके ग्रन्थों का परिचय “न्यू कैटलागस कैटलागम्” (भा० ४, पृ० २२९-२३१) में देखा जा सकता है।

सर्वतन्त्र पद का अर्थ टीकाकार ने पाँच प्रकार के तन्त्र किया है (पृ० १०७)। ये पाँच प्रकार के तन्त्र कौन से हैं, इसका यहाँ उल्लेख नहीं है। अन्यत्र (पृ० १४३) सर्वतन्त्र पद का अर्थ क्रिया आदि तन्त्र मिलता है। क्रिया आदि तन्त्र शब्दों का मात्र उल्लेख अन्य स्थलों (पृ० ११२, ११३, १२९) पर भी है। हसित, ईक्षण, पाणि(स्पर्श), आलिङ्गन एवं द्वन्द्वभाव की चर्चा यहाँ (१२.५) मिलती है। टीकाकार ने प्रस्तुत स्थल (पृ० ११२) में छह उपायों की चर्चा की है, किन्तु हमें ऐसा लगता है कि जिन पञ्चविध तन्त्रों की ऊपर चर्चा की है, उन्हीं

से इन पाँच क्रियाओं का सम्बन्ध है। इस तरह की चर्चा अन्य बौद्धतन्त्रों में मिलती भी है। हमारी दृष्टि में इन क्रियाओं का सम्बन्ध केवल अनुत्तर योगतन्त्रों की प्रक्रिया से होना चाहिये, क्रिया आदि तन्त्रों से नहीं। पारमितातन्त्र अथवा पारमितादर्शन की (पृ० १४, ११०) तथा मन्त्रनय अथवा मन्त्रमहायान की (पृ० ८, १०, ११०, १११) चर्चा से स्पष्ट है कि पारमितानय की अपेक्षा मन्त्रनय को यहाँ वरीयता दी गई है। मन्त्रनय की यह वरीयता— “एकार्थत्वेऽप्यसंमोहाद् बहूपायाददुष्करात्। तीक्ष्णेन्द्रियाधिकाराच्च मन्त्रशास्त्रं विशिष्यते॥” अद्वयवज्र द्वारा उद्धृत (पृ० २१) इस वचन से परिपुष्ट होती है।

निबन्धकार यहाँ (पृ० १-२) प्रारम्भ में ही पूछते हैं कि तन्त्र-ग्रन्थों के प्रारम्भ में “एवं मया श्रुतम्” इत्यादि निदान-वाक्य मिलते हैं ऐसा यहाँ क्यों नहीं है? इसके उत्तर में वे दो आचार्यों के मतों को उद्धृत करते हैं। विमलप्रभाकार इसी प्रश्न की विजहार-स्थाननिर्देश के रूप में प्रस्तुत करते हैं और २५ हजार श्लोक-प्रमाण समाजतन्त्र, १६ हजार श्लोक-प्रमाण मायाजाल, १२ हजार श्लोक-प्रमाण परमादिबुद्ध, ३६ हजार श्लोक-प्रमाण योगानुबुद्ध, महालक्षाभिधान एवं लक्षाभिधान नामक तन्त्रों का उल्लेख कर बताते हैं कि विभिन्न तन्त्रों में विजहार-स्थान का निर्देश विभिन्न पद्धतियों से किया गया है (भा० १, पृ० ३१-३८)। इस पूरे विवेचन से निबन्धकार के द्वारा उद्धृत दोनों पक्षों की पुष्टि हो जाती है। कालचक्रतन्त्र की देशना भी योगिनीसंचार की पद्धति से ही की गई है। इस विषय पर अभी हम कोई टिप्पणी नहीं करना चाहते।

भारतीय दर्शनशास्त्र के सभी ग्रन्थों में प्रारम्भ में अनुबन्ध-चतुष्टय (विषय, प्रयोजन, सम्बन्ध और अधिकारी) की चर्चा की जाती है। उसी पद्धति का अनुसरण करते हुए यहाँ (पृ० २) निबन्धकार कुमारिल भट्ट के श्लोकवार्तिक (१.१७) को उद्धृत करते हुए इनकी चर्चा करते हैं। विशेषता यह है कि यहाँ अभिधान, अभिधेय, सम्बन्ध और प्रयोजन के साथ प्रयोजन-प्रयोजन का भी समावेश किया गया है। यहाँ तो संक्षेप में ही उनका विवरण दिया गया है, किन्तु विमलप्रभाकार ने इस विषय पर भी पर्याप्त विचार किया है (भा० १, पृ० १२-

३१)। पृ० १२ पर अभिधेय, अभिधान, सम्बन्ध, प्रयोजन और प्रयोजन-प्रयोजन के रूप से यह विषय प्रस्तुत है, किन्तु पृ० ३१ पर प्रयोजन और प्रयोजन-प्रयोजन को एक साथ मिला दिया गया है। इससे यह भ्रम नहीं होना चाहिये कि यहाँ इस नाम का छठा अनुबन्ध निर्दिष्ट है।

निबन्ध (पृ० २) में सञ्चारविधि शब्द की सुस्पष्ट व्याख्या की गयी है। उसका अभिप्राय यह है कि योगिनी बाह्य अथवा आन्तर चक्रों और मण्डलों में किस प्रकार सञ्चार (प्रचार=गति) करेगी, बाह्य और आन्तर पूजाविधि को सम्पन्न करेगी, इसकी यहाँ विधि बताई गई है। योगिनी शब्द से यहाँ योगी का भी ग्रहण हो सकेगा। टीकाकार (पृ० ५) ने भी इस शब्द का अर्थ बताते हुए कहा है कि मण्डलों एवं चक्रों में स्थित योगिनियाँ (डाकिनियाँ) विशिष्ट रूपकाय उत्पन्न कर अथवा उनका सहारा लेकर तीन अथवा ^६पाँच चक्रों के चारों तरफ जो संचरण करती हैं, सत्त्वों के कल्याण के लिये प्रवृत्त होती हैं, उसकी विधि को यहाँ बताया गया है। जीवों के कल्याण के लिये योगिनियों की यह सञ्चरण-क्रिया पञ्चाकाराभिसम्बोधि आदि उपायों में से किसी एक का सहारा लेकर जैसे भी संभव हो, उसी तरह से सम्पन्न की जाती है। इस ग्रन्थ के योगिनीसंचार्य अथवा योगिनीसंचर्या जैसे नाम भी प्रयुक्त हुए हैं। उनमें से योगिनीसंचार्य नाम अशुद्ध प्रतीत होता है, किन्तु योगिनीसंचर्या पद अवश्य प्रयुक्त किया जा सकता है।

मूल ग्रन्थ के द्वितीय एवं तृतीय श्लोक में उद्देश, निर्देश एवं प्रतिनिर्देश की चर्चा है। इन शब्दों की तुलना हम न्यायदर्शन आदि में प्रयुक्त उद्देश, लक्षण और परीक्षा शब्दों से कर सकते हैं। किसी भी वस्तु की सिद्धि के लिये, उसके यथार्थ स्वरूप को जानने के लिये प्रथमतः उसके नाम की चर्चा की जाती है। बाद में उसका लक्षण बताया जाता है और अन्त में वह लक्षण उसमें घटता है या नहीं, इसकी परीक्षा की जाती है। उसी तरह यहाँ भी अन्य तन्त्रों में गुप्त रूप में उपदिष्ट योगिनी संचारविधि का स्पष्ट स्वरूप बता कर उसकी परीक्षा की गई है। यह

६. यहाँ पाँचवें निर्देश में ज्ञान, काय, वाक्, चित्त और समय इन पाँच चक्रों का निर्देश है

^१ (पृ० ४६-५३)।

बताया गया है कि सत्त्वों (जीवों) के कल्याण के लिये साधक किस प्रकार अपनी चर्या को निश्चित कर सकता है, बाह्य और आन्तर योगविधि का सहारा लेकर इसके लिये अपने को समर्थ बना सकता है। बौद्धतन्त्रों में जिन पारिभाषिक अर्थों में इन शब्दों का प्रयोग होता है, उनको टीका में त्रिविध अर्थों के प्रसंग (पृ० ९-१३) में अधिक स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। योगिनीसंचार पद की भी वहाँ अपनी-अपनी पद्धति में व्याख्या की गई है।

इस प्रक्रिया को सम्पन्न करने के लिये उपाय के रूप में ३७ बोधिपाक्षिक धर्मों का उल्लेख यहाँ चौथे श्लोक में किया गया है। हम कह सकते हैं कि आगे के पूरे ग्रन्थ में वसन्ततिलक के समान इन्हीं का विस्तार किया गया है। टीकाकार ने इन चारों श्लोकों की सामान्य व्याख्या करने के उपरान्त इनकी बाह्य, आन्तर और गुह्य के नाम से त्रिविध व्याख्या की है। इनमें सञ्चारविधि, उद्देश, निर्देश, प्रतिनिर्देश, बोधिपाक्षिकधर्म आदि शब्दों की भी तदनु रूप ही व्याख्या मिलती है। जिज्ञासु पाठक इन अर्थों को वहीं (पृ० ९-१३) देख सकते हैं। बाह्य व्याख्या के प्रसंग (पृ० ९) में लय-भोग-अधिकार पद तथा मन्त्रौलि शब्द और आन्तर व्याख्या में गुह्यौलि जैसे पद प्रयुक्त हुए हैं। इनमें से लय, भोग और अधिकार पदों का (पृ० ५०) तथा तन्त्रौलि और ज्ञानौलि के साथ मन्त्रौलि एवं गुह्यौलि पदों का भी (पृ० ८७-८८) प्रयोग वसन्ततिलक की टीका में मिलता है। वहाँ उपोद्घात में इनकी संक्षिप्त चर्चा हुई है। इन पर अभी विशेष विचार अपेक्षित है।

तन्त्रागमशास्त्र का यह सिद्धान्त है कि देवता की उपासना करते समय साधक को अपने में देवताहंकार उत्पन्न करना चाहिये, अर्थात् मैं स्वयं देवस्वरूप हूँ, इसकी भावना अपने में जगानी चाहिये। इतर तन्त्रों में भूतशुद्धि, प्राणप्रतिष्ठा, कलान्यास आदि के द्वारा इस विधि को सम्पन्न किया जाता है। बौद्ध तन्त्रों में यह विधि उत्पन्नक्रम की प्रक्रिया के रूप में वर्णित है। इसके लिये स्कन्ध, धातु और आयतन की शुद्धि के रूप में यह प्रक्रिया बताई गई है। देवताहंकार की उत्पत्ति के लिये योगी को क्या करना चाहिये, इसकी चर्चा यहाँ (पृ० १३-१४) टीकाकार ने की है। अपने परमगुरु को उद्धृत कर। हुए उन्होंने स्कन्धविशुद्धि की प्रक्रिया भी

बताई है। पञ्चस्कन्धों के वैरोचन आदि अधिपतियों की पञ्चज्ञानात्मकता को भी उन्होंने स्पष्ट किया है (पृ० १४-१५)।

देवतायोग के प्रसंग में ही द्वितीय निर्देश (पृ० १९-३०) में ३७ बोधि-पाक्षिक धर्मों का निरूपण किया गया है। टीकाकार ने इनकी अधिक विस्तार से व्याख्या की है। इस विषय पर संक्षिप्त प्रकाश वसन्ततिलक के उपोद्घात (पृ० २५-२७) में डाला जा चुका है।^७ पालि भाषा के वाङ्मय के आधार पर जैसे संस्कृत भाषा में महायान साहित्य का विकास हुआ, उसी पद्धति से मन्त्रनय का दर्शन भी प्रायः महायान दर्शन का अनुसरण करता है। त्रिविध काय, चतुर्ब्रह्मविहार, बोधिपाक्षिकधर्म, शून्यवाद, विज्ञानवाद आदि को इस प्रसंग में प्रस्तुत किया जा सकता है। मन्त्रनय में इनके स्वरूप में कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ है। वैष्णव, शैव, शाक्त आदि तन्त्रों की दार्शनिक पृष्ठभूमि में सांख्य, योग, वेदारण्यक (उपनिषद्) आदि की स्थिति स्पष्ट है, किन्तु हम देखते हैं कि इनकी दार्शनिक दृष्टि में विलक्षणता देखने को मिलती है। पारमितानय के त्रिकायवाद, ३६ बोधिपाक्षिकधर्म आदि के स्थान पर मन्त्रनय में चतुःकायवाद, ३७ बोधि-पाक्षिकधर्म, एक ही जन्म में मुक्ति जैसे सिद्धान्तों का उद्भव उसी दृष्टि की परिणति है। शून्यवाद की व्याख्या में भी यह परिवर्तन स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। चक्रेश्वर, मन्त्रेश्वर, दशभूमीश्वर आदि विविध रूपों में ३७वें धर्म के रूप में भगवान् श्रीहेरुक की सत्ता की स्वीकृति इसी दृष्टि की परिणति है।

द्वितीय निर्देश में देवतायोग के प्रसंग में ३७ बोधिपाक्षिकधर्मों का निरूपण करने के बाद तृतीय निर्देश (पृ० ३१-३६) में इन धर्मों से संयुक्त डाकिनी आदि देवताओं की स्थिति को बताया गया है। यह विषय वसन्ततिलक आदि में भी वर्णित है। इनके तुलनात्मक अनुशीलन की अपेक्षा है। चतुर्थ निर्देश (पृ० ३७-४१) में संवर-स्वरूप हेरुक के साथ अद्वयभावापन्न योगिशरीर के नख-दन्त आदि २४ धातुओं में खण्डकपाल आदि चौबीस देवताओं के न्यास का विधान

७. महायान शास्त्रों में प्रतिपादित बोधिपाक्षिकधर्मों के विस्तृत परिचय के लिए प्रो० रामशङ्कर त्रिपाठी का लेख देखें—“बोधिपाक्षिक धर्म” (‘धीः’ अंक १५, पृ० ६७-८०)।

वर्णित है। इसी प्रकार पाँचवें निर्देश (पृ० ४२-५४) में वायु आदि के आध्यात्मिक एवं बाह्य चतुर्विध मण्डलों के स्वरूप को बताकर हेरुकमण्डल में एकवीर आदि तथा डाकिनी आदि देव-देवियों के तथा काय-वाक्-चित्त चक्र में विभक्त २४ पीठों में बीजाक्षरों एवं विभिन्न देवताओं के विन्यास की विधि बताई गई है^८। बाह्य और आन्तर मण्डलों एवं पीठों में इनका समान रूप में विन्यास किया जाता है। वायु आदि के चार मण्डलों का आकार बौद्ध एवं बौद्धेतर सभी तन्त्रों में आश्चर्यजनक रूप से सर्वत्र समान है। यहाँ के ३-५ निर्देशों के सभी विषय वसन्ततिलक के विभिन्न निर्देशों में देखे जा सकते हैं। यह भी अवधेय है कि दोनों ही ग्रन्थों के विभिन्न प्रकरणों को निर्देश नाम दिया गया है।

षष्ठ निर्देश (पृ० ५५-६८) में भगवान् श्रीहेरुक एवं वज्रवाराही आदि देव-देवियों के चिह्न, मुख, वर्ण, भुजा, संस्थान, आयुध आदि के रूप में ध्यान का प्रकार निरूपित है। यहाँ चतुर्विध, पञ्चविध तथा षड्विध मुद्राओं का भी विवरण ध्यान के प्रसंग में ही किया गया है। इन मुद्राओं की चर्चा आगे भी यहाँ मिलती है। सातवें निर्देश (पृ० ६९-७४) में भगवान् श्रीहेरुक एवं भगवती वज्रवाराही के छह कवचों के न्यास का प्रकार प्रदर्शित है। पृ० ७१ पर आया आम्नाय पद परम्परा का सूचक है। शाक्त तन्त्रों में इस पद का प्रयोग भिन्न अर्थ में हुआ है। वज्रसत्त्व आदि षड्विध देवताओं की भाँति वज्रवाराही आदि षड्विध देवियों की भी यहाँ चर्चा है, किन्तु यहाँ (पृ० ७३-७४) इनके जो नाम दिये गये हैं, वे अन्यत्र प्रदर्शित नामों से कुछ भिन्न हैं। इस तरह से द्वितीय से लेकर सप्तम निर्देश पर्यन्त ग्रन्थ में देवतायोग की भावना का प्रकार प्रदर्शित है।

देवतायोग से समापन्न योगी ज्ञानचक्र एवं समयचक्र में प्रविष्ट हो मुद्रा, मन्त्र, बीजन्यास आदि की सहायता से निष्पन्नयोग की साधना में प्रवृत्त हो समापत्ति-योग की साधना का अधिकारी बन जाता है। समापत्ति के प्रयोजन को

८. काय-वाक्-चित्त चक्र में स्थित देव-देवियों, डाक-डाकिनियों एवं पीठों के बीजाक्षरों के विस्तृत परिचय के लिए देखें— “बौद्ध तन्त्रों में वर्णित पीठोपपीठादि का विवेचन” (‘धीः’ अंक ३, पृ० ६५-६९)।

भी यहां स्पष्ट किया गया है। मुद्रा पद से यहाँ अंगुलि-मुद्रा गृहीत है। अष्टम निर्देश (पृ० ७५-८२) में इन सब विषयों का वर्णन करने के बाद नवम निर्देश (पृ० ८३-८९) में धर्म, संभोग एवं निर्माण काय के साथ महायान और महामुद्रा का निरूपण किया गया है। भगवान् श्रीहेरुक की निष्पन्नक्रम की साधना में निरत योगी के लिये सोमपान, अर्थात् पञ्चामृत के आस्वादन की प्रक्रिया के साथ पुल्लीरमलय आदि २४ आन्तर पीठ-स्थानों में पुकार आदि २४ बीजाक्षरों के न्यास के द्वारा साधक अपने में कायत्रय की भावना करता है। प्रवृत्ति एवं निवृत्ति के रूप में इनकी सिद्धि कर योगी हेरुक पद में प्रतिष्ठित हो जाता है। इसी प्रसंग में हे रु क— इन तीन वर्णों की व्युत्पत्ति दिखाई गई है। इस स्थिति में योगी ३७ बोधिपाक्षिकधर्मों का अनुसरण कर सभी प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। जैसा कि पहले बताया गया है, यहाँ महायान की पद्धति से तीन ही काय चर्चित हैं, चतुर्थ काय की यहाँ कोई सूचना नहीं है।

अष्टम एवं नवम निर्देश में भावना की प्रक्रिया को स्पष्ट किया गया है। भावना करते समय मन में खिन्नता आने पर उसके निवारण के लिये योगी के लिये चर्याविधि का उपदेश दसवें निर्देश (पृ० ८९-९९) में दिया गया है। इस प्रसंग में त्रिविध बलि, अमृतास्वाद, ^१दशमी समाराधन, ^{१०}जालमुद्रा, श्मशानशव-साधन, गणचक्रपूजन जैसे विषय वर्णित हैं। स्पष्ट है कि निष्पन्नक्रम की साधना में निरत हेरुकभावपन्न योगी के लिये ही इस चर्या का विधान है। चर्यारत योगी के लिये यहाँ (१०.१२) मुक्तशिख शब्द प्रयुक्त है और षण्मुद्रा प्रकरण में यज्ञोपवीत

९. “कृष्णपक्षे दशम्यां च शुक्लपक्षे च तद् भवेत्” (यो० सं० १०.३) यहाँ बलिदानके लिये विशिष्ट दिन दशमी तिथि को माना गया है, क्योंकि भगवान् के तीन चक्रों का दश पीठों के साथ सम्बन्ध है, स्वयं भगवान् की निष्पत्ति दशभूमिक क्रम से होती है और विष्णुत्रादि षट् धातुओं को चार आनन्दों के साथ जोड़कर यह दस संख्या बनती है, जैसा कि कहा है—

विष्णुत्रचन्द्रमार्तण्डराहुकालाग्निनाडयः ।

षट् आनन्दाश्च चत्वारो दशमीति निगद्यते ॥ (पृ० ९२)

१०. जालशब्द का प्रयोग प्रायः मण्डलचक्र के लिये किया जाता है। उसमें प्रयुक्त होने वाली मुद्राएँ (चेष्टाएँ) जालमुद्रा कहलाती हैं। इस शब्द का प्रयोग अन्य तन्त्रों में भी किया गया है। जैसे अभिनवगुप्त के तन्त्रालोक में— “जालनामा प्रयोगः” (२१.२४-२५)।

परिगणित है। यद्यपि इसकी व्यवस्था वैकल्पिक है और यह वैकल्पिक व्यवस्था शैव एवं शाक्त तन्त्रों में भी मिलती है, तथापि इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि साधक शिखा-यज्ञोपवीत धारी भी होता था। टीकाकार यहां (पृ० ९८) चौबीस धातुओं की चर्चा करते हैं। इन धातुओं और इनके अधिपति देवताओं का निरूपण नवम निर्देश में किया जा चुका है।

एकादश निर्देश (पृ० १००-१०८) में षण्मुद्रा स्वरूप छह पारमिताओं की दस भूमियों और छत्तीस बोधिपाक्षिक धर्मों के साथ परमायु देवता स्वरूप भगवान् श्रीहेरुक की विशुद्धि की प्रक्रिया बताई गई है। इस निर्देश का “येन येन हि भावेन” (११.२) यह श्लोक बौद्ध एवं कौल तन्त्रों में भी समान रूप से मिलता है। निष्पन्न-क्रम की साधना से साधक इसी जन्म में मुक्ति प्राप्त कर लेता है, इस सिद्धान्त को भी तन्त्रागमशास्त्र की प्रत्येक शाखा ने स्वीकार किया है। यहाँ (११.१४) “अनुयोगादितन्त्राणाम्”^{११} यह पाठ निबन्धकार ने और “अत्र योगादितन्त्राणाम्” पाठ टीकाकार ने माना है। ये दोनों ही पाठ ठीक हैं, किन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ में अनुयोग आदि की चर्चा नहीं मिलती। इसके विपरीत योग आदि मन्त्रों की, अर्थात् हृदय, उपहृदय आदि मन्त्रों की चर्चा अवश्य मिलती है। अभी ऊपर बताया गया है कि महायान शास्त्र की पद्धति से तीन ही काय यहाँ मान्य हैं। इसी तरह से यहाँ दस पारमिताओं की ही चर्चा है, विमलप्रभा आदि में प्रदर्शित १२ पारमिताओं की नहीं।

ऊपर जो कुछ बताया गया है, वह वज्रयान की प्रक्रिया के अनुरूप है। अब बारहवें निर्देश (पृ० १०९-१२०) में सहजयान की प्रक्रिया को दिखाया जा रहा है। झटिताकारयोग के रूप में यहाँ सहज ही वर्णित है। “सकृद् विभातोऽयमात्मा” इस वचन के आधार पर अभिनवगुप्त ने आकाशीय विद्युत् की तरह एकाएक कौंध जाने वाली स्थिति को स्वीकार किया है। मानसिक धरातल

११. भोटदेशीय जिङ्मा परम्परा के अनुसार क्रिया आदि चार तन्त्रों के साथ अनुयोग, महायोग, और अतियोग इन तीन को भी समाविष्ट किया है। कृष्णयमारितन्त्र (१७.८-११) में भी भावना के संदर्भ में योग, अनुयोग, अतियोग और महायोग का वर्णन मिलता है।

पर एकाएक प्रकट हो उठने वाली यह स्थिति ही सहज है। टीकाकार ने बताया है कि छह स्थितियों में इस सहज की उत्पत्ति होती है। इस प्रसंग में घुण, सर्वदेह स्थित श्रीहेरुक, सर्वविध शास्त्रों की उत्पत्ति, सारे जगत् की बुद्धात्मकता, आलि-कालि स्वरूप, अक्षर-न्यास जैसे विषय हमें वसन्ततिलक एवं उसकी टीका में भी देखने को मिलते हैं। इस निर्देश के अन्तिम श्लोक (१२.२०) में पिण्डातीत पद प्रयुक्त है। इस स्थल की दोनों ही टीकाएँ अनुपलब्ध हैं, अतः इसका क्या अभिप्राय है, यह स्पष्ट नहीं हो पाता। पिण्ड, पद, रूप और रूपातीत पदों का प्रयोग कौल तन्त्रों एवं जैन तन्त्रों में भी हुआ है। वहाँ भी पिण्डातीत पद नहीं मिलता। नाथ-योग में पिण्ड पद से मनुष्य का शरीर गृहीत है। तदनुसार पिण्डातीत पद का अर्थ मनुष्य शरीर से छुटकारा पा जाना हो सकता है। उस स्थल पर भोटानुवाद में रूपातीत पद ही अनूदित है।

त्रयोदश निर्देश (पृ० १२१-१२८) में वीर और योगिनी के अद्वयभाव का निरूपण किया गया है। पुल्लीरमलय आदि २४ पीठों के बीजाक्षरों की चर्चा आ चुकी है। यहाँ २४ पीठों के नाम, उनकी अध्यात्म में स्थिति तथा बीजाक्षरों का विवरण भी दिया गया है। बीजाक्षरों के न्यास के फल का विवरण देते हुए निबन्धकार ने बताया है कि नाड़ियों एवं उनके अधिपति देवताओं का निरूपण १७वें निर्देश में किया गया है (पृ० १२२)। इस पूरे तन्त्र में कायत्रय ही निर्दिष्ट है। यहाँ (१३.१२) भी उन्हीं की चर्चा है। २४ पीठों की काय-वाक्-चित्त चक्र में स्थिति की यहाँ चर्चा मात्र है। इनको स्पष्ट रूप से पहले बता दिया गया है। सत्यद्वय, वज्रवाराही, २४ वीर, षड् दर्शन जैसे विषयों की चर्चा निबन्धकार और टीकाकार ने भी की है। टीकाकार ने यहाँ (पृ० १२५) वेद, सिद्धान्त आदि शास्त्रों की चर्चा कर एक अधूरा श्लोक उद्धृत किया है। उसका अभिप्राय यह है कि परवादियों का भी अपमान नहीं करना चाहिये। सिद्धान्त पद द्वैतवादी सिद्धान्तशैवों के लिये प्रयुक्त होता रहा है। सर्वागमप्रामाण्य जैसे ग्रन्थों की रचना उस मत में हुई थी। हमें यह भी स्मरण रखना है कि आगम-तन्त्रशास्त्र में भारतीय दर्शनशास्त्र की परमत-खण्डन की पद्धति के विपरीत केवल स्वमत-विवेचन पर ही ध्यान केन्द्रित किया गया है। अस्तु आगे अक्षरान्तरमध्य (१३.२१)

का अर्थ निबन्धकार ने आलि-कालि-परिवेष्टित किया है। आलि-कालि (स्वर-व्यञ्जन) का यहाँ विशेष विवरण नहीं मिलता।^{१२} विमलप्रभा में इसका विस्तार देखा जा सकता है।

चतुर्दश निर्देश (पृ० १२९-१३२) में वज्रसत्त्व (संवर) एवं वज्रवाराही, चतुर्डाकिनी, आदर्शादि चतुष्टय, हस्तपूजा, षड्योगिनी, षड्वीर आदि का परिचय दिया गया है। चर्याव्रत और चर्याव्रती (हस्तपूजाकर्ता) की भी यहाँ संक्षिप्त चर्चा है। इसका स्पष्ट स्वरूप पंचदश निर्देश (पृ० १३३-१३९) में मिलता है। षड्विध मुद्राओं को धारण करने वाली षड्विध योगिनियों के ध्यान का निरूपण कर यहाँ बताया गया है कि ऐसा साधक विधि और निषेध से ऊपर उठ जाता है। विमलप्रभा के समान यहाँ भी वर्णों के एकलोलीभाव का विस्तार से वर्णन है कि पाँच वर्णों के रहते हुए भी इन सबका एक ही वर्ण में समावेश कर लेना चाहिये। “यावन्तो ह्यङ्गविक्षेपाः” (१५.१४) यह श्लोक मानसपूजा के प्रकरण में भारतीय शास्त्रों की सभी शाखाओं में मान्य है। यह चर्याव्रत की प्रक्रिया प्रधानतः सहजयोग की परिधि में ही आती है।

सोहलवें निर्देश (पृ० १४०-१४६) में बताया गया है कि इस कलियुग में श्रीहेरुकं पद की प्राप्ति का सरल उपाय इस तन्त्र की पद्धति से मुद्रा, मण्डल एवं जप के द्वारा उसकी आराधना करना ही है। आलि-कालि, अर्थात् प्रज्ञा और उपाय के अद्वयभाव की आराधना से ही यह संभव हो सकता है। महायान आदि सूत्रों में, क्रिया, चर्या आदि तन्त्रों में इसी का समर्थन किया गया है। यह स्थिति संभारद्वय, अर्थात् संवृति सत्य एवं परमार्थ सत्य के रूप में प्रवृत्ति एवं निवृत्ति के क्रम से प्राप्त की जा सकती है। प्रपंच की सहायता से ही निष्प्रपञ्च निर्वाण में प्रवेश पाया जा सकता है। चिह्न, रूप, संकेत, छोमक आदि की सहायता से योगिनियों के अभिप्राय को जाना जा सकता है, साधक वामावर्तन, अर्थात् वामाचार की साधना पूरी कर सकता है। अन्त में यहाँ^{१३} गर्दभाकारयोग की चर्चा है। इसका अभिप्राय टीकाओं में भी स्पष्ट नहीं किया गया है।

१२. विमलप्रभा भाग १, पृ० ४६, ४९, ६०, ६४-६५, १२९ एवं भाग ३, पृ० ६०-६१

१३. गर्दभाकारयोग का तात्पर्य है एक प्रकार का हेरुकयोग। टीका में कहा गया है— “काकोलूक-ध्यानहस्त्यश्चगर्दभोद्गमुखीः प्राणिजातिविशुद्ध्यर्थं ध्येयाः” (पृ० १४५) इसी उद्देश्य से श्रीहेरुक

सत्रहवें निर्देश (पृ० १४७-१५८) में प्रथमतः योगतन्त्र की पद्धति से परिशुद्ध श्रीहेरुक एवं वज्रवाराही का स्वरूप प्रदर्शित कर बताया गया है कि सभी माण्डलेय देवताओं का निर्गमन यहीं से होता है। आदर्श आदि चतुर्विध ज्ञान से परिशुद्ध कपालचतुष्टय के कोणों में चार प्रकार की पूजा की जाती है। वसन्ततिलक (६.१५) में भी यह शब्द प्रयुक्त है। वहाँ इस विषय को अधिक स्पष्ट रूप में कहा गया है। इस प्रकार से की गई पूजा की फलश्रुति कर आगे यहाँ भी विभिन्न पीठ-स्थानों में विद्यमान प्रचण्डा आदि, डाकिनियों की चर्चा की गई है। बताया गया है कि गूढ मन्त्रों की साधना इन्हीं पीठ-स्थानों में करनी चाहिये। टीकाकार ने इस प्रसंग (पृ० १५३) में मुद्रा का जो लक्षण बताया है, वह कर्ममुद्रा आदि चतुर्विध मुद्राओं में घटित होता है। टीकाकार ने कूर्मपताका आदि मुद्राओं की भी यहाँ (पृ० १५३) चर्चा की है। इनका सम्बन्ध किस प्रकार की मुद्रा से है, यह स्पष्ट नहीं है। वहीं (१७.२०) वह प्रसिद्ध श्लोक भी उपलब्ध होता है, जिसमें बताया गया है कि सामान्य सत्त्व जिन कर्मों के करने से पतित हो जाता है, उपाय से परिशुद्ध होकर वे ही पदार्थ योगी की मुक्ति के साधन बन जाते हैं। यह श्लोक इसी रूप में कौल तन्त्रों में भी उपलब्ध होता है।

आगे का पूरा प्रकरण कर्ममुद्रा से सम्बद्ध है। यहाँ कण्ठिका, रुचक आदि धारणीय मुद्राओं की, वीर एवं योगिनी वृन्द से परिवेष्टित श्रीहेरुक की पूजा के प्रसंग में उनको विविध वस्त्र एवं आभूषणों से अलंकृत करने की, चर्याव्रत में प्रवृत्त योगी के आंगिक, वाचिक, आहार्य एवं सात्त्विक अभिनयों की सूचना मात्र दी गयी है और इनको योगविधि का ही अंग बताया गया है। इन विषयों की यहाँ बहुत संक्षेप में चर्चा है। यहाँ के अन्तिम श्लोक (१७.३१) में सूत्र, यष्टि, रसना और मेखला का लक्षण बताया गया है। इन सबका सम्बन्ध नाट्यशास्त्र से है। निबन्धकार ने इन पदों की व्याख्या भिन्न प्रकार से की है। चतुष्पीठतन्त्र के अन्तिम भाग में इनका स्वरूप अधिक स्पष्ट है।

का एकमुख गर्दभाकार माना जाता है और वह समाधि विशेष द्वारा मण्डलस्थ डाकिनियों के साथ युगनद्ध रूप में रहता है। इस प्रकार की हेरुकयोग की भावना ही संभवतः गर्दभाकारयोग कहलाती है।

इस अन्तिम निर्देश को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे अन्य तन्त्रों में गोपित कुछ विषयों को यहाँ स्पष्ट किया गया है, उसी पद्धति से यहाँ भी कुछ विषयों को, विशेष कर चतुर्विध अभिनय से सम्बद्ध नाट्यचर्या की विधि को यहाँ गुप्त ही रखा गया है, जिससे कि अन्य व्याख्या-तन्त्रों में इनका स्वरूप स्पष्ट किया जा सके।

इस ग्रन्थ के अन्त (पृ० १५८-१६०) में अज्ञातकर्तृक योगिनीसञ्चार-क्रमविधि को भी स्थान दिया गया है, जो कि ख-मातृका के अन्त में उपलब्ध है। इस तन्त्र से सम्बद्ध मण्डल में माण्डलेय देवताओं का विन्यास किस प्रकार किया जाता है, इसका पूरा क्रम इसमें बता दिया गया है।

ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार

योगिनीसञ्चार तन्त्र का परम्परानुसार विभाजन प्रज्ञातन्त्रों में संवरतन्त्र के व्याख्यातन्त्र की श्रेणी में हुआ है। इस तन्त्र का निश्चित आविर्भाव काल क्या है? इस सम्बन्ध में स्पष्ट नहीं कहा जा सकता। तारनाथ अपने “बौद्धधर्म का इतिहास” नामक ग्रन्थ में इस तन्त्र को सिद्ध लुङ्पा द्वारा लाया गया मानते हैं^{१४} तथा लुङ्पा का काल ७६९-८०९ ई० माना जाता है। चौरासी सिद्धों में यह आदि सिद्ध भी हैं। योगिनीसञ्चार तन्त्र के भोटानुवादक गोस् ल्हस् चेस हैं। सम्प्रति हम इनका काल बतलाने में असमर्थ हैं। परन्तु ब्य्यू एनाल्स के रचयिता गोस्-लो-चा-वा से ये भिन्न हैं।

योगिनीसञ्चार तन्त्र के भोट-अनुवाद की तन्युर संग्रह में हमें दो टीकाओं की सूचना मिलती है— एक तथागतक्षित का सञ्चारतन्त्रनिबन्ध (तो० १४२२) तथा दूसरी द्पह्-वो-दो-जें (वीरवज्र) की योगिनीसंचर्याटीका (तो० १४२३)। प्रस्तुत संस्करण में प्रयुक्त अलककलश की टीका का अनुवाद भोट तन्युर संग्रह में उपलब्ध नहीं है। तथागतक्षित द्वारा रचित सञ्चारतन्त्रनिबन्ध के अनुवादकों में

१४. बौद्धधर्म का इतिहास, पृ० १४५

तथागतरक्षित स्वयं तथा रिन्छेन ड्रगस् हैं। इससे यह भी कहा जा सकता है कि तथागतरक्षित भोट देश पहुँचे थे। लोचावा रिन्छेन ड्रगस् १५ वर्ष की अवस्था में १०४० ई० में अतिश दीपंकरश्रीज्ञान से मिले थे^{१५}। तारनाथ के अनुसार तथागतरक्षित यमारितन्त्र तथा संवरतन्त्र के अधिकारी विद्वान् थे तथा विक्रमशिला के बारह तान्त्रिक पण्डितों में इनकी गणना होती थी^{१६}। अतः यह कहा जा सकता है कि तथागतरक्षित दीपङ्करश्रीज्ञान के समकालीन तथा उनसे थोड़े कनिष्ठ थे। भोट विद्वान् खे-त्सुन-जङ्गपो इनका समय दसवीं शताब्दी मानते हैं^{१७}। तन्युर संग्रह में तथागतरक्षित की ११ रचनाओं का उल्लेख मिलता है। वे इस प्रकार हैं—

१. श्मशानेष्ट (तो० १३२९)
२. उभयनिबन्धनाम (तो० १४०९)
३. योगिनीसंचर्यानिबन्ध (तो० १४२२)
४. स्नग्धरासाधन (तो० १६९७)
५. शून्यताभावना (तो० १६९८)
६. कुट्टष्टिदूषण (तो० १६९९)
७. चौरबन्धन (तो० १७००)
८. विद्यावर्धन (तो० १७०१)
९. मृत्युष्ठापक (तो० १७०२)
१०. वज्रसत्त्वसाधनव्याख्या (तो० १८३५)
११. श्रीवज्रभैरवहस्तचिह्नशुद्धनाम (तो० २००७)

दूसरी टीका अलककलश की है। इस टीका एवं टीकाकार के सम्बन्ध में हमें जानकारी नहीं मिली है। टीका में 'गुरु', 'परमगुरु' के उद्धरणों से भी बतलाना संभव नहीं कि इनके गुरु कौन थे। भोट तन्युर संग्रह में इस नाम से

१५. ब्ल्यू एनाल्स, पृ० ७३

१६. बौद्धधर्म का इतिहास, पृ० ३

१७. Bibliographical Dictionary of Tibet and Tibetan Buddhism, Vol. I, p. 772, Dharmshala, 1973

किसी ग्रन्थकार का उल्लेख नहीं है। वहाँ अलंकलश नाम से एक आचार्य उद्धृत हैं, जिनकी रचना “श्रीवज्रमालामहायोगतन्त्रटीका गम्भीरार्थदीपिका” (तो० १७९५) है। योगिनीसञ्चारतन्त्र पर इनकी उपदेशानुसारिणी टीका की हमें एकमात्र प्रति उपलब्ध हुई है, किन्तु उसके सत्रहों निर्देशों की पुष्पिकाओं में “इति श्रीपण्डिताचार्य-अलकलशविरचितायां” यह स्पष्ट है, अतः अलंकलश और अलकलश की अभिन्नता पर निश्चित रूप से कुछ कहना संभव नहीं है।

*

विषय-सूची

प्रस्तावना

हिन्दी

v-vii

तिब्बती

viii-x

उपोद्घात

xi-xxviii

श्लोकाङ्के

विषयः

पृष्ठे

प्रथमे देवतायतनविशुद्धिनिर्देशे

१-१८

१.	ग्रन्थावतारणप्रतिज्ञा	१
	निदानवाक्याभावे विचारः (टी०)	१
	अनुबन्धचतुष्टयम् (टी०)	३
	भावनापटलानुक्रमः (टी०)	३
	अर्थत्रयविवेचनम् (टी०)	४
२-३	गोपनहेतुः, उद्देश-निर्देश-प्रतिनिर्देशविवरणम्	६
४.	तन्त्रान्तरदर्शनम्	८
	श्लोकचतुष्टयस्य बाह्यव्याख्या (टी०)	९
	श्लोकचतुष्टयस्य आन्तरव्याख्या (टी०)	१०
	श्लोकचतुष्टयस्य गुह्यव्याख्या (टी०)	११
५.	स्कन्धाधिष्ठाने देवताविशुद्ध्युद्देशप्रतिपादनम्	१३
६.	स्कन्धाधिष्ठाने देवताविशुद्धिनिर्देशप्रतिपादनम्	१४
७.	आयतनाधिष्ठानम्	१५
८.	धात्वधिष्ठानम्	१६
९.	उपसंहारः	१७

द्वितीये सप्तत्रिंशद्बोधिपाक्षिकधर्मनिर्देशे

१९-३०

१.	बोधिपाक्षिकधर्मोद्देशनिर्देशप्रतिपादनम्	१९
२.	बोधिपाक्षिकधर्माणां गणनाप्रसङ्गेन स्मृत्युपस्थानादीनां विवरणम्	१९
	स्मृत्युपस्थानादीनां चतुर्थनिर्देशः (टी०)	२०
	स्मृत्युपस्थानवैशिष्ट्यस्य चतुर्दशप्रकाराः (टी०)	२१
३.	ऋद्धिपादचतुष्टयप्रतिपादनम्	२२
४.	पञ्चेन्द्रियविवरणम्	२४
५.	पञ्चबलविवरणम्	२४
६.	सप्तबोध्यङ्गविवरणम्	२५
७.	अष्टाङ्गमार्गनिरूपणम्	२७
८.	सम्यक्प्रहाणचतुष्टयनिरूपणम्	२८
९.	उपसंहारः	२९

तृतीये सप्तत्रिंशद्बोधिपाक्षिकधर्मदेवताविशुद्धिनिर्देशे ३१-३६

१.	व्याख्यानप्रतिज्ञा	३१
२.	मण्डलचक्रदेवताभिः सह ज्ञानचक्रस्थदेवतानां नियोजनम्	३२
३-४	ऋद्धिपादादिभिः सह चित्तचक्रस्थदेवतानां नियोजनम्	३२
४-५	वाक्चक्रदेवतानां नियोजनम्	३३
६-७	कायचक्रदेवतानां नियोजनम्	३४
८.	समयचक्रदेवतानां नियोजनम्	३५

चतुर्थे वीराङ्गविशुद्धिनिर्देशे ३७-४१

१.	व्याख्यानप्रतिज्ञा	३७
२.	बोधिचित्तविकाराणां चित्तचक्रवीरैर्विशुद्धिवर्णनम्	३८
३.	बोधिचित्तविकाराणां वाक्चक्रवीरैर्विशुद्धिवर्णनम्	३९
४.	बोधिचित्तविकाराणां कायचक्रवीरैर्विशुद्धिवर्णनम्	४०
	भावनाक्रमः (टी०)	४०

पञ्चमे देवतासंस्थानभूमिनिर्देशे ४२-५४

१-२.	व्याख्याप्रतिज्ञा	४२
३.	आधारमण्डलभावनाक्रमः	४३
४.	आसनविभागः	४४
५-६.	ज्ञानचक्रे देवतान्यासः	४६
७-९.	चित्तचक्रे देवतान्यासः	४७
	मन्त्रभावनाक्रमः (टी०)	४८
१०-१३.	वाक्चक्रे देवतान्यासः	४९
१४-१७.	कायचक्रे देवतान्यासः	५१
१८-१९.	समयचक्रे देवतान्यासः	५२
२०.	उपसंहारः	५३

षष्ठे स्वचिह्नमुखभुजवर्णायुधनिर्देशे

५५-६८

१.	व्याख्यानप्रतिज्ञा	५५
२-४.	अधिपतेस्तद्व्याख्यानाङ्गमुपायस्य मुखादिविभागवर्णनम्	५६
५-७.	प्रज्ञाया मुखादिविभागवर्णनम्	५९
८.	परिवाराणां विभागवर्णने ज्ञानचक्रडाकिनीचिह्नाभिधानम्	६०
९-११.	त्रिचक्रवीरिणीचिह्नाभिधानम्	६१
१२-१३.	सर्वेषामविशेषेणावस्थानादनियमाः	६३
१४.	सर्वेषामविशेषेण कायाद्यधिष्ठानम्	६४
१५.	अनुशंसा	६५
१६-१७.	समयचक्रदेवतानां तद्विभागवर्णनम्	६६
१८.	अन्यसादृश्येन तद्विभागवर्णनम्	६७

सप्तमे कवचद्वयनिर्देशे

६९-७४

१.	व्याख्यानप्रतिज्ञा	६९
२.	वीरकवचभावनामन्त्रबीजाभिधानम्	७०
३-४.	स्थाननियमपरिणामेन देवताकारभावनाबीजम्	७१
५.	वीरिणीकवचभावनाबीजम्	७२

६-७. मन्त्रपरिणतदेवताकारभावना

७३

अष्टमे ज्ञानचक्राकर्षणसंहारनिर्देशे

७५-८२

१. ज्ञानचक्राकर्षणस्य व्याख्यानप्रतिज्ञा ७५
२. ज्ञानचक्राकर्षणाङ्गयोगिन्याकर्षणस्वरूपम् ७६
बाह्यव्याख्या (टी०) ७७
३. तदर्थमेव हस्तमुद्रानिर्दर्शनम् ७७
बाह्यव्याख्या (टी०) ७७
४. प्रज्ञोपाययोश्चित्तधारणार्थं बीजन्यासः ७८
५. स्थानवर्णनपूर्वकं परिवारभूतप्रज्ञोपायानामुपहारस्वरूपम् ७९
६. समापत्तिस्वरूपम् आनन्दस्वरूपं वा ८०
७. सहजानन्दस्य माहात्म्यम् ८१
८. उपसंहारः ८१

नवमे प्रवृत्तिनिर्देशे

८३-८९

१. पूर्वोक्तभावनायाः कायत्रयरूपेण संग्रहस्य व्याख्यानप्रतिज्ञा ८३
२. प्रवृत्तिक्रमेण धर्मकायस्वरूपम् ८४
- ३-४. प्रवृत्तिक्रमेण निर्माणकायस्वरूपम् ८५
५. प्रवृत्तिक्रमेण संभोगकायस्वरूपम् ८६
६. उपसंहारः ८७
७. निवृत्तिक्रमेण कायत्रयव्याख्यानम् ८७
- ८-९. उपसंहारः ८८

दशमे बलिपूजादशमीकृत्यरक्षानिर्देशे

९०-९९

१. व्याख्यानप्रतिज्ञा ९०
२. चर्यायोगिनः कर्तव्यनिरूपणे बलिदानप्रस्तावः ९१
३. लोकोत्तरमण्डलचक्रे बलिविधिः कालनिरूपणं च ९१
४. मण्डलचक्राकारवज्रदेवीनां पूजानिर्दर्शनम् ९२
५. पूजामन्त्रः ९४

६.	पूजाविधिः	९४
७.	सार्वभौतिकबलिदानमन्त्रः	९५
८-१०.	बलिविशेषप्रकारनिरूपणम्	९५
११.	अनुशंसा	९८
१२.	गणान्ते बल्यनुज्ञानम्	९८

एकादशे सर्वविशुद्धिनिर्देशे

१००-१०८

१.	सर्वविशुद्धेः प्रस्तावरचना	१००
२.	तत्र दृष्टान्तनिरूपणम्	१०१
३.	दार्ष्टान्तिकवस्तुनियोजनम्	१०२
४-६.	उपसंहारः	१०३
७-९.	एतदुक्तं जडादिविषयो न भवतीति निर्देशः	१०४
१०-१५.	अनुशंसा	१०५

द्वादशे सर्वतन्त्रनिर्णयतत्त्वैकपदनिर्देशे

१०९-१२०

१.	भगवतश्चित्तसमाजरूपित्वनिरूपणम्	१०९
२.	गुरोः सकाशादेव ग्राह्यविज्ञानं भवति न तु बाह्यशास्त्रादिना	१०९
३.	ग्राह्यविज्ञानज्ञानप्राप्त्युपायः	११०
४.	उत्पत्तिक्रमभावनाचारप्रतिपादनम्	१११
५.	निष्पन्नक्रमभावनाचारप्रतिपादनम्	११२
६-१०.	अन्यतन्त्रस्य निःसारत्वं हेरुकमाहात्म्यप्रतिपादनं च	११३
११.	जगतश्चित्त्रितत्वप्रतिपादनम्	११५
१२.	सर्वस्यास्य महासुखप्रभवत्वप्रतिपादनम्	११५
१३.	प्रज्ञोपाययोरुत्पत्तिहेत्वभिधानता	११६
१४.	मन्त्रजापविशुद्ध्यर्थं मातृकास्वरूपम्	११७
१५.	मातृकामाहात्म्यम्	११७
१६.	अनुशंसा	११८
१७.	भावनाविशुद्धिप्रतिपादनमुखेन योगिनस्तद्धारणम्	११९
१८.	निष्पन्नक्रमभावनायामक्षरन्यासः	११९

१९.	मध्यनाड्यामक्षरन्यासः	१२०
२०.	उपसंहारः	१२०

त्रयोदशे आलिकालिसर्वकर्मनिर्णयाद्वयनिर्देशे १२१-१२८

१-८.	वीरयोगिन्यद्वयबोधकं पुकाराद्यक्षरन्यासविधानम्	१२१
९.	न्यासफलम्	१२२
१०.	उद्धृततत्त्वस्य स्थाननिर्देशः	१२३
११-१२.	उद्देशादिना प्रकारान्तरेण च कायत्रयनिर्माणम्	१२३
१३-१४.	अस्य तत्त्वस्य देयादेयत्वविवेचनम्	१२४
१५.	भागाभागविशेषेण ईश्वरीश्वरयोः पूजानिर्देशः	१२४
१६.	अद्वयस्यैव सिद्धान्तत्वप्रतिपादनम्	१२५
१७-१९.	उपसंहारः	१२६
२०-२१.	आलिकालिप्रभावेण सिद्धिवर्णनम्	१२७

चतुर्दशे चतुर्वीरसंयोगहस्तपूजानिर्देशे १२९-१३२

१-९.	चतुर्वीरसंयोगहस्तपूजादिवर्णनं तत्फलं च	१२९
------	--	-----

पञ्चदशे चर्याव्रतमन्त्राद्वयनिर्देशे १३३-१३९

१.	चर्याव्रतव्याख्यानप्रतिज्ञा	१३३
२-५.	हस्तपूजादाववस्थितस्य योगिनश्चर्याविधानम्	१३३
६-१३.	आयुधानामाभरणानां च देवतामूर्तित्वेन विशुद्धिप्रतिपादनम्	१३५
१४.	अङ्गविक्षेपाणां वचःप्रसराणां च मन्त्रमूर्तित्वप्रतिपादनम्	१३७
१५-१६.	सिद्धस्य योगिनः स्वेच्छाविचरणम्	१३८

षोडशे सिद्धिनिश्चयश्रीहेरुकीकरणनिर्देशे १४०-१४६

१.	कलौ सिद्धयर्थं मुद्रादीनामवश्यकर्तव्यताप्रतिपादनम्	१४०
२.	अहङ्कारिणः पञ्चकामोपभोगिनो योगिनो दुर्गतिवर्णनम्	१४०
३-४.	हेरुकज्ञानिनः सामर्थ्यवर्णनम्	१४१
५-६.	अद्वयज्ञानं विना परिश्रमस्य व्यर्थतानिर्दर्शनम्	१४२
७.	प्रज्ञोपायरूपतावर्णनम्	१४२

८-१२. उपसंहारः	१४३
१३-१५. हेरुकीकरणप्रकारः	१४४

सप्तदशे तत्त्वविशुद्धिपीठस्थाननाट्यचर्यानिर्देशे

१४७-१५८

१. व्याख्यानप्रतिज्ञा	१४७
२. चतुःपूजानिरूपणम्	१४७
३-४. अष्टयोगिनीस्थापननिर्देशः	१४८
५. आसां परार्थकरणोद्यतत्वम्, अपात्रेभ्यो गोपनीयत्वं च	१४८
६. समस्वरूपस्य विशुद्धत्वेन प्रतिपाद्यत्वम्	१४९
७-१५. उक्तप्रतिपादकस्य फलानुशंसा	१४९
१६. प्रदर्शितमार्गस्य प्रशंसा	१५१
१७-१९. योगिनीनां पीठादि तत्परिवाराभिधानं च	१५२
२०. सोपायाराधनफलवर्णनम्	१५३
२१-२४. भावनास्थानानि	१५४
२४-२६. वेशविशेषेण तदङ्गस्वरूपकथनम्	१५५
२७-३०. अभिनयचतुष्टयम्	१५६
३१. यष्टिभेदेनालङ्कारभेदः	१५७

परिशिष्टानि

(क) योगिनीसञ्चारक्रमविधिः	१५९-१६१
(ख) श्लोकार्थानुक्रमणी	१६२-१६९
(ग) टीकयोरुद्धृतवचनानुक्रमणी	१७०-१७१
(घ) टीकागतग्रन्थ-ग्रन्थकारानुक्रमणी	१७२
(ङ) शब्दानुक्रमणी	१७३-२०५

भोट-खण्डः

२०९-३७०

योगिनीसञ्चारतन्त्रे

प्रथमो निर्देशः

ॐ नमः श्रीहेरुकाय^१ ।

^२अथातः संप्रवक्ष्यामि सञ्चारविधिमुत्तमम् ।

^३तारयेदं त्रिचक्रात्म^४योगमार्गव्यवस्थितम्^५ ॥ १ ॥

सञ्चारतन्त्रनिबन्धः

ॐ नमो लोकेश्वराय । नमः श्रीचक्रसंवराय ।

जयति जगति कान्ताकान्तबाहूपगूढः

सततसुखितचित्तश्चित्तनाथः स एषः^६ ।

भुवनहितनिमित्तं निर्मितं येन रूपं

विकृततरमसत्यं सत्यमन्तःस्वरूपम् ॥

अत्र तन्त्रादावेवं मयेत्यादिना निदानवाक्यं कस्मान्नास्तीति चोद्ये
भगवतः सदातनत्वात् परिनिर्वाणमेव न संभवतीत्याचक्षते केचिदाचार्याः ।
उक्तञ्च— ‘न बुद्धः परिनिर्वाति’ इति । सम्भवे च परिनिर्वृते ऽसंगीति-
कारकैः निदानवाक्यं वाच्यम् । तथा च सूत्रम्— “मयि परिनिर्वृते

१. हेरुकनाथाय- ख., नमो भगवते वज्रसत्त्वाय- भो०.

२. इतः पूर्वं भोटपाठे मङ्गलश्लोकोऽयम् —

महासुखपदं यस्य कृपया लभ्यते क्षणात् ।

रत्नोपमगुरोर्वन्दे वज्रिणश्चरणाम्बुजम् ॥

३. तारयेत- ख., भावनीयं- टी०

४. क्रात्मा- क.

५. स्थिता- क., स्थिते- भो०, टी०.

६. एकः- भो०.

७. सङ्गीतिभूता- भो०.

भिक्षव एवं मयेत्यादिकया मम धर्मः सङ्गातव्यः” इति । १अन्ये पुन-
राहुः- तन्त्रान्तरान्निदानवाक्यं विना तन्त्रमिदमाकृष्टमिति ।

प्रथमं तावदभिधानाभिधेयसम्बन्धप्रयोजन[प्रयोजन-]प्रयोजनान्युत्प-
लभ्य प्रेक्षावन्तः प्रवर्तन्ते इति । तान्येव तावत् प्रतिपाद्यन्ते । तदुक्तम्—

सिद्धार्थं सिद्धसम्बन्धं श्रोतुं श्रोता प्रवर्तते ।

शास्त्रादौ तेन वक्तव्यः सम्बन्धः सप्रयोजनः ॥ इति ।

तत्र तावदथात इत्यारभ्य समस्तसञ्चाराख्यो ग्रन्थसंदर्भोऽभिधानम् ।
तेन यद् वाच्यं भगवद्भगवतीरूपं तदभिधेयम् । अनयोरभिधानाभिधेयभाव-
लक्षणः सम्बन्धः । उपायोपेयभावलक्षणः सम्बन्ध इत्यपरे । प्रयोजनं च
सञ्चारार्थस्य सादरनिरन्तरदीर्घकालाभ्यासः । ३श्रीसंवरपदप्राप्तिश्च प्रयोजन-
प्रयोजनमिति ।

अथात इत्यादि । अथात इत्यस्मिन्निपातसमुदाये अथशब्द आनन्तर्ये,
अतःशब्दश्च क्रमे । खसमतन्त्रादनन्तरमनेन वक्ष्यमाणक्रमेणेत्यर्थः । संप्र-
वक्ष्यामीति । सम्यगविपरीतं कथयिष्यामि । सञ्चारविधिमिति । सञ्चारः
प्रचारो योगिनीनां योगिशरीरे मण्डले च, तस्य विधिर्विधानं व्यवस्था ।
उत्तममिति । निरुत्तरपदप्राप्तेर्निदानभूतत्वादुत्तमम् । तारयेति । तारणमिह
बोधनम् । अतस्तारय प्रापय सत्त्वेभ्यः प्रकाशयेति यावत् । वज्रपाणे इति
शेषः ।

अतएव वज्रपाणिः संगीतिकृत् । इदमिति । इमं बुद्धिस्थीकृतं
सञ्चारविधिम् । किं भूतम् ? त्रिचक्रात्मयोगमार्गव्यवस्थितमिति । त्रि-
चक्रात्मा भगवान्, तस्य योगो भावना, स एव क्रमेण साध्यस्योपस्थापक-
त्वान्मार्गः, तेन रूपेण व्यवस्थितम् ॥ १ ॥

१. ‘पुनराहुः’- नास्ति, अन्येऽपि ---कृष्टमिति मन्यन्ते- भो०.

२. न्युपदर्श्य- भो०.

३. श्रीचक्रसंवर- भो०.

उपदेशानुसारिणी टीका

ॐ नमः श्रीहेरुकाय ।

या तत्र मुद्राक्रमभावेन प्रोन्मूलिताशेषविकल्पजालम् ।
श्रीहेरुकं तं प्रणिपत्य मूर्ध्ना तद्देशयामि(मीह) गुरुंस्तथैव ॥
संप्राप्य तस्मादुपदेशलेशं सच्छिष्यसंचोदनया यथावत् ।
हिताय तेषां प्रकटैर्वचोभिस्संचारतः प्रोक्तणो(प्राग्विवृणोमि) सम्यक् ॥

इह हि प्रथमतः श्रीचक्रसंवरतन्त्राधिमुक्तिकेन योगिना विनिर्वृत्तप्राकृताहङ्कारेण भवितव्यमिति तदर्थमादौ भगवता स्कन्धायतनविशुद्धिनिर्देशः प्रथमोऽभिहितः । तत-
स्तथा[गतभाव]ना लौकिकलोकोत्तरमार्गभावना कर्तव्येति तत्प्रतिपादनार्थं बोधि-
पाक्षिका(क)धर्मनिर्देशः, सप्तत्रिंशति च बोधिपाक्षिकधर्मा मन्त्रमहायानाधिमुक्तिकेन
पुद्गलेन सप्तत्रिंशदात्मकमण्डलचक्र[देवताद्वितीयो] [निर्देश] इति । तत्प्रतिपादनार्थं
बोधिपाक्षिकधर्माणां देवताविशुद्धिनिर्देशस्तृतीयः । सप्तत्रिंशद्बोधिपाक्षिकधर्मदेवता-
व्यवस्थापनं पञ्चभिश्चक्रैः संगृहीतमिति कृत्वा चक्रद्वयं व्यवस्थितदेवतानां मण्डलाधि-
पतेराधिपत्यात्, परिशिष्टत्रिचक्रव्यवस्थितवीरणीनामधिपतिरूपानुपायान् वक्तुं वीर-
निर्देशश्चतुर्थः ।

समनन्तरोक्ताश्च प्रज्ञोपायात्मका देवताः कस्मिन् स्थाने भावयितव्य(व्याः) इति
तदर्थं स्थाननिर्देशः पञ्चमः । एतासामेव समनन्तराभिहितानां मुखवर्णादिचक्रादिकं वक्तुं
मुखवर्णादिचक्रादिनिर्देशः षष्ठः २ । निष्पन्नस्य प्रज्ञोपायरूपस्य मण्डलचक्रस्य रक्षणार्थं
द्विप्रकारकवचोऽभिधानार्थं कवचद्वयनिर्देशः सप्तमः । ज्ञानचक्रप्रवेशपूर्विका कवच-
द्वयभावना [कर्तव्ये]ति तत्प्रतिपादनार्थं ज्ञानचक्राकर्षणनिर्देशोऽष्टमः ।

समनन्तरोक्तप्रथमनिर्देशादारभ्य भावना-----संगृहीतेति तस्याः कायत्रय-
रूपतां वक्तुं प्रवृत्तिनिर्देशो नवमः । भाविते मण्डलचक्रे सर्वपरिसमा-----पशान्तये

१. गुरु- क.

२. षष्ठमः- ख.

अ(आ)ध्यात्मिकपूजार्थञ्च यथाक्रमं वल्युपचारदशमीपरिपाल[न]निर्देशो दशमः। एवंभूतया भावनया न सर्वविशुद्धिर्भवतीति तदर्थं सर्वविशुद्धिनिर्देश एकादशमः। तदनु यथासंभवं संवृतिपरमार्थभावनानन्तरोक्तभावनया वक्तुं सर्वमन्त्रनिर्णयतत्त्वैकपद-निर्देशो द्वादशमः।

तदनु बाह्यानां पीठादिकानां स्थाने संग्रहं^१ वक्तुं तत्कथनपूर्वकं द्वादश-पटलोक्तसर्वमन्त्रनिर्णयकर्म च वक्तुमालिकालिसर्वयाननिर्णयाद्वयनिर्देशस्त्रयोदशमः। तदनन्तरं विशिष्टाहङ्कारेण करच्छोमाप्रायविशिष्टसंकेतं वक्तुं चतुर्वीरसंयोगहस्तपूजा-निर्देशश्चतुर्दशमः। विशिष्टहस्तच्छोमादाववस्थितेन योगिना चर्याव्रतादिकं कर्तव्य-मिति तदर्थं चर्याव्रतनिर्देशः पञ्चदशमः। एवंविधचर्याव्रतादाववस्थितोऽपि योगी यदि क्षिप्रतरं सिद्धिं न लभते तदा तस्य सिद्धिविशेषविषये आश्वासोत्पादनाय सिद्धि-निश्चयः श्रीहेरुकीकरणनिर्देशः षोडशमः। सिद्धिविशेषविषये समुत्पन्नाश्वासेन मण्डलाधिपतिमाण्डलेयादीनां विशुद्धिप्रयोजनादिकं च गवेषणीयमिति तदर्थं तत्प्रति-पादकस्तत्त्वविशुद्धिनिर्देशः सप्तदशमः। एष भावनापटलानुक्रमः।

इदानीं तन्त्राव[तार]णार्थं प्रथमं तावत् तद्व्याख्यानप्रतिज्ञामाह— अथात इत्यादि। अत्र त्रयोऽर्था विद्यन्ते। व्याख्यानप्रतिज्ञा, प्रयोजनम्, पिण्डार्थपदार्थश्चेति। तत्र प्रथमं पञ्चधा— देशकस्य देशनायां विशिष्टासतासंभावनोत्पादनम्, श्रोतृजनाव-धानीकरणम्, असंघाटितशिष्यसंघटनोत्पादनम्, व्याख्यातुर्व्याख्यानप्रकारविषये कौशलता^२समर्थनम्, बृहत्तन्त्रापेक्षयास्य पश्चाद्देशनासूचनं चेति।

पिण्डार्थानामभिधानादिपञ्चक^३प्रतिपादनं तत्र ‘संचारविधिं संप्रवक्ष्यामि’ [कथ]नं योगिनीसञ्चाराभिधानत्वादस्य तन्त्रस्य भावनीयम्। त्रिचक्राद्यनेन प्रधानत उत्पत्तिक्रमाङ्गोऽभावेन न च नि[ष्पन्नक्रमः।] क्रमद्वयमभिधेयो नैरर्थक्यशङ्कापरि-हारप्रतिपादनद्वारेण “येन विज्ञातमात्रेण साधकः सिद्धिमाप्नुयात्” (यो० सं० १.३) इत्यनेन प्रयोजनम्। सप्तत्रिंशत्तत्त्वयोगे नित्यताभिधेयस्योत्पत्तिक्रमाङ्गस्य शेष उक्तः।

१. संग्रहे- ख.

२. ‘ता’ नास्ति- ख.

३. पञ्चप्रतिपा- ख.

अभिधानाभिधेययोः प्रतिपाद्यप्रतिपादकलक्षणसम्बन्धोऽर्थाक्षितः। श्रुतचिन्ताभावना-
क्रमेणाधिगतेऽभिधेये स्वयं सिद्धिं प्राप्यापरेषामपि तथैव सिद्ध्युत्पादनं प्रयोजनं चेति।

पदार्थस्तु अथ सञ्चारविधिं सम्प्रवक्ष्यामीति सम्बन्धः। तत्राथशब्दोऽधि-
कारार्थः 'अथ शब्दानुशासनम्' इतिवत्। यद्वा मङ्गलार्थः 'अथ वज्रधरः' इतिवत्।
यद्वा आनन्तर्ये बृहत्तन्त्रमध्यमण्डलत्वादस्य १ मूलतन्त्रदेशनासमनन्तरदेशनाद् वा।
यदुक्तम्— 'पूर्वप्रकृतापेक्षम्' इत्यादि। अत इत्यनेन पार्षद्यानां विशिष्टश्रद्धादि-
गुणसमन्वागतत्वमुद्भावयति। यस्माच्छ्रद्धादिगुणोपेतैर्वीरवीरिणीवृन्दैरहमध्ये २ षितो
विशिष्टपूजादिकरणपूर्वकं तस्मादनागतभव्यसत्त्वानां सूक्ष्ममूलतन्त्रावगतये सञ्चार-
विधिं संप्रवक्ष्यामीत्यर्थः। संप्रवक्ष्यामीति। सम्यगविपरीततया प्रकर्षेण विभज्य
मूलतन्त्रे बाहुल्येनास्पष्टत्वाद् वक्ष्यामि कथयिष्यामीत्यर्थः। सञ्चारविधिमिति।
योगिनीनां ३ मण्डलचक्रावस्थितानां समन्तात् त्रिषु पञ्चसु वा चक्रेषु चरणं विशिष्ट-
रूपकायमुत्पाद्यावलम्ब्य वा ४ सत्त्वार्थचर्या, तस्य विधिः पञ्चाकाराभिसंबोध्या-
द्य ५ न्यतमक्रमेण यथासम्भवमुत्पादनोपायः, तम्। कीदृशम् ? उत्तममिति, प्राकृताह-
ङ्कारप्रतिपक्षतया उत्कृष्टत्वात्। यदि सञ्चारविधिं वक्ष्यसि किं तेन व्याख्या ६ तेन
प्रयोजनमथवा कोऽसौ सञ्चारविधिरित्याह— भावनीयमिति। देशिते सञ्चारविधेः
पार्श्वे द्वे श्रुते चिन्तिते च पौनःपुन्येन सात्मा(त्म्य)भावपर्यन्तमभ्यसनीयम्। त्रि-
चक्रात्मेति। त्रिचक्रात्मकं चित्तवाक्कायादिभेदेन। अनेन सञ्चारविधिस्वरूपमुक्तम्।
केन भावनीयमित्याह— योगमार्गव्यवस्थित इति। तत्र व्यवस्थिते पुद्गलैरिति
व्याख्याने। तत्र योग उच्यते झटित्याकारादियोगेनोत्पत्तिक्रमभावनात्मकः समाधि-
विशेषः, तस्य मार्ग उपायरूपाणि मन्त्रबीजानि, तस्मिन् व्यवस्थिते ७ न, भावना-
विशेषतोऽवस्थितैरभियुक्तैरित्यर्थः। ॥ १ ॥

-
१. मूले- ख.
 २. अभ्यर्थितो- ख.
 ३. 'नां' नास्ति- ख.
 ४. 'वा' नास्ति- ख.
 ५. छन्त- ख.
 ६. ख्यानेन- ख.
 ७. तद् भावनायां वि- क.

गोपितं यत्तथा तन्त्रेऽ^१नुलोमविलोमसंस्थितम् ।

उद्देशं च यथा प्रोक्तं निर्देशं च^२ तथैव च ॥ २ ॥

पुनरपि किम्भूतमित्याह— गोपितमित्यादि । गोपितमश्राद्धेषु न व्यक्तीकृतम् । यदिति यम् । तथेति तथापि सति, मार्गत्वेऽपि सतीत्यर्थः । तन्त्र इति लक्षाभिधाने । कथं गोपितमित्याह — अनुलोमविलोमसंस्थितमिति । क्रमव्यतिक्रमाभ्यामभिहितत्वात्तस्य गोपनमित्यर्थः । क्रमव्यतिक्रमाभ्यामुद्देशादिकं तत् प्रोक्तमिति दर्शयितुमाह— उद्देशमित्यादि । उद्देश्यत इत्युद्देशः सूत्रम् । यथा प्रोक्तमिति यथावदभिहितम् । निःशेषेण देश्यत इति निर्देशं वृत्तं स्वरूपम् ॥ २ ॥

ननु च नोपयुज्यते संचारविधिदेशना मूलतन्त्रे बृहत्सूक्ष्मरूपे भगवता स्वयमेवोपदिष्टत्वादित्याशङ्क्याह— गोपितमिति । स्वयंपुस्तकवाचकाभिमानिनामभ्यसत्त्वानां च भगवतोक्तमप्यवच्छाद्य स्थापितम् । यदिति सञ्चारविधिलक्षणमर्थम् । तथेति तेन प्रकारेण परिस्फुटेन । कुत्रेत्याह— तन्त्र इति । लक्षाभिधाने तदुद्धृते च । तत्र प्रबन्धं तन्त्रम् । स च हेतुफलोपायतन्त्रभेदेन त्रिधा । तत्रानादिनिधनो धर्मधातुर्हेतुतन्त्रम्, यथासम्भवं क्रमद्वयभावनाधर्मधातुसाक्षात्करणोपायभूतमुपायतन्त्रम्, हेतुतन्त्रबलादुपायतन्त्रचिराभ्यासात्तत्प्राप्त्यो विशुद्धधर्मधातुसाक्षात्करणरूपश्रीहेरुकपदसाक्षात्कारं(रः) फलतन्त्रम् । तत्प्रतिपादकोऽपि वाक्यसंदर्भ उपचारात्तन्त्रमित्युच्यते, तस्मिन् अनुलोमविसंस्थितमिति । अनुक्रमेण परिपाठ्याऽपि संस्थितम् । विहाय वियोगेन संस्थितम् । अनुक्रमेण नैव व्यवस्थितमित्यर्थः । ततश्च सञ्चारविधेरनुक्रमेणाव्यवस्थितत्वात् सञ्चारतन्त्रे देशनोपयोगवत्येवेति सिद्धं भवति । क्वचित् पुस्तकेऽनुलोमविलोमत इति पाठो दृश्यते । तत्पक्षे कथं गोपितमित्याचार्यव्याख्येयम् । अनुक्रमाननुक्रमाभ्यां गोपितम् । यदुक्तम्— 'वाममाप्रथमं सव्यगा अपबृहति तन्त्रे सूक्ष्मं च तथेति' । ततश्च वामदक्षिणावर्तक्रमेण गोपितमिति यावत् । अन्यच्च कथमित्याह— उद्देशमिति । अवितथ्यव्याख्यानेनानुद्धिन्नाभिधेयमात्रवर्णसदृशः, तम् ।

१. अनुलोमविसंस्थितम्- टी०, 'विलोमतः स्थितम्' पाठान्तरं- टी०.

२. 'च' नास्ति- ग.

यथेति^१ येन प्रकारेण । प्रोक्तमिति बृहत्वेव तन्त्रे कथितम् । निर्देशमिति पूर्वविपर्य-
योपमा । तथैवेति गोपितत्वेन ॥ २ ॥

प्रतिनिर्देशं समस्तं वै संकेतविधिविस्तरम्^१ ।

येन विज्ञात^२मात्रेण साधकः सिद्धिमाप्नुयात् ॥ ३ ॥

अव्यक्तं निर्देशं प्रति निर्देशयत इति प्रतिनिर्देशष्टीका । समस्तं वै
इति । एतत् त्रयम् । सङ्केतविधिविस्तरमिति । सङ्केतविधिना बहुतर-
मित्यर्थः । किम्प्रभावोऽसावित्याह— येनेत्यादि । येनेति सञ्चारविधिना ।
विज्ञातमात्रेणेति । भावनाबलात् क्रमेण विशेषतो ज्ञातमात्रेण साक्षात्कारी-
कृतेन । साधकः संवरात्मकः । सिद्धिं बुद्धत्वम् । आप्तुयाल्लभते ॥ ३ ॥

प्रतिनिर्देशमिति । सर्वाङ्गपारिपूर्यान्निराकाङ्क्षाभिधेयप्रतिपादनम् । अथवा
उद्देशो निर्देशकायः, तदधिमुक्तिकपुद्गलोद्देशेनोद्दिष्टत्वात् । निर्देशमिति सांभोगकाय-
रूपम्, दशभूमीश्वरबोधिसत्त्वपरिषदि विशिष्टधर्मसंभोगनिर्देशात् प्रतिनिर्देशमिति
केवलबुद्धगोचरतया तं प्रत्येव निर्देशात् । समस्तमिति । अभिधेयप्रासङ्गिकार्थवर्णनेन
पार्षद्यानां च यथावसरं संशयविच्छेदोद्भावेनाशेषविशेषम् । अथवा समस्तमिति
योगिनीलक्षणादिवर्णनेन निःशेषम् । संकेतविधिमिति । कायवाक्छोमाप्रतिपादनेन
विशिष्टव्यवहारादिप्रतिपादनात् । कीदृशम् ? उत्तममिति । पृथग्जनव्यवहारवैलक्षण्ये-
नोत्कृष्टम् । यदि भगवतानुलोमविलोमाभ्यामुद्देशनिर्देशप्रतिनिर्देशादिना च सञ्चार-
विधिर्गोपितं (तः) पूर्वस्मिन् व्याख्याततन्त्रे देश्यते श्रोतृभिश्च योगमार्गव्यवस्थितैः
श्रूयते, चिन्त्यते भाव्यते [चेत्?], तर्हि तेषां तद्भावेनात् किं फलं स्यादित्याशङ्क्याह—
येनेति । सञ्चारविधिना मूलतन्त्रे गोपितेनेह देशितेन श्रोतृभिश्च श्रुतचिन्ताभावना-
क्रमेण भावितेन । विज्ञातमात्रेणेति श्रुतादिक्रमेणाभ्यस्तमात्रेण । साधक इति मन्त्र-

१. मुत्तमम्- टी०.

२. विज्ञान- क. ख.

३. बहुधर्म- भो० ।

मुद्राद्युपायमवलम्ब्य कायत्रयात्मकश्रीहेरुकपदसाधनात् साधको योगी । सिद्धिमिति लौकिकलोकोत्तरलक्षणां महामुद्रासिद्धिम् । आप्नूयादिति प्राप्नुयात् । तादृशं सञ्चार-विधिं वक्ष्ये इति पूर्वेण सम्बन्धः ॥ ३ ॥

सप्तत्रिंशद्योगेन बोधिपक्षा व्यवस्थिताः ।
लोके प्रभाव्य विख्याताः श्रीहेरुकजगत्परम् ॥ ४ ॥

इदानीं तन्त्रार्थं दर्शयितुमाह — सप्तेत्यादि । सप्तत्रिंशद्योगेनेति भगवता सह सप्तत्रिंशद्देवतायोगेन । बोधिपक्षा इति स्मृत्युपस्थानादयो बोधिपाक्षिका धर्माः । लोके प्रभाव्य विख्याता इति उपायरूपत्वाद् लोके प्रभाव्य-मानत्वेन प्रसिद्धिं गताः । उपायत्वमेव कथमेषामित्यत आह — श्रीहेरुक-जगत्परमिति । श्रीहेरुकेत्युपलक्षणः (णम्) । प्रचण्डादिका अपि वेदि-तव्याः । यस्मादमी जगति प्रधानभूता भाव्यमानत्वेन श्रीहेरुकादयः स्मृत्युपस्थानादिबोधिपाक्षिकाः, तस्मादुपायत्वमिति भावः ॥ ४ ॥

त्रिचक्रात्मेति यदुक्तं तस्य शेषमाह — सप्तत्रिंशदिति सप्तत्रिंशदङ्केन^१ । योगेनेति प्रयोगेण झटित्याकाराद्यन्यतमेनोत्पत्तिक्रमसमाधिना वा । बोधिपक्षा इति पञ्चमार्ग-भावनपर्यन्तवज्रोपमसमाधिभावनासमनन्तरं विशुद्धिमागता तथा बोधिः, तस्यां पक्षाः पक्षे भवास्तदुपयोगित्वात्, ते । व्यवस्थिता इति इहास्मिन्मन्त्रनये वक्ष्यमाणतृतीय-पटलोक्तन्यायेन स्मृत्युपस्थानादय एव पञ्चसु चक्रेषु देवतारूपेणावस्थिताः । के ते बोधिपक्षाः? इत्याह — लोक इति पृथग्जनभूमेरारभ्य । प्रभाव्येति प्रज्ञावीर्यसमाध्या-द्यात्मकस्वरूपेणादौ श्रुतादिक्रमेण ज्ञात्वा यथावच्च चिन्तयित्वा भावनया च प्रकर्षेण दार्ढ्यापत्तिपर्यन्तं भावयित्वा । विख्याता इति पारमितादर्शने प्रसिद्धा इत्यर्थः । यद्येवं यथैव पारमितानये प्रसिद्धास्तथैव तेषां भावनोचिता, ततश्च किमिह मन्त्रनये पुनरपि

१. सप्तत्रिंशेन- क. ख. भो०.

२. श्रीहेरुकं- क. ख.

३. अन्येऽपि- भो०,

४. 'प्रधान---त्वेन' नास्ति- क., गृहीतपाठस्तु भोटानुसारी ।

५. संख्यकेन- ख.

तद्भावनेनेत्याह— श्रीहेरुकजगत्परमिति । श्रीहेरुकस्य चतुर्वक्त्रद्वादशभुजाकारस्य चतुर्विमोक्षस्वभावस्य सम्बन्धि परं प्रकृष्टं डाकिन्यादिसप्तत्रिंशदाकारं व्यवदानपक्ष-संगृहीतं जगदिति । मन्त्रचिह्नादिपरिणतिलक्षणं (णां) हेतुप्रत्ययसामग्रीं प्रतीत्य जङ्ग-मतीति कृत्वा । त एव बोधिपाक्षिका धर्माः सप्तत्रिंशन्माण्डलेयात्मका इत्यर्थः ॥ ४ ॥

बाह्यव्याख्या— अथात इत्यादि पूर्ववत् । सञ्चारविधिमिति । योगिनीना-मभेद्यादिलक्षणानां नाडीनां समन्तादिति नखदन्तादिधातुबाह्यरूपत्वेन चरणं गमनं सञ्चारः, तस्य विधिराभ्यन्तरप्राणायामोपलक्षणपूर्वकं तदनुभवक्रमः^१, तं सम्प्र-वक्ष्यामीति पूर्वेण सम्बन्धः । कीदृशम् ? उत्तममिति । बाह्यप्रपञ्चपरिहारेण संवृत-बोधिचित्तादेव तत्प्रवृत्त्युपलक्षणेनोत्कृष्टम् । भावनीयमिति । सांवृतमेव बोधिमन आधाराधेयाभेदेनानुभा^२वनीयम् । त्रिचक्रात्मेति । त्रिचक्रात्मकं यथा बाह्यचित्तवाक्-कायचक्रेषु त्रिषु प्रचण्डाखण्डकपालादिवीरवीरणीरूपं भावितम्, तद्वदेवान्तश्शिर आदिषु स्थानेषु नखदन्तादिधातुरूपतया तदभेदेन सांवृतमेव बोधिचित्तं रागजातीयेन पुद्गलेन प्रज्ञोपायसमापत्तिमवलम्ब्यान्तरत्रिचक्रात्मकमेव भावनीयम् । एतदेवाह— योगमार्गेति । योगो लयभोगाधिकारत्रयलक्षणः प्रयोगः, तस्य मार्गः, यथा शिरः पुल्लीरमलयोऽपरपर्यायादनन्तरं कुल(लू)तापर्यन्तः, तस्मिन् । व्यवस्थिता इति । तत्रावस्थितैस्तदनुभविभिर्विभावनीयम् ।

कोऽसौ योगमार्ग इत्याह— गोपितमिति अवच्छादितं बाहुल्यतस्त्व-कण्ठेनानुकत्वात् । यदिति लयादिरूपम् । तथेति निश्चलनिश्चयात्मकेन रूपेण । तन्त्र इति बृहत्सूक्ष्मरूपे मूलतन्त्रे । तस्य पृथग्जनागोचरतया केवलबोधिसत्त्वसमधि-गम्यत्वात् । अत एव लयभोगाधिकारक्रमो वज्रपाणिवज्रगर्भप्रभृतिभिरेव प्रायशः प्रदर्शितः, सूक्ष्ममूलतन्त्रे भगवता स्वकण्ठेनानुकत्वात् । कथमित्याह— अनुलोमेति । पुल्लीरमलयादारभ्य कुल(लू)तापर्यन्तं तदनुभवक्रमोऽनुलोमः । वायुधारणाबलेन करणप्रयोगेण वा । व्याद्याबीजन्यासेन च यथासंभवं मृदुमध्याधिमात्रपुद्गलविवक्षया कुलूतादारभ्य पुल्लीरमलयपर्यन्तं विलोमः । तस्मादेवंभूतस्य क्रमस्य भावनेन तयो-

१. क्रमतः- ख.

२. भवनीय- क.

३. त्रिचक्रमिति- ख.

यो[ऽर्थ] इत्याह— उद्देशमिति। बाह्यप्रज्ञोपायसमापत्तिनिमित्तमादेशो वा याव-
दुद्दिष्टत्वात्। यदुक्तं कृष्णपादैर्गुह्यतत्त्वप्रकाशे— “उद्देशाद् मन्थमन्थानम्” इत्यादि।
यथेति येन प्रकारेण रागजातीयपुद्गलानां विकल्पविमुक्तिर्भवति तथा। प्रोक्तमिति
भगवता तत्त्वानुभवनोपायत्वेनोद्दिष्टम्। निर्देशमिति। उपसाधनाङ्गस्य प्रतिनिर्दिष्टत्वात्।
तथैव चेति तेनैव प्रकारेणोद्दिष्टम्। यदुक्तम्— “निर्देशात्पृथगासनम्” इति। प्रति-
निर्देशमिति। साधनाङ्गस्य निर्दिष्टत्वात्। समस्तमिति। महासाधनाङ्गस्य समस्त-
विकल्पविनिवृत्त्यात्मत्वात्। संकेतविधिमिति। एवमित्यनया संज्ञया प्रज्ञोपाययो-
राख्यानात्। उत्तममिति। रागचर्याप्रदर्शनेनापि केवलतत्त्वैकनिष्ठत्वेनोत्कृष्टत्वात्।
येनेति अनेनैव संकेतविधिना। विज्ञातमात्रेणेति अनुभूतमात्रेण। साधक इति
आन्तरक्रमभावकः। सिद्धिमिति योवि(गि)चित्तदाढ्यात्पदेन लक्षणा। आप्नुयादिति
प्राप्नुयात्। अत्रैव पूर्वकृत्यमाह— सप्तत्रिंशदिति। अनेन वामदक्षिणनाडी[बीज]-
मन्त्राक्षरन्यासेन मन्त्रौली सूचिता। तादृशेन योगेन प्रयोगेण। १बोधिपक्ष इति
बोधिपक्षकार्थिकबोधिचित्तलक्षणा। तस्यां पक्षाहितहेतवो व्यवस्थिता इति। योगी-
(गि)ज्ञानेन विकल्पा न्यस्ताः ---- नाडीस्वभावे चतुश्चक्रात्मको(के) योगी।
लोके प्रभाव्येति वायुरुपतया समुपलक्षयित्वा। विख्याता इति च मन्त्रमहायाने
प्रसिद्धाः। श्रीहेरुकेति भगवतो ज्ञानाग्नि-लक्षणस्य सम्बन्धि। जगदिति सत्त्व-
लोकसंगृहीतम्। परमिति ज्ञानाग्निरूपमेव श्रीहेरुकाकारमित्यर्थः ॥ १-४ ॥

आन्तरव्याख्या— अथात् इत्यादि पूर्ववत्। सञ्चारविधिमिति। [सञ्चारः
स्पर्शना]लिङ्गनादिप्रयोगैश्चरणदृष्टान्तसहजानुभवनपूर्वकं यथोपदेशं दार्ष्टान्तिकसह-
जोपलक्षणः, अस्य विधिरिति अनुभवनप्रकारः, तम्। उत्तममिति। महामुद्रारूपत्वे-
नोत्कृष्टत्वात्। भाव[नीयं त्रिचक्रात्मे]ति। त्रिषु चक्रेषु महासुखचक्रादारभ्य सम्भो-
गादिचक्रत्रये बोधिचित्तस्य शिरसश्च्युतिः सर्वाष्टसुखव्याप्तिवज्रमूलप्राप्तिः, तन्मणौ
बिन्दुधारणावस्थात्मकत्वात् तदात्मकम्। योगमार्गेति योगः केवलसहज-----
तस्मिन्, मार्गः पन्थाः प्रज्ञोपाययोगे(ग इ)ति१ रागादिविकल्पपरिवर्जनरूपः। तत्र
व्यवस्थिता इति। तत्र गृहीतो योगैरित्यर्थः। एवंभूतमुदितं चतुर्थतत्त्वं भगवता तन्त्रे

१. नास्ति- ख.

२. प्राज्ञोपयोगेति- ख.

स्थूलसूक्ष्मरूपे तथा तेन स्फुटविकटेन प्रकारेण गोपितम्, अपात्राणां नैव प्रदर्शितम्— “चतुर्थं तत्पुनस्तथा” (गु० त० १८.११२) इति। एतावन्मात्रप्रतिपादनात्। **अनुलोमविलोमत** इति। शिरसो वज्रमण्यग्रं यावत्तच्च शिरःपर्यन्तं चित्तधातोर्वाय्वादिधारणाबलेन धारणारूपत्वात्। **उद्देशमिति** आनन्दावस्थानुभवः, सुखस्य सूक्ष्मत्वात्। **निर्देशमिति** परमानुभवः, सुखस्य किञ्चित् सुखानुभवमुपेक्षातिरिक्तत्वात्। **प्रतिनिर्देशमिति** विरमानुभवः, अन्तर्जल्पात्मकत्वेन पूर्वस्मादप्यधिकतरत्वात्। **समस्तमिति** द्विप्रकारसहजानुभवरूपतया परिपूर्णत्वात्। **संकेतविधिमिति** सहजद्वयस्यानुभवकाले विशिष्टगुरूपदेशस्य मायोपमाद्यवस्थोपदेशरूपस्यापेक्षणीयत्वात्। **उत्तममिति** दृष्टान्तसहजपरित्यागेन दार्ष्टान्तिक एव दृढोपादानहेतुत्वादुत्कृष्टं प्रत्यक्षोत्तरकालभावविकल्पन्यायेन। **येनेति** समनन्तरोक्तेन सहजानुभवक्रमेण। **विज्ञातमात्रेणेति** स्वयमनुभूतेन गुरुपदेशतश्च भावितेन। **साधक** इति गुह्यौलिसाधनात्तत्साधकः। **सिद्धिमिति** दृष्ट एव धर्मे निर्वाणप्राप्तिलक्षणाम्, आप्नुयादित्यर्थः। समनन्तरोक्ता सिद्धिः। समस्तबुद्धा गुणालङ्कृता भवन्तीति। तत्प्रदर्शनार्थमाह— **सप्तत्रिंशदिति** स्मृत्युपस्थानादिलक्षणेन। **योगेनेति** फलावस्थासंगृहीतेन प्रयोगेण। **बोधिपक्षा** इति बोधिः पारमार्थिकसहजानुभवलक्षणा, तस्यां पक्षा उपायरूपत्वात्। **व्यवस्थिता** इति तस्यामेव सहजसिद्धौ गुणव्यतिरेकेण सहजसिद्धेरविद्यमानत्वात्। **लोक** इति त्रैधातुकसंगृहीते। **प्रभाव्येति** सहजाव्यतिभिन्नत्वेन बोधिपाक्षिकान् भावयित्वा। **विख्याता** इति योगिसन्ताने प्रतिभाताः।

एतदुक्तं भवति— यथैव स्वयं योगी चतुर्थतत्त्वसाक्षात्कारपर्यन्ते समस्तबुद्धगुणाव्यतिभिन्नं फलमनुभवति, तद्वदेव त्रैधातुकमपि सर्वं तस्य तथैव प्रतिभाति, न स्वा(स्व)लक्षणेनेति। एतदेवाह— **श्रीहेरुकजगत्परमिति**। सहजाकारमेव तस्य जगत्परमुत्कृष्टं भावि न पुनस्तद्वहिष्ठेन रूपेणेत्यर्थः। सर्वमेव श्रीहेरुकाकारं जानातीति यावत् ॥ १-४ ॥

गुह्यव्याख्या— अथात इत्यादि पूर्ववत्। **सञ्चारविधिं सम्प्रवक्ष्यामीति**। समन्तात्सर्वेषु स्कन्धधात्वायतनेषु यथासंभवं देवतानां सञ्चारः, यथास्थानं विनेयो

जनरूपः, तस्य विधिर्भावनाप्रकारः, तं कथयिष्यामि। अनेन प्रथमपटलसंग्रह उक्तः। **उत्तममिति**। बोधिपाक्षिकधर्मभावेन तेषां च पञ्चचक्रस्थदेवतापुञ्जेन सह मीलनादुत्कृष्टम्, पारमितामन्त्रनययोर्भावनाप्रकारस्यैकत्वप्रतिपादनात्। अनेन च द्वितीय-तृतीयपटलसंग्रहः सूचितः। **भावनीयं त्रिचक्रात्मेति**। त्रिचक्रात्मकं चित्तवाक्कायचक्रभेदेन बहिर्मण्डलचक्रे व्यवस्थितानां वीराणामान्तरेषु चतुर्विंशतिषु धातुषु व्या- (न्या)सात्। अनेन चतुर्थपटलसंग्रह उक्तः। **योगमार्गव्यवस्थिता** इति। तृतीया-बहुवचनस्यार्थे प्रथमाबहुवचनम्। योगो झटित्याकारादिक्रमेण मण्डलचक्रभावना-रूपः, तस्य मार्गः पन्थास्तद्भावनाधारभूतः स्थानलक्षणः। तद्व्यवस्थितैस्तदधि-मुक्तिकैरित्यर्थः। अनेन पञ्चमपटलसंग्रहः। **गोपितमिति**। भगवता श्रीहेरुकस्य द्वादशभुजस्य प्रधानत आयुधद्वादशकं श्रावितं **सूक्ष्ममूलतन्त्रे** द्वितीयपटले द्विभुजा- (ज)स्यैव भगवत आयुधाख्यानात् तदन्येषु चादेशनात्। अत एवाह— **तथेति** तेन प्रकारेण स्वकण्ठोक्तेन। **तन्त्र** इति **मूलतन्त्रे** संग्रहरूपे। अनेन षष्ठमपटलसंग्रह उक्तः। **अनुलोमेति**। पञ्चचक्रात्मकमण्डलभावनानन्तरं तदन्यभावनागोपनेन कवचद्वयस्य ज्ञानचक्रस्याकर्षणेन चानुक्रमं परिहाय व्यक्तक्रमेण भावनाख्यानात्। अनेन च सप्त-माष्टमपटलसंग्रह उद्भाव(वि)तः। **उद्देशमिति**। कायत्रयोद्देशेन यथासंभवं प्रवृत्ति-निवृत्त्योरुपदिष्टत्वात्। अत एवाह— **यथेति**। कायद्वयस्य प्रवृत्तिक्रमेण धर्मकायस्य च निवृत्तिक्रमेणोद्दिष्टत्वात्। अनेन नवमपटलसंग्रहो भेदा(द्भेदः)। **निर्देशमिति**। प्रथमपटलादारभ्य समाहितयोगेऽप्रतिपादितेऽसमाहितयोगसंगृहीतस्य चर्यालक्षणस्य दशमीपूजालक्षणस्य च विस्तरतो निर्देशात्। अनेन दशमपटलसंग्रहः सूचितः। **प्रतिनिर्देशमिति**। समाहितयोगे तदितरे च परिसमाप्ते सर्वविशुद्धिप्रतिनिर्देशात्। अनेन एकादशपटलसंग्रहः सूचितः। **समस्तमिति**। पारमार्थिकतत्त्वप्रतिपादनेन समस्तस्य क्रमद्वयस्याख्यानादशेषम्। अनेन द्वादशमपटलसंग्रह उक्तः। **संकेतविधिमिति**। बाह्यानां पीठादीनामान्तरस्थानरूपतया संज्ञाकरणाच्चतुर्वीरसंयोगहस्तपूजासंज्ञा-विचाराच्च। अनेन त्रयोदशमचतुर्दशमपटलद्वयसंग्रह उक्तः। **उत्तममिति**। चर्याव्रत-मिति निर्देशेन षण्णां मुद्रादीनां मन्त्रद्वारेण विशुद्धेराख्यानादुत्कृष्टम्। अनेन पञ्च-दशमपटलसंग्रह उक्तः। **येनेति** संचारविधिपरिज्ञातमात्रेणाभ्यस्तमात्रेण। **साधक**

इति सञ्चारतन्त्रोक्तक्रमद्वयसाधकः। सिद्धिमिति। महामुद्रासिद्धिनिश्चयश्रीहेरुकी-
करणलक्षणां प्राप्नुयात्। अनेन षोडशमपटलसंग्रह उक्तः। सप्तत्रिंशद् योगेनेति।
तत्संख्याकेन प्रयोगेण डाकिन्यादीनां मामक्यादिदेव्य(देवीनां) प्रतिपादनलक्षणेन।
बोधिपक्षा इति निरावरणज्ञानरूपश्रीहेरुकस्वभावा बोधिः, तस्याः पक्षा अङ्गानि,
सत्यार्थनिमित्तं देवताचक्रप्रदर्शनरूपाः। व्यवस्थिता इति यथैव योगक्रियातन्त्रादि-
पूक्तास्तेनैव रूपेणावस्थिताः। लोक इति पृथग्जनभूमिसंगृहीते। एकमप्य(पि)
प्रभाव्येति प्रकर्षेण १भावनाप्रकर्षपर्यन्तं भावयित्वा। विख्याता इति। योगिविज्ञान-
स्फुटेन रूपेण भावा इत्यर्थः। श्रीहेरुकजगत्परमिति। मण्डलमाण्डलेयाकारेण
वस्तुतोऽसदपि सत्त्वार्थनिमित्तं प्रदर्शितमित्यर्थः। अनेन सप्तदशमपटलसंग्रह उक्तः।
सकलतन्त्रार्थशरीरव्याख्या ॥ ४ ॥

प्रथमं ता^२वद् योगे^३श्वरेण पञ्चसु स्कन्धेषु^४ देवताहङ्कारमुत्पा-
दनीयम् ॥ ५ ॥

अधुना भावनाक्रमं दर्शयितुमाह— प्रथममित्यादि। प्रथममिति
भावनारम्भे। योगेश्वरेणेति अधिमोक्षेण झटिति श्रीसंवरयोगवान्। पञ्च-
स्कन्धाहङ्कारमिति। आत्मनः पञ्चस्कन्धात्मके देवताहङ्कारः॥ ५ ॥

एवं व्याख्यानप्रतिज्ञां प्रतिपाद्य यथा स्कन्धधात्वायतनेषु देवताविशुद्धिं
प्रतिपादयति भगवांस्तथोद्दिशन्नाह— प्रथमं तावदित्यादि। गिरिगह्वरादिरूपं विशिष्टं
स्थानमध्यस्य तन्त्रोक्तविधिनाऽभिषिक्तोऽनुज्ञातश्च नानातन्त्रेषु च कृतश्रुतो(श्रमो)
योगी प्रथमतरमेव तस्मिन् स्थाने पञ्चामृतादिभिः परिशोधिते बल्यादिभिश्च यथावन्नि-
र्विघ्नीकृते स्वापसमये धर्मधातावहं विश्रान्त इत्यधिमुक्तिं कृत्वा तदनु प्रभातसमये
पक्षिकोलाहलादिकं श्रुत्वा तत्र चतुर्देवीसञ्चोदनमधिमुच्य धर्मधातोः प्रबो^५धमव-
लम्ब्य व्युत्थित(तो) गोचरपरिशुद्धिं कृत्वा पञ्चामृतगुलिकासम्मिश्रगन्धतोयादिभि-

१. 'भावनाप्रकर्षपर्यन्तं' नास्ति- ख

२. तद्- क.

३. योगेश्वरेण- क. ख.

४. पञ्चस्कन्धाहङ्कारमुत्पादनीयं- क. ख. नि० । गृहीतपाठस्तु टीकानुसारी ।

५. धनेऽव- ख.

मुखशौचादिकं कृत्वा निर्माणकायाहङ्कारेणाहं सत्त्वार्थं करोमीत्यधिमुच्य मृदुविष्ट-
 [र]कोपविष्टः सन् स्वचित्तप्रत्यवेक्षणादिकं कृत्वाऽऽत्मरक्षां च यथोपदेशं विधाय
 प्राकृताहङ्कारविनिवृत्तये स्कन्धाद्यधिष्ठानाद्यारभेत। तदेवाह— योगेश्वरेणेति योगः
 क्रमद्वयभावनारूपः, तस्मिन्नीश्वरेण १आयत्तेन, स्वतन्त्रेणेत्यर्थः। यद्वा— इतो बाह्य-
 भावका अयोगिनः, तदपेक्षया क्रियादितन्त्रभावका योगिनः, तेभ्यो विधि[वि]शिष्ट-
 तरत्वेन योनितन्त्रादि(धि)मुक्तिकत्वाद् योगेश्वरः, तेन। अभिसमयप्रतिपादितविधिना
 पारमितातन्त्रनयानुसारेण ब्रह्मविहारचतुष्टयं भावयित्वा। पञ्चसु स्कन्धेषु रूपादिषु
 देवताहङ्कारमिति। प्राकृताहङ्कारविनिवृत्तये बुद्धबोधिसत्त्वदेव्यहङ्कारमभिमानम्।
 उत्पादनीयमिति दृढेन चेतसा निष्पादनीयमित्यर्थः ॥ ५ ॥

रूपस्कन्धे वैरोचनः। वेदनास्कन्धे वज्रसूर्यः। संज्ञास्कन्धे पद्म-
 नर्तेश्वरः। संस्कारस्कन्धे वज्रराजः। विज्ञानस्कन्धे वज्रसत्त्वः। सर्व-
 तथागतात्मा^२ तु श्रीहेरुकवज्रः ॥ ६ ॥

रूपस्कन्ध इत्यादि सुगमम् ॥ ६-७ ॥

एवं स्कन्धादिषु देवताविशुद्ध्युद्देशं प्रतिपाद्य तन्निर्देशं वक्तुं प्रथमं स्कन्धा-
 द्यधिष्ठानमाह— रूपस्कन्ध इत्यादि। अत्रायमुपदेशः— शिरोनाभिकण्ठगुह्यह-
 त्तदुपरिभागेषु वुँ औं जौं खँ हूँ ह्रीं परिणामजाः षट्चक्रवर्तिनः कायज्ञानवाक्कर्म-
 वज्राः श्रीहेरुकसंवरा एकवक्त्रा द्विभुजाः स्वकुलानुरूपवर्णाः सिंहहयमयूरगरुडगज-
 प्रेतासनेषु पर^३परिणतविश्वपद्मचन्द्रसूर्योपरि वज्रपर्यङ्किनः पञ्चमुद्राश्चक्रघण्टादिधरा-
 स्त्रिसत्त्वात्मकाः स्वदेवीसमापन्ना भावनीया इत्यस्मत्परमगुरुपादाः।

अथवा अक्षरभुवि सत्त्वोद्देशेन पूर्व[व]देष्वेव स्थानेषु विश्वपद्मचक्रसव्यो-
 परि पूर्वोक्ताक्षरषट्कं स्वकुलवर्णमधिमुच्य स्कन्धाधिष्ठानं मन्त्रक्रमेण कुर्यात्। एत-

१. आयतनेन- ख.

२. सर्वतथागतत्वं- क. ख. टी०। गृहीतपाठस्तु भोयानुसारी।

३. स्कन्धाधि- क.

४. 'पर' नास्ति- क.

देवाह— रूपस्कन्धेति शिरसि। वैरोचन इति विशेषेण सितेन वर्णेनादर्शज्ञानात्मना रोचनात् प्रकाशनात्। वेदनास्कन्ध इति नाभौ। सुखदुःखादीनां वेदनात्मकत्वात् तस्याः। वज्रसूर्य इति वज्रेण तद्वद्दृढेन समताज्ञानलक्षणेन सूर्य इव सूर्यस्तदात्मकतया रविवत् प्रतिभासनाद् रत्नसम्भवः। रक्तधातुविशुद्धिरूपत्वाद् वा। संज्ञास्कन्ध इति कण्ठे। षड्रसादि समनुभूय तिक्तादिसंज्ञायाः करणात् पद्मनर्तेश्वर इति। पद्मवत् कर्दमदोषेऽननुपलिसत्त्वेन रागादिभिरनुपलितो भूत्वाऽनन्तरे सत्त्वार्थविचारलक्षणे ईश्वरः स्वामीति कृत्वा प्रत्यवेक्षणाज्ञानलक्षणोऽमिताभः। बोधिचित्तधातुविशुद्धिरूपत्वात् पद्मदेवीवराङ्गे नर्तने पतनलक्षणे ईश्वरः स्वतन्त्र इति कृत्वा। संस्कारस्कन्ध इति गुह्ये। द्वितीयसेककाले विशिष्टानां संस्काराणां शिष्यस्व(स्य) करणाद् वज्रराज इति। वज्रवदभेदेन सत्त्वकृत्यलक्षणेन राजनाद्दीपनादिति कृत्वा कृत्यानुष्ठानज्ञानरूपोऽमोघसिद्धिः। विज्ञानस्कन्ध इति हृदये। विषयाणां परिज्ञानाद् वज्रसत्त्व इति। वज्रे सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानरूपे सत्त्वमभिप्रायोऽस्यास्तीति कृत्वा वज्रसत्त्वफलरूपत्वाद् अक्षोभ्यः। सर्वतथागतत्वमिति हृदयोपरि सर्वतथागतबीजस्थानत्वात्। श्रीहेरुकवज्र इति चतुर्विमोक्षमुखात्मकः षष्ठस्तथागतः ॥ ६ ॥

चक्षुषोर्मोहवज्रः। श्रोत्र^१योर्द्वेषवज्रः। घ्राणयोरीर्ष्यावज्रः। ^२वक्त्रे रागवज्रः। ^३स्पर्शे मात्सर्यवज्रः। सर्वायतनेष्वैश्वर्यवज्रः ॥ ७ ॥

एवं स्कन्धाधिष्ठानमुक्त्वाऽऽयतनाधिष्ठानमाह— चक्षुषोर्मोहवज्र इति। चक्षुर्द्वये पूर्ववद् विश्वपद्मचन्द्रसूर्यमण्डलोपरि ॐकारपरिणतो मोहवज्रः, स्वविषयं विहाय विषयान्तरेषु मोहात्। मोहश्च स वज्रश्च वस्तुशून्यत्वात् कायचक्राद्यो महाबल एकवक्त्रो द्विभुजै(ज)श्चक्रतदघण्टाधारी सितः। श्रोत्रद्वयोर्द्वेषवज्र इति। श्रोत्रये(योः) पूर्ववदासनोपरि हंकारपरिणतो द्वेषवज्रः पूर्ववत्। स्वविषयपरित्यागेन विषयान्तरे

१. श्रोत्रद्वयो- टी० ।

२. जिह्वायां- भो० (पु०, दे०) ।

३. काये- भो०.

द्वेषः, द्वेषश्चासौ वज्रश्च पूर्ववत्। चित्तचक्राद्यः खण्डकपालैकवक्त्रो द्विभुजः कृष्णो वज्रा(ञ्ज)तदघण्टाधारी च। **घ्राणयोरिति** घ्राणपुटद्वये पूर्ववदेव आकारपरिणामेन **ईर्ष्यावज्र इति**। निजराव(ग)परिहारेण विषयान्तरसहजादीर्ष्यात्मको वज्रश्चासौ प्राग्वदिति ईर्ष्यावज्रः। वाक्चक्राद्यो विरूपाक्ष एकवक्त्रो द्विभुजः पूर्ववत् पद्मतदघण्टारवे रक्तः। **वक्त्र** इति मुखकुहरे पूर्ववदेवाकारनिर्जातो **रागवज्र इति**। वाक्चक्रस्याङ्गुरिक एकवक्त्रो द्विभुजः पद्मतदघण्टाधारी आलम्बनान्तरपरिवर्जनेन स्वालम्बन एव रागात्, स चासौ वज्रश्च पूर्ववत् इति कृत्वा। **स्पर्श** इति कायेन्द्रिये तत्प्रधानरूपे लिङ्गे वा। पूर्ववदोङ्कारसम्भूतो **मात्सर्यवज्र इति**। आत्मीयं स्पष्टव्यं परित्यज्य विषयान्तरे मात्सर्यात्, स चासौ वज्रश्च शून्यत्वात्, मात्सर्यवज्रः कायचक्रान्ताद् वज्रसत्त्व एकवक्त्रो द्विभुजः स्वचिह्नधारी सितः। **सर्वायतनेष्विति** मनसि हृदयस्थाने। पूर्ववदेव हूँकारे निर्जाते **ऐश्वर्यवज्र इति**। सर्वस्मिन्नेव विषये धर्मधातौ वा सप्तद्रव्यात्मके ऐश्वर्यादपारतन्त्र्यादीश्वरश्चासौ वज्रश्च पूर्ववदेव ऐश्वर्यवज्रश्चित्तचक्रान्ताद् वज्रदेहे द्विभुज एकवक्त्रो वज्रवज्रघण्टाधारी कृष्णः।

एतदुक्तं भवति यथैव महायोगप्रक्रियायाः क्षिं जं खं गं ञ्कं सँ बीजपरिणामेन षट्स्वायतनेषु क्षितिगर्भादयः षट् त्रिमुखषड्भुजादिरूपा भाव्यन्ते, तथैवेहापि चक्रत्रयादाद्यन्तवीरसंग्रहं कृत्वाऽऽयतनाधिष्ठानं कुर्यादित्याम्नायः ॥ ७ ॥

१ श्रीहेरुकस्य धातुरिति। पृथिवीधातुः पातनी। अब्धातु-
मरिणी। तेजोधातुराकर्षणी। वायुधातुः २ पद्मनर्तेश्वरी। आकाशधातुः
पद्म३जालिनी ॥ ८ ॥

धातुरिति। ४ धातवोऽपि देवताकारेण कथ्यन्ते। पृथ्वीधातुरित्यादि
सुबोधम् ॥ ८ ॥

१. 'श्रीहेरुकस्य' नास्ति- भो०.

२. 'पद्म' नास्ति- भो०.

३. ज्वालिनी- क. ख. टी०

४. सर्वे त्रिधातवो- भो०.

एवमायतनाधिष्ठानमुक्त्वा धात्वधिष्ठानं वक्तुमुद्दिशन्नाह— श्रीहेरुकस्येति तदाकारस्य योगिनः। धातूनां पञ्चानां महाभूतलक्षणानां विशुद्धिः परिशोधनम्। इतीति । वक्ष्यमाणेन न्यायेनेत्यर्थः । तदेवाह— पृथिवीधातुरिति । अत्रायमुपदेशः— निर्माणादिचतुश्चक्रेषु मध्यनाड्या चाथवा खरस्नेहोष्णतेरणावकाशस्वभावेष्वास्थि-रक्ताद्यूष्मरूपगमनागमनव्यापारनाडीकायद्वारेषु शिरःस्थानेषु लाँ माँ पाँ ताँ खँ बीजा डाकिनी-लामा-खण्डरोहा-रूपिणी-वाराह्य एकवक्त्राश्चतुर्भुजाः कृष्णपीतारुण-श्यामरक्तमूलमुखाङ्गरूपाः कपालखट्वाङ्गडमरुकर्तिकाधराः। विशेष[त]स्तु भगवती वज्रवाराही त्रिवक्त्रा षड्भुजा आरक्तमूलमुखाङ्गी दक्षिणवामयोर्नीलसिता कर्ति-पात्रपाशाङ्कुशतर्जनीमुण्डधारिणी न्यस्तव्या ।

तदेवाह— पृथिवीधातुरिति । गतार्थमेतत् । पातनीति पृथिवीधातुविकल्प[स्य] डाकिनी । मारिणीति अब्धातुविकल्पस्य मारणाल्लामा । आकर्षणीति तेजोधातु-विकल्पस्य आकर्षणेन निराभासीकरणेन । नर्तेश्वरीति । वायुधातुविकल्पस्य (ल्पं) विनिवार्य हर्षवशेन नर्तने सर्वाङ्गविक्षेपलक्षणे ईश्वरी स्वामिनीति कृत्वा । पद्मज्वा-लिनीति । पद्मवद्दोषानुपलिसान् दत्त्वाऽऽकाशधातुविकल्पस्य जालवदुद्धरणात् ॥ ८ ॥

एवं स्कन्धधात्वायतनेषु देवताहङ्कारमुत्पादयितव्यम् ॥ ९ ॥

१इति योगिनीसञ्चारे देवतायतन^२विशुद्धिनिर्देशः प्रथमः ॥ १ ॥

एवमित्यादिनोपसंहारः ॥ ९ ॥

इति प्रथमो निर्देशः ॥ १ ॥

१. नास्ति-भो०.

२. विशुद्धिस्थानं प्रथमम्- भो०.

एवं धात्वधिष्ठानमभिधाय स्कन्धाद्यधिष्ठानोपसंहारं वक्तुमाह— एवमित्यादि । समनन्तरप्रतिपादितेन न्यायेन । स्कन्धधात्वायतनेष्विति । पूर्वोक्तेषु स्थानेषु । देव-
ताहङ्कारमिति प्राकृताहङ्कारप्रतिपक्षेण । उत्पादयितव्यमिति सम्पादयितव्यं दृढी-
कर्तव्यमित्यर्थः ।

इति श्रीपण्डिताचार्य-अलककलशविरचितायां योगिनीसञ्चारतन्त्रटीकायाम्
उपदेशानुसारिण्यभिधानायां प्रथमपटले विस्तरव्याख्या ॥ १ ॥

*

द्वितीयो निर्देशः

अथ सप्तत्रिंशद्बोधिपाक्षिका धर्मा देवतायोगेन ^१योजनीयाः । तेऽपि सर्वे कतमे ? ॥ १ ॥

अथेत्यादि । ये देवतायोगेन योजनीया बोधिपाक्षिका धर्मास्ते सर्वेऽपि कतमे इति योजनीयाः ॥ १-२ ॥

एवं प्रथमपटलेन प्राकृताहङ्कारप्रतिपक्षतया स्कन्धात्वायतनविशुद्धिनिर्देशं प्रतिपाद्य लौकिकलोकोत्तरमार्ग^२भावनां वक्तुं बोधिपाक्षिकधर्मनिर्देशलक्षणं द्वितीयपटलमाह— अथेत्यादि । स्कन्धादिविशुद्धिभावनानिर्देशानन्तरम् । सप्तत्रिंशदिति तत्संख्याकाः । बोधिपाक्षिका धर्मा इति । निरावरणं ज्ञानं बुद्धभूमिसंगृहीतं बोधिः, तस्यां पक्षाः पक्षे भवाः, तम्प्रा(त्प्रा)प्त्यनुकूलहेतुत्वात् । त एव धर्म(र्मा) इति । प्रज्ञावीर्यध्यानादिलक्षणस्वलक्षणधारणात् । देवतायोगेनेति डाकिन्यादिसप्तत्रिंशद्-योगिनीस्वभावेन समाधिना प्रयोगेण वा । युञ्जनीया इति तद्विशुद्धिरूपेण योजनीयाः । मन्त्रमहायानाधिमुक्तिकेन योगिना भावनीया इति यावत् ।

एवमुद्देशं प्रतिपाद्य निर्देशं वक्तुमाह— तेऽपीति । ये बोधिपाक्षिका देवतायोगे योज्यन्ते । कतम इति ? किंरूपाः किंस्वभावा इति संख्याविषये प्रश्नः ॥ १ ॥

कायानु^३स्मृत्युपस्थानम् । वेदनानु^४स्मृत्युपस्थानम् । धर्मानु^५-
स्मृत्युपस्थानम् । चित्तानु^६स्मृत्युपस्थानम् ॥ २ ॥

१. संपूजनीया- ग. युञ्जनीया:- टी०;

२. नास्ति- ख.

३. नास्ति- ख.

४. 'अनु' नास्ति- भो०.

५. 'अनु' नास्ति- भो०.

६. 'अनु' नास्ति- भो०.

७. 'अनु' नास्ति- भो०.

उत्तरमाह—कायानुस्मृत्युपस्थानमिति । १ एषां स्मृत्युपस्थानादीनां प्रत्येकं चतुर्भि-
श्चतुर्भिर्निर्यो वेदितव्यः । यदुत भावनाप्रयोजनम्, स्वरूपम्, मार्गपुद्गलभेदेन
समस्य विभागः, श्रावकादिवैलक्षण्येन तद्वैशिष्ट्यं चेति । तत्र तावत् स्मृत्युपस्थान-
भावनाप्रयोजनं चतुर्षु सत्येष्ववतारः । यदुक्तं भगवता मैत्रेयेण—

दौष्टल्यात्तर्षहेतुत्वाद् वस्तुत्वादविमोहतः ।

चतुःसत्यावताराय स्मृत्युपस्थानभावना ॥ इति ।

(म० वि० का०, ४.१)

अस्य चायमर्थः— कायेन हि दौष्टल्यं प्रभाव्यते संस्कारदुःखरूपतया । तया (था)
हि सर्वमास्रवं वस्त्वार्यदुःखं तस्य पश्यन्तीति तृष्णाहेतुर्वेदना । वेदना प्रत्ययेति
तृष्णावचनात्तत्परीक्षया समुदयसत्यमवतरति । आत्माभिनवेशवस्तु चित्तम् । आत्मनः
प्रमाणबाधि[त]त्वेन साधकप्रमाणाभावेन च तस्यैव तदभिनवेशाधिष्ठानत्वात् ।
तत्परीक्षया निरोधसत्यमवतरति, आत्मोच्छेदे भयापगमात् । धर्मपरीक्षया सांक्लेशिक-
वैयवदानिकधर्मसंमोहापगमान्मार्गसत्यमवतरति । अत आदौ चतुस्सत्यावताराय
स्मृत्युपस्थानभावना व्यवस्थाप्यते । स्वरूपं पुनः— यैरनुदर्शने स्मृतिरुपतिष्ठते, तानि
स्मृत्युपस्थानानि । आलम्बनभेदाश्चत्वारि(रः) । तत्र सूत्रे उक्तम्— “अध्यात्मकाये
बहिर्धाकाये अध्यात्मबहिर्धाकाये कायानुदर्शी विहरति । कायसहगतान् वितर्कान्
वितर्कयति । तच्चानुपलम्भयोगेन आतापी संप्रज्ञानन् स्मृतिमान् विनीय लोकेऽभि-
ध्यादौ नश्यति ।” तत्राध्यात्मकाय इति स्वचक्षुरादिषट्के, बहिर्धाकाय इति स्व-
कायाद् बाह्ये संस्कृते, अध्यात्मबहिर्धाकाय इति स्वकायगते परिशिष्टभूते भौतिके,
कायानुदर्शीति कायधर्मतानुदर्शी । कायसहगतानिति कायादिसंज्ञासहगतान् । वितर्का-
निति विकल्पान् वितर्कयति । एष कायो नित्योऽनित्यः सुखो(खं) दुःखमित्येव-
मादीन् । आतापीति । सातत्यसत्कृत्यं प्रयोगात् । संप्रज्ञानन्निति । अनुदर्शनेन सम्प्रजन्येन
योगात् । स्मृतिमानिति । असंप्रमोषात्मिकया^१ अविक्षेपावाहिकया च स्मृत्या योगात् ।
आसामेव वीर्यप्रज्ञास्मृतीनामनुशंसामाह— विनीयेति । लोके लोकधर्मेषु लाभयशः-

१. एवं -ख.

२. ‘आरक्षिकात्मिकया’- इत्यधिकम्- क.

सुखप्रशंसासु, अभिध्या लोभं दौर्मनस्यमलाभायस्यै(शो)दुःखम्, नित्यः, एते अभिध्यादौर्मनस्ये विने(नी)येति प्रहाय। ए[वं] बहिर्धाकायादौ योज्यम्। तथा वेदनायां सुखदुःखौ दुःखासुखाकारायां पूर्ववदध्यात्मबहिर्धा, अध्यात्मबहिर्धारूपं च चित्तस्य क्षणिकत्वेन पूर्वापरान्तवर्जितस्य धर्माणां कुशलाकुशलोभयात्मना अध्यात्म-बहिर्धारूपाणां वेदनानुदर्शी विहरति। स वेदनासहगतान् वितर्कान् वितर्कयति। आतापीत्यादि योज्यम्। एवं धर्मेष्वपि। मार्गपुद्गलभेदेन समस्य विभागः पुनर्लौकिक एव, मार्गे मृदुसंभारभूमौ वस्तुपरीक्षा मार्गापरपर्यायायां पृथग्जनस्यैव, प्रधानतः कामरूपधात्ववस्थितस्य स्वसामान्यलक्षणपरीक्षितकायवि(वेदना)चित्तधर्मलक्षणानि स्मृत्युपस्थानानि। श्रावकादिवैलक्षणेन तद्वैशिष्ट्यं पुनः समासव्यासाभ्यां वेदितव्यम्। तत्र तावत् समासस्त्रिभिराकारैः। यदुक्तं भगवतैव— “आलम्बनमनस्कारप्राप्तित-स्तद्विशिष्टता” इति (म० वि० का० ४.१३)। अस्यायमर्थः— श्रावकप्रत्येकबुद्धानां हि स्वसन्तानिकाश्रयादय आलम्बनम्, बोधिसत्त्वानां तु स्वपरसन्तानिकाः। श्रावकप्रत्येकबुद्धा अनित्यादिभिराकारैश्छायादीन् मनसि कुर्वन्ति, बोधिसत्त्वाः पुन-रनुपलम्भयोगेन। श्रावकप्रत्येकबुद्धाः पुनः स्मृत्युपस्थानादीनि भावयन्ति यावदेव कायादीनां विसंयोगाय। बोधिसत्त्वानां तु न संयोगाय न विसंयोगायापितु अप्रतिष्ठित-निर्वाणप्राप्तये। इति स्मृत्युपस्थानान्यभिधाय स्वयं पुस्तकया(वा)चकाभिमानिनो मोहं जनयितुं मध्ये सम्यक्प्रहाणभावना क्रमादागमा[पा]यिस्थापयितव्या। स(सा) पुन-श्चतुर्दशभिराकारैः स्मृत्युपस्थानभावना बोधिसत्त्वानां श्रावकादिभ्यो विशिष्यते। यदुक्तम्—

निश्रयात् प्रतिपक्षाच्च अवतारात् तथैव च ।

आलम्बनमनस्कारप्राप्तितश्च विशिष्यते ॥

आनूकूल्या^१नुवृत्तिभ्यां परिज्ञोत्पत्तितोऽपरा ।

मात्रया परमत्वेन भावना समुदागमात् ॥ इति ।

(म० सू० १८.४३-४४)

तत्र तावदाश्रयतो महायाने श्रुतिचिन्ता[भावना]मयीं प्रज्ञामाश्रित्य । प्रति-
 पक्षतः चतुर्विपर्यासप्रतिपक्षाणां मध्ये के[षां]चिद् दुःखानित्यानात्मसंज्ञानां प्रति-
 पक्षत्वात् कायादिधर्मनैरात्म्यप्रवेशतः । अवतारतः चतुर्भिः स्मृत्युपस्थानैर्यथाक्रमं
 दुःखसमुदयनिरोधमार्गसत्यावतारात्, स्वयं परेषां चावतारणाद् वा । समनन्तरमेव
 प्रयोजनावसे(सरे) प्रतिपादितम् । आलम्बनतः सर्वसत्त्वानां कायाद्यालम्बनात् । कथं
 मनस्कारतः पञ्चविधं हेतुमाश्रित्य कायाद्यनुपलम्भात् । प्राप्तितः कायादीनां न
 संयोगाय न विसंयोगाय । आनूकूल्यतः पारमितानुकूल्येन तद्विपक्षप्रतिपक्षत्वात् ।
 अनुवृत्तितो लौकिकानां श्रावकप्रत्येकबुद्धानां चानुवृत्त्या तदुपसंहितस्मृत्युपस्थान-
 भावनात् तेभ्यस्तदुपदेशार्थम् । परिज्ञातः कायस्य मायोपमत्वपरिज्ञया तथैवाभूतरूप-
 संप्रख्यानाद् वेदनाया स्वप्नोपमत्वपरिज्ञया तथैव मिथ्यानुभावात् । चित्तस्य प्रकृति-
 प्रभास्वरपरिज्ञया आकाशवत् । धर्माणामागन्तुकत्वपरिज्ञया आकाशागन्तुकरजो-
 धूमाभ्रनीहरोपक्लेशवत् । उत्पत्तितः संचिन्त्य भवोपपत्तौ चक्रवर्त्यादिभूतस्य विशिष्ट-
 कायवेदनादिसम्पत्तौ तदसंक्लेशतः । मात्रातो मृद्व्या अपि स्मृत्युपस्थानभावनाया
 तदन्येभ्योऽधिमात्रत्वात् । [परमतः] प्रकृतितीक्ष्णेन्द्रियतया परमत्वेन परिनिष्पन्नाना-
 मनाभोगमिश्रोपमिश्रभावनात् । [भावनातः] अत्यन्तं तद्भावनान्निरुपधिशेषे निर्वाणे-
 ऽपि तदक्षयात् । समुदागमतो दशसु भूमिषु बुद्धत्वे च तत्समुदागमात् ॥ २ ॥

छन्दऋद्धि^१पादः । वीर्यऋद्धि^२पादः । मीमांसाऋद्धि^३पादः ।
 चित्तऋद्धि^४पादः ॥ ३ ॥

ऋद्धिरुत्पद्यतेऽनेनेति ऋद्ध्युत्पादः । छन्द एव ५ ऋद्ध्युत्पादश्च छन्द-
 ऋद्ध्युत्पादः । एवमन्येऽपि ॥ ३-८ ॥

एवं स्मृत्युपस्थानान्ये(नी)ति वा स्वयं पुस्तकाभिमानिका[नां] मोहं जनयितुं
 मध्ये सम्यक्प्रहाणभावनां क्रमागतामपि स्थापयित्वा ऋद्धिपादचतुष्टयं प्रतिपादयितु-

१. ऋद्ध्युत्पादः - क. ख. नि०.
२. ऋद्ध्युत्पादः - क. ख. नि०.
३. ऋद्ध्युत्पादः - क. ख. नि०.
४. ऋद्ध्युत्पादः - क. ख. नि०.
५. ऋद्धिपादश्छन्दऋद्धिपादः- भो०.

माह— छन्दऋद्धिपाद इति। अत्रापि पूर्ववच्चतुर्भिरर्थैर्निर्णयो वेदितव्यः। तत्र ताव-
देतद्भावनाप्रयोजनं सम्यक्प्रहाणैर्वीर्यभावनायां स्थितस्य चित्तस्थितेः स्थित्युष्णतापादनं
नाम। यदुक्तम्— “कर्मण्यता स्थितेस्तत्र सर्वार्थानां समृद्धये” (म० वि० का०
४.२) इत्यादि। स्वरूपं पुनः। ऋद्धिः लोकोत्तरा धर्मास्तस्यां[याः] पदस्थानत्वात्
ऋद्धिपादाः। तेऽपि छन्दादयश्चत्वारः। तथाहि कस्यचित्तीव्रं(व्रः) तत्तयैव सुप्रयुक्तस्य
चित्तैकाग्रतालक्षणः समाधिरुत्पद्यते। कस्यचित्सम्यक्प्रहाणवीर्ये अकुशलप्रहाणे
कुशलोत्पादे च सुप्रयुक्तस्य, कस्यचिच्छमथप्रग्राहपेक्षानिमित्तैश्चित्तं परिशोधयतः,
कस्यचित्तु किं मे सूक्ष्मये[क्षया] कुशलानि समुदाचरन्ति, किं वा समुदाचारवर्ति-
तान्यहं परिमीमांसा(स)येयमिति सम्यग् व्या(ध्या)यतः। एतद् भावनायाः समाधि-
दोषान् सम्यगनुपलक्षयित्वा तथा चाष्टभिः प्रहाणसंस्कारैः प्रहाणं कृत्वा ऋद्धिपाद-
चतुष्टयं निष्पद्यते।

तथाहि— “कौशीद्यमालम्बनसंप्रमोषो लयस्तथौद्धत्यमयत्नयत्नम्” इत्येते
समाधिदोषाः। तेषां च यथासंभवं छन्दवीर्यश्रद्धाप्रसन्नबुद्धिस्मृतिसंप्रजन्यचेतनोपेक्षारूपा
अष्टप्रहाणसंस्कारा आश्रयाः। तत्र कदानु लौकिकलोकोत्तरसमाधिसमापत्तिमुत्पाद-
यिष्यामीति छन्दस्य(न्दः, स ए)व आश्रयभूतो वीर्यस्य सर्वाकुशलनिर्घातनाय वीर्यम्,
स चाश्रितः। चतुरोत्तरे अधिगमधर्मसम्प्रत्ययो(या)ऽभिलाषः श्रद्धा। सा चाश्रयभूतस्य
छन्दस्य निमित्तम्। श्रद्धासम्प्रत्यये सत्यभिलाषात्। तत्पूर्विका च कायचित्तकर्मण्यता
प्रसन्नबुद्धिः। इयं चाश्रितस्य व्यायामस्य फलम्। यदुक्तम्— “आश्रयोऽथाश्रितस्तस्य
निमित्तं फलमेव च” (म० वि० का० ४.५) इति। एभिश्चतुर्भिः कौशीद्यलक्षणदोष-
प्रहाणाय छन्दःसमाधिर्निष्पद्यते। आलम्बनसम्प्रमोषस्य स्मृत्या शमथपक्षया प्रहाणाद्
वीर्यसमाधिः। लयौद्धत्यसम्प्रजन्येन प्रहाणात् मीमांसासमाधिः। सम्प्रजन्यं च यथाक्रमं
विहारारामदर्शनं संवेदनीयमनसिकारोत्पादनरूपं द्रष्टव्यम्। अयत्नयत्नयोश्चेतनोपेक्षा-
भ्यां प्रहाणाच्चित्तसमाधिः। तत्र चित्ताभिसंस्कारश्चेतना। असंक्लेश उपेक्षा। मार्ग-
पुद्गलभेदेन समस्य विभागस्तु लौकिक एव मार्गसमाधिपरिच्छन्दमार्गादपरपर्यायेऽधि-
मात्रसंभारभूमौ पृथग्जनस्यैव एषां निष्पत्तिः। श्रावकादिवैलक्षण्येन तद्विशिष्टता पुनः
पूर्ववत्। स्वार्थमात्रो वैलक्षण्येन ज्ञातव्यः ॥ ३ ॥

श्रद्धेन्द्रियम् । वीर्येन्द्रियम् । स्मृतीन्द्रियम् । समाधीन्द्रियम् । प्रज्ञेन्द्रियम् ॥ ४ ॥

एवं ऋद्धिपादचतुष्टयं संविधायेन्द्रियाणि वक्तुमाह— श्रद्धेन्द्रियमिति । अत्रापि पूर्ववच्चतुर्भिरर्थैर्निश्चयो बोद्धव्यः । तत्र तावद्भावनाप्रयोजनम् ऋद्धिपादैः कर्मण्यचित्तस्यावरोपितमोक्षभागीयकुशलमूलनिष्पादनेन छन्दाद्याधिपत्यं नाम । यदुक्तम्—

रोपिते मोक्षभागीये छन्दयोगाधिपत्यतः ।

आलम्बने ह्यसंमोषाऽविसारविचयस्य च ॥ इति ।

(म० वि० का० ४.६-७)

स्वरूपं पुनः । इन्दनादिन्द्रियम् । 'इय(दि)परमैश्वर्ये' इति धातुपाठात् । श्रद्धादीनि पञ्च लोकोत्तरधर्मोत्पादनायाधिपत्यलाभादिन्द्रियाणि भवन्ति । अत्रापि द्विधा व्याख्यानम् । ऋद्धिपादेषु हि सुप्रयुक्तस्य लिङ्गदर्शनादुत्तरविशेषोत्पत्तौ निश्चयोत्पत्तेः । शास्तुः श्रावकाणां चाधिगमे संप्रत्यये(यो) जायते । तदस्य श्रद्धेन्द्रियं श्रद्धाधिक्याद्वीर्यादीनामाधिक्यं ज्ञातव्यम् । अथवा ऋद्धिपादकर्मण्यचित्तस्यावरोपितमोक्षभागीयकुशलबलच्छन्दाधिपत्यतः श्रद्धा, प्रयोगाधिपत्यतो वीर्यम्, आलम्बनासंप्रमोषाधिपत्यतः स्मृतिः, अविप्रतिसाराधिपत्यतः समाधिः, प्रविचयाधिपत्यतश्च प्रज्ञेति पञ्चेन्द्रियाणि । मार्गपुद्गलभेदेन समस्य विभागस्तु प्रयोगमार्गेऽभिसमयप्रायोगिकमार्गापरपर्याय-ऊष्ममूर्धागतावस्थायाम्, तेषां निष्पत्तिः पृथग्जनस्यैव श्रावकादिवैलक्षणेन । तद्वैशिष्ट्यं तु स्वार्थवैलक्षणेन पूर्ववदेव त्रिभिरर्थैर्बोद्धव्यम् ॥ ४ ॥

श्रद्धाबलम् । वीर्यबलम् । स्मृतिबलम् । समाधिबलम् । प्रज्ञाबलम् ॥ ५ ॥

एवमिन्द्रियाण्यभिधाय बलानि वक्तुमाह— श्रद्धाबलमिति । अत्रापि पूर्ववच्चतुर्भिरर्थैर्व्यवस्थानं वेदितव्यम् । तत्र तावद् भावनाप्रयोजनं समधिसतोष्पादः (नामाधिगतोष्मादि)क्षान्त्यग्रधर्मा निर्वेधभागीयकुशलमूलपरिनिष्पत्तये भवन्तीति । स्वरूपं पुनः श्रद्धादयः पूर्वस्यैव व्याख्याताः । बलत्वं तु तेषां मारादिभिर्विपक्षैरनव-

मृद्यत्वादशुद्धकौशीद्यविस्मृतिविक्षेपदौष्प्रज्ञाख्यैर्दुर्धर्षत्वाच्च मार्गपुद्गलभेदेन। समस्य विभागः पुनः पूर्ववत्। पृथग्जनसन्तानदेवतान्येवेन्द्रियाणि। क्षान्तिगतलौकिकाग्र-
धर्मश्गर्भावस्थायां प्रयोगमार्ग एवाभिसमयः, शेषमार्गापरपर्याये वृद्धिगमनात्। श्राव-
कादिवैलक्षण्येन समस्य विभागस्तु पूर्ववदेव स्वार्थमात्रप्रतिपक्षतया त्रिभिरेवार्थै-
र्वेदितव्यः ॥ ५ ॥

**समाधिसंबोध्यङ्गम्। वीर्यसंबोध्यङ्गम्। प्रीतिसंबोध्यङ्गम्।
प्रस्रब्धिसंबोध्यङ्गम्। धर्मप्रविचयसंबोध्यङ्गम्। स्मृतिसंबोध्यङ्गम्।
उपेक्षासंबोध्यङ्गम् ॥ ६ ॥**

एवं बलानि व्याख्याय बोध्यङ्गानि वक्तुमाह— **समाधिसंबोध्यङ्गमिति।**
अत्रापि चतुर्भिरर्थैर्व्यवस्थानं वेदितव्यम्। तत्र तावद्भावनप्रयोजनं नामाधिगतोष्मा-
दिचतुष्कस्य सत्यदर्शनोत्पादनार्थम्। स्वरूपं पुनर्दर्शनमार्गे यथाभूतावबोधाद् बोधिः
संबोधिः। तस्य अङ्गानि सप्त। तानि च शमथविपश्यनातदुभयपक्षरूपाणि। तत्र
समाध्यपेक्षा प्रस्रब्धयः शमथपक्ष्याः, धर्मप्रविचयप्रीतिवीर्याणि विपश्यनापक्ष्याणि।
स्मृतिरुपेक्षा। तत्र समाधिरुच्यते। यन्मोहितचित्तो दुःखादिषु धर्मज्ञानाद्यभिसम्बध्यते
तदपि सर्वधर्मसमतया, इदमुच्यते— **समाधिसंबोध्यङ्गम्।** तथा गगनगङ्गादिसमाधि-
लाभतश्चिन्तितार्थसमृद्धिर(त)श्च समाधिरुपजायत इति। **वीर्यसंबोध्यङ्गमिति।** यच्छ-
णा(यत्क्षण)मपि बोध्यङ्गानामुत्सहनं प्रग्रहो बलम्, इदमुच्यते **वीर्यसंबोध्यङ्गम्।**
अथवा क्षिप्राभिज्ञा(ज्ञ)तापादनाद् वीर्यस्य प्रवृत्तिर्यथा राज्ञा(ज्ञः) स्व(सु)रत्नशास्त्र-
समुद्रपर्यन्तमहापृथ्वीगमनाय। **यदुक्तम्—** “आशु चाशेषबोधा[य] वीर्यमस्य
प्रवर्तते” (म० सू० १८.५९) इति। **प्रीतिसंबोध्यङ्गमिति।** यथा(या) धर्मप्रीत्या
चित्तस्यानवलीनता भवति क्लेशांश्च व्यपनयति, आरब्धवीर्यत्वेनास्य धर्मा लोका
विवर्धन्ते। ततः सा प्रीतिः सर्वकायं चित्तं च सदा प्रीणयति। यथा मणिरत्नमालोक-
विशेषेण चक्रवर्तिनं प्रीणयति तद्वत्। **यदुक्तम्—** “धर्मा लोकविवृद्ध्या च प्रीत्या
२आपूर्यते ध्रुवम्” (म० सू० १८.५९) इति। **प्रस्रब्धिसंबोध्यङ्गमिति।** सर्वदर्शनहेय-

१. गताव- क.

२. आशु प्रपूरयेत्- क. ख.

दौष्टुल्यसमुद्घाताद्विशिष्टसुखनिष्पत्तेः। यथा स्त्रीरत्नेन चक्रवर्तिसुखमनुभवति। यदु-
 क्तम्— “सर्वावरणनिर्मोक्षात् प्रश्रब्ध्या सुखमेति च” (म० सू० १८.६०) इति।
 धर्मप्रविचयसंबोध्यङ्गमिति। यच्चतुरशीतिधर्मस्कन्धसहस्राणां नेयनीतसंवृतिपरमार्था-
 दिभेदेन प्रविचयज्ञानं सर्वविकल्पनिमित्तानां भ[ञ्ज]नार्थम्। यथा हस्तिरत्नं शून्य-
 विक[ल्प]भङ्गाय। यदुक्तम्— “सर्वविकल्पनिमित्तानां भङ्गाय विचयोऽस्य च”
 (म० सू० १८.५८) इति। स्मृतिसंबोध्यङ्गमिति। यया स्मृत्या सर्वधर्मान् मीमांसते,
 अजितं जयति विवर्जयार्थेन, यथा चक्रवर्तिनश्चक्ररत्नमजितदेशविजयाय। यदु-
 क्तम्— “स्मृतिश्चरति सर्वत्र ज्ञेयाऽजितविनिर्जये^१” (म० सू० १८.५८) इति।
 उपेक्षासंबोध्यङ्गमिति। यदस्य सौमनस्यदौर्मनस्यभागीये धर्मश्चित्तेन पर्यादीयते,
 लोकधर्मेण संहियते तदस्योपेक्षासंबोध्यङ्गम्। अथवा उपेक्षा उच्यते निर्विकल्पकं
 ज्ञानम्, तथा बोधिसत्त्वः सर्वत्र यथाकामं विहरति तत्पृष्ठलम्बनज्ञानेनान्यस्योपगमा-
 दन्यस्यापगमनात्, निर्विकल्पेन विहारेण निर्व्यापारतया च वासकल्पनात्। यथा
 चक्रवर्तिनः परिणायकरत्नं चतुरङ्गबलकायमुपसे(ने)तव्यं चोपनयति, अपनेतव्यं
 चापनयति। तत्र च गत्वा वासं कल्पयति यत्राखिन्नश्चतुरङ्गो बलकायः परैति।
 यदुक्तम्—

उपेक्षया यथाकामं सर्वत्र विहरत्यसौ ।

पृष्ठलम्बाविकल्पेन विहारेण सदोत्तमः ॥ इति ।

(म० सू० १८.६१)

अङ्गसंग्रहसु(मु)खेनाप्येषां स्वरूपमुच्यते— तत्र बोधिराश्रयः स्मृतिः। स्वभावो
 धर्मप्रविचयः, निर्याणाङ्गं वीर्यम्, अनुशंसाङ्गं प्रीतिः। निःक्लेशाङ्गं त्रिधा, निर्याणा-
 श्रयस्वभावभेदात्। तत्र संक्लेशहेतोर्दौष्टुल्यस्य प्रतिपक्षः प्रसन्धिः, तस्माद-
 संक्लेशस्य निदानमाश्रयः समाधिः, स्वभावादुपेक्षा । यदुक्तम्—

२आश्रयाङ्गं स्वभावाङ्गं निर्याणाङ्गं तृतीयकम् ।

चतुर्थमनुशंसाङ्गं निःक्लेशाङ्गं त्रिधा^३ मतम् ॥

१. अजितं जयतिर्जय- क.

२. निश्रयाङ्गम्- म० सू० १८.६३

३. त्रयात्मकम्- मु० पा०

निदानेनाश्रयेणेह स्वभावेन च देशितम् । इति ।

(म० वि० का० ४.८-९)

मार्गपुद्गलभेदेन समस्य विभागस्तु लोकोत्तरैः सत्याभिसमया माया त्रैधातु-
कावचरक्लेशप्रतिपक्षतया बाहुल्येनार्यपुद्गलानां स्वकस्य यथासंभवं व्यवस्थाप्यते ।
श्रावकादिवैलक्षणे(ण्ये)न तद्वैशिष्ट्यं पुनः केवलसत्यचतुष्टयप्रतिवेधविलक्षणपार-
मितासंभारविपक्षभूतानाम् । -----सर्वत्रगधर्मधातुप्रतिवेधेन ॥ ६ ॥

**सम्यग्दृष्टिः । सम्यक्संकल्पः । सम्यग्वाक् । सम्यक्कर्मान्तः ।
सम्यगाजीवः । सम्यग्व्यायामः । सम्यक्स्मृतिः । सम्यक्समाधिः ॥ ७ ॥**

एवं सप्तबोध्यङ्गान्यभिधायार्याष्टाङ्गमार्गं वक्तुमाह— सम्यग् [दृष्टिरिति] ।
अत्रापि चतुर्धा व्यवस्थितिर्द्रष्टव्या । तत्र तावदादौ तद्भावनाप्रयोजनम् । परिज्ञातसत्य-
दर्शनस्य भावना--[ज्ञे]यावरणविशुद्धिः । स्वरूपं पुनर्बोध्यङ्गकालादूर्ध्वं यथाभूता-
वबोधानुवृत्तिदर्शनमार्गपरिच्छेदा[त् सम्यग्]दृष्टिः । सम्यक्संकल्प इति । तस्यैवा-
वबोधस्य व्यवस्थानम्, [परिच्छेदः सम्यक्संकल्पः], तद्व्यवस्थाने च सूत्रादिके
भगवता कृते [स एव प्रवेशः], तेन तदर्थवबोधात् । सम्यग्वागिति । सम्यग्वाक्-
कर्मान्ताजीवत्रयं कर्मत्रयविशुद्धिः, [वाक्कायोभयकर्मसंग्रहा]त् । प्रतिपक्षस्य भावना
सम्यग्व्यायामस्मृतिसमाधयो यथाक्रमं ज्ञेयावरणस्य मार्गावरणस्य [च वैशेषिक-
गुणा]वरणस्य च । तथाहि [सम्यग्व्यायामेन] दीर्घं हि कालमखिद्यमानो ज्ञेयावरण-
स्य प्रतिपक्षं भावयति । सम्यक्स्मृत्या [शमथप्रग्रहोपे]क्षानिमित्तेषु लयौद्धत्याभावा-
न्मार्गसंमुखीभावायावरणस्य प्रतिपक्षं [भावयति । सम्यक्समाधिना वैशेषिकगुणाभि-
निर्हा]रायावरणस्य प्रतिपक्षं भावयति । -----स्कन्धैः । तत्र सम्यग्दृष्टिसम्यक्संकल्प-
सम्यग्वाक्-----सम्यग्वाक्कर्मान्ताजीवः शीलस्कन्धः । तत्र दर्शनमार्गस्य परिच्छेदः
सम्यग्दृष्टिसम्यक्संकल्पसम्यग्वाक् । इयं च वक्ष्यमाणेन न्यायेनोभयाङ्गा । सम्यक्समु-
त्थापनया वा[चा तत्प्रापणात्, प]रसम्भावनाङ्गं त्रिधा सम्यग्वाक्कर्मान्ताजीवाः ।
तैर्हि यथाक्रमं त्रिषु सम्भावना भवति । [सम्यक्कर्मान्तेन शीले, अकृत्याकरणात्;

सम्यगाजीवेन संलेखे,] धर्मेण मात्रया चीवराद्यन्वेषणात् “त्रिचीवराद् बहिस्त्यजेद्” इति न्यायात्। विपक्षप्रतिपक्षाङ्गं त्रिधा— सम्यग्व्यायामस्मृतिसमाधिभेदात्। ते हि प्रतिपक्षा यथाक्रमं क्लेशस्य भावना, हेयस्य उपक्लेशस्य च लयौद्धत्यस्य विभुत्वम्, विपक्षस्य च वैशेषिकगुणाभिनिर्हारस्येत्यर्थः। यदुक्तम्—

परिच्छेदोऽथ संप्राप्तिः परसंभावना त्रिधा ।

विपक्षः प्रतिपक्षश्च मार्गस्याङ्गं तदष्टधा ॥

दृष्टौ शीले च संलेख्ये परसंज्ञतिरिष्यते ।

क्लेशोपक्लेशवैभुत्वविपक्षप्रतिपक्षता ॥ इति ।

(म० वि० का० ४.१०-११)

मार्गपुद्गलभेदेन समस्य विभागस्तु भावनामार्गे विशुद्धिनैर्याणिकमार्गापरपर्याये सैक्ष(शैक्ष्य)स्यैव दृष्ट^१सत्यस्य नान्यस्य भवति। श्रावकादिवैलक्षण्येन तद् विशिष्टता पुनर्ज्ञेयावरणस्य प्रतिपक्षभावनाद् वेदितव्या ॥ ७ ॥

अनुत्पन्नानां कुशलानां धर्माणामुत्पादनम्। उत्पन्नानां कुशलानां धर्माणां संरक्षणम्। उत्पन्नानामकुशलानां धर्माणां प्रहाणम्। अनुत्पन्ना-नामकुशलानां धर्माणामनुत्पादनम् ॥ ८ ॥

एवमार्याष्टाङ्गिकं मार्गं व्याख्याय सम्यक्प्रहाणचतुष्टयव्याख्यानार्थमाह— अनुत्पन्नानां ^२कुशलानां धर्माणामित्यादि। अत्रापि चतुर्भिरर्थैः पूर्ववदर्थनिर्णयो वेदितव्यः। तत्र तावद् भावना प्रयोधा(ज)नं स्मृत्युपस्थानविपक्षपरिज्ञानं तत्प्रहाणोपायश्च वीर्यारम्भश्च। यदुक्तम्—

परिज्ञाते विपक्षे च [प्रतिपक्षे च] सर्वथा ।

तदपायाय वीर्यं हि चतुर्धा संप्रवर्तते ॥ इति ।

(म० वि० का० ४.२)

१. सत्त्वस्य- ख. ग.

२. कुशलमूलानां- क.

स्वरूपं पुनः। सम्यक् प्रधीयते चित्तमेभिरिति सम्यक्प्रधानानि। तानि चत्वारि, तद्यथा— अनुत्पन्नानामकुशलानां धर्माणामुत्पादाय छन्दं जनयति। व्यायच्छते वीर्य-
मारभते। चित्तं प्रतिगृह्णाति। सम्यक्प्रदधा[ती]ति। एवमनुत्पन्नानां प्रहाणाय, अनु-
त्पन्नानां कुशलानां धर्माणाम् उत्पादाय, उत्पन्नानां कुशलानां धर्माणां वृद्धये
स्थित्यर्थं भूयो भावयति। तत्र छन्दं जनयति। सन्नाहवीर्येण एवमहं कुर्यामिति
व्यायच्छते, प्रयोगवीर्येणारभते, खेदवीर्येण चित्तं परिगृह्णाति, अतृप्तवीर्येण सम्यक्
प्रदधाति, उपायवीर्येण----। अकुशलानामिति। स्वयं साश्रवत्वादकुशलविपाक-
दानाच्च। अनुत्पादायेति। स्वसन्ताने तेषामवकाश(शा)दानात्। उत्पन्नानामिति
स्वसन्तानामवृत्त्यावस्थानात्। अकुशलानामिति। पूर्ववत्प्रहाणमिति। सम्यक्स्मृति-
[समा]गमादिति तेषामुन्मूलनम्। एवमनुत्पन्नानामिति। स्वसन्ताने जन्मालाभात्।
कुशलानामिति। ए[तदनन्तरोक्ता]नां पारमितादिस्वभावानाम्। उत्पादनमिति। स्व-
सन्ताने जन्मलाभः। एवमुत्पन्नानामिति। स्वसन्ताने ए[कव]र्णतया निष्पत्तयः।
संरक्षणमिति स्मृतिसंप्रजन्याभ्यामपरित्यागः। मार्गपुद्गलभेदेन समस्य विभागस्तु
लौकिक एव संभारमार्गे मध्यरूपे व्यावसायिकमार्ग(र्गा)परपर्याये पृथग्जनस्यैव
पुद्गलस्य भवति। श्रावकमार्ग[कारु]ण्येन तद्विशिष्टता पुनश्चिरतरकालं सर्वसत्त्व-
हितहेतोर्वीर्यापरित्यागः ॥ ८ ॥

एते स्मृत्युपस्थान-^१सम्यक्प्रहाण-ऋद्धिपाद-^२पञ्चेन्द्रिय-^३पञ्च-
बल-^४सप्तबोध्यङ्ग-आर्याष्टाङ्गमार्गपर्यन्ताः सप्तत्रिंशद्वोधिपाक्षिका धर्मा
भवन्ति ॥ ९ ॥

^५इति योगिनीसञ्चारे सप्तत्रिंशद्वोधिपाक्षिकधर्मनिर्देशो द्वितीयः ॥ २ ॥

१. 'सम्यक्प्रहाण' नास्ति- क. ख. घ.

२. 'पञ्च' नास्ति- भो०.

३. 'पञ्च' नास्ति- भो०.

४. 'सप्त' नास्ति- भो०.

५. 'इति' नास्ति- भो०.

एत इत्यादिनोपसंहारः ॥ ९ ॥

इति द्वितीयो निर्देशः ॥ २ ॥

एवं सम्यक्प्रहाणां—सप्तत्रिंशद्वोधिपाक्षिकधर्मोपसंहारं वक्तुमाह— एत इति ।
समनन्तराभिहिताः । अन्यत् सुगमम् ॥ ९ ॥

इति श्रीपण्डिताचार्य-अलककलशविरचितायां योगिनीसञ्चारतन्त्रटीकायाम्
उपदेशानुसारण्यभिधानायां द्वितीयपटले विस्तरव्याख्या ॥ २ ॥

*

तृतीयो निर्देशः

तत्र^१—

एतेषां देवतायोगं कथयामि यथासंख्यं समासतः ॥ १ ॥

तत्रैतेषामित्यादि । अमुना सर्वेण स्मृत्युपस्थानादीनां देवतारूपत्वं गम्यम् । तत्सर्वं^२ सुगमम् ॥ १-८ ॥

इति तृतीयो निर्देशः ॥ ३ ॥

एवं द्वितीयनिर्देशेन सप्तत्रिंशद्बोधिपाक्षिकान् धर्मानभिधाय तेषामेव मण्डल-चक्रस्थदेवताभिः सह योजनां वक्तुं तृतीयनिर्देशमाह— तत्रेत्यादि । सप्तत्रिंशत्संख्येषु बोधिपाक्षिकेषु व्याख्यातेषु सत्सु । एतेषामिति समनन्तरोक्तानां बोधिपाक्षिकाणामेव । देवतायोगमिति । सप्तत्रिंशद्भिर्मण्डलस्थयोगिनीभिः सह योग[ः] सम्बन्धो मीलनात्मकः, तं कथयामीति वक्ष्यामि । यथासंख्यमिति । संख्यामनतिक्रम्य न पुनर्यथाक्रमम्, सम्यक्प्रहाणानां पर्यन्ते विधानात् । कथमित्याह— समासत इति । बोधिपाक्षिकदेवतासंग्रहं ताभिर्वा तेषां संग्रहादर्थैक्यमुत्पादायेत्यर्थः ॥ १ ॥

काया^३नुस्मृत्युपस्थानं डाकिनी । वेदना^४नुस्मृत्युपस्थानं लामा । धर्मा^५नुस्मृत्युपस्थानं खण्डरोहा । चित्ता^६नुस्मृत्युपस्थानं रूपिणी ॥ २ ॥

एवं व्याख्यानप्रतिज्ञामुक्त्वा साक्षान्मण्डलचक्रस्थदेवताभिः सह तेषां नियोजनमाह— कायानुस्मृत्युपस्थानमिति । भूतभौतिकरूपे काये अनुपलम्भरूपत्वेन स्मृति-

१. ततः- क.

२. 'गम्यं तत्सर्वं' नास्ति- क.; गृहीतस्तु भोटानुसारी ।

३. 'अनु' नास्ति- भो०.

४. 'अनु' नास्ति- भो०.

५. 'अनु' नास्ति- भो०.

६. 'अनु' नास्ति- भो०.

मुपस्थाप्य कायाकाशे शून्यतालक्षणे अकनाद् गमनाद् डाकिनी। ज्ञानचक्रं कोक-
नदम्। पूर्वपत्रे एकवक्त्रा द्विभुजरूपत्वेन काद्यखट्वाङ्गकर्तिकाधारिणी कृष्णवर्णा
ज्ञातव्या। 'डै विहायसि गमने'। 'अक अग कुटिलायां गतौ'। डानम्, डे अकनाद्
डाकिनीति कृत्वा। वेदनानुस्मृत्युपस्थानं लामेति। त्रिप्रकारायां वेदनायां पूर्ववत्
स्मृतिमुपस्थाप्य तच्छून्यतायां लसनाच्छेषा(षणात्) क्रीडनाच्च लामा। पीता पूर्व-
वत्। 'लस शेषनक्रीडनयोः' इति व्युत्पत्त्या। धर्मानुस्मृत्युपस्थानं खण्डरोहेति।
धर्माणां कुशलाकुशलादिरूपाणामुपरि पूर्ववदेव स्मृतिमुपस्थाप्य खण्डे पञ्चस्कन्धैक-
देशरूपे संज्ञासंस्काररूपे शून्यतामेवामुखीकृत्यैकफलात् खण्डरोहा। रक्ता पूर्ववदेव।
'रुह बीजजन्मनि' इति व्युत्पत्त्या। चित्तानुस्मृत्युपस्थानं रूपिणीति। चित्तस्य तथैव
स्मृत्यु[तिमु]पस्थाप्य तच्छून्यताया रूपणान्निरूपणात् रूपिणी श्यामवर्णा पूर्ववदेव
ज्ञानचक्रोत्तरदिग्व्यवस्थिता ॥ २ ॥

**छन्दऋद्धि^१पादः प्रचण्डा। वीर्यऋद्धि^२पादश्चण्डाक्षी। मीमांसा-
ऋद्धि^३पादः प्रभावती। चित्तऋद्धि^४पादो महानासा ॥ ३ ॥**

एवं स्मृत्युपस्थानैः सह ज्ञानचक्रस्थदेवतानियोजनं प्रतिपाद्य ऋद्धिपादादिभिः
सह चित्तचक्रस्थदेवतानियोजनं वक्तुमाह— **छन्दऋद्धिपादः प्रचण्डेति।** कौशीद्य-
लक्षणसमाधिदोषस्य चतुर्भिश्छन्दव्यायामश्रद्धाप्रश्रब्धिलक्षणैः प्राणसंस्कारैरुन्मूलन-
वज्ज्ञानाग्निविपक्षाभिभवनं कृत्वा प्रकृष्टचण्डत्वमस्या विद्यते इति कृत्वा प्रचण्डा
चित्तचक्रपूर्वारे व्यवस्थिता कृष्णवर्णा। **वीर्यऋद्धिपादश्चण्डाक्षीति।** आलम्बन-
संप्रमोषस्मृत्या प्रहाणवत् तन्त्रौलिकाले चण्डे विकाशितैककररूपे अक्षिणी विद्येते
यस्याः सा तथा, चित्तचक्रस्योत्तरदिग्व्यवस्थिता। **मीमांसाऋद्धिपादः प्रभावतीति।**
लयौद्धत्यस्य संप्रजन्येन प्रहाणवज्ज्ञानाग्निप्रभावाया विद्यमानत्वाच्चित्तचक्रा[रे]
पश्चिमदिक्स्था। **चित्तऋद्धिपादो महानासेति।** अयत्नयत्नयोश्चेतनोपेक्षाभ्यां प्रहाणव-

१. 'ऋद्धियुत्पादः'— क. ख.

२. 'ऋद्धियुत्पादः'— क. ख.

३. 'ऋद्धियुत्पादः'— क. ख.

४. 'ऋद्धियुत्पादः'— क. ख.

चित्तस्त्यैव समाधिं निष्पादयितुं महत्यस्तिस्रो नासा विद्यन्तेऽस्या इति कृत्वा, चित्त-
चक्रदक्षिणदिक्स्थिता ॥ ३ ॥

**श्रद्धेन्द्रियं वीरमती । वीर्येन्द्रियं ^१खर्वरी । स्मृतीन्द्रियं लङ्केश्वरी ।
समाधीन्द्रियं द्रुमच्छाया । प्रज्ञेन्द्रियम् ऐरावती ॥ ४ ॥**

श्रद्धेन्द्रियं वीरमतीति । मोक्षो(क्ष) भागीयकुशलमूलश्छन्दाधिपत्यवदूष्मणि
अकाराकारै(रे) वीरे गुह्यविकल्पविनिवारणार्थं मतिर्विद्यतेऽस्या इति कृत्वा चित्त-
चक्राग्नेयकोणे स्थिता । वीर्येन्द्रियं खर्वरीति । तत्रैव प्रयोगाधिपत्यवत् खरा चाऽसौ
तन्त्रौलिकाले दृढत्वाद् वरा चपला दाने सामर्थ्यात् खर्वरी चित्तचक्रे नैऋतकोण-
स्था । स्मृतीन्द्रियं लङ्केश्वरीति । आलम्बनसम्प्रमोषाधिपत्यवल्लङ्कायां देहचित्ताकारा-
यामीश्वरी स्वामिनीति सदैव चेतोधारणाच्चित्तचक्रे वायव्यकोणे व्यवस्थिता । समा-
धीन्द्रियं द्रुमच्छायेति । अविप्रतिसाराधिपत्यवत् समाधिबलेन क्लेशपरिदाहाविनि-
वृत्त्या ज्ञानौलिकाले वृक्षच्छायावच्छीतलत्वाद् द्रुमच्छाया चित्तचक्र ईशानकोणे
व्यवस्थिता ।

एवं चित्तचक्रदेवताविनियोजनमाख्याय वाक्चक्रदेवताविनियोजनार्थमाह—
प्रज्ञेन्द्रियमैरावतीति । प्रविचयाधिपत्यवत् सर्वधर्मविचारं कृत्वा ऐरावतीनदीवद् ज्ञानौ-
लिकाले वेगवहनादैरावती वाक्चक्रपूर्वदिग्व्यवस्थिता रक्ता ॥ ४ ॥

**श्रद्धाबलं महाभैरवा । वीर्यबलं वायुवेगा । स्मृतिबलं सुराभक्षी ।
समाधिबलं श्यामा^२ । प्रज्ञाबलं सुभद्रा ॥ ५ ॥**

श्रद्धाबलं महाभैरवेति । अश्रद्धालक्षणविपक्षविनिवृत्तिवत् तन्त्रौलिकाले
विकल्पवातनिराभाषी(सी)करणेन महद्भैरवं[रूपं] यस्याः सा महाभैरवा वाक्-
चक्रोत्तरदिग्व्यवस्थिता । वीर्यबलं वायुवेगेति । कौशीद्यलक्षणविपक्षविनिवृत्तिवद्दि-

१. खेचरी- क.

२. श्यामादेवी- भो० (फु०, दे०), टी० ।

कल्पप्रहाणे वायुवद् वेगो बलं विद्यते यस्यां सा वायुवेगा वाक्चक्रे पश्चिमदिग्व्य-
वस्थिता। **स्मृतिबलं सुराभक्षीति**। विपक्षभूतविस्मृतिविनिवारणवद्विकल्पानभिभूय
बोधिचित्तधातुरूपसुराभक्षणात् सुराभक्षी वाक्चक्रे दक्षिणदिग्व्यवस्थिता। **समाधि-
बलं श्यामादेवीति**। विपक्षभूतविक्षेपविनिवारणवत् तन्त्रौलिकाले विकल्पप्रहाणे
बललाभात् श्यामा चासौ देवी च चित्तधातुश्रवात् श्यामादेवी वाक्चक्राग्नेयकोणे
स्थिता। **प्रज्ञाबलं सुभद्रेति**। विपक्षभूतदौष्प्रज्ञविनिवारणवच्छोभनं तुर्यकं भद्रं यस्याः
सा सुभद्रा वाक्चक्रे नैऋति(त्य)कोणे स्थिता ॥ ५ ॥

**समाधिसंबोध्यङ्गं हयकर्णा। वीर्यसंबोध्यङ्गं खगानना। प्रीति-
संबोध्यङ्गं चक्रवेगा। प्रश्रब्धिसंबोध्यङ्गं खण्डरोहा। धर्मप्रविचयसं-
बोध्यङ्गं शौण्डिनी। स्मृतिसंबोध्यङ्गं चक्रवर्मिणी। उपेक्षासंबोध्यङ्गं
सुवीरा ॥ ६ ॥**

समाधिसंबोध्यङ्गं हयकर्णेति। गगनगङ्गादिसमाध्याश्रयवत्स्वपरसन्तानेषु
समाधेरुत्पादनार्थं हयवदश्ववदक्षिणकर्णेन निर्गमनाद् हयकर्णा वाक्चक्रे वायव्य-
कोणे व्यवस्थिता। **वीर्यसंबोध्यङ्गं खगाननेति**। दर्शद्वयक्लेशनिर्याणवत् क्लेशप्रहा-
णोपायभूतखगमुखाकारनाडीयोगात् खगानना वाक्चक्रे ईशानकोणे व्यवस्थिता।

एवं बोधिपाक्षिकैर्वाक्चक्रवीरिणीनियोजनामभिधाय तैरेव सह कायचक्र-
वीरिणीयोजनार्थमाह— **प्रीतिसंबोध्यङ्गं चक्रवेगेति**। धर्मधातुप्रतिवेधितचित्तसौमन-
स्यानुभवनवदौलिद्वयकाले गमनागमनविषये वेगो विद्यते यस्याः सा चक्रवेगा काय-
चक्रे पूर्वदिग्व्यवस्थिता श्वेता। **प्रश्रब्धिसंबोध्यङ्गं खण्डरोहेति**। धर्मधातुप्रतिवेधेन
कायसौमनस्यानुभवनवत् खण्डौ(ण्डः) शिरः, खण्डे आप्यायनार्थं रुहतीति खण्ड-
रोहा कायचक्रोत्तरदिग्व्यवस्थिता। **धर्मप्रविचयसंबोध्यङ्गं शौण्डिनीति**। धर्मधात्व-
भेदेन सर्वधर्माणां विवेककरणवत्तेनैव रसेन क्षीबत्वात् शौण्डिनी कायचक्रपश्चिम-
दिग्व्यवस्थिता। **स्मृतिसंबोध्यङ्गं चक्रवर्मिणीति**। स्मृत्या धर्मधातुविषयेऽविक्षेपरूपं
कवचमास्थाय तद्वच्चक्राण्येव धर्मकवचं यस्याः सा चक्रवर्मिणी। [कायचक्र]—

दक्षिणदिगवस्थिता । उपेक्षासंबोध्यङ्गं सुवीरेति । निर्विकल्पकं ज्ञानमाश्रित्य गुण-
दोषाणामुपनयापनयाभावावस्थानवच्छोभनं वीरमाद्यनुत्पन्नधर्मतासु च म(सूचकम)-
कारं विद्यते यस्याः सा सुवीरा कायचक्राग्नेयकोणे स्थिता ॥ ६ ॥

सम्यक्दृष्टिर्महाबला । सम्यक्संकल्पश्चक्रवर्तिनी । सम्यग्वाग्
महावीर्या^१ । सम्यक्^२कर्मान्तः काकास्या । सम्यगाजीव उलूकास्या ।
सम्यग्व्यायामः श्वानास्या । सम्यक्स्मृतिः शूकरास्या । सम्यक् समाधिः
भगवान् श्रीहेरुकः ॥ ७ ॥

सम्यग्दृष्टिर्महाबलेति । दर्शनमार्गाधिगमपरिच्छेदान्निराभासीकरणतत्त्वानु-
भावनाय गमनागमनव्यापारविषये महद्वलं विद्यते यस्याः सा महाबला कायचक्रे
नैर्ऋत्यकोणे स्थिता । सम्यक्संकल्पः चक्रवर्तिनीति । तस्यैव बोधस्य व्यवस्थानवत्
तन्त्रौल्यवसरे चक्रेषु वर्तितुं शीलमस्याः सा चक्रवर्तिनी कायचक्रवायव्यकोणे
व्यवस्थिता । सम्यग्वाग् महावीर्येति । कथसांकथ्यकरणेन परस्य दृष्टिसम्पन्नतया
सम्भावनोत्पत्तिवत् पराभिभवे स्वे [पर]त्र च विकल्पप्रहाणे महद्वीर्यं यस्याः सा
महावीर्या कायचक्रैशानकोणे व्यवस्थिता ।

एवं बोधिपाक्षिके कायचक्रदेवताविनियोजना[म]भिधाय तैरेव समयचक्र-
देवताभिनियोजनार्थमाह— सम्यक्कर्मान्तः काकास्येति । समस्ताकृत्यविनिवारण-
वत् पञ्चाकाराभिसंबोधिकारणकाकारजातिविशोधनेन कायिकाकृत्यविनिवारण-
रूपत्वात् काकास्या समयचक्रपूर्वद्वारे व्यवस्थिता । सम्यगाजीव उलूकास्येति ।
३कुहनलपनपरिहाणवद् मिथ्याजीवविनिवृत्त्या पूर्ववदेव तथाविधजातिविशोधनेन
उलूकास्या समयचक्रोत्तरद्वारे व्यवस्थिता । सम्यग्व्यायामः श्वानास्येति । सम्यग्-
व्यायामेन भावनाहेयक्लेशविनिवारणवत् स्वचक्रमधिमुच्य रागाद्युपद्रवविनिवारणात्
श्वानास्या समयचक्रपश्चिमद्वारे व्यवस्थिता । सम्यक्स्मृतिः शूकरास्येति । सम्यक्-

१. वीरा- क. ख.

२. कर्म- क. ख.

३. कुहल- क.

स्मृत्योपक्लेशस्य लयौद्धत्यस्य विनिवारणात् शूकरवद् देवता ईर्याप्रवाभ्यो(त्या) क्लेशविनिवारणात् शूकरास्या समयचक्रे दक्षिणद्वारावस्थिता। सम्यक् समाधौ भगवान् स्वयं व्यवस्थित इति। सम्यक्समाधिना विभुत्वविपक्षवैशेषिकगुणाभि-
निर्हारप्रतिपक्षवत् समस्तलोकोत्तरसमाधानरूपत्वाद् भगवान् स्थितो वज्रवाराही-
समापत्त्या ॥ ७ ॥

अनुत्पन्नानां कुशलानां धर्माणामुत्पादनं यमदाढी। उत्पन्नानां कुशलानां धर्माणां संरक्षणं यमदूती। उत्पन्नानामकुशलानां धर्माणां प्रहाणं यमदंष्ट्री^१। अनुत्पन्नानामकुशलानां धर्माणामनुत्पादनम् यम-
मथनी चेति ॥ ८ ॥

^२इति योगिनीसञ्चारे सप्तत्रिंशद्वोधिपाक्षिकधर्म-
^३देवताविशुद्धिनिर्देशस्तृतीयः ॥ ३ ॥

एवमार्याष्टाङ्गानां देवताभिः सह योजनामभिधाय सम्यक्प्रहाणैः सह नियोजनां वक्तुमाह— अनुत्पन्नानां कुशलानामिति। उत्पादनं यमदाढ्ये(ढी)ति। पञ्चविधं वीर्यमवलम्ब्य तस्मादविनिवृत्य यमवदाढत्वात्। उत्पन्नानां कुशलानां धर्माणां संरक्षणं यमदूतीति। पूर्ववद् दृढत्वेन संरक्षणानिवृत्तेः। उत्पन्नानामकुशलानां धर्माणां प्रहाणं यमदंष्ट्रीति। यमदंष्ट्रावत् तीक्ष्णत्वेन पारमिताविपक्षाणां प्रहाणाभियोगात्। अनुत्पन्नानामकुशलानां धर्माणामनुत्पादनं यममथनीति। पूर्ववदेवाकुशलधर्मानुत्पा-
दनार्थं यमवत् तेषां मथनात्। एताश्चतस्रः समयचक्रद्वारकोणचतुष्टयेऽवस्थिताः ॥ ८ ॥

इति श्रीपण्डिताचार्य-अलककलशविरचितायां योगिनीसञ्चारतन्त्रटीकायाम्
उपदेशानुसारिण्यभिधानायां तृतीयपटले विस्तरव्याख्या ॥ ३ ॥

*

१. नास्ति- क. ख., गृहीतपाठस्तु भो०, टी० ।
२. 'इति' नास्ति- भो०.
३. 'धर्म' नास्ति- क. ख.

चतुर्थो निर्देशः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वीराद्वयमुत्तमम् ।

श्रीहेरुकस्य अङ्गाङ्गः^१ सर्वाङ्गावयवस्थितम् ॥ १ ॥

अथात इत्यादि । वीराद्वयमिति । श्रीसंवरात्मकस्य योगिनो वीरैः
खण्डकपालप्रभृतिभिः सहाद्वयमैक्यम् । कथमद्वयमित्याह— श्रीहेरुके-
त्यादि । अङ्गाङ्गेत्युद्देशः । सर्वाङ्गावयवेति निर्देशः ॥ १ ॥

एवं तृतीयपटलेन बोधिपाक्षिकधर्माणां देवताभिः सह नियोजनमभिधाय
त्रिचक्रव्यवस्थितानां वीरिणीनामुपायस्वभावा[न्] वीरान् वक्तुं चतुर्थनिर्देशमुद्दिशन्
व्याख्यानप्रतिज्ञामाह— अथात इत्यादि । तृतीयनिर्देशव्याख्यानन्तरम् । वीराद्वयं
संप्रवक्ष्यामीति सम्बन्धः । वीरैः खण्डकपालादिभिः सर्वविकल्पो(कल्पैः) तत्त्वेन
शूरत्वात्तैः सह वीरिणीनां त्रिचक्रावस्थितानामद्वयं समाहितप्रतिपत्तिरूपम्, युगनद्ध-
रूपत्वद्योतनात् । कीदृशम् ? उत्तममिति । बहिः समापत्त्यावस्थितत्वेऽपि अम(णु)-
मात्रस्यापि रागविकल्पस्यानो(नौ)त्कृष्टं(त्कट्यात्), पृथग्जनविलक्षणत्वात् । कीदृशं
वीराद्वयमित्याह— श्रीहेरुकस्येति । चतुर्विमोक्षमुखविशुद्ध्याकारस्य मण्डलाधिपतेः ।
अङ्गाङ्गमिति । भगवतो नखदन्तादिषु स्थानेषु तेषामवस्थानात् तद्व्यतिरेकेण भगव-
तोऽनुपपत्तेः । एतदेव विभ(भा)जयन्नाह— सर्वाङ्गावयवस्थितमिति । सर्वेषु भगवतः
सम्बन्धिस्वाङ्गावयवेष्वभेद्यादिनाद्यन्तनखदन्तादिधातूनां बोधिचित्तविकाराणां^२मव-
स्थितेः स्ववस्थितमित्यर्थः ॥ १ ॥

१. कायाङ्ग- भो०

२. विकाराणामवस्थितमि- ख.

नखदन्तयोः खण्डकपाली^१ । केशरोमयोर्महाकङ्कालः^२ । त्वङ्मलयोः^३ कङ्कालः । मांसे विकटदंष्ट्री^४ । नहरुषु सुरावैरी^५ । अस्थिषु अमिताभः । बुक्के^६ वज्रप्रभः । हृदये^७ वज्रदेहः^८ ॥ २ ॥

नखदन्तयोरित्यादि । प्रतिनिर्देशः ॥ २-४ ॥

इति चतुर्थो निर्देशः ॥ ४ ॥

एवं व्याख्यानप्रतिज्ञामभिधाय नखदन्तादिना बोधिचित्तविकाराणां वीरै-
र्विशुद्धिं वक्तुमाह— नखदन्तयोरिति । इयं च भावनाभिसमयप्रक्रियया कर्मराजाग्री-
नाम^१समाधिकाले बलिविधिरुपरि बोद्धव्या । यदुक्तम्— “धातून् विशोध्य वीरैस्तु
पश्चाद् बलिमुदाहरेत्” इति । खण्डकपालीति । खण्डं [कं] शिरःस्थं बोधिचित्तं
नखदन्तरूपत्वेन कालयति प्रेरयतीति कृत्वा तेनैव तत्राधिष्ठानमुचितम् । केशरोम-
योर्महाकङ्काल इति । महाकं शिखार्थं बोधिचित्तं तदेव केशरोमत्वेन कालयति
प्रेरयतीति महाकङ्कालः । पूर्ववत् । त्वङ्मलं कङ्काल इति । तत्र कं दक्षिणकर्णमूलं
प्राप्य तदेव बोधिचित्तं त्वक्(ङ्)मलरूपत्वेन कालयतीति कृत्वा कङ्कालः । मांसे
विकटदंष्ट्रीति । पृष्ठेऽर्बुदोपर्य[व]स्थित्या तदेव बोधिचित्तं विकटमांसमयदंष्ट्रारूपत्वेन
प्रवर्तयतीति विकटदंष्ट्री । नहरुषु सुरावैरीति । गोदावरीसंज्ञके वामकर्णे स्थित्वा
सुराणां स्नायूनां वैरी वामकर्णात् प्रवर्तकः । अस्थिष्वमिताभ इति । रामेश्वरे भ्रूमध्ये

-
१. कपालिनः- भो०, क. ख.
 २. महाकङ्कालं- क.
 ३. कंकारः- क. ख.
 ४. दंष्ट्रिणः- क. ख.
 ५. सुरवैरिणः- क.ख.भो० (दे०, ल्हा०, नर०) ।
 ६. वृक्के- भो०, बुक्कं- टी०
 ७. हृदयं- क.टी०
 ८. वज्रहेरुकः- ख.
 ९. 'नाम' नास्ति- क.

स्थित्वा तस्यैव बोधिचित्तस्यापरिमितास्थिमालारूपतया प्रवर्तकत्वाद् अमिताभः।
बुक्कं वज्रप्रभ इति। देविकोट्टे चक्षुर्द्वये स्थित्वा तस्यैव बोधिचित्तस्य बुक्करूपत्वेन
प्रवर्तकत्वाद् वज्रप्रभः। हृदयं वज्रदेह इति। मालवे बाहुमूलद्वये स्थित्वा वज्रवद्
दृढस्य हृदयस्य प्रवर्तकत्वाद् वज्रदेहः ॥ २ ॥

^१कक्षयोरङ्कुरिकः। पित्ते वज्रजटिलः। फुप्फुसे^२ महावीरः।
^३अन्त्रे वज्रहूँकारः। ^४गुणवर्तौ सुभद्रः। उदरे वज्रभद्रः^५। पुरीषे^६ महा-
भैरवः। सीमन्ते^७ विरूपाक्षः ॥ ३ ॥

एवं चित्तचक्रवीरानभिधाय वाक्चक्रवीरानभिधातुमाह— कक्षयोरङ्कुरिक
इति। कामरूपे कक्षद्वये स्थित्वा अक्षयङ्कुरजननादङ्कुरिकः। पित्तं वज्रजटिल
इति। ओट्टे स्तनयुगले स्थित्वा वज्रजटारूपस्य पित्तधातोः प्रवर्तनाद् वज्रजटिलः।
फुप्फुसं महावीर इति। त्रिशकुनौ नाभिस्थाने स्थित्वा महतामपि भयङ्करस्य
फुप्फुसधातोः प्रवर्तनान्महावीरः। अन्त्रं वज्रहूँकार इति। कोशले नासिकाग्रे स्थित्वा
अन्त्रागारप्रवर्तकस्य हूँकारस्य प्रवर्तनाद् वज्रहूँकारः। गुणवर्तौ सुभद्र इति। कलिङ्ग-
मुखे स्थित्वा आप्यायिकागुणवर्तिप्रवर्तकत्वात् सुभद्रः, [सु]शोभनं प्रत्येकं भद्रम-
स्मादिति कृत्वा। उदरे वज्रभद्र इति। लम्पाके कण्ठे स्थित्वा तत उदरप्रवर्तकत्वाद्
वज्रभद्रः। पुरीषं महाभैरव इति। काञ्चि(ज्व्यां) हृदये स्थित्वा महतामपि भयङ्करस्य
कातरजनत्रासकस्य पुरीषस्य प्रवर्तनाद् महाभैरवः। सीमन्तं विरूपाक्ष इति।
हिमालये मेढ्रे स्थित्वा त्रिणेत्राकारस्य सीमन्तधातोः प्रवर्तनाद् विरूपाक्षः ॥ ३ ॥

-
१. अक्षयो- भो०
 २. फुप्फुसं- क. टी०
 ३. अन्त्रं- क. टी०
 ४. गुणवर्तौ- भो०
 ५. वज्रप्रभः- क.
 ६. पुरीषं- क. टी०
 ७. सीमान्ते क., सीमन्तं-टी०

१श्लेष्मा[णि] महाबलः। २पूये रत्नवज्रः। ३लोहिते हयग्रीवः।
 ४प्रस्वेदे आकाशगर्भः। ५मेद[सि] श्रीहेरुकः। ६अश्रुषु पद्मनर्तेश्वरः।
 ७खेटे वैरोचनः। ८सिंघाणके वज्रसत्त्वः ॥ ४ ॥

१इति योगिनीसञ्चारे वीराङ्गविशुद्धिनिर्देशश्चतुर्थः ॥ ४ ॥

एवं वाक्चक्रवीराण्य(न)भिधाय कायचक्रवीरानभिधातुमाह— श्लेष्मणि
 महाबल इति। प्रेतपुर्यां लिङ्गे स्थित्वा शरीरधारणासमर्थस्य श्लेष्मधातोः प्रवर्तनाद्
 महाबलः। पूयं रत्नवज्र इति। गृहदेवतायां गुदे स्थित्वा रत्नवत् पीतवर्णस्य पूयधातोः
 प्रवर्तनाद् रत्नवज्रः। लोहितं हयग्रीव इति। सौराष्ट्रे ऊरुयुगले स्थित्वा हयवद्
 बलवतो रक्तधातोः प्रवर्तनाद् हयग्रीवः। प्रस्वेद आकाशगर्भ इति। सुवर्णद्वीपे
 जङ्घायुगले स्थित्वा समस्तरोमकूपव्यापकप्रस्वेदधातुवहनाद् आकाशगर्भः। मेदं
 श्रीहेरुक इति। नगरे पादाङ्गुल्यष्टके स्थित्वा अभेद्यस्य मेदस्य प्रवर्तकत्वात्
 श्रीहेरुकः। अश्रु पद्मनर्तेश्वर इति। सिन्धौ पादपृष्ठे स्थित्वा पद्मनर्तेश्वरस्य
 बोधिचित्तस्याश्रुरूपेण प्रवर्तनात् पद्मनर्तेश्वरः। खेटं वैरोचन इति। मरौ पादाङ्गुष्ठद्वये
 स्थित्वा श्वेतवर्णस्य खेटस्य प्रवर्तनाद् वैरोचनः। सिंघाणकं वज्रसत्त्व इति।
 कुलूतायां जानुद्वये स्थित्वा वज्रसत्त्ववच्चन्द्रगौरस्य सिङ्घाणधातोः प्रवर्तनाद् वज्रसत्त्व
 इत्यस्मद्गुरुपादाः।

अनु चायं भावनाक्रमः— चतुर्विंशतिसंख्याकेषु स्थानेषु स्वधर्माक्षरनिष्पन्नान्
 यथाक्रमं कृष्णरक्तश्वेतवर्णा[न्] द्विभुजान् वज्रवज्रघण्टा-पद्मपद्मघण्टा-चक्रचक्र-

१. श्लेष्मा- क. ख.
२. पूयं- क. ख. टी०
३. लोहितं- क. टी०
४. प्रस्वेदं- क.
५. मेदं- क. टी०
६. अश्रु- क. टी०
७. खेटं- क. टी०
८. सिंघाणकं- टी०
९. 'इति' नास्ति- भो०

घण्टाधरान् स्ववीरिणीसमापन्नानङ्गुष्ठप्रमाणान् वीरान् सूर्यमण्डलोपरि भावयित्वा धातूनां विशुद्धिः कर्तव्या, कृत्वा च पश्चात् त्रिविधं बलिमुदाहरेदिति कृष्णपाद-
रत्नवज्रयोर्मतमेकमेव । अन्ये तु राजाग्रीसमाधिकाले त्रिचक्रवीरिणीनां बहिर्भावना-
काले त्र्यक्षरेण निष्पत्तिं विधाय तदालिङ्गितान् कृत्वा पश्चात् त्रैधातुकविशुद्धिं कृत्वा बलिदानादिकं कर्तव्यमिति ।

इति श्रीपण्डिताचार्य-अलककलशविरचितायां योगिनीसञ्चारतन्त्रटीकायाम्
आगमा(उपदेशा)नुसारिण्यभिधानायां चतुर्थपटले विस्तरव्याख्या ॥ ४ ॥

*

पञ्चमो निर्देशः

१अथान्यदपि संवक्ष्ये सर्वसिद्धिप्रसाधकम् ।

येन विज्ञातमात्रेण साधकः सिद्धिमाप्नुयात् ॥ १ ॥

अथान्यतममित्यादि । सुबोधम् ॥ १ ॥

एवं चतुर्थनिर्देशेनोपायरूपानुपायानभिधाय प्रज्ञोपायरूपस्य मण्डलचक्रस्य भावनास्थानं वक्तुमादौ तद्व्याख्यानप्रतिज्ञामाह— अथेत्यादि । चतुर्थपटलव्याख्या-
नन्तरम् अन्यत् संप्रवक्ष्ये इति योगः, पूर्वव्याख्यातवस्तुविलक्षणत्वादन्यतमकूटागार-
व्याख्यानात् । कीदृशम् ? सर्वसिद्धिप्रसाधकमिति । कूटागारसंभूतरश्मिभिरनाभोगतः
पौष्टिकाभिचारु (२) कवश्यशान्तिकसर्वकर्मप्रसरनिष्पत्तेर्बोधिपाक्षिकधर्मविशुद्धिबलेन
च परेषामपि तत्समुचितधर्मनिष्पत्तेश्च सर्वासां लौकिकलोकोत्तरस्वभावानां सिद्धीनां
प्रकर्षेण साधनात्तत्साधकम् । किं तेनेति चेदाह— येनेति । कूटागारभावनारूपेणान्य-
तमव्याख्यानेन । विज्ञातमात्रेणेति श्रुतादिक्रमेणाभ्यस्तमात्रेण । साधक इति श्रीहेरुक-
पदसाधनाद् योगी । सिद्धिमिति कायविवेकलक्षणाम् । आप्नुयात् प्राप्नुयात् ॥ १ ॥

आध्यात्मिकं यथा ज्ञेयं बाह्य^२मण्डलमुत्तमम् ।

३न्यासं यथा प्रयोक्तव्यं सर्वसारसमुच्चयम् ॥ २ ॥

आध्यात्मिकं यथेत्यादि । यथाऽऽध्यात्मिकं तथा बाह्यं मण्डलं
ज्ञेयमिति सम्बन्धः । न्यासं यथा प्रयोक्तव्यमिति । यथानन्तरमेव देवतानां^४
न्यासो वक्तव्यः, तथा ५सोऽपि ज्ञेय इत्यर्थः ॥ २ ॥

१. अथान्यत् संप्र- क. ख. टी०; अथान्यतमम्- नि०, गृहीतपाठस्तु भोटानुसारी ।

२. बाह्यानां- क. टी०

३. विन्यासं- क. ख. भो० टी०

४. देवीनां- भो०

५. अन्योऽपि- भो०

कथं वक्ष्य इत्याह— आध्यात्मिकमिति । यथा कायमण्डलप्रस्तावे मण्डल-
माण्डलेयानां भावनं योगियोगिनीज्ञातम्, तथैव बाह्यानामिति मुखभुजवर्णसंस्थाना-
त्मनां सप्तत्रिंशत्संख्यानां बहिरेव कूटागारे मण्डलं ज्ञेयमित्यर्थः । तत्र मण्डं सारं तस्य
लानादादानान्मण्डलं पञ्चचक्राकारं ज्ञातव्यम् । कीदृशं मण्डलम्? उत्तममिति ।
लोकोत्तरत्वात्, प्राकृताहङ्कारप्रतिपक्षत्वात्, मानादिक्लेशानां प्रहाणहेतुत्वाच्च ।
विन्यासमिति । बहिरेव मण्डलदेवतानां पुल्लिरमलयादिषु न्यासविधानम् । यथेति येन
क्रमेण । प्रयोक्तव्यमिति पूर्वोत्तरादितत्तद्भिन्नेन योजनीयम् । तथा वक्ष्य इति पूर्वेण
सम्बन्धः । कीदृशमित्याह— सर्वसारेति । सर्वेषां साराणां प्रज्ञोपायात्मनां १ समुच्चयं
संग्रहरूपमित्यर्थः ॥ २ ॥

आधाराधेयरूप^२स्य ^३वैरम्भादीति संस्थितम् ।

ज्ञात्वा ^४यस्तु ^५विधिर्होष^६ गुरुपर्वयथाक्रमम् ॥ ३ ॥

इदानीं देवतान्यासमवतारयितुमाह— आधारेत्यादि । आधाराधेय-
रूपि यच्चक्रं तत् यङ्कारादिपरिणतवायुमण्डलाद्युपरि गतं चिन्तयेदिति-
भावः । ज्ञात्वेत्यादि । एतन्मण्डलचतुष्टयं विभाव्यम् । यस्तु विधिं हीति ।
योऽन्यो विधिः । एष गुरुपर्वयथाक्रममिति । स एष गुरूपदिष्टो यथाक्रमं
विभावयितव्य इति शेषः ॥ ३ ॥

एवं व्याख्यानप्रतिज्ञामभिधायाधारमण्डलभावनामाह— आधारेत्यादि ।
अत्रायमुपदेशेत्यादिमण्डलनिर्देशानुसारेण ब्रह्मविहारादिभावनापूर्वकं स्कन्धधात्वा-
यतनविशुद्धिं कृत्वा तदनुस्ता(ष्ठा)नवत् ब्रह्मविहारादिचतुर्विधपूजाशून्यतालक्षण-
मङ्गलचतुष्टयं भावयित्वा आधारमण्डलं भावनीयम् । अस्य च भावनायामयं क्रमः—

१. त्मकं- ख.
२. रूपि- नि०
३. वैरम्भा- सर्वत्र
४. यस्य- टी०
५. विधिं- नि०
६. येषां- क. ख.
७. धेयविधि- भो०

आदौ शून्यतां भावयित्वा तां च १मण्डले दृढं कृत्वा शून्यतामध्याज्जलाद्बुद्धदवद्रक्त-
वर्णहूँकाराकारं योगिनीचित्तं विभाव्य तत्परिणतं रक्तवज्रं भावयित्वा तेनैवाधिष्ठितं
ततो रश्मिस्फरणेन महावज्रधरकुलमाकृष्य तत्र च प्रवेश्य सर्वपरिणामेन भगवन्तं
महावज्रधरं श्वेतं द्विभुजं वज्रवज्रघण्टाधरं तद्धर्मधर्मिण्या वज्रधात्वेश्वर्या समन्वितं
विभाव्य प्रज्ञोपायसमापत्त्या त्रिवलीयत्रिकोणे धर्मोदयामुद्राकारं भवाग्रव्यापकं
भावयेत् ।

तदनु तदन्तर्विश्ववज्रपद्मोपरि यंकारादिचतुष्टयेन स्वस्वचिह्नान्^२ विभाव्य
यंकारादिभिरधिष्ठितान् कृत्वा ततो रश्मिस्फरणेनामोघसिद्धयमिताभाक्षोभ्यरत्नसम्भव-
रूपांस्तथागतानाकृष्य बीजान्तःप्रवेश्य सर्वपरिणामेन बुद्धचतुष्टयं सदेवीकं निष्पाद्य तं
च महासुखवशेन विलीय तत्परिणामेन यथाक्रमं वाय्वग्निजलभूमिमण्डलचतुष्टयं
ध्वजपटाग्निज्वालाघटद्वयत्रिशूकवज्राङ्कितं विभाव्य तदुपरि ओंकाराक्षरपरिणतं
वैरोचनं सदेवीकं महासुखवशेन विलीय चैभ्य ओंकारं विभाव्य तदुपरि सूंकार-
परिणतं सुमेरुं चतुरस्रमष्टशृङ्गोपशोभितं भावयेत् । एतदाह— आधार आश्रयभूता
धर्मोदया मुद्रा, तस्मिन्नाधारे आधेयरूपं मण्डलचतुष्टयम् । आधेयस्वरूपमाह—
वैरम्भादीति । वाय्वग्निजलभूमिमण्डलानि । तेषु संस्थितमिति भाविनो मध्यनायकस्य
स्थानं कूटागारव्याख्या[ना]त् कूटागाररूपं सम्यक् स्थितम् । ज्ञात्वेति विज्ञाय । कथं
ज्ञात्वेत्याह— यस्येति । यस्य मण्डलचतुष्टयस्य । विधिरिति उत्पादनविधानम् । गुरु-
पर्वयथाक्रममिति । गुरुपारम्पर्याद्यथाक्रमं क्रमानतिक्रमेण ज्ञातव्यम् । यथाऽस्माभिः
समनन्तरं प्रतिपादितम् ॥ ३ ॥

गिरिमस्तककिञ्जल्के^३ विचित्रदलकोमले ।

तत्र मध्ये स्थितो वीरः सर्वकामार्थसाधकः ॥ ४ ॥

गिरीत्यादि । अनन्तरोक्तवाय्वादिमण्डलचतुष्टयोपरि सूंकारपरिणत-
सुमेरुपृष्ठे पँकारपरिणतविचित्राष्टदलकमलकर्णिकायामित्यर्थः । तत्र मध्ये

१. मन्त्रेण- क.

२. चिह्नं- ख.

३. विचित्राष्टदलकमले- नि०

स्थितो वीर इति । तत्र कर्णिकोपरि आलिकालिपरिणतचन्द्रमण्डलस्था-
दाकाशदेशस्थनादजनित^१हूँकारपरिणतगौरीं तत्पतिं चालीढेनाक्रम्य वीरे-
श्वरः सूर्यमण्डले स्थितवानिति भावः ॥ ४ ॥

गिरिमस्तककिञ्जल्क इति । गिरेः सुमेरुपर्वतस्योपरि । एवमाधारमण्डलभाव-
नामभिधायासनविभागं वक्तुमाह— किञ्जल्क इति । सुमेरुपर्वतमध्ये शृङ्गे पंकार-
परावृत्तिजं विश्वपद्मज्ञानचक्राश्रयभूतं भावयेत् । अत एवाह— विचित्रदलकोमल
इति । विचित्रैः नानावर्णैर्दलैः, कोमल इति मृदुभावनापन्नैः । आसर(न)स्यातिसु-
कुमारत्वात् । अत्रैव किञ्जल्ककर्णिकामध्ये भैरवकालरात्र्योरासनभूतयोर्भगवतः हूँ
आः सोः ह्रीः इति वा बीजम् । दिग्दलेषूपरि चतुर्णां ^२सवासनाबीजानि आप मताः
(?) । एवमासनविभागं प्रतिपाद्याधेयमण्डलभावनां वक्तुं मध्यनायकस्य निष्पत्तिं
वक्तुमाह— तत्र मध्य इति । किञ्जल्ककर्णिकामध्ये । स्थित इति निष्पन्नः । वीर इति
सर्वविकल्पनिर्भयत्वेन शूरत्वाद्भगवान् । तन्निष्पत्तौ चायमभिप्रायः— विश्ववर्ण-
कर्णिकामध्ये आकारादिषोडशस्वर(रान्) द्विगुणीकृत्य एका श्वेतवर्णा पंक्तिर्भाव्या ।
तद्वहिः ककारादिचत्वारिंशदक्षराणि द्विगुणीभूय रक्तवर्णा द्वितीया रेखा भाव्या ।
तन्मध्ये हूँ वँकारद्वयं कृष्णरक्तवर्णम् । ततश्च नानारूपं रश्मिचक्रं संस्कार्य क्रमेण
जगदर्थं कृत्वा सर्वपरिणामेन भगवन्तं महावीरं भावयेत् । तत्र षोडशकलायां(नां)
द्विगुणितानां परिणामेन चन्द्रगण्डलमादर्शज्ञानस्वभावं प्रथमाभिसम्बोधिः । द्विगुणी-
भूतचत्वारिंशद्वयञ्जनोत्पन्नं सूर्यमण्डलं समताज्ञानस्वभावं द्वितीया । बीजद्वयपरिणतं
वज्रकर्तिद्वयं तेनैव लाञ्छितं प्रत्यवेक्षणाज्ञान[स्वभावं तृतीयाभिसम्बोधिः ।] ततः
स्फरणसंहरणक्रमेण जगदर्थं कृत्वा त्रैधातुकं हेरुकीकृत्य चन्द्रसूर्यचिह्नबीजानामेकी-
भावो बिन्दुरूपता कृत्यानुष्ठानज्ञानं चतुर्थाभिसंबोधिः । तत्परिणतहेरुकाकारनिष्पत्ति-
धर्मधातुज्ञानं पञ्चम्यभिसम्बोधिरिति पञ्चाकाराभिसंबोधिः । उक्तं च— “आदर्श-
ज्ञानवांश्चन्द्र” इत्यादि । एतदाह— स्थितो वीर इति । पञ्चाकाराभिसंबोधिक्रमेण
निष्पत्त्या भैरवकालरात्र्योरुपरि भगवत्या सममद्वययोगेन स्थितः । वीर इति । अष्टसु
चण्डोग्रादिषु श्मशानेषु मध्ये निवसन्नपि सर्वभयविनिवृत्तेः शूरः । कीदृशः ? सर्व-

१. हूँकारात्परिणतस्य- क.

२. 'सवा-----मताः' नास्ति- क.

कामार्थसाधक इति । सर्वकामै रूपादिभिर्विषयैरर्थं बुद्धत्वलक्षणं साधयति परेषामिति स तथा । स च चतुर्वक्त्रः कृष्णपीतारुणश्यामरूपाननधारी द्वादशभुजो वक्ष्यमाण-पटलोक्तविधिना द्वादशायुधधरं(रः) ॥ ४ ॥

डाकिनी तु तथा लामा खण्डरोहा तु रूपिणी ।
न्यसेत् पद्म^१ दिशः स्थाने सर्वसिद्धिप्रसाधिका[:] ॥ ५ ॥

डाकिनीत्यादि । अनया गाथया पूर्वादिवक्त्रेषु वामावर्तेन डाकिन्या-दीनां न्यासः कथितः ॥ ५ ॥

एवं मध्यनायकनिष्पत्तिमभिधाय ज्ञानचक्रदेवीनिष्पत्तिमाह— डाकिनीत्यादि । निरुक्तिः पूर्वमभिहिता । एताश्च हृदि पद्मसूर्योपरिस्थितहूँकारात् स्वधर्माक्षरैरेव झटिति निष्पादितव्याः । एता ज्ञानचक्रडाकिन्यश्चतस्रश्चतुरानन्दमय्यः । पद्मदिशः स्थाने न्यसेदिति योगः । ज्ञानपद्मस्य पूर्वादिविधौ कारित्रमाह— सर्वसिद्धिप्रसाधिका इति । समस्तकर्मप्रसरं(र)साधिका इत्यर्थः, मारणपौष्टिकवश्याकर्षणकारित्वात् ॥ ५ ॥

द्विभुजा^२ एकवक्त्रा^३ वा नानारूपविलासिनीः^४ ।
विदिशेन तु चत्वारः पञ्चपूर्णकरोटकाः ॥ ६ ॥

द्विभुजामेकवक्त्रां चेति । सर्वा एता द्विभुजा एकवक्त्राश्चेत्यर्थः । नानारूपविलासिनीमिति । नानारूपिण्यो विलासिन्यश्चेत्यर्थः । विदिशेनेत्यादि सुगमम् ॥ ६ ॥

कीदृश्यः? द्विभुजा इति । सत्यद्वयविशुद्ध्या । एकवक्त्रा इति । सहजोत्पादन-विशुद्ध्या चेति । वी(वे)ति विकल्पे । अभिसमयप्रतिपादितविधिना चतुर्भुजा अपि,

१. पद्म- क. ख.

२. जां- नि०

३. वक्त्रां- नि०

४. नीं- नि०

चतुःसंग्रहविशुद्धि(द्धेः) तथा नानारूपविलासिनी[रि]ति । नानाप्रकारेण यथाक्रमं कृष्णपीतारुणश्यामलक्षणेन रूपेण वर्णसंस्थानात्मना विलासिनीः, क्रीडनशीलाः सत्त्वार्थचर्यायामवस्थितत्वात् । एवं ज्ञानचक्रदिग्न्यासमुक्त्वा विदिग्न्यासमाह— विदि-
शेन त्विति । विदिक्ष्वाग्नेयादिकोणलक्षणेषु । चत्वार इति तत्संख्याः । पञ्चपूर्ण-
करोटका इति । भगवतश्चतुर्वक्त्रस्य मुखपूजार्थं पञ्चामृतपरिपूर्णबोधिचित्तकरोटकाः
कपालानि कलशोपरि अ आ औं अः ह हा हं ह इति चैभिः परिणतानि ॥ ६ ॥

१पुकारादिसमायोज्या देशे देशे व्यवस्थिताः^२ ।

आनीते^३ चक्रगर्भस्थाः^४ पूजयेद्^५ योगवित् सदा ॥ ७ ॥

पुकारादिसमायोज्येति । पुल्लीरमलयादिकं बुद्धावारोप्य । देशे देशे
व्यवस्थिति । तेषु पुल्लीरमलयादिषु व्यवस्थितं प्रचण्डादिसहितं खण्ड-
कपालादिकम् । आनीते इत्यानीय । चक्रगर्भस्थमिति चित्तचक्रादिचक्र-
त्रयमध्यस्थं कृत्वा । पूजयेदिति भावयेत् । सदेति प्रतिसन्ध्यम् ॥ ७ ॥

एवं ज्ञानचक्रभावनां प्रतिपाद्य चित्तचक्रभावनां वक्तुमाह— पुकारादीति ।
पुल्लीरमलयादिभिश्चतुर्विंशतिपीठोपपीठादिबीजैः पू जा ओ अ आदिभिः । समा-
योज्या इति । यथाक्रमं चित्तवाक्कायचक्रेष्वष्टाष्टारसंस्थानेषु सूर्यमण्डलोपरि
प्रचण्डादयः समायोज्या इति न्यसनीयाः, योगिनेत्यर्थः । ताश्च देव्यो देशे देशे इति
बहिः पुल्लीरमलयादिषु विशिष्टेषु पीठेषु । व्यवस्थिता इति । रागजातीयसत्त्वानुग्रहार्थं
योगिनीरूपं समाहरमवलम्ब्येति यावत् । आनीता इति । तेभ्य एव बाह्येभ्यः स्थानेभ्यो
मन्त्रमुद्रादिक्रमेणाकृष्टाः । मन्त्रबलेन प्रचण्डादिरूपेण चोत्पादिताः चक्रगर्भस्थाः
पूजयेदिति सम्बन्धः । चक्रेषु त्रिषु चित्तवाक्कायात्मकेषु, अष्टाष्टारेषु गर्भमध्ये
दिग्विदिग्भेदेन स्थिताः । पूजयेदिति । बाह्याध्यात्मिकगुह्यपूजाभिरर्चयेत् । क इत्याह—

१. पुल्ल्यादि- भो० (दे०), पूकारादि- नि०

२. स्थितम्- नि०

३. आनीता- क. टी०

४. गर्भस्थं- नि०

५. पूजिते- क., पूज्यते- ख.

योगविदिति । तदाकर्षणे तदुत्पादने च कुशलः । सदेति त्रिसन्ध्यं चतुःसन्ध्यं वाऽविच्छेदेन । एतेन त्रिप्रकारा योगिन्यः क्षेत्रजा मन्त्रजा सहजाश्च ख्याता भवन्ति ॥ ७ ॥

१पु इति पुल्लीरमलये खण्ड^२कपालिनं प्रचण्डाम् । जा इति जालन्धरे महाकङ्कालं चण्डाक्षीम् । ओ इति ओड्डियाने कङ्कालं प्रभावतीम् । अ इति अर्बुदे विकटदंष्ट्रिणं महानासाम् ॥ पीठाः ॥ ८ ॥

पु इतीत्यादि । पु इत्युद्देशः । पुल्लीरमलय इति निर्देशः । एवं सर्वत्र^३ । सर्वं सुगमम् ॥ ८-१७ ॥

एवमुद्दिश्य निर्दिशन्नाह— पुल्लीरमलय इति । अथ मन्त्रभावनाक्रमः— भगव(वा)न् स्वहृदयाश्च(च्च)तुर्विंशतिस्थानेभ्यो वा पुकारादिचतुर्विंशत्यक्षराणि बहिः संस्कार्य तत्परिणामेन झटित्येव प्रचण्डाद्या यथाक्रमं कृष्णरक्तसितवर्णा एकवक्त्रा द्विभुजाः स्वस्ववीरसमापन्नास्तासामालिङ्गनं वामभुजे कपालं दक्षिणे कर्तिका । वीराश्च स्वाभावर्णाः कुलत्रयानुसारेण वक्ष्यमाणपटलन्यायेन द्विभुजा वज्रवज्रघण्टाधरा अभिसमयप्रक्रियया चतुर्भुजाः, द्वयोः प्रधानभुजयोः समनन्तरोक्ता(क्त)धरा द्वितीयवामदक्षिणभुजद्वयेन खट्वाङ्गडमरुधराः । देव्यः प्रत्यालीढस्था वीराश्चालीढेन स्वाभाशिलष्टा ललाटे वज्रवज्रमालाचक्रमालापद्ममालाधरास्त्रिसत्त्वात्मकाः पञ्चमुद्राधरा भाव्याः । पुल्लीरमलय इति । बहिःपीठविशेषे मण्डलचक्रस्य चित्तचक्रपूर्वारे । अ[थ] तस्मिन् स्थाने । तत्र पूर्वारेणादिबीजेन तन्नामैतस्मिन्नाधारे योगिनीनां लकारोपलक्षितखगमुखाली, ततो बोधिचित्तग्रहणात् तेन महासुखलयनाद् मलयशिरः । खण्डकपालिप्रचण्डादीनां निरुक्तिश्चतुर्थपटले व्याख्याता । जालन्धर इति । बहिश्चित्तचक्रस्योत्तरदिशि नाडीजालस्य धारणाज्जालन्धरं शिखा । ओड्डियान इति । बहिश्चित्तचक्रस्य पश्चिमदिशि, ओड्ड्या चण्डाली यं राति स्वीकरोतीति कृत्वा ओड्ड्यानं दक्षिणकर्णमुच्यते । अर्बुद इति । बहिस्तस्यैव दक्षिणदिशि, अव्यान् बुध्यत इति कृत्वा

१. नास्ति- टी०

२. कपाली- क. ख.

३. सर्वत्र योज्यम्- भो०

पृष्ठवंशस्तेनाभिधीयते । एते चत्वारः पीठसंज्ञकाः । बाह्ये दर्शनमात्रानुग्राहकत्वादन्तर्बोधिचित्तस्य (तास्य) दत्वाच्च ॥ ८ ॥

गो इति गोदावर्या सुरावैरी^१ वीरमती । रा इति रामेश्वरे अमिताभः खर्वरी । दे इति ^२देवीकोटे वज्रप्रभो लङ्केश्वरी । मा इति मालवे वज्रदेहो द्रुमच्छाया ॥ उपपीठाः ॥ चित्तचक्रस्य ^३खेचर्यः ॥ ९ ॥

गोदावर्यामिति । बहिराग्नेयकोणे चित्तचक्रसम्बन्धिगां भुवं गोस्वभावं निर्माणचक्रं धारयतीति गोधा अवधूती, तया आधूयते आच्छेद्यत इति गोदावरी वामकर्णः । रा इति रामेश्वर इति । रामा च रामा च ते रामे ललनारसना (ने), तयोरीश्वरी स्वामिनी भ्रूमध्ये । देवीकोट इति । चित्तचक्रस्य वायव्यकोणे, अन्तर् देव्याश्चण्डाल्याः कोट इव कोट्ट उन्नतत्वात् चक्षुर्द्वयम् । मालव इति । बहिःश्चित्तचक्रेशानकोणेऽन्तिमानां विकल्पमलानां लवनाद् बाहुमूलद्वयम् । एते चत्वार उपपीठाः पूर्ववदेव । चित्तचक्रस्य खेचर्य इति । कामावचरसत्त्वानुग्रहं कृत्वा चक्रद्वयस्योपरि व्यवस्थितत्वात्, कायस्योपरि भागेऽवस्थानाच्च ॥ ९ ॥

का इति कामरूपे अङ्कुरिक ऐरावती । ^४ओ इति ^५ओङ्गे वज्रजटिलो महाभैरवा (वी) ॥ क्षेत्रे ॥ १० ॥

एवं चित्तचक्रे देवतान्यासमभिधाय वाक्चक्रे तन्यासं वक्तुमाह— कामरूप इति । बहिर्वाक्चक्रस्य पूर्वदिशि, अन्तर् काम्यमभिलषणीयं रूपमस्यास्तीति कृत्वा कक्षद्वये । ओङ्ग इति । वाक्चक्रस्योत्तरदिशि बहिः, अन्तर् ओङ्गा चण्डाली यं राति स्वीकरोतीति कृत्वा स्तनयुगले । एते क्षेत्रे संज्ञकौ (के) । बहिः श्रुतादिक्रमेण सिद्धिकारकत्वात्, अन्तर् क्षेत्रेषु सस्याद्युत्पत्तिवद् न्यसेत्, क्षीरव्याजेन बोधिचित्तप्रसवनात् ॥ १० ॥

१. सुरावैरिण- क. ख. भो०

२. देविकोट- क. ख.

३. खेचरी- क. ख.

४. उ- क.

५. उङ्गे- क.

त्रि इति त्रिशकुनौ महाभैरवो वायुवेगा । को इति कोसले^१ वज्र-
हूँकारः सुराभक्षी ॥ उपक्षेत्रे ॥ ११ ॥

त्रिशकुनाविति । वाक्चक्रस्य पश्चिमदिशि । बहिः, त्रयः शकुनयः खगमुखाकारा ललनारसनावधूतीस्वभावा ग्रन्थिरूपा यस्यां सा त्रिशकुनिर्नाभिरुच्यते, तस्याम् । कोशल इति । वाक्चक्रस्य दक्षिणदिशि बहिः, अन्तस्तु कोशलं सिंघान(ण)धातोः लसनाद्वहनात् कोशलं नासिकाग्रम्, तस्मिन् । एते उपक्षेत्रसंज्ञकौ(के) बहिः पूर्वव-
दन्तस्तु क्षेत्रादिषु सस्याद्युत्पत्तिवद्विन्दुसिंघाणवाहित्वात् ॥ ११ ॥

क इति कलिङ्गे सुभद्रः श्यामादेवी । ल इति लम्पाके वज्रभद्रः
सुभद्रा ॥ छन्दोहौ ॥ १२ ॥

कलिङ्ग इति । बहिर्वाक्चक्रस्याग्नेयकोणे, अन्तस्तु सेवाकाले कं सुखं लिङ्ग-
यति गमयतीति कृत्वा कलिङ्गं मुखमुच्यते । लम्पाक इति । बहिर्वाक्चक्रनैऋत्यकोणे,
अन्तस्तु लम्पिकायोगाल्लम्पाकः कण्ठः, तस्मिन् । एते छन्दोहसंज्ञितौ(ते) । बहिः
संशयापनोदाद् बाह्याध्यात्मिकपदार्थस्पृहाद् विनिवृत्तेः, अत(न्त)श्च मुखदर्शनात्
रसोपभोगाच्च छन्दविनिवृत्तेः ॥ १२ ॥

का इति काञ्च्यां महाभैरवः ^२हयकर्णा । हि इति हिमालये
विरूपाक्षः खगानना ॥ उपच्छन्दोहौ ॥ वाक्चक्रस्य भूचर्यः^३ ॥ १३ ॥

काञ्च्यामिति । वाक्चक्रवायव्यकोणे, अन्तः कं सुखम् अञ्जति गमयतीति
कृत्वा काञ्चि(ञ्ची) हृदयं तस्याम् । हिमालय इति । बहिः वाक्चक्रेशानकोणे,
अन्तश्च हिमवत्तस्य बोधिचित्तधातोरालयः स्थानमिति कृत्वा मेद्रे । एते उपच्छन्दोहौ
उपच्छन्दोहसंज्ञकौ(के) । बहिः पूर्ववत्, अन्तस्त्वर्थावगतो(तौ) भोज्यपाके च छन्द-

१. कोशले- टी०

२. हयकर्णा- क. ख.

३. भूचरी- क. ख.

विनिवृत्तेः। वाक्चक्रस्य भूचर्य इति। बहिश्चातुर्द्वीपकसत्त्वानुग्राहकत्वात्, अन्तश्च कायस्य मध्यभागेऽवस्थानाद् मण्डलानां मध्यावस्थानाच्च ॥ १३ ॥

प्रे इति ^१प्रेतपुर्यां महाबलः चक्रवेगा। गृ इति गृह^२देवतायां रत्न-
वज्रः खण्डरोहा। मेलापकौ ॥ १४ ॥

एवं वाक्चक्रदेवतान्यासमभिधाय कायचक्रे तन्यासं वक्तुमाह— रत्नद्वीप इति। प्रेतपुर्यां रत्नस्य बोधिवित्तरत्नस्यास्पदत्वाद् बहिः कायचक्रस्य पूर्वदिशि, अन्तश्च प्रेतानां नाडीनां पुरीव पुरीति कृत्वा लिङ्गमुच्यते, तस्याम्। गृहदेवताया-
मिति। बहिः कायचक्रस्योत्तरदिशि, अन्तः गृहस्य देवता वृद्धातुः (विद् धातुः), तद्वहनात् गृहदेवता गुदः, तस्मिन्। एते मेलापकसंज्ञकौ(के)। बहिः समयसाधनात्, अन्तश्च विशिष्टकालयोर्मौलनाच्च ॥ १४ ॥

सौ इति सौराष्ट्रे हयग्रीवः शौण्डिनी। सु इति सुवर्णद्वीपे
आकाशगर्भः चक्र^३वर्मिणी। उपमेलापकौ ॥ १५ ॥

सौराष्ट्र इति। बहिः कायचक्रस्य पश्चिमदिशि, अन्तस्तु सौख्यस्य राष्ट्रत्वान-
गा(गर)भूतत्वात् सौराष्ट्रमूरुयुगलम्, तस्मिन्। सुवर्णद्वीप इति। कायचक्रस्य दक्षिण-
दिशि बहिः, अन्तः शोभनवर्णस्य बोधिवित्तधातोर्द्विधागमनात् जङ्घायुगले। एते उप-
मेलापकसंज्ञकौ(के)। बहिः पूर्ववदन्तश्च विशिष्टकाले तन्मीलनादेव ॥ १५ ॥

^४न इति ^५नगरे श्रीहेरुकः सुवीरा। सि इति सिन्धुदेशे पद्म-
^६नर्तेश्वरः महाबला ॥ श्मशानौ ॥ १६ ॥

-
१. रत्नद्वीपे- क. टी०
 २. कोंकणे- क.
 ३. धर्मिणी- क.
 ४. ना- भो० (दे०)
 ५. पाटल्यां- क.
 ६. नृत्येश्वरः- ख.

नगर इति । कायचक्राग्नेयकोणे बहिः, अन्तस्त्वतः परं देहस्यागमनाद् नगरं पादाङ्गुल्यष्टकम्, तस्मिन् । सिन्धुदेश इति । बहिः कायचक्रस्य नैऋतिकोणे, अन्तः सिन्धुवद् बोधिचित्तस्य शीघ्रं वहनात् पादपृष्ठे । एते श्मशानसंज्ञकौ (के) । बाह्ये सिद्धिसाधनस्थानत्वात्, नगरान्त्यत्वाच्च, अन्तस्तु देहान्त्यत्वात् । अतः परं देहस्यानुपलब्धेः श्मशानस्कन्धाद्यनुपलम्भवत् ॥ १६ ॥

म इति मरुदेशे वैरोचनः चक्रवर्तिनी । कु इति ^१कुलूतायां वज्रसत्त्वः महावीर्या । उपश्मशानौ । कायचक्रस्य पाताल^२चारिण्यः ॥ १७ ॥

मरुदेश इति । बहिः कायचक्रवायव्यकोणे, अन्तस्तु महासुखस्य चरणात्मको मरुः पादाङ्गुष्ठद्वयम्, तस्मिन् । कुलूतायामिति । बहिः कायचक्रस्य ऐशानकोणे, अन्तस्तु कुविकल्पानां लवनाच्छेदनात्कुलूता जानुद्वयम्, तस्मिन् । एते उपश्मशानसंज्ञकौ (के) पूर्ववदेव । कायचक्रस्य पातालवासिन्य इति बहिर्नरकप्रेतनागाद्यनुग्राहकत्वादन्तश्चास्याधोभागावस्थानाच्चेति ॥ १७ ॥

काकास्या उलूकास्या श्वानास्या शूकरास्या । मुखे ॥ १८ ॥

मुख इति । दिङ्मुखेषु दिक्षु ॥ १८ ॥

एवं कायचक्रदेवतान्यासमुक्त्वा समयचक्रे तन्त्यासं वक्तुमाह— काकास्येति । यथा मूलतन्त्रे चतुर्दशपटले मनोवेगनिवृत्त्यर्थं गर्दभाकारयोगोऽभिहितः, तद्वत् पञ्चाकाराभिसम्बोधिक्रमेण तिर्यग्जातिविशोधनार्थं काकास्यादिचतुष्टयभावनाभिहिता । तत्राऽप्ययं भावनाक्रमः— पूर्ववद्भगवद्बुद्धयाद् देवताकाराष्टकं श्यामवर्णं संस्फार्य तत्परिणामेन झटित्येव काकास्याद्यष्टकं कृष्णपीतारुणश्यामोभयोभयवर्णमेकवक्त्रद्विभुजरूपत्वेन खट्वाङ्गपात्रकर्तिकाधरं चिन्तयित्वा प्रत्यालीढपदावस्थितं सूर्यमण्ड-

१. कुलतायां- क.

२. वासिन्यः- क. टी०

लाष्टकोपरि व्यवस्थितं भावनीयम् । तस्य बहिश्चण्डोग्रादिश्मशानाष्टकवृक्षाष्टकसहितं यथा विमुक्तो यथोक्तक्रमेणैव निष्पन्नं भावयेत्तदाह— काकास्येति । सुबोधमेतच्च-
तुष्टयम् । मुख इति । बहिर् भगवन्मुखचतुष्टयस्य चतुर्षु दिक्ष्ववस्थानवद् द्वारचतुष्टये दिग्भेदेन भावनीयम्, अन्तस्तु मुख इत्युपलक्षणम् । काकास्यादिसप्तकं चक्षुःश्रोत्र-
घ्राणषट्के मुखे च भावनीयम् ॥ १८ ॥

यमदाढी यमदूती यमदंष्ट्री^१ यममथनी । विमुखे ॥ १९ ॥

विमुख इति विदिक्षु ॥ १९ ॥

यमदाढ्यादिचतुष्टयं विमुख इति । कातरजनवैमुख्यापदेक(पादक)गुदस्थान-
गुह्यस्थानयोरेकध्य(त्व?)मभिसंक्षिप्य कर्तव्यम् ॥ १९ ॥

एवं बाह्याध्यात्म^२मवलम्ब्य यावन्निर्वृतिगोचरम् ॥ २० ॥

३इति योगिनीसंचारे देवतासंस्थानभूमिनिर्देशः पञ्चमः ॥ ५ ॥

एवमित्यादि । एवमिति यथोक्तं मण्डलम् । बाह्याध्यात्मेति । बहिर-
ध्यात्म्यं च । आलम्ब्येति । आलम्बयेत् । कियत्कालमित्याह— यावन्नि-
र्वृतिगोचरमिति । यावन्निर्वाणं विषयो न भवतीत्यर्थः ॥ २० ॥

इति पञ्चमो निर्देशः ॥ ५ ॥

१. दंष्ट्रिणी- भो० (दे०, नर०, ल्हा०) ।

२. मालम्ब्य- नि०

३. 'इति' नास्ति- भो०

इदानीमुपसंहारं वक्तुमाह— एवमित्यादि । पूर्वोक्तेन न्यायेन । बाह्यमण्डल-
मध्यात्मानुसारि(रे)णावलम्ब्य योगिनो यावन्निवृत्तेर्विकल्पोपशमरूपो यो गोचरं
विषयं मण्डलचक्रं भवति तावद्भावनीयमित्यर्थः । एतदुक्तं भवति— अध्यात्मनि
काये मण्डलभावनाद्बहिरपि मण्डलं तथैव भावयितव्यम् । तावच्च भावनीयं यावत्
कायविवेकलक्षणा निवृत्तिर्योगिनः समुत्पद्यत इति ॥ २० ॥

इति श्रीपण्डिताचार्य-अलककलशविरचितायां ^१योगिनीसञ्चारतन्त्रटीकायाम्
उपदेशानुसारिण्यभिधानायां पञ्चमपटले विस्तरव्याख्या ॥ ५ ॥

*

षष्ठो निर्देशः

अथ सर्वाधिपत्यादिचिह्नमुद्रागणस्य तु ।
स्ववर्णभुज^१संस्थानं गोप्यतन्त्रेषु^२ निर्णयम् ॥ १ ॥

अथेत्यादि । सर्वाधिपत्यादिचिह्नमुद्रागणस्य त्विति । सर्वासां देवता-
नामधिपतिर्भगवान्, आदिशब्देन वज्रवाराह्यादीनां परिग्रहः, तेषां चिह्न-
स्वरूपमुद्रासमूहस्य निर्णयमिति परेण सम्बन्धः । वक्ष्य इति शेषः । स्व-
वर्णभुजसंस्थानमिति । देवतानां^३ स्वकीयं वर्णादिकं च । गोप्यतन्त्रे
त्विति । विस्तरतन्त्रे संगोप्य इह वक्ष्ये, इति भावः ॥ १ ॥

एवं पञ्चमपटलेन देवता^४भावनास्थाननिर्देशमभिधाय तासामेव वर्णभुजसंस्था-
नायुधादिप्रतिपादनार्थं षष्ठमपटलमाह— अथेत्यादि । स्थानादिनिर्देशानन्तरं सर्वाधिप-
त्यादेर्निर्णयं वक्ष्यामीत्यध्याहार्यम् । सर्वेषां विस्तरचतुःषष्टिसंख्यानां मण्डलाधिपति-
माण्डलेयानां समनन्तरमेव पञ्चमपटलाभिहितानां तेषामधिपत्यादीनां समयचक्रान्ता-
नाम् । चिह्नमुद्रागणस्येति । भुजादिसंस्थानसमूहस्य । निर्णयम् निश्चयम् । एतदेवाह—
स्ववर्णभुजसंस्थानम् इति । सर्वेषामेव भुजसंस्थानादिकस्याऽपि निर्णयं वक्ष्यामि ।
किं तेनेति चेत्, गोप्यतन्त्र इति । एकपञ्चाशत्पटलान्युक्त्वा मूलतन्त्रं यस्माद्भगवता
गोपितं नैव प्रकाशितम् । द्वितीयपटले द्विभुजस्यैव श्रीहेरुकस्याख्यानाद्वीरवीरेश्वरीणां
च चतुर्थपटले नाममात्राभिधानादन्यत्र च मुखभुजादिव्यवस्थाया अदेशनाश्च (च्च) ।
तस्माद्वक्ष्यामीति ॥ १ ॥

१. भुजचिह्नसं०- भो०

२. तन्त्रे तु- नि०.

३. सर्वदेवतानामधिपतिः अपि- भो०.

४. भावनेन- क.

श्रीहेरुकमहाराजं सर्वदुष्टप्रमर्दनम् ।
हस्तद्वयसमालिङ्गं^१ हस्तिचर्मधरद्वयम्^२ ॥ २ ॥

श्रीहेरुकेत्यादि सुगमम् । हस्तद्वयसमालिङ्गयेति । आलिङ्गनं भुज-
द्वयेन, वज्रवज्रघण्टाधरमिति शेषः ॥ २ ॥

एवं व्याख्यानप्रतिज्ञामभिधायाऽधिपतेस्तद्व्याख्यानाङ्गमुपायस्य मुखादिविभागं
वक्तुमाह— श्रीहेरुकमहाराजमिति । श्रीमुखस्य हेरुकस्य चतुर्विभोक्षमुखविशुद्धस्य
कृष्णपीतारुणश्यामाननस्य महाराजस्येति महतां चतुर्विंशतिवीराणां राजा, अधिपति-
रूपत्वात् । कीदृशस्या[ह]— सर्वदुष्टप्रमर्दनमिति । षष्ठ्यर्थे द्वितीया । सर्वेषां दुष्टानां
विकल्परूपाणां तृष्णाविद्वेषविशुद्धानां भैरवकालरात्रिप्रभृतीनां प्रकर्षेण हठाद् मर्दन-
मिति मर्दनरूपस्य तदुपमर्दनाकारस्येत्यर्थः । हस्तद्वयसमालिङ्गमिति । वज्रवाराह्या-
लिङ्गनं भुजद्वयेन इत्यर्थः । वज्रं च वज्रघण्टिकेति । यतोऽयं भगवांश्चतुर्वक्त्रो द्वादश-
भुजः, द्वादशाङ्गप्रतीत्यसमुत्पादस्य विशुद्धिरूपत्वात् । तत्र दक्षिणे वज्रमुपायपारमिता ।
हेति वेति रूपतया क्लिष्टसत्त्वार्थात्मकविकल्पप्रवृत्तिविज्ञाननिरोधादादर्शादिपञ्च-
ज्ञानोपायेन मन्त्रमूर्तिज्ञानमूर्तिवज्रमूर्तिनिष्पत्तेः । एषैव दूरङ्गमाभूमिः तीर्थ्या[नाम्] ।
बुद्धतीर्थ्यापेक्षया तेभ्योऽस्य दूरगमनात् । प्रज्ञाघण्टिकेति । घण्टा प्रज्ञापारमिता, तद्
ध्वनेरवसाने धर्मतारूपोपलब्धेः । सा एवाभिमुखी, घण्टाया वज्रोपमसमाध्ये(धेर)-
भिमुखत्वात् । हस्तिचर्मावरुद्धकरद्वयमिति । ऊर्ध्वद्वितीयभुजे गजचर्मसमन्तप्रतिभा-
सा^४भुजगतस्य दन्तिमुखसन्निवेशविशिष्टस्य हकारस्य बाह्वयोय(बाह्वोर्य)न्मर्दन-
श्रुतिस्तद् गजचर्म । तत्काले समस्तदेहावभासनात् समन्तप्रतिभासा पारमिता रत्न-
वज्रा । रत्नं वज्रे यस्या इति कृत्वा । वामे द्वितीयो(ये) गजचर्माधिमुक्तिचर्याभूः ।
अस्फरणाद्विमुक्त्याचरणात् सैव(वै)कपद्या मन्थमन्थानकर्म च करोति, पद्मवच्च
रागद्वेषेण(णा)लित इति कृत्वा । दक्षिणतृतीयभुजो(जे) डमरुर्दानपारमिता, महा-
सुखध्वनिदानात् । सैव प्रमुदिता, तद्वशेन चेतसः प्रमोदात् ॥ २ ॥

१. लिङ्ग- ख., लिङ्ग्य- नि० ।

२. चर्मावरुद्धगम्- क., चर्मावरुद्धयं-ख., चर्मावरुद्धकरद्वयम्- टी०

३. र्थात्म- क.

४. भुजस्य- क.

१परशुं त्रिशूलं कर्तिं तु डमरुकं सव्यमुद्यतम् ।

२खट्वाङ्गेति कपालासृक्पाशमुण्डं समुद्यतम् ॥ ३ ॥

सव्यमुद्यतमिति । उद्यतदक्षिणभुजेषु चिह्नान्यमूनीत्यर्थः । कपाला-
सृगिति । असृक्पूर्णकपालम् । मुण्डेति ब्रह्मशिरः । समुद्यतम् ॥ ३ ॥

परशुरिति । दक्षिणचतुर्थभुजे शीलपारमिता, क्लेशच्छेदनरूपशीलसंवर-
युक्तत्वात् । उच्छेदाद्विकल्पमलविनिवृत्तेर्विमला । दक्षिणपञ्चमे कर्तिः । मूलक्लेश-
षट्कनिकृन्तनमर्षणात् क्षान्तिपारमिता । मूलक्लेशषट्कनिवृत्त्या चोपक्लेशनिवृत्ति-
स्तन्निवृत्त्या च मनसो निःक्लेशप्रभोत्पतेः प्रभाकरीभूमिः । दक्षिणषष्ठमे त्रिशूलं वीर्य-
पारमिता । त्रिभी रविशशिहुतवहस्वभावैर्नैत्रैर्द्वादशषोडशदशकलारूपैर्विषयेषु शूल-
वत्संज्ञा(ज्ञा)नाश्चछूलैर्विषयविषयिविज्ञानविकल्पोन्मूलनार्थमारब्धवीर्यत्वात् । तदु-
न्मूलनाद् ज्ञानार्चिषु तद्गणा(णना)दर्चिष्मती भूमिः । खट्वाङ्गमिति । वामतृतीये
खट्वाङ्गं ध्यानपारमिता । अविशुद्धकायवाक्चित्तनिर्वृत्त्या स्वेष्टदेवतारूपग्रहणे
एकाग्रत्वात् । तस्य च षट्समाधिदोषपरिहारार्थमष्टप्रहाणसंस्कारैः प्रहाणस्य सुष्ठु
दुःखेन जयात् सुदुर्जया । वामचतुर्थे कपालमसृक्पूर्णं सुखपालकमविशुद्धिः^५ प्रणि-
धानपारमिता । तत्कर्मण्येव प्रणिधानात् तत्कर्मणश्चावैवर्त्याम(द)चला भूः । वाम-
पञ्चमे पाशो बलपारमिता । पाश इव पाशो महाकरुणा, मुक्तानामपि सत्त्वार्थं प्रति-
बन्धनसामर्थ्यात् । स एव बलपारमिता, तद्वलेन सत्त्वार्थप्रवर्तनात् । एषैव साधुमती,
सत्त्वकृत्यस्यैव शोभनात् । मुण्डं समुद्यतमिति । वामसव्ये ब्रह्मशिरो ज्ञानपारमिता ।
तस्य चतुर्मुखत्वेन कायवाक्चित्तज्ञानविशुद्धेः, तद्वशेन च तात्तित्वप्रतिपादनार्थं यथा
भव्यं धर्मस्य मेघवद्वर्षणाद् धर्ममेघा भूमि[रि]त्येतेषां मतम् ॥ ३ ॥

१. इतः पूर्वं 'सव्येषु अवशिष्टेषु' इत्यधिकः पाठः- भो०, परशुः- टी०.

२. 'अवशिष्टेष्ववसव्येषु खट्वाङ्गं च समुद्यतम् । कपालासृक्पाशश्च'- भो०.

३. सज्जनात्- क.

४. विषयैर्वि- क.

५. शुद्धं- क.

अवसव्येति समाख्यातं^१ चतुर्विंशार्धभूषितम्^२ ।
शतमर्थं तु विज्ञेयं मुण्डमाला^३ तु यज्ञकम् ॥ ४ ॥

अवसव्येति । पूर्ववत्समुद्यतवामभुजेषु चिह्नानि, इति समाख्यातम् ।
चतुर्विंशार्धभूषितमिति । अनेन द्वादशचिह्नधारणेन द्वादशभुजभूषितं विख्यातं
भगवन्तं भावयेदित्यर्थः । शतमर्थं तु विज्ञेयं मुण्डमाला त्विति । पञ्चाश-
न्मुण्डमालावलम्बनम् । यज्ञकमिति यज्ञोपवीतधारिणम् ॥ ४ ॥

अत एव अवसव्येति समाख्यातम् इति । वामभुजलक्षणेषु । चतुर्विंशत्यर्थ-
भूषितमिति । द्वादशभुजम् । शत^४मर्थमुण्डमिति । एकपञ्चाशदात्मकमुण्डमालाधरम् ।
विज्ञेयमिति ज्ञातव्यम् । मुण्डमालाया एकपञ्चाशत्संस्कारविशुद्ध्या । यज्ञकमिति ।
ब्रह्मसूत्राभ्यन्तरे मुण्डमालाया लम्बितत्वात् ॥ ४ ॥

५भगवत्याः ६पुरः ७स्थाप्यमेकवक्त्रं^८ महोज्ज्वलम्^९ ।
आलिङ्गणं^{१०} कपालं च दुष्टमाराद्यसृग्धराम्^{११} ॥ ५ ॥

भगवत्याः पुरे स्थाप्येति । भगवतीं पुरतः स्थितां पश्येदिति शेषः ।
आलिङ्गनकपालं च दुष्टमाराद्यसृग्धरामिति । आलिङ्गनवामभुजेन दुष्टानां
रुधिरान्त्रपूर्णकपालधारिणीम् ॥ ५ ॥

१. 'ब्रह्ममुण्डं समाख्यातं'- भो०, चतुर्विंशत्यर्थ- टी०
२. भूमिकम्-ख.
३. मालया तु- भो०, मालिनं- ख.
४. मर्थं नास्ति- क. ख.
५. भगवन्माता- भो०, भगवता- क., भगवतः- टी०
६. पुरे- नि०, टी०
७. स्थाप्यां-ख.
८. वक्त्रां- ख.
९. ज्ज्वलां- ख.
१०. लिङ्गनकपा- नि०, टी०
११. मारासृक्पूर्णधरां- भो०, धरम्- क. ख.

एवमुपायस्य मुखादिविभागं प्रतिपाद्य प्रज्ञाया अपि तद्विभागं वक्तुमाह—
 भगवत इति । मध्यनायकरूपस्य मण्डलाधिपतेः । षड्भागयोगात्तस्याः । पुरे स्थाप्य-
 मिति पुरतः स्थाप्या । आग्नेये आलिङ्गिता भावनीया भगवती वज्रवाराही । तां च
 एकवक्त्रमिति । सहजानन्दविशुद्ध्या । महोज्ज्वलमिति रक्तवर्णम् । अतिशयेन
 महाकरुणारागेण सातिशयं रक्तत्वात् । आलिङ्गनकपालमिति । भगवत आलिङ्गिते
 वामभुजे पद्मपात्रं शून्यताज्ञानविशुद्धम् । कीदृशम् ? दुष्टमाराद्यसृग्धरामिति । दुष्टानां
 मृत्युमारप्रभृतीनाम् असृग्धरं समताज्ञानरूपं तद्धरां तद्धारिणीम् ॥ ५ ॥

दक्षिणे^१ तु सदा^२ धार्या तर्जिका दुष्टकर्तिका^३ ।
 रक्तवर्णा महाज्वाली^४ खण्डमण्डित^५मेखलाम् ॥ ६ ॥

दक्षिणेन सदा धार्यं तर्जिका दुष्टवज्रिकमिति । दक्षिणभुजेन दुष्ट-
 तर्जनीसहितवज्रं सर्वदा धारयन्तीम् । खण्डमण्डितमेखलामिति । खण्डी-
 कृतमेखलामण्डितकटिप्रदेशाम् ॥ ६ ॥

दक्षिण इति भुजे । सदेति सर्वकालम् । धार्यमिति धारणीयम् । दुष्टानां सत्त्वानां
 तर्जनार्थं कर्तिधारणीम्, सर्वविकल्पनिकृन्तनात् । रक्तवर्णेति । महाकरुणारागेण ।
 महाज्वालामिति । अतिशयेन ज्वालारूपां ज्ञानाग्निविशुद्ध्या । खण्डमण्डितमेख-
 लामिति । खण्डैः पञ्चाङ्गुल्य(ल)कपालखण्डैर्मण्डिता विभूषिता मेखला यस्याः सा
 तथा, तां पञ्चोपादानस्कन्धविशुद्ध्या ॥ ६ ॥

-
१. दक्षिणेन- नि०
 २. महा- क. ख., धार्य- नि० टी०
 ३. वज्रिकम्- नि०, वर्जिका- क.
 ४. ज्वाला- टी०
 ५. खण्डकपालमण्डितां- भो०

मुक्त^१केशीं त्रिनेत्रा^२ङ्गीं विकट^३दंष्ट्राभयानकाम् ।
जङ्घां पादेन संवेष्ट्य उभयोः^४ सम्पुटा^५द्वयम् ॥ ७ ॥

उभयसंपुटाद्वयमिति । भगवद्भगवतीरूपं समापत्तिसमापन्नमित्यर्थः ॥ ७ ॥

मुक्तकेशीमिति । चण्डालीपूर्वनिमित्तरम(स)द्योतनात् । त्रिनेत्राङ्गीमिति ।
नाडीत्रयविशुद्ध्या त्रिनयनाम् । ईषदिति मनाक् । दंष्ट्राभयानकामिति दंष्ट्राभिर्भय-
जनिकाम् । विकल्पक्रोधकरणाद् ललितक्रोधरूपां भगवतः पुरतः स्थितामित्युक्तम् ।
किं भिन्नत्वेन स्थितामित्याह— जङ्घामिति । भगवतः सम्बन्धिनी वामजङ्घा । पादे-
नेति दक्षिणेन चरणेन । संवेष्ट्येति संश्लिष्टां कृत्वा । बद्ध्वा विरूढकरणेन भगवता-
ऽऽलिङ्गनविधानात् । उभयोरिति प्रज्ञोपाययोः । संपुटाद्वयमिति समाहितप्रतिपत्ति-
रूपम् ॥ ७ ॥

डाकिन्यादि^६ तु चत्वारः खट्वाङ्गपात्रशस्त्रिकाः^७ ।
पञ्चमुद्रादि^८गात्रस्य मुक्तकेशविराजिताः^९ ॥ ८ ॥

डाकिन्यादि त्विति । डाकिन्यादयः । चत्वार इति चतस्रः । खट्वाङ्ग-
पात्रेति खट्वाङ्गसहितं कपालं वामेन सर्वासाम् । शस्त्रिका इति दक्षिणेन
कर्तिका । पञ्चमुद्रादिगात्रस्येति गात्रेण यथायोगं पञ्चमुद्राधारिण्यः । आदि-
शब्देन केयूरादीनां परिग्रहः । मुक्तकेशविराजितमिति मुक्तकेशैर्विराज-
मानाः ॥ ८ ॥

-
१. केशं- क.ख.
 २. त्राङ्गं- क. ख.
 ३. ईषददंष्ट्रा- क. ख. टी०
 ४. उभय- नि०
 ५. सम्पुटस्थिताम्- भो०
 ६. दिभिश्चतसृणां- टी०
 ७. कर्तिका- ख.भो०, टी०
 ८. अतः परं 'त्रिनेत्रा' इत्यधिकः पाठः- भो०, टी०
 ९. जितम्- नि०, टी०

एवं द्वाभ्यां प्रकाराभ्यामधिपतेश्चिह्नादिकर्मभिधाय परिधार(वारा)णामपि तद्विभागं वक्तुं तदङ्गं ज्ञानचक्रडाकिनीचिह्नाभिधानलक्षणमाह— डाकिन्यादिभिः ज्ञानपद्मपूर्वादिपत्रावस्थितानां डाकिन्यादीनां चतसृणाम् । खट्वाङ्गमिति । १ ध्यान-पारमिताविशुद्धिः । पात्रमिति । काद्यप्रणिधिपारमिताविशुद्ध्या तासामेव वामभुजे विशेषेण । शस्त्रिकेति कर्तिका । दक्षिणे चतसृणामेव क्षान्तिपारमिताविशुद्ध्या । त्रि-नेत्रा इति । नाडीत्रयविशुद्ध्या । पञ्चमुद्रादिगात्रस्येति । पञ्चमुद्रामात्राभिः, भस्मवर्जित-त्वात् । पञ्चपारमिताविशुद्ध्या वक्त्रादिभिः । मुक्तकेशविराजितमिति । मुक्तकेशै-र्विराजिताः प्रतिभासमानाः ॥ ८ ॥

चतुर्विंशतिवीरै^१श्च पञ्चमुद्रादिमण्डितम् ।

द्विभुजमेकवक्त्रं वा जटामुकुट^३पट्टकम् ॥ ९ ॥

चतुर्विंशतिवीरेणेति चतुर्विंशतिवीराः । पञ्चमुद्रादिमण्डितमिति कण्ठिकादिपञ्चमुद्राधराः । आदिशब्देन नूपुरकेयूरादयो गृह्यन्ते । द्विभुजमेक-वक्त्रं चेति द्विभुजा एकवक्त्राश्च । जटामुकुटाङ्गपट्टकमिति । प्रथमाबहु-वचने ॥ ९ ॥

एवं ज्ञानचक्रडाकिनीनां चिह्नाद्यभिधाय त्रिचक्रवीरिणीचिह्नाद्यभिधानार्थमाह— चतुर्विंशदि(ती)ति । त्रिचक्रव्यवस्थिताः । वीरिण्येति । वीराणां खट्वाङ्गकपालानां दौःस्वभावानाम् । पञ्चमुद्रादिमण्डितमिति । भस्मवर्जिण(त)चक्रिकुण्डलकण्ठी-हस्तेरुचकमेखलास्वभावाभिर्मण्डितं विभूषितम् । द्विभुजमिति । सत्यद्वयविशुद्ध्या द्विभुजाः । एकवक्त्राः सहजविशुद्ध्या । त्रिनेत्रा इति । रविशशिहुतवहविशुद्ध्या । जटामुकुटपट्टकमिति । जटामुकुटपट्टाङ्गाः परिपूर्णतत्त्वविशुद्धेः । पञ्चबुद्धकुलमुकुट-धारित्वात्, राजवद् द्योतनार्थत्वाच्च ॥ ९ ॥

१. इतः पूर्वं 'खट्वाङ्गविशेषेण' इत्यधिकः पाठः - ख.

२. वीरेण- ख. नि०, वीरिण्या- टी०

३. मुकुटाङ्ग- नि०

वज्रघण्टे^१ समालिङ्ग्य महारागानुरागणात् ।
चतुर्विंशतियोगिन्यो मुक्तकेशविराजिताः ॥ १० ॥

वज्रघण्टासमालिङ्ग्य स्वचिह्नस्य महारागानुरागणादिति । महा-
रागः सहजानन्दः, तन्निमित्तमनुरागणं महारागानुरागणम् । तस्माद्धेतोरालि-
ङ्गनाय प्रवृत्तेः । भुजद्वयेन वज्रवज्रघण्टाधरा इति भावः ॥ १० ॥

आयुधान्याह— वज्रमिति । उपायपारमिताविशुद्ध्या । घण्टेति । प्रज्ञापारमिता-
विशुद्ध्या । सर्वेषामप्यविशेषेण । अथवा चित्तचक्रवीराणां वज्रवज्रघण्टा, वाक्काय-
चक्रावस्थितानामपि चक्रचक्रघण्टा, पद्मपद्मघण्टा इति केषाञ्चिन्मतात् । समालि-
ङ्ग्येति । तद्युक्तैर्भुजैर्वीरिण्यालिङ्गनात् । महारागानुरागणात् इति । प्रज्ञोपायस्वभावेन
अनुरागणादिति रागजातीयपुद्गलोद्देशेन राजा(गा)जनकरूपप्रदर्शनात् । एवं त्रिचक्र-
व्यवस्थितवीराणां तदभिधानान् प्रतिपाद्य त्रिचक्रवीरिणीनां तदभिधान(नत्व)-
माह— चतुर्विंशतीति । तत्संख्या(ख्यया) त्रिचक्रव्यवस्थिताः । योगिन्य इति वीरिण्यः,
निर्विकल्पत्वात् । मुक्तकेशविराजिता इति, चाण्डालीपूर्वनिमित्तत्वात् ॥ १० ॥

३चतुर्मुद्राशिरोमणि त्रिनेत्रा मेखला^४मण्डितम् ।
योगपात्र^५कमालिङ्ग्य दुष्टतर्जनकर्तिका ॥ ११ ॥

पञ्चमुद्रादिशिरोमणीति । ६आदिशब्देन केयूरादयः । शिरोमणिसहित-
पञ्चमुद्रादिधारिण्य इत्यर्थः । मेखलामण्डितमिति । मेखलालङ्कृतकटि-
भागाः । योगपात्रिकमालम्ब्येति । वामेन कपालं दधानाः ॥ ११ ॥

१. घण्टासमालिङ्ग्य स्वचिह्नस्य- क. नि०
२. 'व्यवस्थित' नास्ति- क.
३. पञ्चमुद्रादि- भो०, नि०
४. मेखल- नि०, मण्डिता- टी०
५. पात्रिक- नि०
६. "आदि-----दयः" नास्ति- भो०

चतुर्मुद्रा इति । कुण्डलकण्ठीरुचकमेखलालक्षणाश्चतस्रो मुद्राः । शिरोमणिरिति चक्रिका । त्रिनेत्रा इति । नाडीत्रयेण । मेखलामण्डिता इति । ध्यानपारमिता-
१विशुद्ध्या मेखला(ल)या भूषिताः । योगपात्रकमिति । पञ्चज्ञानविशुद्धपञ्चामृतपरि-
पूर्ण पात्रमिति कपालम् । आलिङ्गयेति । तच्चिह्नं तेन भुजेन परमाश्लिष्य । दुष्ट-
सत्त्वानां तर्जनार्थं भयमुत्पाद्य मार्गेऽवतारणाय । कर्तिकेति । मूलक्लेशषट्कनिकृन्त-
नार्थेन । तद्धारिण्यः ॥ ११ ॥

श्रीहेरुकादयः^२ सर्वे आलीढासनसंस्थिताः^३ ।

कण्ठिकारुचक^४कुण्डल^५शिरोमणिविभूषिताः ॥ १२ ॥

श्रीहेरुकादित इति । श्रीहेरुकादयः । सर्वेति सर्वे । आलीढासनसंयुत-
मिति । प्रथमाबहुवचने । श्रीहेरुकस्य विशेषणमाह — कण्ठिकेत्यादिना
॥ १२ ॥

एवं त्रिचक्रवीरिणीनां चिह्नादिकमभिधाय सर्वेषामविशेषेणावस्थानादिनियमं
वक्तुमाह — श्रीहेरुकेत्यादि । श्रीहेरुकादयोऽधिपतिपरिवाररूपाः । सर्व इति । समय-
मण्डपर्यन्तं समग्राः । आलीढासनसंस्थिता इति । दक्षिणपादं प्रसार्य व्यवस्थिताः ।
संवृति(तिं) पुरोधाय परमार्थमवच्छाद्य(द्याव)स्थानात् । भगवतः पुनर्विशेषणमुद्रा-
धारित्वम् । कण्ठिकेति कण्ठे । क्षान्तिपारमिताविशुद्ध्या मन्त्ररूपादीनामखेदेन
सहनात् । रुचकेति हस्तद्वये कटकद्वयम् । वीर्यपारमिताविशुद्ध्या प्राणातिपातविरति-
गृहीतिद्यो(यो)गात् । कुण्डलेति । शीलपारमिताविशुद्ध्या गुरुबुद्धबोधिसत्त्वादीनां
दुर्भाषिताश्रवणलक्षणशीलसंवरयुक्तत्वात् । शिरोमणिरिति चक्रिका । दानपारमिता-
विशुद्ध्या गुरुबुद्धबोधिसत्त्वादीनां नमस्कारदानात् । एवं लक्षणाभिर्मुद्राभिर्विभूषितम् ॥
१२ ॥

१. विशुद्धिः- ख.

२. कादितः सर्व- क., नि०

३. संयुतं- क., नि०

४. केयूर- भो०

५. कपालमालाभिर्वि०- भो०

यज्ञोपवीतं भस्मेन (भस्मेति) मुद्राषट्कं प्रकीर्तितम् ।
षट्पारमिताविशुद्धि^१ तु षड्भिर्मुद्रैर्विभूषितम् ॥ १३ ॥

यज्ञोपवीतं भस्मेन मुद्राषट्कं प्रकीर्तितमिति । इत्यनेन क्रमेण यज्ञो-
पवीतभस्मभ्यां सह कण्ठिकादयः षण्मुद्राः प्रकीर्तिता इत्यर्थः । षट्पार-
मिताविशुद्धितः षड्भिर्मुद्रैर्विभूषितमिति । षट्पारमिताविशुद्धिषण्मुद्रावि-
भूषितदेहो भगवानिति भावः ॥ १३ ॥

यज्ञोपवीतमिति । साक्षाद् ब्रह्मसूत्रं मध्यनाडीविशुद्ध्या । अथवा यज्ञोपवीतं
मेखला तस्मिन् स्थितत्वात् । सा च ध्यानपारमिताविशुद्ध्या (द्धि) स्वभावा । प्रज्ञो-
पायसमापत्त्या स्थिरस्यापि रागादिभिरनालीढत्वेन सहजैकाग्रत्वात्, कर्मेति प्रज्ञापार-
मिताविशुद्ध्या सर्वानुपलम्भद्योतनात् । मुद्राषट्कं प्रकीर्तितमिति । समनन्तराभि-
हितम् । अस्यैव विशुद्धिमाह— षट्पारमिताविशुद्धीति समनन्तरमेव व्याख्यातप्रायम् ।
षड्भिर्मुद्राभिर्विभूषितमिति । अलंकृतम् । अथवा—

अक्षोभ्यश्चक्ररूपेण अमिताभः कुण्डलात्मकः ।

रत्नेशः कण्ठमालायां हस्ते वैरोचनः स्मृतः ॥

मेखलायां स्थितोऽमोघः पञ्चैता बुद्धमुद्रिताः ॥ इति ।

अनेनापि क्रमेण व्याख्यानम् ॥ १३ ॥

^२कायवाक्चित्त^३भेदेन त्र्यक्षरस्तु^४ ^५स्वभावतः ।
ध्यायात् स्वभाव^६मात्मानं किम^७न्यैः सिद्धिकाङ्क्षिणः ॥ १४ ॥

१. विशुद्धितः- नि०

२. इतः पूर्वं 'कायवाक्चित्तवज्रं तु त्रिनेत्रमेखलाभूषितम्' अयं पाठोऽधिकः- भो०

३. वज्रेण- भो०

४. त्र्यक्षरेण- टी०, तु नास्ति- नि०

५. सिद्धितः- भो०

६. भावादात्मानं- क. ख.

७. किमनेन- टी०, नैवान्यत्- भो०

कायवाक्चित्तभेदेन त्र्यक्षर^१स्वभावत इति। कायादिस्वभावं यत् त्र्यक्षरं रनादरूपापन्नम्, तस्मादुत्पन्नो यः स्वभावो हूँकाराकारः, स त्र्यक्षर-स्वभावः। ततस्तस्मादुत्पन्नमित्यध्याहार्यम्। ध्यायात् स्वभावमात्मानमिति श्रीसंवरस्वभावेनात्मानं ध्यायात्। किमन्यैः सिद्धिकाङ्क्षिण इति। बुद्ध-त्वाभिलाषिणो योगिनः स्वभावान्तरैरन्यैः किं प्रयोजनमिति माहात्म्य-कथनम् ॥ १४ ॥

कायवाक्चित्तेति। अनेन सर्वेषामशेषेण कायाद्यधिष्ठानमाह— कायवाक्-चित्तेति। शिरःकण्ठहृदयस्थाने त्र्यक्षरपरिणामेन कुलत्रयम्। एकवक्त्रं द्विभुजं सित-रक्तकृष्णवर्णं चक्रचक्रघण्टादिधरं विश्वपद्मचन्द्रसूर्योपरि वज्रपर्यङ्कावस्थितं स्व-सदृशदेवीसमापन्नं ध्यात्वा कायाद्यधिष्ठानं कुर्यात्। एतदाह— कायेत्यादि। काय-वाक्चित्तानि। त्र्यक्षरेण ॐकारादिना। स्वभावत इति। त्र्यक्षररूपेण कायवाक्-चित्तानि तथागत(ता)काराणि ध्यायात्। स्वभावम् त्र्यक्षरपरिणामेन त्रितथागता-कारम्। आत्मानमिति अधिपतिपरिवाररूपम्। एवंभूतेऽधिष्ठाने कृते सति, किमन्यै-रिति स्कन्धाद्यधिष्ठानादिभिः। सिद्धिकाङ्क्षिण इति कायविवेकलक्षणाभिः सिद्धिभिः कायाद्यधिष्ठानापरिहारेण भावनालक्षणाभिः। अथवा कृते कायाद्यधिष्ठानेऽवश्यमेव कायविवेकलक्षणा सिद्धिर्भवति। सिद्धिकाङ्क्षिणः पुरुषस्य तां सिद्धिं विहाय किम-न्याभिः सिद्धिभिस्तस्य प्रयोजनमिति यावत्। एतेन कायाद्यधिष्ठानानुशंसा उक्ता ॥ १४ ॥

^४यत्पुण्यं भवते तस्य मुखे^५नैकसहस्राननम् ।

न शक्यते तस्य ^६पुण्यस्य साधकगुणविस्तरम्^७ ॥ १५ ॥

१. सिद्धितः- भो०

२. तद्रूपात्पन्नम्- भो०

३. छानौपरिहारिण्य- क.

४. तत्पुण्यं भवेत्- क.

५. खानेक सह- क., जिह्वानेक शतसहस्र- भो०

६. पुण्यस्कन्धस्य- टी०

७. विस्तरः- नि०

अनुशंसामाह— यत्पुण्यमित्यादिना । भवते इति भवति । तस्येति संवरयोगिनः । १मुखानेकम् इत्युद्देशः । २सहस्राननमिति निर्देशः । मुखानां सहस्रेणापीत्यर्थः । ३तस्य पुण्यस्येति तत्पुण्यम् । साधक इति साधकस्य । गुणविस्तर इति विस्तीर्णगुणम् ॥ १५ ॥

एवं परिवारस्य चतुर्भिरर्थैः प्रतिपाद्यैतद्भावानुशंसामाह— यत्पुण्यमिति एवं-भूतमण्डलाधिपतितत्परिवाराणां चिह्नादिसहितकायाद्यधिष्ठानलक्षणभावनायां कृतायां सत्यां भावकस्य यत्पुण्यमिति कुशलमूलोत्पत्तिलक्षणम्, भवते इति भवेत्, तस्येति तद्भावकस्य । ४मुखेनैकसहस्राननेति । ५लक्षणने[न]तस्य पुण्यस्य विस्तरं न शक्यते वक्तुम् । अत्यन्तमचिन्त्यपुण्यसंभारनिष्पत्तेर्लक्षणनेनापि पुण्यविस्तरं कथयितुं न शक्यम्, अतिबहुलत्वात् । पुण्यस्कन्धस्य साधक इति । पञ्चवक्त्रात्मकमण्डल-६भावके । गुणविस्तरमिति । संक्षेपतः सप्तत्रिंशदाकारबोधिपाक्षिकलक्षणम् ॥ १५ ॥

काकास्यादि तु चत्वारो ७द्वारे सर्वे ८ निरुद्ध्यते ।

शवमाक्रम्य पादेन आलीढासनसंस्थिताः ॥ १६ ॥

काकास्यादि तु चत्वार इति । काकास्यादयश्चतस्रः । द्वारे सर्वेऽपि रुद्ध्यत इति । सर्वा अपि एता द्वारचतुष्टयमवरुद्ध्य स्थिता इत्यर्थः ॥ १६ ॥

एवं तद्भावानुशंसां प्रतिपाद्य समयचक्रदेवतानां तद्विभागं वक्तुमाह— काका-स्यादीति । समयचक्रावस्थितानाम् । चत्वार इति । चतसृणां चिह्नानि । खट्वाङ्गमिति पूर्ववद् विशुद्ध्या वामस्कन्धे । पात्रमिति कपालं वामकरे । स(श)स्त्रिकेति । कर्ति-काविशुद्ध्या व्याख्याता । पञ्चमुद्रादिमात्राः स्युरिति । भस्मवर्जितत्वेन तदन्यपरिशिष्ट-

१. जिह्वा- भो०

२. शतसह०- भो०

३. 'वक्ष्यते इति शेषः' इत्यधिकम्- भो०

४. मुखानेक- क.

५. लक्षणमेतस्य- क.

६. भावना- ख.

७. इतः पूर्वं 'खट्वाङ्गपात्रशस्त्रिका पञ्चमुद्रादिभूषितम्' इत्यधिकः पाठः- भो०, टी०

८. सर्वेऽपि रु- नि०

मुद्राधारणात् । शैक्षत्वेन । द्वार इति पूर्वोत्तरपश्चिमदक्षिणद्वारेषु । कोण इति द्वारकोणेषु चत्वारः । शवमाक्रम्येति । खंकारपरिणतसर्वेषु प्रेतेषूपरि नैरात्म्यद्योतनात् । पादेनेति पादद्वयेनैव । आलीढासनसंस्थिता इति । दक्षिणपादं प्रसार्यावस्थानात् ॥ १६ ॥

यमदाढी तथा ध्यात्वा कोणे चत्वारि विन्यसेत् ।

तद्वत्^१ पादेन चाक्रम्य द्वौ हि रूपौ^२ मनोहरौ ॥ १७ ॥

यमदाढीति । यमदाढ्यादयश्चतस्रः । कोणे चत्वारीति चतुर्षु कोणेषु । तद्वत्पादेनेति आलीढेन । द्वौ हि रूपं मनोहरमिति । यमदाढ्यादिदेवती-चतुष्टयं प्रत्येकं मनोहरं द्विद्विरूपमित्यर्थः ॥ १७ ॥

यमदाढीति तदादयः । तथा ध्यात्वेति तथैव भावयेत् । कोण इति द्वारकोणेषु । चत्वारीति चतस्रः । विन्यसेदिति योजयेत् । तद्वदिति आलीढस्थाने कोणे काकास्या-दिवच्चतुष्टयम् । पादेनाक्रम्य न्यसेदिति पूर्वोण सम्बन्धः । द्वौ हि रूपाविति । अनेन वर्णमाह— यथाक्रमं यमदाढ्यादीनां चतसृणां द्विवर्णता ज्ञातव्या, कृष्णश्यामश्याम-रक्तरक्तपीतपीतकृष्णरूपत्वात् । भगवतश्चतुर्मुखच्छायाच्छुरितत्वात् । मनोहराविति । द्विवर्णतया द्विप्रकारकर्मसाधनान्मनोज्ञत्वात् ॥ १७ ॥

यथा डाकिन्य^४ उत्पन्नाः काकास्यादि तु भेदतः ।

एवं समस्तचक्रस्य^५ वर्णभेदविधिक्रमः^६ ॥ १८ ॥

७इति योगिनीसञ्चारे स्वचिह्नमुख^८भुजवर्णायुधनिर्देशः षष्ठः ॥ ६ ॥

१. जगत्पादेन- क. ख.

२. रूपं मनोहरम्- क. ख. नि०

३. तद्वत्पादेन- भो०

४. डाकिनीजालस्य- नि०, जालयत्तस्य- क. ख., जालयन्त्रस्य- टी०

५. चक्रस्थं- नि०

६. क्रमम्- क. ख.

७. 'इति' नास्ति- भो०

८. मुखमुद्रावर्णा- भो०

यथा डाकिनीजालस्येति । यथा डाकिन्यादीनां वर्णा इति शेषः । काकास्यादिभेदत इति । यथा काकास्यादीनां भेदतोऽसंकीर्णेन रूपेण स्थितानामित्यर्थः । एवमित्यादिनोपसंहारः । समस्तचक्रस्थमिति । समस्तानां चक्रस्थितानाम् । वर्णभेदविधिक्रममिति । प्रथमार्थे । उपलक्षणमिदम्, भुजादयोऽपि वेदितव्या इति ॥ १८ ॥

इति षष्ठो निर्देशः ॥ ६ ॥

एवं समयचक्रदेवतानां तद्विभागस्वरूपं प्रतिपाद्य तदन्यसादृश्येन तद्विभागं वक्तुमाह— यथा डाकिनीजालयन्त्रस्येति । यथा डाकिन्यादीनां चतसृणां यन्त्रस्येति । ज्ञानपद्मयन्त्रेषु (ष्व) वस्थितानां वर्णचिह्नादिनियमः । काकास्यादि तु भेदत इति । तथैव काकास्यादीनां चतसृणां वर्णचिह्नादिभेदो ज्ञातव्यः । एवं भेदप्रभेदैः साक्षात्तद्व्याख्यानं प्रतिपाद्य तदुपसंहारं वक्तुमाह— एवमिति । समनन्तरोक्तेन न्यायेन । समस्तचक्रस्येति । पञ्चचक्रात्मकस्य निरवशेषस्य प्रज्ञोपायाकारस्य मण्डलचक्रस्य । वर्णभेदेति । वर्णानां यथासम्भवं पञ्चानां भेदो विशेषः, तस्य । विधिक्रम इति । विधानपरिपाटी चिह्नमुद्राभावनारूपा ज्ञातव्या ॥ १८ ॥

इति पण्डिताचार्य-अलककलशविरचितायां योगिनीसञ्चारतन्त्रटीकायाम्
उपदेशानुसारिण्यभिधानायां षष्ठपटले विस्तरव्याख्या ॥ ६ ॥

सप्तमो निर्देशः

अथ कवचद्वयं वक्ष्ये गोप्यतन्त्रेषु निर्णयम् ।
येन ज्ञातेन^१ क्षिप्रं हि साधकः सिद्धिमाप्नुयात् ॥ १ ॥

अथ कवचद्वयं वक्ष्ये इत्यादि । कवचद्वयमिति भगवद्भगवत्योः
कवचमन्त्राणां षट्कद्वयम् । किं कृत्वेत्याह— गोप्यतन्त्रेषु निर्णयमिति ।
तस्य षट्कद्वयस्य निर्णयं निश्चयं विस्तरतन्त्रे संगोप्य येन तस्य निश्चयो
भवति तत्तत्र संगोप्य इह तन्त्रे व्यक्तं कथयिष्यामीत्यर्थः ॥ १ ॥

एवं षष्ठपटलेनाधिपतिपरिवाराणां मुखवर्णचिह्नादिकमभिधाय निष्पन्ने
मण्डलचक्रे रक्षार्थं कवचद्वयभावनां वक्तुं प्रथमं तावत्तद्व्याख्यानप्रतिज्ञामाह—
अथेत्यादि । मुखवर्णचिह्नादिव्याख्यानन्तरम् । कवचद्वयमिति । वीरवीरिणीकवच-
भेदेन । तत्र कवच इव कवचः । यथा बहिः कवचेन सन्नाहादिना परप्रयुक्तशस्त्र-
प्रहारादीनि रक्षन्ते, तद्वद्भाविते मण्डलचक्रे समयचक्रात्मकज्ञानमण्डलसंरक्षणार्थं
विघ्नादिप्रयुक्तोपद्रवरक्षणात् । वक्ष्ये इति कथयिष्ये । यस्य कवचद्वयस्य तन्त्रे मूल-
तन्त्रे गोप्य भगवता निर्णयं कृतम्, कवचद्वयस्य सम्बन्धिस्वरूपं गोपयित्वा निश्चयो-
ऽभिहितः । मूलतन्त्रे षष्ठपटले उपहृदयादिव्याख्यानप्रतिज्ञां कृत्वा स्वयं पुस्तकवाच-
काभिमानिनां गोपनार्थमुपहृदयादीनां निर्देशमकृत्यैव वीरकवचस्यैव केवलस्य
व्याख्यानात् । किं तेन व्याख्यानेनेति चेदाह— येनेति कवचद्वयेन । ज्ञातेनेति श्रुति-
चिन्ताभावनाक्रमेण ज्ञानमात्रेण । साधक इति उत्पत्तिक्रमभावकः । सिद्धिमिति
समस्तविघ्नादिदोषविनिर्मुक्त्या षडभिज्ञाप्राप्तिलक्षणम् । आप्नुयात् । कथमि-
त्याह— क्षिप्रमिति । शीघ्रमेवेत्यर्थः ॥ १ ॥

१. ज्ञातव्यं- क. ख.

२. तत्तन्त्रे- भो०

१ॐ ह नमः हि स्वाहा हुं वौषट् हैं हूं हूं हो फट् हं ।

हृदय शिरः शिखा स्कन्ध^२ नेत्र अस्त्र योजितम् ॥ २ ॥

३अस्त्रेति । धर्मसंकेतेन सर्वाङ्गे । योजितमिति । ॐ ह इत्यादीनां हृदयादिषु योजनं कर्तव्यमिति भावः ॥ २ ॥

एवं व्याख्यानप्रतिज्ञामभिधाय साक्षात् तद्व्याख्यानं वक्तुं तदङ्गवीरकवच-
भावनामन्त्रबीजानाह— ॐ ह इति । तत्र यदुक्तं मूलतन्त्रे—

यवर्गादष्टमं बीजं मात्रैर्द्वादशभिर्युतम् ।

अक्षरान्तरितं कृत्वा षडङ्गं श्रीहेरुकोच्यते ॥ इति ।

तादृशेन न्यायेन दीर्घषट्कं परित्यज्य हस्वरूपहकारषट्कमुद्धृत्य भगवदु-
च्छवव(क्तानेव ?) मन्त्रबीजान् प्रधानानुद्धरेत् । तदेवाह— ह इत्यादि । एवं मन्त्र-
बीजानभिधाय तेषामेवासने स्थानं वक्तुमाह— हृदय इत्यादि । ॐ ह इत्यक्षरपरि-
णतो हृदये सूर्योपरि वज्रसत्त्वं त्रिमुखं षड्भुजं मूलाननगात्रैः श्वेतम्, दक्षिणवामाभ्यां
कृष्णरक्तम्, प्रधानभुजद्वयेन वज्रवज्रघण्टाधरम्, अन्याभ्यां कपालखट्वाङ्गासिधरम्,
ततोऽप्यन्याभ्यां डमरुमुण्डधरां(रं) रक्तवाराह्या वीरिणीकवचप्रस्तावे वक्ष्यमाण-
भुजायुधधारिण्या समापन्नां(नं) भावयेत् । शिरसि नमः हि परिणामि आकाशधातु-
विकल्पनिराभासीकरणाच्चैतच्छन्द्रमण्डलोपरि वैरोचनं पीतवर्णमेकवक्त्रं चतुर्भुजं
चक्रघण्टाधरमन्याभ्यां कपालखट्वाङ्गडमरुधरम्, नीलयोगिन्या समनन्तरवक्ष्यमाण-
भुजायुधधारिण्या समापन्नां(नं) ध्यायात् । शिखायां स्वाहा हुं परिणतं चन्द्रोपरि
पद्मनर्तेश्वरं रक्तमेकवक्त्रं चतुर्भुजं प्रधानकरद्वयेन वज्रवज्रघण्टाधारिणं परिशिष्टाभ्यां

१. अयं पाठः सर्वास्वपि मातृकासु वर्तते, टीकाकारेणापीममनुसृत्य टीका कृता, किन्तु हृदयाद्यस्त्रान्तसंयोजने नायं पाठः समर्थः । वस्तुतस्तु “ॐ ह नमः (हृदये), हिं स्वाहा (शिरसि), हुं वषट् (शिखायाम्), हैं हुम् (स्कन्ध-कवचे), हों वौषट् (नेत्रे), हं फट् (अस्त्रे) इति पाठः समीचीनः प्रतिभाति ।

२. स्कन्धौ नेत्रे- ख. भो०

३. अङ्गेति- भो०

पूर्ववदायुधधरां(रं) सितवर्णमोहिन्या प्रधानधारिण्या समापन्नं ध्यायात्। स्कन्धे रूपद्वये वौषट् हे इत्यक्षरनिर्जातमक्षोभ्यं सूर्योपरि नीलवर्णमेकवक्त्रं चतुर्भुजं प्रधान-भुजद्वयेन वज्रवज्रघण्टाधरम् आयुधाभ्यां पूर्ववदायुधधरं पीतवर्णसंचारिण्या वक्ष्य-माणभुजायुधधारिण्या समापन्नं भावयेत्। नेत्रद्वये हूँ हूँ हो इत्यक्षरपरिणतं वज्रसूर्य हरितवर्णमेकवक्त्रं चतुर्भुजं प्रधानभुजाभ्यां रत्नघण्टाधरम् अपराभ्यां पूर्वसदृशायुध-धरं हरितवर्णसन्त्रासिनीसमापन्नं पूर्ववदेव ध्यायात्। हृदयं (अस्त्रं फट् हं) इत्यक्षर-परिणतं सर्वाङ्गेषु परमाश्वं धूम्रधूसरम् एकवक्त्रं चतुर्भुजं प्रधानभुजद्वयेन विश्ववज्र-तद्वण्टाधारिणमन्याभ्यां पूर्वसदृशायुधधरं धूम्रधूसरचण्डिकायां(कया) वीरिणीकवच-प्रस्तावे रक्तवर्णसाध्यभुज-आयुधधारिण्या समापन्नं ध्यायात्। एतत् सर्वपरिणामेन सप्तरत्नमयं कवचं तैरेव भगवद्भिः समापन्नैरधिष्ठितं भावयेदित्याम्नायः ॥ २ ॥

प्रथमं वज्र^१सत्त्वं तु द्वितीयं वैरोचनं स्थितम् ।

तृतीयं पद्मनर्तेश्वरो राजा चतुर्थं श्रीहेरुकोच्यते ॥ ३ ॥

प्रथमं वज्रसत्त्वं त्विति। हृदि वज्रसत्त्वः साक्षादध्यस्यावलोक्य-
(कि)तो वा द्रष्टव्यः। एवं वैरोचनादयो वज्रवाराह्यादयोऽप्यनन्तरं २परि-
चिन्त्य वेदितव्याः ॥ ३-४ ॥

एवं तेषामेव न्यासेन स्थाननियममभिधाय तत्परिणामेन देवताकारभावना-
माह— प्रथममित्यादि। हृदयस्थाने। वज्रसत्त्वेनेति। षष्ठेन तथागतेन। द्वितीयमिति।
शिखा(रः)स्थाने। वैरोचनं स्थितमिति। पीतवर्णम्। तृतीयमिति। तस्मिन् शिखा-
स्थाने। पद्मनर्तेश्वर इति। पद्मे देवीवराङ्गे नर्तेश्वरः स्वामी बोधिचित्तधातुविशुद्धि-
रूपोऽमिताभो रक्तः। राजेति। प्रत्यवेक्षणाज्ञानरूपेण क्लेशानां रागप्रधानानां विजय-
नात्। चतुर्थमिति। तस्मिन्। श्रीहेरुक इति। तत्फलभूताक्षोभ्यो नीलवर्णः ॥ ३ ॥

१. वज्रसत्त्वेन- टी०

२. वक्तव्याः- क., गृहीतपाठस्तु भोटानुसारी ।

पञ्चमं वज्रसूर्येति षष्ठं परमाश्वसंज्ञितम् ।

१षड्भिः कवचैः सुरक्षितम् ॥ ४ ॥

पञ्चमेति । नेत्रद्वये । वज्रसूर्येति । रक्तधातुविशुद्धि[स्वभावो] रत्नसंभवो हरितः । षष्ठेति । सर्वाङ्गलक्षणे । परमाश्व इति । वायुधातुविशुद्धिस्वभावोऽमोघसिद्धिः । धूम्रधूसरः । षड्भिरिति । समनन्तरमभिहितैः सर्वपरिणामेन कवचाकारेण निष्पन्नैः । सुरक्षितमिति । षष्ठत्रिंशयोर्विघ्नादिदोषेभ्यो रक्षितं विहितरक्षमित्यर्थः ॥ ४ ॥

२ॐ वं हमों ह्रीमों हें हीं हूं हूं फट् हम् ।

नाभौ हृदये तथा वक्त्रे शिरः शिखास्त्रमेव च ॥ ५ ॥

३अस्त्रमेव चेति । सर्वाङ्गे ॥ ५ ॥

एवं त्रिभिरर्थैर्वीरकवचभावनां प्रतिपाद्य तैरैव वीरिणीकवचभावनां वक्तुं प्रथमं तत्र बीजमाह— ॐ इत्यादि । एवं मन्त्रबीजानभिधाय तन्न्यासस्थाननियमं वक्तुमाह— नाभावित्यादि । भगवत्या नाभिस्थाने । ॐ वँ इत्यक्षरपरिणतां बुद्ध-
डाकिनीं वाराहीं त्रिमुखां षड्भुजां रक्तनीलहरितमुखां कपालखट्वाङ्गपाशाङ्कुश-
मुण्डकर्तिधरां समनन्तरवीरकवचप्रस्तावोक्तभुजायुधधारिणा वज्रसत्त्वेन समापन्नां
भावयेत् । तस्या एव हृदये हमोमित्यक्षरपरिणामेन यामिनीमेकवक्त्रां चतुर्भुजां नील-
वर्णां वामभुजद्वयेन कपालखट्वाङ्गघण्टाधरां दक्षिणभुजद्वयेन डमरुकर्तिकाधारिणीं
पूर्वोक्तवैरोचनालिङ्गितां ध्यायात् । तस्या एव वक्त्रे ह्रीमित्यक्षरपरिणतां मोहनीं शी-
(सि)तवर्णां चतुर्भुजां पूर्ववदायुधधरां पूर्वोक्तपद्मनर्तेश्वरालिङ्गितां ध्यायात् । तस्या एव
शिरसि हें ह्रीमित्यक्षरपरिणामेन संचारिणीं४ पीतां चतुर्भुजां पूर्ववदायुधधारिणीं
पूर्वोक्तश्रीहेरुकालिङ्गितां ध्यायात् । तस्या एव शिखायां हूं हूमित्यक्षरपरिणतां सन्त्रा-

१. 'षड्भिः' इत्यारभ्य 'वीराद्वययोगिनी' इति यावत् पाठो नास्ति- क.

२. वं हों यों ह्रीं मों हें हीं हूं हूं फट् हं- ख., वं हं यों ह्रीं मों हिं हीं हूं हूं फट् फट्- भो०, गृहीतपाठस्तु टीकानुसारी ।

३. अङ्गमेव- भो०

४. संचालिनीं सितां- क.

सिनीमेकवक्त्रां चतुर्भुजां पूर्ववदायुधधारिणीं पूर्वोक्तवज्रसूर्यसमापत्रां ध्यायात् । एवं सर्वाङ्गेषु फट् हमित्यक्षरपरिणामेन चण्डिकामेकवक्त्रां चतुर्भुजां धूम्रधूसरवर्णां पूर्व-
वदायुधधरां पूर्वोक्तपरमाश्चालिङ्गितां ध्यायात् । एतत्सर्वपरिणामेन सप्तरत्नमयं कवचं
ताभिरेव देवी[भिः] स्वोपायसमापन्नाभिरधिष्ठितं ध्यायात् । एतदाह— नाभाविति ।
सुगममेतत् ॥ ५ ॥

प्रथमं वज्रवाराही द्वितीया १यामिनी स्मृता ।

तृतीया मोहनी चैव चतुर्थे २संचारिणी स्थितं (ता) ॥ ६ ॥

वीराद्वययोगिनीति । वीरेण सहाद्वयज्ञानाय योगः समापत्तिः, स यस्या
अस्ति सा वीराद्वययोगिनीति भावः ॥ ६-७ ॥

इति सप्तमो निर्देशः ॥ ७ ॥

एतन्न्यासस्थाननियममभिधाय मन्त्रपरिणतां देवताकारभावनं वक्तुमाह—
प्रथमं वज्रवाराहीति । नाभिस्थाने भगवत्या वज्रस्वभावत्वेन वाकाररेफाभ्यां कर्म-
मारुतज्ञानाग्निस्वभावाभ्यां हं महासुखचक्रस्थं चन्द्रमीरयतीति आकाशधातुविकल्प-
निराभासीकरणाच्च वज्रवाराही पूर्वोक्तवज्रसत्त्वस्वाभा । द्वितीयेति हृदयस्थाने । यामि-
नीति । आदर्शज्ञानलक्षणमुपायमाश्रित्य पृथिवीविकल्पस्य मोहस्य चानुपलम्भापाद-
नाद् यामिनी । यामिनी रात्रिस्तत्काले पदार्थानुपलब्धेलोचना वैरोचनस्वाभा । तृतीयेति
वक्त्रस्थाने । मोहनीति । प्रत्यवेक्षणाज्ञानलक्षणमुपायमाश्रित्य तेजोवायुविकल्पस्य
रागस्य च मोहनाद्विस्मृत्यापादनाद् मोहनी पाण्डरावासिनी अमिताभस्वाभा । चतुर्थेति
शिरसि । ३संचारिणीति । सुविशुद्धधर्मधातुलक्षणमुपायमाश्रित्य अब्धातुविकल्पस्य
द्वेषक्लेशस्य च सम्यक् चालना[द्] विचारणात् ४संचारिणी मामकी अक्षोभ्यस्वाभा
॥ ६ ॥

-
१. योगिनी- ख.
 २. दानी ख्याता- भो०
 ३. संचालिनी- क.
 ४. संचालिनी- क.

पञ्चमं संत्रासिनी ख्याता षष्ठमं चण्डिका मता ।

षड्भिः कवचं ^१वज्रवाराह्या वीराद्वययोगिनी^२ ॥ ७ ॥

इति योगिनीसञ्चारे कवचद्वयनिर्देशः सप्तमः ॥ ७ ॥

पञ्चमेति शिखास्थाने । संत्रासिनीति । समताज्ञानलक्षणमुपायमाश्रित्य पृथिवी-
धातुविकल्पस्य मानक्लेशस्य च संत्रासनाद् विष्कम्भनात् संत्रासिनी रत्नसंभव-
कुलीना मामकी तस्यैव स्वाभा । षष्ठम इति सर्वाङ्गस्थाने । चण्डिकेति । कृत्यानुष्ठान-
ज्ञानलक्षणमुपायमाश्रित्य वायुधातुविकल्पस्याक्लेशस्य च चण्डकर्मकरणेनानुप-
लम्भापादनाच्चण्डिका तारिण्यमोघसिद्धिस्वाभा । षड्भिरिति । समनन्तरोक्तदेवीभिः ।
कवचमिति । पूर्ववत् । सप्तरत्नमयम् । वज्रवाराह्या इति । मध्यनायिकायाः । ताश्च ।
कवचम् । वीराद्वययोगिनीमिति । वीरैः षड्भिर्बुद्धैर्योगिनीभिर्वाराह्यादिभिर्यथाऽद्वय-
तापत्तिलक्षणं भवति तथा भावनीयमित्यर्थः ॥ ७ ॥

इति पण्डिताचार्य-अलककलशविरचितायां योगिनीसञ्चारतन्त्रटीकायाम्

उपदेशानुसारिण्यभिधानायां सप्तमपटले विस्तरव्याख्या ॥ ७ ॥

*

-
१. चैव मध्ये- ख., वै वाराह्या- भो०, गृहीतपाठस्तु टीकानुसारी ।
 २. योगिनीम्- टी०
 ३. 'इति' नास्ति- भो०

अष्टमो निर्देशः

ततः —

कवचद्वयेनात्मानं ज्ञात्वा ज्ञानचक्रं विभावयेत् ।
समयचक्रे प्रवेश्याशु मुद्रामन्त्रेण योगिनः^४ ॥ १ ॥

तत इत्यादि। कवचद्वयेनेति। अनन्तरोक्तेन। 'आत्मानमिति श्रीसंवरात्मकं स्वशरीरम्। यथास्थानं कवचयित्वेति शेषः। ज्ञानचक्रं विभावितमिति। हृद्बीजरश्मिभिरानीतं ज्ञानमण्डलं पुरतो विभावयेत्। प्रवेश्येति प्रवेशयेत्। आश्विति अर्घपाद्यादिकं विना। मुद्रामन्त्रेणेति। वक्ष्यमाणमुद्रामन्त्राभ्याम्। योगिन इति। योगी ॥ १ ॥

एवं सप्तमनिर्देशेन कवचद्वयभावनाभिधानाय तत्पूर्वकृत्यभूतं ज्ञानचक्राकर्षणं वक्तुं तत्रैव पीठिकां रचयितुमाह— तत इत्यादि। कवचद्वयस्य व्याख्यानन्तरम्। कवचद्वयेनेति द्विप्रकारेण। आत्मानमिति भावकसम्बन्धिनम्। ज्ञात्वेति संरक्षण-पूर्वकं विदित्वा। ज्ञानचक्रमिति। स्वभावसिद्धं ज्ञानमण्डलं बुद्धक्षेत्राद्वक्ष्यमाणमुद्रा-चतुष्टयेनाकृष्य। विभावयेदिति समयमण्डलेन सह एकलोलीभावयन्तं ध्यायात्। एतदाह— समयचक्र इति। मन्त्रबीजपरिणामेन निष्पन्ने समयमण्डले। प्रवेश्येति। जः हूँ वँ होरिति मन्त्रबीजचतुष्टयेन। आश्विति। स्वहृदयादङ्कुशाकाररश्मिस्फ-रेण। केनेत्याह— मुद्रामन्त्रेणेति। वक्ष्यमाणमुद्राचतुष्टयेन मन्त्रेण च ज इत्यादिना प्रवेशेन। कः कर्तेत्याह— योगिनेति। योगिना प्रवेश्य पुकाररश्मिस्फरणेन शीघ्रं भावयेदिति पूर्वेण सम्बन्धः। योगः क्रमद्वयभावनारूपः, स यस्यास्तीति स तथा, तेन ॥ १ ॥

१. द्वयमात्मानं- क. ख.
२. विभावितम्- क. ख. नि०
३. प्रवेश्या- क. ख. नि० टी०
४. योगिना- टी०
५. समयमिति- भो०

आक्रान्तपादोर्ध्वदृष्टि^१स्तु ^२मूर्ध्ना ^३फेत्कारनादतः ।

दशदिग्लोकधातुस्था^४ वीरयोगिन्याकर्षितम् ।

^५संचोदयेत् तु मन्त्रेण आवाहयेच्च ^६तत्क्षणात् ॥ २ ॥

आक्रान्तपादेति । वामपादेन दक्षिणं पादमाक्रम्य । ऊर्ध्वदृष्टिं त्विति । वामवलितोर्ध्वदृष्ट्या । मूर्ध्नेति मुखेन । फेत्कारनादत इति फेत्कारमन्त्रो-
च्चारणात् । दशदिग्लोकधातुः स्याद्वीरयोगिन्याकर्षित इति । मन्त्रेणानेन
दशदिग्लोकधातुस्था वीरा योगिन्यश्चाकृष्टा भवन्तीत्यर्थः । संचोदनं तु मन्त्रे-
णेति । अनेनैव मन्त्रेण ज्ञानचक्रं संचोदयेत् । आवाहयेत् क्षणादिति । वक्ष्य-
माणमुद्रया आकर्षयेद् झटितितीत्यर्थः ॥ २ ॥

एवं व्याख्यानप्रतिज्ञामभिधाय साक्षाज्ज्ञानचक्रस्याकर्षणं वक्तुं तदङ्गं योगिनी
विशिष्टावस्थावर्णनपूर्वकं तदाकर्षणस्वरूपमाह— आक्रान्तपाद इति । पादमुद्रा,
ज्ञानचक्रस्याकर्षणकाले आलीढस्थानकेनावस्थानोपपत्तेः । ऊर्ध्वदृष्टिरिति । दृष्टिमुद्रा ।
चक्रत्यागमनकाले, आकाशदेशे दृष्टिविन्यासात् । मूर्ध्नीति शिरसा । फेत्कारनादात्
तदागमनकाले परप्रेरितविघ्नानामन्तरायविनिवारणार्थं तादृशध्वन्युदीरणाद् । दशदि-
गिति । एवं कृते सति सर्वाकाशदेशस्था वीरयोगिनीराकर्षयेत् । अनया मुद्रया आकृष्य
प्रवेश्य बद्ध्वा वशीकृत्य क्षीरोदकवत् समयमण्डले प्रवेशयेत् । एतदाह— वीर-
योगिन्याकर्षितमिति । वीरयोगिनीराकर्षयेदित्यर्थः । संचोदयेदिति । समयमण्डलमधि-
ष्ठानार्थमध्येष्येत्तमेव ज्ञानमण्डलम् । मन्त्रेणेति । संचोद्य च जः हूँ वँ होरित्यनेन
मन्त्रेण आवाहनपूर्वकमधितिष्ठेदित्यर्थः । तदनु पश्चात् । योगशुद्धाः सर्वधर्मा योग-
शुद्धोऽहमिति मन्त्रमुच्चारयेत् ।

१. दृष्टिं- नि०

२. मूर्ध्नि- टी०

३. फेत्कार- टी०

४. धातुः स्याद्- नि०, स्था- भो०

५. संचोदयन्- क. ख., संचोदनं- नि०

६. 'च तत्' नास्ति- नि०

बाह्यव्याख्या— आक्रान्तपादादिति। वायुतत्त्वबलेन प्राणायामनिरोधकरणात्। ऊर्ध्वदृष्टिरिति महासुखचक्रगतदृष्टिः। मूर्ध्नेति मूर्ध्नि। फेत्कारनाद इति। सुरतध्व-
न्युदीरणरूपत्वात्। दशदिग्लोकधातुस्था आकर्षयेत्। वीरयोगिनीरिति। चतुर्विंशति-
पीठानां दशभूमिसंगृहीतानां शिर आदिस्थितनाडीधातुरूपाणां योगिनीवीराणाम्
आकर्षणं कुर्यात् ॥ २ ॥

कृत्वाग्रग्रन्थिं खलु मध्यसूचिमङ्गुष्ठवज्रं दृढं संप्रयोज्य ।

१संस्थाप्य तां मध्यललाटदेशे २आवर्त्यवर्तेन च भ्रामयेत् ॥ ३ ॥

कृत्वेत्यादि। तामिति मुद्राम्। मध्यललाटदेश इति ललाटमध्ये।
आवर्तावर्तभ्रामितेनेति आवर्त्यावर्त्य भ्रामयेत् ॥ ३ ॥

एवं योगिनीनां विशिष्टावस्थावर्णनपूर्वकं तदाकर्षणस्वरूपमभिधाय तदर्थमेव
हस्तमुद्रां वक्तुमाह— कृत्वेत्यादि। अग्राभ्यां तर्जनीरूपाभ्याम् अङ्गुलिभ्यां ग्रन्थिं
परस्परसंश्लेषाकारां विधाय तदनु। मध्यसूचीति। मध्यमाभ्यामङ्गुलिभ्यामेव सूच्याकारं
निबिडं कृत्वा। अङ्गुष्ठद्वयं वज्रवद्दृढं संप्रयोज्य। ताम् एवंविधां मुद्रां ललाटदेशस्य
मध्ये संस्थाप्य। आवर्त्यवर्तेनेति। वामदक्षिणावर्तक्रमेण। भ्रामयेत् चालनं कृत्वा
ज्ञानमण्डलमावाहयेत् ।

बाह्यव्याख्या— कृत्वाग्रेति। अग्राभ्यां वामदक्षिणनाडीभ्याम्। ग्रन्थिमिति।
प्राणवायुप्रवेशलक्षणं कृत्वा तदनु मध्यमायां तत्प्रवेशेन सूचिमेकसूचिकवज्राकारां
विधाय। अङ्गुष्ठवज्रमिति दम्भोलिम्। दृढमिति कर्मण्यम्। सम्प्रयोज्येति कृत्वा।
संस्थाप्य। तामिति तं वज्रम्। ललाटदेशमिति कङ्कालमध्ये प्रवेशय। आवर्त्यवर्तेन
पुनः पुनश्चालनरूपेण भ्रामयेत् ॥ ३ ॥

१. एवं मुद्रां ललाटमध्ये- क. ख. टी०

२. आवर्तावर्तभ्रामितेन- नि०

अधिष्ठयेद् योगिनीवीरं मन्त्री द्याकारं संयोज्य च नासिकाग्रे ।
व्याकारं विन्यस्य च लिङ्गवरटके मुखादिके मन्त्रगणेन^१ सार्धम् ॥४॥

इदानीं समापत्तिं दर्शयितुमाह— अधिष्ठयेदित्यादि । अधिष्ठयेदिति मन्त्रोच्चारणपूर्वकं यथास्थानमन्योन्यं चुम्बयेत् । योगिनीवीरमिति^२ देवी देवश्च । अद्वयमिति समापत्तिनिमित्ताम् । नासिकाग्र इति कमलनासायाम् । लिङ्गवरटके इति वज्रवरटके । अधिष्ठयेन्मन्त्रगणस्य सार्धमिति । भगवद्भगवत्योर्हृदयोपहृदयमन्त्रोच्चारणपूर्वकं नाभिप्रभृतिषु भगवद्भगवतीं स्वपेदित्यर्थः ॥ ४ ॥

एवं द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां साक्षात् तदाकर्षणमभिधाय मण्डलोपसंहारविधिं वक्तुं तदङ्गं प्रधानभूतप्रज्ञोपाययोश्चित्तधारणार्थं बीजमाह— अधिष्ठयेदिति । अधितिष्ठेत् । किमित्याह— योगिनीवीरमिति । भगवती वज्रवाराही भगवद्रूपमात्मानं सर्वविकल्पनिर्भयत्वेन वीररूपम् । क इत्याह— मन्त्री मन्त्रनयभावको योगी । कथमधितिष्ठेदित्याह— द्याकारं संयोज्य चेति । द्याकारमक्षरं भगवतीस्वभावायाः स्वाभायाः पद्मनासिकाग्रे बोधिचित्तधातुस्तम्भनार्थम् । संयोज्येति सम्यङ्नियोजयेत् । यदुक्तम्—

तालुदेशे भवेद् देव्या तुरीयस्य तृतीयकम् ।

अष्टकात्प्रथमं बीजं षोडशात्प्रथमात्परम् ॥ इति ।

द्या(व्या)कारं विन्यस्य च लिङ्गवरटके इति । आत्मनो लिङ्गस्य वरटके मणिप्रान्ते व्याकारं विन्यसेत् । पूर्ववच्चरमधातुसंरक्षणार्थम् । तत्र च बीजन्यासं कृत्वा स्वयं प्रज्ञोपायाद्वयेनानन्दाद्यवस्थानानुभवः कर्तव्यः । एतच्च समनन्तरमेव वक्ष्यति ॥ ४ ॥

१. गणस्य- नि०

२. 'यथा-----चुम्बयेत्' नास्ति- भो०

३. मिति ललाटमध्ये- भो०

४. अधिष्ठयेत्- भो०

अधिष्ठयेन्नाभौ हृदि च योगिनीं बुद्धडाकिनीम् ।
 १जिह्वावधूतीद्वये वीरं योगिनीवीरमद्वयम् ॥ ५ ॥

योगिनी बुद्धडाकिनीति वज्रवाराही । जिह्वेति जिह्वायाम् । अवधूती-
 द्वयेनेति भगवद्भूदयोपहृदयमन्त्राभ्याम् । वीरमधिष्ठयेदिति । २वीरं भगवन्तं
 नाभिप्रभृतिषु ३चुम्बयेत् । योगिनीवीरमद्वयमिति । सर्वमेतत् कृत्वा योगिन्या
 सह वीरं समापन्नं भावयेदित्यर्थः ॥ ५ ॥

एवं प्रधानभूतप्रज्ञोपाययोश्चित्तधारणार्थं बीजन्यासमभिधाय स्थानवर्णनपूर्वकं
 परिवारभूतप्रज्ञोपायानामुपसंहारस्वरूपं वक्तुमाह — नाभावित्यादि । यथाक्रमं निर्माण-
 धर्मसंभोगमहासुखचक्रस्थानेषु मन्त्रगणेन पुकारादिना । सार्धमिति सह तद्रश्मिभिर्वा
 परिवारभूतं प्रज्ञोपाय[योः]----- । अधिष्ठयेदित्यधितिष्ठेत् । वक्ष्यमाणप्रक्रियया
 तेषूपसंहरेदित्यर्थः । कथं यथेत्याह — नाभौ हृदि योगिनी [बुद्धडाकिनी] धर्मचक्रद्वये
 उपायसम्बन्धिनि, योगिन्यः पञ्चचक्रस्थाः, बुद्धडाकस्य तदाकारस्य चात्मनो जिह्वेति
 संभोगचक्रे,-----अवधूतीति वायुधातुविशुद्धिरूपे महासुखचक्रे, एतस्मिन् द्वये ।
 वीरमिति चतुर्विंशतिवीरान् । अधिष्ठयेदिति उपसंहरेदधितिष्ठेत् । चक्रचतुष्टया-
 द्रश्मिचक्रं संस्कार्य अन्तरूपसंहरेदित्यर्थः । एवं परिवारभूतप्रज्ञोपाययोरुपसंहारस्वरूप-
 मभिधाय प्रधानभूतप्रज्ञोपाययोर्विशिष्टावस्थानुभवनमाह — योगिनीवीरमद्वयमिति ।
 प्रधानभूतं वज्रवाराहीश्रीहेरुकरूपमद्वयमिति । अद्वययोगेनावयवद्वयैः(ये) पूर्वोक्तबीज-
 द्वयं भावनापूर्वकं महासुखानुभवेन पारिशेष्यादवस्थितमित्यर्थः । एवंभूतं च प्रज्ञो-
 पायद्वयं स्वरूपानुपलम्भादानन्दाद्यवस्थारूपेणावस्थितमिति । ५ ॥

-
१. 'जिह्वा' नास्ति- भो०
 २. नास्ति- भो०
 ३. नास्ति- भो०

आनन्दं प्रथमं वीरं परमानन्दं तु योगिनी ।

सुरतानन्दं समस्तं वै^१ तत्सुखोपायसर्ववित् ॥ ६ ॥

समापत्तिप्रयोजनमाह— आनन्दमित्यादिना । वीरमिति वीर इव । योगिनीति योगिनीव । सुरतानन्दं प्रति प्रज्ञोपा^२यत्वमनयोरिति भावः । समस्तं वै इति सर्वमेव त्रयमपीत्यर्थः । तदेवाह— तदित्यादिना । तत्सुखेति स सुरतानन्दः । उपायेति चालनलक्षणो व्यापारः । सर्वविदिति संभोगकायात्मकं सांवृतबोधिचित्तम् । सहजसामान्येन त्रयमपि सहजानन्दस्वरूपमित्यर्थः ॥ ६ ॥

आनन्दमिति किञ्चित् सुखस्वरूपम् । वीरमिति वीरः साधकः, स्वरूपार्थसम्पदोः पारगमनार्थमारब्धवीर्यत्वात् । स एवानन्दः । आनन्दादन्यस्य सुखभोक्तृत्वायोगात् । परमानन्दं तु योगिनीति । तस्य प्रज्ञास्वभावत्वात् । तच्च सुखस्य सातिशयत्वेन । सुरतानन्दस्तृतीयः । सुरतसमानेनैकीकृत्य गणनात् । समस्तं वै इति सर्वमेव त्रयमपीत्यर्थः । तदेवाह— तत्सुखोपायसर्वविदिति । भावनाजनितं सुखं तत्सुखम् । उपायो [योग]विदेवता । उत्पत्तिक्रमेण चत्वार आनन्दा भाव्यन्ते, आनन्दस्वभावानां तेषां क्रमेणोत्पत्तेः । ईदृक् [क्रमो हेवज्रपञ्जिकायाम्] अष्टमपटले आचार्यरत्नाकरशान्तिना विभक्तः । अन्ये तु आनन्दमिति । लोकोत्तरं च मनस्कार-----न्या सह निबिडतरस्पर्शाकाङ्क्षालक्षणमानन्दं वर्णयन्ति । तमेव वीरमिति । तत्काले मनस्कारान्तरलक्षणस्य दुःखात्मकस्यानुपलब्धसर्वविकल्पनिर्भयत्वात् श्रीहेरुकाकारमेव परमानन्दमिति सुखवाञ्छालक्षणम् । योगिनीति वज्रवाराही । सर्वास्वप्यवस्थासु सुखस्वरूपपरिहारेणानवस्थितत्वेन तद्भावनैकात्मकत्वात् । सुरतानन्दमिति । योगी विरमस्वभावम् । समस्तमिति । प्रज्ञोपायसमापत्या व्याद्याबीजाभ्यां बोधिचित्ते स्तम्भिते सति समस्तसुखनिष्पादकत्वात् । तत्सुखोपायेति । एतच्च त्रयं तस्य लोकोत्तरस्य दार्ष्टान्तिकसहजलक्षणस्य । उपाय इति । उपायभूतं व्यञ्जकहेतुरूपं

१. 'वै' नास्ति- क. ख., अशेषं- भो०

२. पायाद्वयमिति- भो०

३. कथितमपी- भो०

दृष्टान्तम्, सहजक्रमेण तस्यानुभूतेः। यश्चोपायभूतं तत् सर्वविदिति। सर्वेषां स्वाल-
क्षण्येन ज्ञानविनिवृत्त्या केवलमहासुखरूपत्वेन तत्संवेदनात्सर्वज्ञज्ञानरूपमित्यर्थः ॥ ६ ॥

स्वर्गं मर्त्यञ्च पातालमेकमूर्तिर्भवेत् क्षणात् ।
भावना^१ऽहम्मयं प्रोक्तं संहारं तु विधिः स्मृतम् ॥ ७ ॥

सहजानन्दस्य माहात्म्यमाह— मर्त्येत्यादिना। ^२एकमूर्तिमिति एक-
स्वरूपम्। क्षणादिति सहजानन्दात्। सहजानन्दबलान्मर्त्यादिकं महा-
सुखस्वभावं भवतीत्यर्थः। भावनाति मया प्रोक्तमिति। मुद्रामन्त्राभ्यां
ज्ञान^३चक्राकर्षणभावना प्रोक्तैव। संहारं त्विति। आनीतज्ञानचक्रस्यात्मनि
प्रवेशः। विधिः स्मृतमिति यथाविधि। विस्तरतन्त्रे कथितः। स इदानीं
कथ्यत इति शेषः ॥ ७ ॥

एवं प्रधानभूतप्रज्ञोपाययोर्विशिष्टावस्थानुभवनं प्रतिपाद्य तदनुशंसं वक्तुमाह—
स्वर्गमर्त्यमिति भुवनत्रये। एकमूर्तिरिति प्रज्ञोपायाभिन्नमूर्तिः। भवेदिति स्यात्। कथं
क्षणादिति। मण्डलचक्रस्य पूर्वोक्तन्यायेनोपसंहारक्षणादित्यर्थः। एवं तदनुशंसमभिधा-
योपसंहारानुवादपूर्वकं प्रकारान्तरेणोपसंहारं वक्तुमाह— भावनेत्यादि। समनन्तरोक्त-
भावना। मयेति श्रीहेरुकेन(ण)। प्रोक्तेति कथिता। प्रथमपटलादारभ्याष्टमपटलार्ध-
पर्यन्तप्रपञ्चरूपा। संहारमिति। अष्टमपटलार्धेन समनन्तरप्रक्रियया संहारस्य परिवारो-
पसंहारस्याऽपि विधिः प्रकारः। स्मृतमिति। स्मृतः कथितः ॥ ७ ॥

वामदक्षिणपाणिभ्यां भ्रमन्तं डाकिनी तत्सुखम् ॥ ८ ॥

^४इति योगिनीसञ्चारे ज्ञानचक्रा^५कर्षणसं^६हारनिर्देशोऽष्टमः ॥ ८ ॥

१. भावनाति मया- नि०, भावनामयं- भो०

२. इतः पूर्वं 'मर्त्यमाकाशं रूपमरूपम्'- इत्यधिकः पाठः- भो०

३. मण्डलाकर्ष- भो०

४. 'इति' नास्ति- भो०

५. चक्रावाहन- भो०

६. सञ्चार- क. ख. ग., गृहीतपाठस्तु भोटानुसारी।

संहारमेव ^१दर्शयति— वामेत्यादिना । भ्रमन्तमिति भ्रामणेन । डाकिनी तत्सुखमिति । ^२तया मुद्रया योगिनीनां सन्तोषो जायते । ॐ योगशुद्धाः सर्वधर्मा योगशुद्धोऽहमिति मन्त्रोच्चारणपूर्वकमनया मुद्रया ज्ञान^३मण्डलं समयमण्डले प्रवेशयेदिति भावः ॥ ८ ॥

इति अष्टमो निर्देशः ॥ ८ ॥

उक्तोऽपि प्रकारान्तरेणाख्यायते— वामदक्षिणपाणिभ्यामिति । भगवतो द्वादश-भुजस्य सव्यापसव्यभुजानां यथाक्रमं वीरवीरिण्युपसंहारं कुर्यात् । वामदक्षिणभुजेभ्यो रश्मिचक्रं संस्कार्य बहिः पञ्चसु चक्रेष्ववस्थितं वीरवीरिणीवृन्दं तेनाकृष्य तत्र प्रवेशयेत् । तदेवाह— भ्रमन्तमिति । मण्डलचक्राकारेण परिभ्रमदवस्थितम् । डाकिनी तत्सुखमिति । डाकिनी तदुपायात्मकमित्यर्थः । इयञ्च भावना समाधित्रयभावनापर्यन्तं कर्तव्या ॥ ८ ॥

इति श्रीपण्डिताचार्य-अलककलशविरचितायां योगिनीसञ्चारतन्त्रटीकायाम्
उपदेशानुसारिण्यभिधानायामष्टमपटले विस्तरव्याख्या ॥

*

-
१. कथयति- भो०
२. मन्त्रमुद्रया- भो०
३. ज्ञानचक्रं- भो०

नवमो निर्देशः

ततः—

१नैर्माणिकं तु ज्ञातव्यं संभोगं २कामतः शृणु ।

महायानं महामुद्रा योगिनी ३सिद्धिदास्तथा ॥ १ ॥

तत इत्यादि । नैर्माणिकमिति । जगदर्थं प्रति स्फुरणसंहरणात्मकं देवतादेहं निर्माणकायस्वभावम्, ज्ञात्वेति शेषः । ज्ञातव्यं संभोगं कामतः शृण्विति । अतोऽनेन वक्ष्यमाणक्रमेण ज्ञातव्यं संभोगकायं शृण्विति सम्बन्धः । महायानमिति । यान्ति तदिति यानम्, महच्च तद् यानञ्चेति महायानम् । महामुद्रेति श्रीसंवरशरीरम् । योगिनीनां सिद्धिदास्तथेति । तथा तादृशेन रूपेण योगिन्यादीनां कूटागारस्थितानां धर्मदेशनाद्वारेण सिद्धिं ददातीत्यर्थः । अत एव धर्मसंभोगद्वारेण कूटागारस्थितदेवताभिः संभुज्यमानत्वात् संभोगकाय इत्युच्यते ॥ १ ॥

एवमष्टमपटलेन ज्ञानचक्राकर्षणमण्डलोपसंहारं प्रतिपाद्य पूर्वोक्तभावनायाः कायत्रयरूपेण संग्रहं वक्तुं नवमनिर्देशमुद्दिशन् प्रथमं तावद् व्याख्यानप्रतिज्ञामाह— तत इत्यादि । अष्टमपटलव्याख्यानानन्तरम् । नैर्माणिकमिति । बहिर्निर्माणकायं समयसत्त्वस्वभावेन निष्पन्नं सत्कायाद्यधिष्ठानादिना विनेयेषु दृश्यतां गतं मन्त्रचिह्नपरिणामेन चतुर्वक्त्रद्वादशभुजाकारनिर्माणात् । ज्ञातव्यमिति । योगिना भावनाबलेनाधिगन्तव्यम् । संभोगमिति । संभोगकायज्ञानसत्त्वरूपं वक्ष्यमाणप्रतिपादितविधिना पुल्लीरमलयादिषु देशेषु चतुर्विंशतिवीरारूपेणावस्थितम्, रागजातीयसत्त्वविनयेन पूर्वोक्तेष्वेव देशेषु तदनुकूलधर्मसम्भोगप्रतिपादनात् । अत इति । संभोगकायव्याख्यानान्तरम् । शृण्विति । वज्रपाणेः श्रवणे विनियोजनात् । महायानं महामुद्रेति । उत्पत्तिक्रमे समाधिसर्वाकारा मन्त्रमहायाने या फलभूता प्रहाणज्ञानात्मिका

१. निर्मा- क. ख. ग. भो०

२. च अतः- क. टी०, आत्मनः- भो० (फु०)

३. योगिनीनां- नि० टी० भो०

महासुखानुबिद्धा महती तथताकारत्वेन व्यापिनी मुद्रा । मुदं सहजानन्दाकारं राति आददातीति कृत्वा धर्मकायस्वभावा । कीदृशीत्याह— योगिनीनां सिद्धिदेति । योग उच्यते क्रमद्वयभावनामुखेन विकल्पप्रहाणात्मकः, स विद्यते यस्याः सा योगिनी, अविकल्पसंविदात्मिका, तद्रूपां सिद्धिं परेषां ददातीति योगिनीसिद्धिदा, तां वक्ष्य इति सम्बन्धः । अथवा योगिनी समयमुद्राकारा, तद्द्वारेण तदद्वययोगोपदेशेन रागिणां सिद्धिं विकल्पक्षयरूपां ददातीति सा, तथा ॥ १ ॥

महामुद्रात् परं नास्ति सर्वयोगेषु चोत्तमम् ।

श्रीहेरुकमहाराजं^१ सर्वयोगेश्वरे^२श्वरम् ॥ २ ॥

महामुद्रादिति । ३महामुद्रायाः, परं नास्तीति । अन्यच्छ्रेष्ठं न विद्यते । कुत इत्याह— सर्वयोगेषु चोत्तममिति । यस्मादयं सर्वयोगान्(नां) मध्ये उत्तमो योगस्तस्मादित्यर्थः । कः पुनरसावित्याह— श्रीहेरुकमहाराजं सर्वयोगेश्वरं प्रभुमिति । सर्वं सुगमम् । सर्वत्र प्रथमार्थं द्वितीया ॥ २ ॥

एवं कायत्रयव्याख्यानप्रतिज्ञां प्रतिपाद्य साक्षात् तद्देशनां वक्तुं तदङ्गप्रवृत्ति-क्रमतद्व्याख्यानार्जं धर्मकायस्वरूपमाह— महामुद्रेति । समनन्तरव्याख्याता । तस्याः सकारा(शा)त् । परमिति । विशिष्टमुत्तरोत्तरमधिगन्तव्यम् । नास्ति, अशैक्षमार्गरूप-त्वात् । सर्वयोगेष्विति । उत्पत्तिक्रमनिष्पन्नक्रमैकदेशलक्षणेषु बाह्येषु पारमितादर्शन-प्रसिद्धेषु मध्ये । उत्तममिति । उत्कृष्टम्, समस्तबुद्धगुणानां सास्पन्द(निष्पन्द)भूतत्वात् । एवंभूता महामुद्रा का स्यादित्याह— श्रीहेरुकमिति । वक्ष्यमाणोक्तन्यायेन चतुर्वि-मोक्षमुखरूपो यो महाराजा महतां पञ्चानां तथागतानां राजा स्वामी, तम्, एवंभूता महामुद्रेत्यर्थः । कीदृशम्? सर्वयोगेति । सर्वेषामुत्पत्तिक्रमोक्तानां वज्रचतुष्कसूर्यवज्र-पञ्जराभिसम्बोधिसमाधित्रयरूपाणां योगानां चित्तैकाग्रताहेतुभूतानां मध्ये, ईश्वरा मूर्द्ध प्राप्ता निष्पन्नक्रमसङ्गृहीता मन्त्रौल्यादयः, तेषामपीश्वरं सर्वाकारसम्पत्समन्वागतत्वेन फलभूतगुह्यौलिलक्षणम् ॥ २ ॥

१. महाराजा- टी०

२. योगेश्वरं प्रभुम्- नि०

३. देवकायमहा- भो०

डाकिनीजालसंवरात् सकाशात् खसमोद्धृतम् ।

१अदोषस्तु (दोषं तु) शाश्वतपदं सर्वज्ञज्ञानतन्मयम् ॥ ३ ॥

खसमोद्धृत इति । उत्तमत्वादेव खसमसंज्ञकात्तन्त्रादुद्धृत इत्यर्थः । सर्वज्ञज्ञानतन्मयमिति । सर्वज्ञानां सम्यक्संबुद्धानां यज्ज्ञानं महासुखाख्यं तत्स्वभावोऽसाविति भावः ॥ ३ ॥

एवं धर्मकायं प्रतिपाद्य निर्माणकायव्याख्यानार्थमाह— डाकिनीजालसंवर-
मिति । डाकिनीनां सर्वाकाशचरसिद्धिहेतुभूतानां जालस्य सप्तत्रिंशदात्मकमण्डल-
चक्रस्य संग्रहस्य स्वयं वीरस्फरणेन च सम्भवं भूयेति गमयत्युत्पादयतीति कृत्वा
डाकिनीजालसंवरम् । बहिःकृतपुण्यानां सत्त्वानां मुखभुजवर्णसंस्थानाकारेणाधि-
पतिपरिवाररूपत्वेन प्रतिभासरोचनीभावेन निर्माणकायरूपमित्यर्थः । कीदृश-
मित्याह— सकाशात् खसमोद्धृतम् इति । खसमतन्त्रस्य लक्षाभिधानस्य सकाशाद-
भ्यन्तराद्यत्तदुद्धृतमिति । निर्माणकायात्मकः सन्वेद(ह?) आनीतः, तत्प्रतिपादितक्रम-
द्वयभावनेन यथासंभवं तस्य निष्पत्तेः, तम् । अन्यच्च कीदृशम्— सर्वज्ञज्ञानतन्मय-
मिति । महासुखा[द]प्यतिभिन्नत्वेन मण्डलमाण्डलेयाद्याकारेण च सर्वधर्मपरिज्ञानात्
सर्वज्ञः । तस्य ज्ञानं सर्वविकल्पप्रहाणबलेन निष्पन्नं सुविशुद्धधर्मधातुस्वभावम् ।
तन्मयमिति । तदाधिपत्यतस्तस्य निष्पत्तेर्वस्तुतः शून्यतार्थम् ॥ ३ ॥

श्रीहेरुकं परं वीरं सर्वज्ञज्ञानमेलकम् ।

सोमपानाद् भवेत् सिद्धिः शाश्वतं परमं पदम् ॥ ४ ॥

श्रीहेरुकं परं वीरमि^३त्यनेन सुगमश्लोकेन मध्ये गणभोजनं^४ सूचितम् ।
अनेनैव योगेन समानाशययोगिभिः सह सोमपानादिविधिना लौकिक-
लोकोत्तरसिद्धिं साधयेदिति ख्यापनार्थम् ॥ ४ ॥

१. 'अदो----पदं' अयं पादो नास्ति- क. ख. टी० नि०, गृहीतस्तु भोटानुसारी ।

२. सर्वसज्जन- भो०

३. मिति सुगमम् । अनेन श्लोकेन- भो०

४. जनमपि- भो०

अन्यच्च— श्रीहेरुकेति । श्रीमुख्यो हेरुकः श्रीहेरुकः । सम्भारद्वयबलेन निष्पत्तेः, तम् । परं वीरमिति । तदन्यवीरविलक्षणत्वेन हस्तावरणविनिवारणशूरत्वात् तथा । सर्वसंज्ञानमेलकमिति । सर्वेषामशेषाणां संज्ञानानामभिषिक्तत्वात्तदन्यपृथग्जनपुरुष-विशिष्टानां मेलकमिति मेलापकम्, अनवरतं गणचक्रादिविधानेन क्रमद्वयभावेन च यथासंभवं तस्य निष्पत्तेः । अथवा सज्जनमेलापकं कृतपुण्यपृथग्जनगोचरम् । अत एव पूर्वोक्तव्याख्यानानुकूलत्वेनाह— सोमपानादिति । कृते गणचक्रे विशिष्टसमयाव्यव-हारेण शशिविलक्षणो उपलक्षणत्वात् पञ्चामृतास्वादेन । सिद्धिरिति । श्रीहेरुकपद-प्राप्तिरूपा भवेत्, तादृशम् । अथवा विहिते गणचक्रे परस्परयोगियोगिनीसमापत्त्या समुद्भूतशशिनो^१ऽधराजिह्वाद्वारेण तत्पानात् सिद्धिः श्रीहेरुकपदप्राप्तिरूपा भवेत्, तादृशं निर्माणकायमित्यर्थः । अन्यच्च कीदृशम्— शाश्वतमिति । प्रबन्धनित्यत्वात् । परमं पदमिति । तद्विनेयानां तद्दर्शनेन परमपदप्राप्तेः ॥ ४ ॥

पुकारादि समायोज्य^२ देशे देशे व्यवस्थितम् ।

श्रीहेरुकात्म विन्यस्य चतुर्विंशतिमक्षरम् ॥ ५ ॥

पुकारादि समायोज्येति । पुल्लिङ्गमलयादिकं बुद्धावारो[प्य] देशे देशे व्यवस्थितमिति । तेषु तेषु देशेषु व्यवस्थितं प्रचण्डादिदेवतीगणम् । श्रीहेरुकात्मेति श्रीहेरुकात्मनि, भावयेदित्यध्याहार्यम् । कथं भावयेदित्याह— विन्यस्य चतुर्विंशतिमक्षरमिति । पुकारादीनि चतुर्विंशत्यक्षराणि शिरः-प्रभृतिषु विन्यस्य तत्तद्गता नाडीः प्रचण्डादिरूपेण भाव्यमिति भावः ॥ ५ ॥

एवं निर्माणकायमभिधाय संभोगकायं वक्तुमाह— पुकारादिकमिति । मण्डल-चक्रपुल्लीरमलयादिषु स्थानेषु बाह्यपीठलक्षणेषु समयमुद्राकारयोगिनीनिर्माणेन सत्त्व-धातुविनयनार्थमवस्थानात् । पुल्लिङ्गमलयादिस्थानसंग्रहेण देशे देशे इति । अकनिष्ठा-दिभुवनेषु । व्यवस्थितमिति । विशिष्टधर्मसंभोगाना[मभि]भवनाय । कथं देशे देशे व्यवस्थितमित्याह— श्रीहेरुकात्मेति । श्रीहेरुकात्मकं भूमीश्वरगोचरं मण्डलचक्रस्य

१. 'शशिनोदधीधरा' इति मातृकापाठः ।

२. समाकृष्य- क. ख. टी०

मध्येऽकनिष्ठादिभुवनेषु। विन्यस्य चतुर्विंशतिमक्षरमिति। चतुर्विंशत्यक्षरैः कायं विशोधयित्वा तदात्मकमित्यर्थः ॥ ५ ॥

सांभोगिकं तु ^१ज्ञातव्यं महायोगव्यवस्थितम् ।
प्रवृत्तिं तु समासेन ^२ज्ञापयेद् बुद्धितत्परम् ॥ ६ ॥

उपसंहरन्नाह— सांभोगिकमित्यादि। इत्यनेन क्रमेण सांभोगिकमिति संभोगकायः। ख्यातमिति कथितः। महायोगव्यवस्थितमिति। महायोग-समाधिमवशीकृत्य व्यवस्थितमित्यर्थः। प्रवृत्तिं त्विति। अनेन क्रमेण श्री-हेरुकस्योत्पत्तिं ज्ञापयेदिति जानीयात् ॥ ६ ॥

सांभोगिकमिति बुद्धक्षेत्रावस्थितम्। ज्ञातव्यमिति अधिगन्तव्यम्। महायोग इति निरुपमसमाधिलक्षणे व्यवस्थितम्। एवं संभोगकायं व्याख्याय प्रवृत्तिक्रमोप-संहारं वक्तुमाह— प्रवृत्तिमिति। कायत्रयस्य। समासेनेति संग्रहेण। बुद्धितत्पर-मिति। मण्डलचक्रस्य कायत्रयसंग्रहे कुशलः(लं) गृहीतवीर्यम्। ज्ञापयेदिति जानी-यात् ॥ ६ ॥

^३निवृत्तिस्तु यथोद्दिष्टं कथ्यते शृणु साधक ।
श्रीकारमद्वयं ज्ञानं हेति हेत्वादि^४शून्यता ॥ ७ ॥

निवृत्तिं तु यथोद्दिष्टं कथ्यत इति। यथा तस्य निवृत्तिर्निषेधो धर्मकाय-भावनया कथिता सा कथ्यत इत्यर्थः। श्रीकार^५मित्यादि सुगमम् ॥ ७ ॥

एवं चतुर्भिर्र्थैः प्रवृत्तिक्रमेण कायत्रयमभिधाय निवृत्तिक्रमेण तद्व्याख्यानार्थमाह— निवृत्तिरिति। कायत्रयोपसंहाराकारा। कथ्यत इति अभिधीयते। कथमित्याह—

-
१. ख्यातं- नि०
 २. ज्ञातव्यं- भो०
 ३. निवृत्तिं- क. ख. नि०, गृहीतपाठस्तु टीकानुसारी ।
 ४. वर्जितम्- टी०
 ५. रमद्वयज्ञानमि- भो०

यथोद्दिष्टमिति । उपसंहारक्रमेण विशुद्धिलक्षणम् । शृण्विति श्रुतेति वियोजना । साधकेति । आमन्त्रणे, श्रीहेरुकपदसाधनात् । एवं व्याख्यानप्रतिज्ञामभिधाय भगवत्तत्त्ववर्णनमाह— श्रीकारमिति । अद्वयं ज्ञानमिति । अद्वयं निर्विकल्पं ज्ञानम्, द्वयरूपतादारिद्र्यविनिवृत्तेः । हेत्वादिवर्जितमिति । शून्यतोत्पादकहेत्वनुपपत्तेः ॥ ७ ॥

रुकारोऽपगतव्यूहं क इति न क्वचित् स्थितम् ।

एते स्वभावतः ^१शून्यं सर्वगामि अनाहतम् ॥ ८ ॥

एते स्वभावतः शून्यमिति । एते भुज^२मुखादयः स्वभावतो ग्राह्य-ग्राहकाकारेण शून्यं निःस्वभावाः, परमार्थतो महासुखस्वभावत्वात् । तच्च महासुखं सर्वगामीति । सर्वस्य जगतो व्यापकम् । अनाहतमिति । ग्राह्यादिविकल्पैरप्रतिहतम् ॥ ८ ॥

अपगतव्यूहमिति । अनिमित्तं समस्तप्रपञ्चविनिवृत्तेः । न क्वचित् स्थितमिति । अप्रणिहितम्, अप्रतिष्ठितनिर्वाणस्वभावत्वात् । एवं त्रिविमोक्षमुखोपायलभ्यमद्वयज्ञानं श्रीहेरुकस्य विशुद्धिः । एवं द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां निवृत्तिक्रमेण तद्विशुद्धिं प्रतिपाद्य कायत्रयभावनानुशंसामाह— एत इति । त्रयोऽपि कायाः । स्वभावतः शून्यमिति । आदित एव शून्यताकाराः, अनुत्पन्नत्वात् । सर्वगामीति सर्वगामिनः, व्यापकत्वात् । तच्च त्रिप्रकारनित्यतारूपत्वेन । अनाहतमिति केनचित् प्रतिहन्तुमशक्तेः ॥ ८ ॥

भावयित्वा समासेन सिद्धिमायाति कामिकीम् ।

धर्मसंभोगनिर्माणकायत्रयविभावनात्^३ ॥ ९ ॥

भावयित्वेत्यादि सुगमम् ॥ ९ ॥

१. शून्या- क. ख. ग. भो०

२. भुजपादादयः- भो०

३. विभावितम्- क. ख. ग. भो० गृहीतस्तु टीकानुसारी ।

भावयित्वेति । अभ्यासं कृत्वा । समासेनेति मण्डलचक्रसंग्रहेण । सिद्धिमिति विमुक्तिलक्षणां महामुद्रात्मिकाम् । आयातीति गच्छति । कीदृशीम्? कामिकीमिति अभिप्रेतलक्षणाम् । एवं भेदप्रभेदाः (दां) साक्षात्तद्देशनां प्रतिपाद्य तदुपसंहारं वक्तुमाह— धर्मसंभोगेति । समनन्तरोक्तकायत्रयविभावनात् ॥ ९ ॥

सप्तत्रिंशत्तु बोधिः^१ स्यात् तत्र सं^२भाव्यते ध्रुवम् ॥ १० ॥

इति योगिनीसञ्चारे प्रवृत्तिनिर्देशो नवमः ॥ ९ ॥

सप्तत्रिंशत्तु बोधिः स्यात् तत्र संभवते ध्रुवमिति । ये सप्तत्रिंशद् बोधि-पाक्षिका धर्माः सन्ति, ते तत्र भावनायां सम्भवन्तीत्यर्थः ॥ १० ॥

इति नवमो निर्देशः ॥ ९ ॥

सप्तत्रिंशदिति । सप्तत्रिंशदात्मकमण्डलचक्रस्तु बोधिपाक्षिकधर्मरूपेण भावनात् । बोधिः स्यादिति । कायविवेकादिलक्षणात् । तवे (त्रे)ति । तस्यां बोधौ सत्याम् । ध्रुवमिति निश्चितम् । संभवत इति सम्यक् भवति । कायत्रयमिति शेषः ॥ १० ॥

इति श्रीपण्डिताचार्य-अलककलशविरचितायां योगिनीसञ्चारतन्त्रटीकायाम् उपदेशानुसारिण्यभिधानायां नवमपटले विस्तरव्याख्या ॥

*

-
१. बोधिपक्षः- भो०
 २. संभवते- नि० टी०
 ३. 'इति' नास्ति- भो०

दशमो निर्देशः

ततश्च—

भावनाखिन्नः^१ संहार्य चर्यारूपं^२ विशेषतः ।

योगवियोगं न कर्तव्यमेतेषां चर्यायोगिनाम् ॥ १ ॥

तत इत्यादि । भावनाखिन्नः संहार्येति । यदा भावनया खिन्न उत्थातुकामो भवति, तदाऽऽत्मनि माण्डलेयदेवताः संहृत्य उत्तिष्ठेदित्यर्थः । उत्थाय किं कर्तव्यमित्याह— चर्यारूपेत्यादि । चर्यारूपविशेषत इति । असमाहितचर्यायाम् । योगवियोगमिति । श्रीसंवराहङ्कारपरिहारः । एतेषामिति । अनेन । चर्यायोगिनामिति । असमाहितचर्यायुक्तेन ॥ १ ॥

एवं नवमपटलेन कायत्रयरूपतामभिधाय पर्यन्ते विघ्नोपशान्त्यर्थमाध्यात्मिक-पूजार्थं च बल्युपचारदशमीपरिपालनं वक्तुं दशमपटलमुपक्षिप्य प्रथमं व्याख्यान-प्रतिज्ञाप्रायां पीठिकां वक्तुमाह— तत इति । कायत्रयव्याख्यानन्तरम् । भावनाखिन्न इति । समाधित्रयभावेन कायवाक्चित्तानां परिखेदे सति । संहार्येति । मण्डल-चक्रादिकमुपसंहृत्य । चर्यारूपं कुर्यादित्यध्याहार्यम् । असमाहितयोगाकारं चर्यारूपं श्रीहेरुकाकारमहङ्कारमात्रम् । कथं— विशेषत इति । प्राकृताहङ्कारविनिवृत्तिलक्षणे-नैव विशेषेण । यदि भावनाखेदे सति चर्यारूपं न कृतं तदा किं स्यादित्याह— योग इति । प्राकृताहङ्कारविनिवृत्तिलक्षणे योगसमाधिविशेषे । वियोगमिति । विरहितत्वं परित्यागलक्षणं न कर्तव्यम्, पुनरपि देवताहङ्कारोपमर्दनेन प्राकृताहङ्कारस्यैव समु-त्पत्तेः । यश्च पुद्गलो योगी वियोगं न करोति, स एव चर्यायोगी भवतीत्याह— एतेषां चर्यायोगिनामिति । असावेव चर्यायोगी यः प्राकृतविकल्पस्य कदाचिदप्यवकाशं न ददाति ॥ १ ॥

१. खिन्नं- क. ख. ग.

२. रूपविशे-नि०

यथावत्पूर्वमुक्तस्य ध्यात्वा [च] विधि^१विस्तरम् ।

दातव्यं स्वेच्छकर्मेषु बलिं दद्याद्विशेषतः ॥ २ ॥

इदानीं बलिविधानं वक्तुमाह— यथावदित्यादि । यथावदिति । अविपरीतम् । पूर्वमुक्तस्य ध्यात्वेति । मुद्रामन्त्राभ्यामानीतं पूर्वोक्तं चक्रं पुरतो विभाव्य । विधीति । वज्राञ्जलिविधिना । विस्तरमिति । प्रचुरतरमद्य-मांसादिकम् । दातव्यमिति । अमृतास्वादविधिनिष्पादितं दातव्यार्हम् । कर्म-ष्विति । शान्तिकादिकर्मनिमित्तम् । विशेषत इति । वामदक्षिणाभ्यां भ्रामण-विशेषेण ॥ २ ॥

कथं कुर्यादित्याह— यथावत् पूर्वमुक्तस्य ध्यात्वेति । प्रथमपटलानन्तरं पूर्वोक्तां यथावदित्यविपरीतेन रूपेण ध्यात्वा भावयित्वा । तच्च विधिनोदितमिति । विधिः भावनापरिपाटिः, तेन उदितं कथितम् । अथवा विधिविस्तरमिति पाठः । एतद् ध्यात्वा बलिं दद्यादिति सम्बन्धः । तदेवाह— दातव्यमिति ढौकयितव्यम् । स्वेच्छकर्मेष्विति स्वेच्छाकर्मणि विघ्नोपशमनादिलक्षणे । बलिमिति त्रिप्रकारम् । कथं दद्यादित्याह— विशेषत इति । विशिष्टेन भावनाविशेषेणेत्यर्थः । स(तां) च पुर-स्ताद् व्याख्यास्यामः । अथवा प्रत्यहं सन्ध्याचतुष्टये बलिविधानस्योपरि कृष्णशुक्ल-पक्षदशमीद्वये विशेषेण बलिं दद्यादात्मना च गणचक्रादिकं विदध्यादित्यर्थः ॥ २ ॥

कृष्णपक्षे दशम्यां च शुक्लपक्षे च तद्भवेत् ।

२[आक्रान्तपादोर्ध्वदृष्टिं तु मूर्ध्ना फेत्कारसंभवम्] ॥ ३ ॥

कृष्णपक्ष इत्यादि सुगमम् । भोजयितव्यचक्राकर्षणविधिमाह— आक्रान्तेत्यादिना । प्रागेव व्याख्यातम् ॥ ३ ॥

१. विधिनोदितम्- टी०

२. अस्य श्लोकार्थस्यात्र निवेशः किमर्थमिति न प्रतीयते । ख. ग. मातृकासु नायं पठ्यते, टीकाकारेणापि न गृहीतः, किन्तु भोट (फु०) पाठे वर्तते, निबन्धकारेणापि पूर्वं (अष्टमनिर्देशे) व्याख्यातमित्युक्त्वा गृहीत एव ।

३ 'विधि' नास्ति- भो०

एवं बलिदाने प्रस्ताववचनं प्रतिपाद्य साक्षाद् बलिविधिं वक्तुं तदङ्गं कालाभिधानपूर्वकं लोकोत्तरमण्डलचक्रबलिमाह— कृष्णपक्ष इति । चन्द्रस्य कला-
हासक्षणरूपे । दशम्यामिति । भगवत्स्त्रिचक्राणां पीठादिभिर्दशभिः संग्रहात्, स्वयं च
भगवतो दशभूमिकक्रमेण निष्पत्तेः । विष्णूत्रादिषड्धातूनां चतुर्भिरानन्दादिभिः सह
वा गणनाद्दशम्येव विशिष्टबलिदानक्षणः । कृष्णपक्षरात्रौ पदार्थानुपलब्धिवदनुप-
लम्भलक्षणस्य तत्त्वस्य संसिद्ध्यर्थं वा । यदुक्तम्—

विष्णूत्रचन्द्रमार्तण्डराहुकालाग्निनाडयः ।

षडानन्दाश्च चत्वारो दशमीति निगद्यते ॥ इति ।

शुक्लपक्षे चेति । चन्द्रस्य कलावृद्धिक्षणरूपे । दशम्यामपीत्यध्याहार्यम् । तद्भवे-
दिति । बलिदानं स्यात्, कर्तव्यमित्यर्थः ॥ ३ ॥

आसु(शु) प्रयत्नात् प्रपूजनीया ^१मद्येन मांसैरपि वज्रदेव्यः ।

पूर्वोक्तमुद्रादिकमन्त्रयोगैः संरक्ष्य ^२रक्ष्येण यथाविधानतः ॥ ४ ॥

एतदेव व्यक्तीकर्तुमाह— पूर्वोक्तेत्यादि । पूर्वोक्तमुद्रेति जालमुद्रा ।
आदिशब्देन पादाक्रमणपूर्वकोर्ध्वदृष्टिः । मन्त्रेति । फेंकारः । योगैरिति ।
एतेषां मुद्रादीनां योजनेन आनीय, मण्डलमिति शेषः । संरक्ष्य संरक्ष्येण
यथाविधानत इति । आत्मानं च यथाविधि श्रीसंवररूपेण विभावितं
कवचद्वयेन कवचयित्वेत्यर्थः ॥ ४ ॥

आस्विति । झटित्याकारयोगेन मण्डलचक्रं निष्पाद्य वज्रदेव्यो लोकोत्तर-
मण्डलचक्राकाराः । प्रपूजनीया अर्चनीयाः । कथमित्याह— प्रयत्नादिति । व्यापा-
रान्तरं परिहृत्य बलिदाने कनिष्ठेन वीर्येणेत्यर्थः । केन वस्तुना पूजनीया इत्याह—
मद्येनेति गुडमार्दवादिभिः । मांसैरिति अयत्नलब्धैरनवद्यैः पिचि(शि)तादिभिर्यथा-
वन्मन्त्रमुद्रादिभिरभिसंस्कृतैः । एक[क]लाभिधानपूर्वकं लोकोत्तरमण्डलचक्रबलिं

१. मद्यैः स्वमांसैः— क. ख. ग., 'मांसैः' नास्ति— भो०

२. नास्ति— भो०, संरक्ष्येण— नि०

प्रतिपाद्य तदुपयुक्तार्थवर्णनार्थमाह— पूर्वोक्तेति । पूर्वमष्ट[म]पटले ज्ञानचक्राकर्षणा-
र्थमुक्ता येयं मुद्रा हस्तमुद्रादिरूपा, तदादिकस्तत्प्रधानो यो मन्त्रः प्रत्येकमधिपति-
परिवारभेदेन भिन्नभिन्नात्मकः ॐ श्रीवज्रहेरुकमित्यादिकः, योगश्च विशिष्टदेव-
ताहङ्कारात्मकः, तैः । अन्यच्च । संरक्षे(क्ष्ये)ति । बलिदायकमात्मानम् । केनेत्याह—
रक्षे(क्ष्ये)णेति । रक्षया कवचद्वयभावनारूपया चतुर्विंशतिवीरन्यासे(स)रूपया च ।
कथं बलिं दद्यादित्याह— यथाविधानत इति । अयमत्राभिप्रायः । त्रिविधो हि बलिः
लोकोत्तरमण्डलचक्रबलिः, चातुर्महाराजकायिकबलिः, सार्वभौतिकबलिश्चेति ।
मन्त्राधोऽन्तरीक्षे यं ज विश्वपद्मोपरि झटित्याकारनिष्पन्नं श्रीसंभरमण्डलमालम्ब्या-
मृतास्वादविधिना बलिपात्रं निर्यात्य मन्त्रेणाधितिष्ठ्य विसर्जयेत् । ॐ सर्वबुद्धक्रोध-
डाकिन्य इमं बलिं प्रतीच्छत समयसममेत्य आः हूँ फट् स्वाहा । ततश्चतुष्पथे
श्मशानादौ निक्षिपेत् । चातुर्महाराजकायिकबलिस्तु स्वधर्माक्षरपरिणता धृतराष्ट्राद्या
महाराजानश्चत्वार एकवक्त्रा द्विभुजाः कुन्तखण्डपाणयः ससन्नाहाः सर्वाभरणाः
सितपीतकृष्णरक्तवर्णाः प्रतिष्ठज्ञानसत्त्वोत्कृष्टकाद्यधिष्ठानाश्च पुरोऽवस्थिता भाव्याः ।
तेषाञ्च चत्वारि पात्राणि भक्ष्यपेयादिपूर्णान्यमृतीकृत्य घण्टाध्वनिना आहूय । मन्त्रे-
णेति । बलिं दद्यात् ॐ धृतराष्ट्रगन्धर्वसेनाधिपतय इत्यादिभिर्मन्त्रैः स्वकस्वकैरनु-
क्रमेण । ततः कृतो व इत्यादिना मुःकारान्तेन विसर्जनं कुर्यात् । अयं चातुर्महाराज-
कायिकबलिविधिः । तत् समाधित्रयान्ते कूटागारबाह्यश्मशानाष्टकस्थितैकवृक्षाष्टको-
परि काकादिरूपाधिपत्यष्टकं विचिन्त्य तत्परिवारत्वेन च यथाक्रमम्—

यक्षराक्षसभूतानि तथा प्रेतपिशाचकौ ।
कुम्भा(कूष्मा)ण्डापस्मृती डाकडाकिनीगणमेव च ॥

विचित्रवृक्षमूलेषु तद्रूपपरिणतान् नदद्घनादाकृष्टकायाद्यधिष्ठानात्(न्) प्रविष्ट-
ज्ञानसत्त्वान् विचिन्त्य तेषां प्रीणनार्थं पात्रं कुम्भं वा भक्ष्यपेयादिपूर्णं सम्बन्धीकृत्य
नग्नो मुक्तशिखो भूत्वा निशाव[सान]समये उच्चस्थाने स्थितः संवक्ष्यमाणमाह्वानं
मन्त्रोदीरणेनाहूय ॐ ख खेत्यादिमन्त्रेण श्मशानादौ बलिं त्यजेत् । बल्यन्ते एते सर्वे
श्रीहेरुकरूपा भाव्याः । इति सार्वभौतिकबलिः ॥ ४ ॥

ॐ आरल्लि होः जः हूं वं होः वज्रडाकिनीसमयस्त्वं दृश्य होः ॥ ५ ॥

मन्त्रमाह— ॐ इत्यादि ॥ ५ ॥

एवं तदुपयुक्तार्थं वर्णयित्वा आह्वानमन्त्रकथनपूर्वं बलिद्रव्याभिधानार्थमाह—
ॐ इत्यादि ॥ ५ ॥

एवं त्रिचतुःपञ्चवारानुच्चार्य समयद्रव्यादि^१सुस्थितम् ।
वज्राञ्जल्यूध्वविकचा वीरयोगि^२न्यभिमन्त्रितम् ॥ ६ ॥

एवमिति । इदं मन्त्रम् । समयद्रव्यादिसुस्थितम् । अभिमन्त्रितमिति
परेण सम्बन्धः । समयद्रव्यं गोकुदहनादिकम् । आदिशब्देन भक्ष्यव्यञ्जना-
दिकमवसेयम् । सुस्थितमिति । अमृतास्वादविधिना सुसंस्कृत्य स्थापितम् ।
ऊर्ध्वविकचेति । ऊर्ध्वविकचया । वीरयोगिनीति । वीराय सप्रज्ञाय डाकि-
न्यादि यममथनी^३यमदाढीभ्यो योगिनीभ्यो दद्यादिति शेषः । खण्डकपाला-
दिवीरेभ्यः पुनः ॐ करकरादिमन्त्रेण एकवारोच्चारितेन दद्यात् ॥ ६ ॥

एवमिति । समनन्तरोक्तमाह्वानमन्त्रं त्रिचतुःपञ्चवारानिति विकल्पे साधकस्य
यथारुचित्वेन । उच्चार्येति उदीर्य । समयद्रव्यादीति । पूर्वोक्तपिशितमद्यादिकम्, पञ्चा-
मृतपञ्चप्रदीपरूपम् । सुस्थितमिति । अमृतोत्पादनक्रमेण साधुतया शोधनादिपूर्वकं
स्थितं काद्याभ्यन्तर इत्यर्थः । एवमाह्वानं मन्त्रकथनपूर्वकं विशिष्टद्रव्यादि(द्य)भिधाय
तदर्थमेव मुद्राकथनार्थमाह— वज्राञ्जल्येति । हस्तद्वयाङ्गुलीनामन्योन्यसंक्लेशं कृत्वा
वज्राञ्जलिर्भवति तेन वज्राञ्जलिना । ऊर्ध्वविकचेति ऊर्ध्वविकासितेन । कीदृशेन
वज्राञ्जलिना वीरयोगिन्याऽभिमन्त्रितमिति । वीरयोगिन्याऽभिमन्त्रितेन । वीराणां षण्णां
तथागतानां वीरिणीनां च तावत्संख्यानां मन्त्रेण ॐ आ इत्यादिनाऽभिमन्त्रितेनेति
यावत् ॥ ६ ॥

१. संस्थितम्- क.

२. योगिनी मन्त्रि- क.

३. नीत्यादि- भो०

ॐ ख २ खाहि २ सर्वयक्षराक्षसभूतप्रेतपिशाचोन्मादापस्मार-
 १डाकिन्यादय इमं बलिं गृह्णन्तु समयं रक्षन्तु २सर्वसिद्धिं मे प्रयच्छन्तु।
 यथैव यथेष्टं ३भुञ्जथ पिबथ मातिक्रमथ मम सर्वाकारतया सत्सुख-
 ४प्रवृद्धये सहायका भवन्तु हुं २ फट् स्वाहा ॥ ७ ॥

ॐ ख ख खाहि खाहीत्यादि। अनेन मन्त्रेण वारद्वयोच्चारितेन
 दिक्पालेभ्यो देय इत्यर्थः ॥ ७ ॥

एवं तदर्थमेव मुद्रामभिधाय सार्वभौतिकबलिदाने मन्त्रमाह— ॐ
 इत्यादि ॥ ७ ॥

वीर^१चक्रादिमन्त्रस्य श्मशानादि तु मण्डितम् ।
 दक्षिणाभिमुखो योगी ५ऊर्ध्वस्थाने६ प्रपूजितम् ॥ ८ ॥

देवतायोगयुक्तो बलिं दद्यादिति दर्शयितुमाह— वीरेत्यादि। वीरो
 भगवान्, स एव तत्त्वमननाज्जगत्त्राणाच्च मन्त्रः। आदिशब्देन वज्रवारा-
 ह्यादिसर्वदेवतानां संग्रहः। तेषाञ्चक्रं कूटागारम्। श्मशानादिमण्डितमिति।
 अष्टश्मशानादिभिर्युक्तम्। आदिशब्दाद्वाह्यवज्रावली१ वेदितव्या। दक्षिणा-
 भिमुख इत्युपलक्षणपरम्। तेन नग्नो मुक्तकेशश्चेत्यवसेयम्। उच्चस्थाने-
 ५विति श्मशानपर्वतादावुच्चस्थाने मृतकोपविष्टः। पूजितमिति भावयेत् ॥ ८ ॥

एवं सार्वभौतिकबलिमन्त्रमभिधाय बलिविशेषं वक्तुमाह— वीरमन्त्रादीति।
 वीरचक्रादिमन्त्रस्येति पाठः। वीरस्य सकलविपक्षनिर्जयेन निर्भयस्य भगवतः

-
१. वज्रडाकडाकि- भो०
 २. समयसिद्धिं- भो०
 ३. 'जिघ्रथ'- इत्यधिकः पाठः- भो०
 ४. विशुद्धये- क. भो०
 ५. सहायिका- भो०
 ६. वीरमन्त्रादिचक्रस्य- क. ख. नि०
 ७. उच्चस्था- नि०, टी०
 ८. तेषु पूजितम्- क. ख. नि०
 ९. वल्यपि- भो०

श्रीहेरुकस्य यदेतच्चक्रादिविज्ञानचक्रानन्तरसमयचक्रपर्यन्तमण्डलचक्रं तस्य सम्बन्धि यत् तन्मन्त्रमिति । मन्त्रैर्भिन्नभिन्नैः । तच्च वीरचक्रं श्मशानादि तु मण्डितमिति । नैरात्म्यद्योतकेनाष्टभिश्चण्डोग्रादिभिः श्मशानैर्मण्डितमलङ्कृतं समयचक्रबाह्ये । तत्र श्मशानाष्टके व्यवस्थितानां नानाप्रकाराणां सर्वभूतानां बलिर्दातव्यः । केन दातव्य इत्याह— दक्षिणाभिमुख इति । तदभिमुखेन योगिना दक्षिणस्यां दिशि सार्वकार्मिक-रूपस्यामोघसिद्धेः स्थानात्तद्दिगभिमुखद्वा (खाद) । योगिन उचितम् । कुत्रेत्याह— उच्चस्थान इति । -----मण्डलचक्रस्य पूर्वोक्तस्याधिमोक्षं कृत्वा तत्रोपरि बलि-र्दातव्यः । प्रपूजितमिति । मण्डलमेव तादृशं [भावनीयम्] ॥ ८ ॥

दातव्यमात्मशक्त्या [च] यथाक्रमोपलक्षितम् ।

पुष्यमासादिमा^१त्मानं दशम्यां पूज्य भक्तितः ॥ ९ ॥

भावयित्वा किं कर्तव्यमित्याह— दातव्यमित्यादि । दातव्यमिति द्रवद्रव्यादिकम् । देवताभ्य उपढौकयेत् । आत्मशक्त्येति । यथाशक्तिविभ-वानुरूपेणेति भावः । यथाक्रमलक्षितमिति । संस्कारं प्रति भावनाक्रमा-नतिक्रमेण भावितमित्यर्थः । इदानीं गणभोजनमाह— पुष्ये त्यादिना । पूज्येति योगिनीनां^२ कृते षपञ्चोपचारपूजां कृत्वा ॥ ९ ॥

[भावयित्वा कर्तव्यमाह—] मण्डलबल्यादिकं दातव्यम् । कथम् ? आत्म-शक्त्या । स्वसमुचितसामग्र्यनुसारेण च । यथाक्रमोपलक्षितमिति । तेन क्रमेण स्व-समुचितेनोपलक्षितम् । तादृशं दातव्यमित्यर्थः । एवं षड्भिरर्थैः साक्षाद्बलिविधि-मभिधाय दशमीपूजनं वक्तुमाह— पुष्यमासेत्यादि । पुष्येण नक्षत्रेण युक्तो मासः पुष्यमासः, स आदिर्येषामेकादशमासानां स पुष्यमासादिः । तदा या(ये) ये मासा माघप्रभृतयः, तेषां यस्मात् पुष्यमासे रात्रेः सरीस(सातिश)येन वृद्धिर्भवति । तत्सर्व-धर्मानुपलम्भमात्मानम् उत्पादयितुं पुष्यमासदशम्यामेव गणचक्रपूजा उचिता । पुष्-पुष्टाविति धातुव्युत्पत्त्या तद्वदविकल्पकपदवृद्धिकरणार्थं तस्मिन् काले कर्तव्यम् ।

१. मात्मस्य- क. ख., नास्ति- भो०, यद् यस्य- ख.

२. आह्वाने कृते- भो०

३. 'पञ्च' नास्ति- भो०

दशम्यामिति । कृष्णशुक्लपक्षसंगृहीतदशमीद्वयं द्वाद[श]भिर्मासैश्चतुर्विंशतिवीरिणी-
संख्यया चतुर्विंशतिदशमीतिथिकालेऽवश्यं पूजयेत् । एतदाह— पूज्येति बाह्याध्या-
त्मिकगुह्यपूजाभिरर्चयित्वा । कथम्— भक्तित इति । स्वपरेषां महासुखपदप्राप्ति-
लक्षणया श्रद्धया ॥ ९ ॥

दातव्यं सर्वस^१द्भावं सर्व^२संज्ञानमेलकम् ।
चरुं च भक्षयेत्तद् द्विपात्राशेषसंस्कृतम् ।
तस्य हस्तगता लक्ष्मीर्न केनापि प्रतिहन्यते ॥ १० ॥

दातव्यं सर्वसद्भावंमिति । सर्वं विद्यमानं भक्तव्यञ्जनादिकं सम्पा-
दनीयम् । सर्वसज्जनमेलकमिति गणमण्डले । तत्रेति गणमण्डले । द्विपात्रा-
शेषमिति । द्रवद्रव्येण सह द्विपात्रगतमशेषं भक्तव्यञ्जनादिकम् । संस्कृत-
मिति । अमृतास्वादविधिनिष्पादितम् । अनुशंसामाह— तस्येत्यादिना ।
कराणामिति कराणि ॥ १० ॥

इति दशमो निर्देशः ॥ १० ॥

सर्वसंज्ञानमेलकं दातव्यमिति सम्बन्धः । सर्वेषां माण्डलेयसंख्यया संज्ञानां
प्राप्ताभिषेकत्वेन समयसंवरावस्थितानां प्रज्ञोपायात्मकानां मेलापकमेकस्मिन्नेव स्थाने
कृत्वा । किं दातव्यमित्याह— सर्वसम्भवमिति समस्तसामग्रीरूपम् । समस्तं खान-
पानवस्त्रालङ्कारादितात्पर्येण दातव्यम् । न केवलमेतद् दातव्यं यावत् चरुमिति ।
विशिष्टं भोज्यवस्तु त[त्र] सज्जनमेलापके । भक्षयेदिति । मन्त्रमुद्राक्रमेणाभिसंस्कृत्या-
ध्यात्मिकं ज्ञानाग्निं सन्तर्पयामीति । द्विपात्राशेषसंस्कृतं कथमित्याह— विधिवदिति ।
तत्र प्रथमं तावत् श्रुतमिति शि(शी)लादिगुणसम्पत्समन्वागतो वज्रधरो का-----
स्थितमिति । अभ्यवहारं कृत्वा अन्यत्पात्रे विशिष्टभाजने अवशेषमुच्छिष्टबलिविधा-
नाय स्थापयित्वा ---सर्वं निःशेषं णं(मश)नायाभ्यवहर्तव्यमित्यर्थः । एवं गणचक्र-
सूचनामभिधाय तत्कर्तुं नु]शंसां वक्तुमाह— तस्येति । प्रतिमासदशमीद्वये गणचक्र-

१. संभव- टी०, सुख- भो०

२. सज्जनमेल- नि० भो०

कर्तुः। हस्तगतेति करप्राप्ता। लक्ष्मीरिति श्रीहेरुकपदलक्षणा सम्पत्तिः, क्रमद्वय-
भावनापूर्वकं विशिष्टसमयानुष्ठानात्। केनापीति परेण प्रतिसाधकेन। न प्रतिहन्यते न
तस्य हस्तादानीयते, अन्त्यावस्थाप्राप्तकारणसामग्र्याः शक्तिप्रतिबन्धस्य कर्तुमयोगात्।
न केवलं तस्य हस्तगता लक्ष्मीर्भव[ती]ति यावत् ॥ १० ॥

ताः पूजिता भक्तिमतो जनस्य श्रीहेरुकस्याभिरतिं गतस्य ।
सन्तुष्टचित्ता वरदा भवन्ति तेषां करस्थानि १यतो धरण्याम् ॥ ११ ॥

ताः पूजिता भक्तिमतो जनस्य साधकस्य वरदा भवन्ति। प्रज्ञारूपा देवताः
पूजिता इति बाह्याध्यात्मरूपाभिः पूजाभिः। भक्तिमत इति विशिष्टश्रद्धासमन्वागतस्य
पूजाकर्तुः। कीदृश्यस्ता इत्याह— सन्तुष्टचित्ता इति। पूजाकरणेन गणचक्रविधानेन
परिहृष्टचित्ताः। अन्यच्च केन निमित्तेन तुष्टाः? श्रीहेरुकस्य ज्ञानमण्डलाधिपतिरूपस्य
अभिरतिं गतस्येति। साधकस्य यथावत्समयपरिपालनं विदित्वातिसन्तुष्टतां प्राप्तस्य
सम्बन्धितानिमित्तेन। वरदा इति सिद्धिदाः। शीघ्रं सम्पद्यन्ते इत्यर्थः। यस्मात् कार-
णात्तेषामिति। तासां पूजितानां देवतानां श्रीहेरुकादीनां वचनानि शीघ्रसिद्धिदान-
लक्षणानि। करस्थानि, अयत्नसिद्धत्वात् ॥ ११ ॥

रात्रौ मुक्तशिखो भूत्वा नग्नो दद्याद् बलिं ३व्रती ।
श्रीहेरुकयोगात्मा तेन तुष्यन्ति मातरः ॥ १२ ॥

३इति योगिनीसञ्चारे ४बलिपूजादशमीकृत्यरक्षानिर्देशो दशमः ॥ १० ॥

एवं तत्कर्तुरनुशंसामभिधाय गणान्ते बल्यनुज्ञानार्थमाह— मुक्तकेशः। वीरत्व-
द्योतनार्थत्वात्। नग्न इति दिगम्बरः, निर्भयत्वात्। चतुर्विंशतिषु धातुषु वीरैरधिष्ठान-

१. नास्ति- भो०

२. च वा- क. ख.

३. नास्ति- भो०

४. अस्पष्टः पाठोऽन्यमातृकासु, गृहीतस्तु भोयानुसारी ।

करणपूर्वकं कवचं भावयित्वा। बलिं दद्यादिति। उच्छिष्टबलिं वितरेत्। क इति (व्रती?)-----णादिलक्षणं(ण्ये) व्रतवैलक्षणो न चर्याव्रतादिष्ववस्थानात्। अन्यच्च कीदृशः? श्रीहेरुकस्येति। मण्डलाधि[पति]सिद्धिमिति तत्तद्भावनात्मकः। अनु-
शंसामाह— श्रीहेरुकयोगभावनापूर्वकं बलिविधाने कृते सति मातरस्तुष्यन्ति। वि-
शिष्टसहजप्रसूतिहेतुभूतत्वेन मातरौ(रः) पञ्चचक्रस्थयोगिन्यः परितुष्टा भवन्ति ॥ १२ ॥

इति पण्डिताचार्य-अलककलशविरचितायां योगिनीसञ्चारतन्त्रटीकायाम्
उपदेशानुसारिण्यभिधानायां दशमपटले विस्तरव्याख्या ॥ १० ॥

*

एकादशो निर्देशः

ततः—

पारमिताषण्मात्रादि^१ बोधिषट्^२त्रिंशमेव च ।

पीठादि दशभूम्य^३स्य परमायुर्देवतात्मकम् ॥ १ ॥

तत इत्यादि । पारमिताषण्मात्रादीति । याः कण्ठिकाद्याः षण्मात्राः । आदीति आदिसिद्धाः । पारमिता इति ताः पारमितास्वभावा इत्यर्थः । बोधीत्यादि । बोधिषट्^४त्रिंशमेव चेत्यस्य परमायुर्देवतात्मकमित्यनेन पदेन सम्बन्धः कर्तव्यः । परमायुरिति । सम्यक्समाधिः । देवतात्मकमिति । ये श्रीहेरुकादीनां देवतानां देहास्ते सम्यक्समाधिना सह सप्तत्रिंशद्बोधिपाक्षिक-स्वभावा इति भावः । पीठादिदशभूम्यस्येति । अस्य साधकस्य यत् पीठा-दिकं पुल्लिरमलयादि तन्मुदितादिदशभूमिस्वरूपमिति । अनेन सर्वेणोदं प्रतिपादितं [यत्] सर्वमिदं मात्रादिकं पारमितादिरूपेण विभाव्य विशो-धयितव्यमिति ॥ १ ॥

एवं दशमपटलेन बल्युपहारदशमीपरिपालनमभिधाय समनन्तरोक्तानां^६ पूर्वोक्तया भावनया विहितया सत्यसर्वविशुद्धिर्भवतीति सर्वविशुद्धिनिर्देशं वक्तुं तस्या एव प्रस्तावनारचनामाह— तत इति । दशमपटलव्याख्यानन्तरम् । पारमिताषट्-मात्रादीति । षष्ठमपटले भगवत आभरणत्वेनोक्ता मात्रादयश्चक्रीकुण्डलकण्ठी च हस्ते रुचकमेखलाभस्मयज्ञोपवीतलक्षणाः, बोधिपाक्षिकादि च परमायुर्भवतीत्य-ध्याहार्य सम्बन्धः कार्यः । तत्र तावच्चक्री दानपारमिताविशुद्ध्या, गुरुबुद्धबोधि-

१. मात्रादि- नास्ति भो०

२. सप्त- भो०

३. भूमस्य- क. ख.

४. परमश्रेष्ठ- भो०

५. सप्तत्रिंश- भो०

६. कार्या- क.

सत्त्वानां नमस्कारदानात्। भगवच्छ्रोत्रयोः कुण्डलद्वयं शीलपारमिता, तेषामेव दुर्भाषिताश्रवणलक्षणशीलसंवरयुक्तत्वात्। कण्ठी क्षान्तिपारमिताविशुद्ध्या, मन्त्र-जपकरणखेदसहनात्। हस्तद्वये रुचकद्वयं वीर्यपारमिता[विशुद्ध्या], करद्वारेण प्राणातिपातविरतोद्योगात्। मेखला ध्यानपारमिताविशुद्ध्या, वज्रवाराहीसंयोगेऽपि केवलं सह ध्यानात्। यज्ञोपवीतं भस्मता १ प्रज्ञापारमिताविशुद्ध्या, मध्यनाडी-रूपत्वात् समस्तस्कन्धधात्वायतननिराभासीकरणाच्च। क्वचिच्च पारमिताध्येति(षित)-स्यैतावानेव पाठो दृश्यते। तत्पक्षे पञ्चचक्रात्मकमेव मण्डलं षट्पारमिताविशुद्धिमिति व्याख्येयम्। तथाहि— ज्ञानचक्रं दानपारमिता, तस्य रत्नसम्भवतथागतस्वभावत्वात्, तस्य च दानपारमिता-----समयत्वाच्च। यदुक्तम्—

चतुर्दानं प्रदातव्यं षट्कृत्वा तु दिने दिने ।

आमिषाभयधर्माख्यं मैत्रीरत्नकुलोच्चये ॥ इति१ ।

----- पूर्ववत्। सैव धर्ममेघा, धर्मस्य मज्जोत्तरस्य मेघवद् वर्षणात्। अतो हेतोश्चतुर्विंशतिः पीठादीनां दशभूमि -----भूमिरूपत्वात्। एता भूमयः परमायुः। योगिन(नोऽ)स्योत्कृष्टमायुर्दशविधमेव, पीठाद्याश्रित्य तस्यावस्थितेः।-----षा पुरुषे धार्यते। एवमेव योगी पीठादिभावनया चित्तं धारयति। किं स्वरूपमित्याह— देव-तात्मकमिति। [प्रत्ये]कमण्डलचक्रदेवताकारमित्यर्थः। एतच्च पूर्वोक्तं पारमितादि-देवतात्मकं परमायुरभ्यासाद्भवती[त्यर्थः]॥ १ ॥

येन येन हि भावेन मनः संयुज्यते नृणाम् ।

तेन तन्मयतां याति विश्वरूपो मणिर्यथा ॥ २ ॥

भावनया कथमेतदन्यथाकर्तुं शक्यत इत्याह— येन येनेत्यादि। भावे-नेति। पारमितादिना। तन्मयतामिति। पारमितादिस्वभावताम्। विश्वरूपो मणिर्यथेति। यथा स्फटिकोपलः ४स्वच्छो नीलपीतादिपदार्थसन्निधाने नीलपीतादिमान् भवति, तथेदं मन इत्यर्थः॥ २ ॥

१. नास्ति- ख.

२. इतः परं ख. मातृकायां पत्रमेकमपूर्णम्। क. मातृकायामपि खण्डितः पाठः।

३. संपूर्यते- क. ख.

४. 'स्वच्छो' नास्ति- भो०

येन येनेति विचित्रेण । भावेनेति [आ]लम्बनेन । नृणामिति मनुष्याणाम् । मन इति चित्तम् । संयुज्यत इति संयोगमापद्यते । तेनेति आलम्बनेन पुनः पुनर्भाव्यमानेन । तन्मयतां तद्रूपत्वं तत्स्वभावत्वम् । याति । नृणां मन एव । दृष्टान्तमाह— विश्वरूप इति । यथा मणिः स्फटिकमणिरूपः, तत्तन्नीलपीताद्युपरागबलेन विश्वरूपं सम्पद्यते, तद्वदेव भाव्यमानं बोधिपाक्षिकादिदेवतारूपं परमायुर्भवतीत्यर्थः । यदुक्तम्—

कामशोकभयोन्मादचोरस्वप्नाद्युपप्लुताः ।

अभूतानपि पश्यन्ति पुरतोऽवस्थितानिव ॥ इति ॥ २ ॥

(प्र० वा० २/२८२)

एवं यथा यथारूढं सभये निर्भयेऽपि वा ।

ध्यानचि^१न्तितमात्रं वा सर्वकर्मप्रसाधकः ॥ ३ ॥

उपसंहरन्नाह— एवमित्यादि । एवमनेन क्रमेण । यथा यथारूढमिति । यत्र यत्र पारमितादौ प्रवृत्तं भवति । सभये निर्भयेऽपि वेति । स्थान इति शेषः । ध्यान इति । ^२तस्य पारमितादेर्बुद्धत्वावध्यवधानेन । चिन्तितमात्रं वेति । बुद्धत्वादवाग् भावनया । सर्वकर्मप्रसाधक इति । यत्किञ्चिदभिलषितं तत्सर्वं स्वपरेषां साधयति तन्मन इत्यर्थः ॥ ३ ॥

एवं दृष्टान्तमभिधाय दार्ष्टान्तिकवस्तुनियोजनार्थमाह— एवमिति । विश्वरूपमणिवत् । यथा यथेति । येन केनाप्युत्पत्तिक्रमादिलक्षणेनोपायविशेषेण । सभय इति । परस्य भयजनके क्रोधरूपे अ[शान्ताकारे] । निर्भय इति । पूर्वविलक्षणे उप-शान्ताकारे । आरूढ इति अवस्थितः । ध्यान इति । उत्पत्तिक्रमा-----विशिष्टे समाधिविशेषे । चित्तमात्र इति । आमुखीभूतमात्र इति । सर्वकर्मप्रसाधकः क्रोधोपशा[न्ता]कारं सर्वेषां लौकिकलोकोत्तरलक्षणानां कर्मणां प्रसाधकं निष्पादकं भवतीत्यर्थः ॥ ३ ॥

१. चित्तमात्रं- टी०

२. 'तस्य' नास्ति- भो०

१प्राप्यत इहैव जन्मस्य २ भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ।

भावना हि मया प्रोक्तं सर्वसारसमुच्चयम् ॥ ४ ॥

अत एवाह— प्राप्यत इत्यादि । जन्मस्येति जन्मनि । भुक्तिमुक्ति-
फलप्रदमिति । बुद्धत्वं बोधिसत्त्व[त्वं] वा स्वपरेषामभिलषितफलप्रदान-
समर्थं प्राप्यत इति पूर्वेण सम्बन्धः । भावना हीत्यादि ॥ ४ ॥

प्राप्येति । इहैव जन्मनि-----प्राप्य समनन्तरोक्तं सभयनिर्भयरूपं देवताकारम् ।
भुक्तिमुक्तिफलप्रदं भवति । तत्र भुक्तिर्विशिष्टप्रपञ्चतादिरूपा, मुक्तिः सर्वक्लेशोपरि-
विनिर्मुक्तसहजलक्षणा, भुक्तिश्च मुक्तिश्च भुक्तिमुक्ती, तद्रूपं फलरेमिष्टलक्षणम् । तस्य
प्रकर्षेण दानात् तत्प्रदम् । एवं त्रिभिरर्थैश्चोक्तभावनानुवादं प्रतिपाद्य तस्यैव गुरुप्रसाद-
लक्षणं वक्तुमाद्यपुद्गलस्य रहस्यापरिज्ञानाङ्गसंज्ञस्य धर्मदेशनाकरणमाह— भाव-
नेत्यादि । प्रथमपटलानन्तरमियत्पटलपर्यन्तेन ग्रन्थेन । मयेति श्रीहेरुकाकारेण शास्त्रा ।
प्रोक्तमिति प्रोक्ता देशिता व्याख्याता । कीदृशी भावनेत्याह—सर्वसारसमुच्चयमिति ।
सर्वसारस्य पञ्चचक्रात्मकस्य मण्डलस्य बोधिपाक्षिकधर्मरूपत्वेन समुच्चयसंग्रहं
तत्स्वभावा भावनेत्यर्थः । अथ सर्वकामसमुच्चयमिति भेदादर्शेषु पाठः । तत्पक्षे सर्व-
कामेभ्यो रूपादिसमस्तविषयसंसेवनालक्षणेभ्यः सकाशी(शा)त् समुच्चयमिति,
संग्रहाकारा(रया) पञ्चकामोपभोगचर्यया भावनया निष्पत्तेः ॥ ४ ॥

नाख्यातं त्वया कश्चिद् मिथ्याज्ञानं^४ तु^५ ज्ञानिनाम् ।

येन ज्ञातव्यं सा^६ क्षिप्रं गुरुपर्वयथोदितम् ॥ ५ ॥

कश्चित् । किञ्चित् । मिथ्याज्ञानं तु इति । अज्ञानहेतुकम् । ज्ञानिना-
मिति परिज्ञानार्थिनाम् । येनेत्यादि । सेति ॥ ५ ॥

१. प्राप्य- क. ख.

२. जन्मनि- टी०

३. मित्युपलक्ष- ख.

४. ज्ञानेन- टी०

५. तद्- टी०

६. 'सा' नास्ति- भो०

नाख्यातमिति । न व्याख्येया । तदिति । सा समनन्तरोक्ता भावना । केन न व्याख्येया ? त्वयेति वज्रपाणिना सङ्गीतिकारेण । कश्चिदिति किञ्चिन्मात्रा, अणुमात्रापि न वक्तव्या । एतैश्च(१) नागतशिष्याचार्यसम्बन्धप्रतिपादनाय भगवानतिदिशति । कस्य व्याख्येयेत्याह— मिथ्याज्ञानेनेति । सम्यक्चित्तोपायानभिज्ञात्वेन ये मिथ्याज्ञानलक्षणमुपायमाश्रित्य ज्ञानिनः सम्यग्ज्ञानाभिमानिनः, तेषाम् । एवमज्ञस्य धर्मदेशनाऽकरणमभिधाय ज्ञस्य प्रसङ्गाद्धर्मविषये श्रद्धोत्पादं वक्तुमाह— येनेत्यादि । पूर्वोक्तभावनादिकेन ज्ञं प्रति व्याख्यातेन । गुरुपर्वेति । गुरुपर्वदिकं यथोदितं प्रथमपटलानन्तरमुक्तम् । क्षिप्रं कृत्वा जानन्ति ॥ ५ ॥

जन्मकोटिसहस्रं वै मया ज्ञानेन चोदिता ।

श्रद्धामुत्पादितं सम्यग् योगचर्यानयस्थितम् ॥ ६ ॥

तज्जन्मकोटिसहस्रं वै इति । जन्मकोटिसहस्रेणापि । मया ज्ञानेन चोदितेति । तस्य परिज्ञानार्थं मया २व्यक्तीकृतम् । यज्जन्मकोटिसहस्रेण क्षिप्रशब्दवाच्येन ज्ञातव्यं साधकेन, तदधुनैव स्फुटीकृतमित्यर्थः । योगचर्यानयस्थितमिति । तृतीयायाम् ॥ ६ ॥

तत्र जन्मकोटिसहस्रमिति । चिरकालम् । मया ज्ञानेनेति । मदीयेन देशिकसम्बन्धिना ज्ञानेन श्रुतं मयादिप्रतिपादिताः प्रेरिताः समस्ता जानन्तीति व्याख्या(ख्ये)यम्, पूर्वमुपचितसम्भारत्वादिति भावः । यदा मायाज्ञानेन चोदिता इति पाठः ३---- ॥ ६ ॥

जडमूर्खकूपायस्य बालज्ञानं तु ज्ञानिनाम् ।

अपरिपाचितसत्त्वस्य बाह्यशास्त्रविडम्बकाः ॥ ७ ॥

इदञ्च ४ भाव्यमानं जडादिविषयो न भवतीत्याह— जडेत्यादि । कूपायस्येति उपायरहितस्य । बालज्ञानमिति । बालजनस्येव ज्ञानम् । ज्ञानिनामिति परिज्ञानार्थिनां मध्ये । अपरिपाचितसत्त्वस्येति । प्रथमार्थे षष्ठी ॥ ७ ॥

१. मायाज्ञानेन- भो०

२. व्यवस्थितम्- भो०

३. इतः परं ७-१० श्लोकानां व्याख्या पत्राणां खण्डितत्वान्नोपलभ्यते ।

४. 'इदं च' नास्ति- भो०

तेऽपि सर्वे न जानन्ति अज्ञानतमसावृताः ।
अभिमानरता^१ नित्यं मानादिसप्तचेतसा ॥ ८ ॥

मानादिसप्तचेतसेति । मानातिमानेत्यादिना ॥ ८ ॥

तेऽपि सर्वे न जानन्ति रहस्यं बुद्धगोचरम् ।
श्रीहेरुकसमावेशमाचार्यस्य महा^२त्मनः ॥ ९ ॥

श्रीहेरुकसमावेशमिति श्रीहेरुकस्वरूपम् । आचार्यस्य महात्मन
इति गुरोर्महाशयस्य । अन्तिकाद् विदित्वेत्यध्याहार्यम् ॥ ९ ॥

सिद्धिमुत्पाद्य तां क्षिप्रं सद्यःप्रत्ययकारिणम् ।
सञ्चारविधियोगज्ञविधानविधिसे^३वितम् ॥ १० ॥

अनुशंसामाह— सञ्चारेत्यादिना । सञ्चारविधीति । सञ्चारविधिम् ।
विधानविधिसेवितमिति यथाविधि सेवयेत् ॥ १० ॥

-----ष्टत्वेन विधानात् । तस्मिन् विधाने प्रतिपादिते योऽसौ विभावना-
प्रकारविशेषस्तेन । सेवितं सत्यसम्भारमेति ॥ १० ॥

तेऽपि सर्वज्ञ^४वर्णस्य समस्तं भुवनत्रयम् ।
^५दर्शनं स्पर्शनं चैव श्रवणस्मरणेन च ॥ ११ ॥

तेऽपीति । स च । सर्वज्ञवर्णस्येति । सर्वज्ञां (ज्ञानां) माहात्म्यं लभत इति
शेषः । समस्तं भुवनत्रयमिति । अत्र^६ चकारो द्रष्टव्यः । दर्शनमित्यादि ।
अत्र सर्वत्र तृतीयार्थे प्रथमा । तस्य भगवतो दर्शनादिनेत्यर्थः ॥ ११ ॥

१. रतालम्ब्य- ख.

२. त्मनाम्- ख.

३. दर्शितम्- भो०

४. वदस्य- टी०

५. 'दर्शनात् स्पर्शनाच्चैव श्रवणेन'- टी०

६. अत्रापि- भो०

परिज्ञातसञ्चारेण योगिना समस्तं भुवनत्रयं प्रकारभेदभिन्नं स्वर्गमर्त्यपाताला-
त्मकम् । सर्वज्ञवदिति भगवच्छ्रीहेरुकवत् । ज्ञातमिति अवगतम् । एतदुक्तं भवति—
यथा भगवता प्रथमादिकर्मिकावस्थायाः सञ्चारे विधिस्तन्त्रोक्तविधिना सेवितः,
ततस्तस्यैव सर्वज्ञलक्षणपदप्रापकः संवृत्तस्तद्वदनेनापि भावकेन तथैव भावितः सन्
सर्वज्ञवत्परिज्ञातो भवतीति । एवं परिज्ञानस्वरूपं प्रतिपाद्य तदनुशंसां वक्तुमाह—
दर्शनादित्यादि । एवंविधपरिज्ञानवतो योगिनो दर्शनाच्चक्षुरिन्द्रियेण व्यवलोकनात् ।
स्पर्शनाच्चेति कायेन । श्रवणेनेति श्रवणाच्छ्रोत्रेन्द्रियेण योगिसव्यस्य (शब्दस्य) स्म-
रणादिति । स्मृताधोमुखकरणात् ॥ ११ ॥

मुच्यते सर्वपापेभ्य एवमेव न संशयः ।

विपरीतदेवतान्यासं विपरीतमन्त्रभेदनम् ॥ १२ ॥

विपरीतदेवतान्यासमिति । पर्यन्तभूतमहावीर्यायाः १पूर्वं दर्शितोऽभि-
धानाद् विस्तरतन्त्रे । विपरीतमन्त्रभेदनमिति । हा स्वाहेत्यादिना विपरीत-
मन्त्रोद्धारात् ॥ १२ ॥

सर्वपापेभ्य इति सर्वविकल्पेभ्यः । मुच्यत इति विमुक्तिः सम्पद्यते । द्रष्टा पुद्गल
इत्यर्थः । कथं विमुच्यत इत्याह— एवमेवेति । अवैपरीत्येन निश्चितं कृतार्थः । अत्रार्थे
न संशयः । आलोपदिष्टत्वेन समाश्वासस्थानत्वात् । एवं त्रिभिरर्थैः स्वरूपमभिधाया-
र्थान्तरवर्णनार्थं तदङ्गविशिष्टसमयप्रदर्शनमाह— विपरीतेति । देवतान्यासं सर्वसार-
प्रसाधकं भवतीति सम्बन्धः । मण्डलमध्ये भगवतः प्रज्ञोपायरूपस्यावस्थितिमपेक्ष्य
त्रिषु चित्तवाक्कायचक्रेषु देवतान्यासं वीरिणीप्रधानं वीरालिङ्गितं विपरीतम् । मध्य-
नायकमपेक्ष्य तस्य विपरीतत्वात् । अथवा सञ्चारतन्त्रक्रमेण कर्मासिद्ध्या देवतानां
प्रचण्डादीनां न्यासं चित्तचक्रादिषु विनियोजनारूपम् । अथवा देवतान्यासं मण्ड-
लाधिपतेस्तत्परिवाररूपाणां न्यासं भावनाविपरीतं कल्पितम्, योगत्वात् । विपरीत-
मन्त्रभेदनमिति । हृदयोपहृदयमन्त्राणां विपरीतत्वेन वा पश्चाद्यमक्षरमादि कृत्वा
पठनपरिपाटिविपरीतमन्त्रम्, तस्य भेदनं नानाप्रकारत्वेन विभागः । असामयिकानां
गोपनीयत्वात् पूर्ववत्कर्मासिद्धेर्वा ॥ १२ ॥

विपरीतभावनागोप्यं सर्वसारप्र^१साधकम् ।
सामान्यं सर्वतन्त्राणां ^२परिपाचितचेतसाम् ॥ १३ ॥

विपरीतभावनागोप्यमिति । अस्तव्यस्तक्रमेण भावनाक्रमस्याभि-
धानात् । सर्वसारप्रसाधकम् इति । सर्वमिदं सर्वसारस्य श्रीसंवरस्य प्रसा-
धकमित्यर्थः । सामान्यं सर्वतन्त्राणामिति । अयं भगवान्निरुत्तररूपत्वात्
सर्वान्यतन्त्रसाधारणः । अपरिपाचितचेतसामिति । अपरिपाचितचेतसोऽपि
क्रमेण ^३बुध्यन्ते, इति तेषामपि साधारणः ॥ १३ ॥

विपरीतभावनागोप्यमिति । गोप्या गोपनीया प्रज्ञोपायसमापत्तिलक्षणा भावना,
सापि विपरीता पूर्ववत्परमार्थतोऽनुपपत्तिश्च । एतत्सर्वं विपरीतं मिथ्यास्वभावत्वेन
परिज्ञातं सत् सर्वसारस्य पार्यन्तिकस्य विशिष्टस्य फलस्य साधकं निष्पादकं भवति ।
सामान्यमिति साधारणम् । सर्वतन्त्राणामिति पञ्चप्रकाराणामपि । परिपाचितचेतसा-
मिति । तेषां प्रति भगवता देशितम् । मन्त्रमुद्रालक्षणेनोपायेन परिपाचितं चेतो येषां ते
तथा, तेषाम् ॥ १३ ॥

^४अनुयोगादिमन्त्राणां समयं ^५दर्शितं तथा ।
उक्तं ^६तथागताश्वासे शुद्धकायं निरा^७मयम् ॥ १४ ॥

साधकैरल्पपुण्यैश्च मया तुष्टेन लभ्यते ॥ १५ ॥

^८इति योगिनीसञ्चारे सर्वविशुद्धिनिर्देश एकादशमः ॥ ११ ॥

-
१. 'प्र' नास्ति- भो०
 २. अपरिपाचित- नि०
 ३. पर्यन्त बुध्यन्ते- भो०
 ४. अत्र योगा- टी०
 ५. समयदर्शक- क. ख. नि०
 ६. तथागता- क. ख. टी०
 ७. निरामयः- क. ख.
 ८. 'इति' नास्ति- भो०

१अनुयोगादिमन्त्राणां समयदर्शकस्तथेति । भाव्यमानत्वेन योगाति-
योगादिसमाधिष्वन्तर्गतत्वात्तेषां स्वरूपदर्शक इत्यर्थः । अयञ्च (ञ्चा) पुण्यवतां
विषयो न भवतीत्याह— उक्तमित्यादि । तथागताश्वास इति । तथागता एव
तथागताः, तेषामाश्वासस्तस्मिन् । आश्वासनिमित्तमित्यर्थः । यदि पुण्यवता-
मेवायं विषयः, पुण्यरहितानां तर्हि क उपायो भविष्यतीति तथागताना-
मसुखमुत्पन्नम्, तदनन्तरं तथागतानामाश्वासनिमित्तमुक्तं भगवता । किमुक्त-
मित्याह— शुद्धकायेत्यादि । सुगमम् ॥ १४-१५ ॥

इत्येकादशो निर्देशः ॥ ११ ॥

अत्रेति सर्वतन्त्रेषु । योगादिमन्त्राणामिति । योगादिकं समनन्तरोक्तं देवता-
कारं भावनादिमन्त्राणामिति हृदयादीनाम् । समयमिति । तेषां सम्बन्धिनम् अनुलङ्घ-
नीयम् । दर्शितमिति भगवता विशिष्टपुद्गलं प्रति देशितम् । तथेति । विपरीतत्वेनेत्यर्थः ।
एवं विशिष्टसंमयप्रदर्शनं प्रतिपाद्य तदनुमानान्मन्दपुण्यस्यापि सिद्धिप्राप्तिं वर्णयितु-
माह— उक्तमिति । पूर्वोक्तं विशिष्टं समयम् । तथागतेन भगवता सम्यक्सम्बुद्धेन
श्रीहेरुकाकारेण । आश्वासमिति शिष्याणामाश्वासजननार्थमुक्तम् । किमुक्तमित्याह—
शुद्धकाय इति । शुद्धं कायं ज्ञानमयदेवताकार(रं) परमार्थतोऽनुपपत्तिलक्षणम् ।
अन्यच्च कीदृशम्? निरामयमिति । समस्तप्रकृतदोषरभावनात् । साधकैः लभ्यत
इति सम्बन्धः । महामुद्रासिद्धिसाधनात् साधकाः, तैः । कीदृशैः ? अल्पपुण्यैरिति ।
पूर्वमनुपचितसम्भारत्वात् परिमितसम्भारैः । तादृशैरपि लभ्यते । कथमित्याह— मयेति
भगवता श्रीहेरुकेण शास्तृस्वभावेन । तुष्टेनेति । समनन्तरोक्तसमयानुष्ठानात् साधकं प्रति
परितुष्टेन ॥ १४-१५ ॥

इति श्रीपण्डिताचार्य-अलककलशविरचितायां योगिनीसञ्चारतन्त्रटीकायाम्
[उपदेशानुसारिण्यभिधानायाम्] एकादशपटले विस्तरव्याख्या ॥ ११ ॥

*

द्वादशो निर्देशः

ततः—

१न रक्षणीयं न [च] भक्षणीयं न माण्डलेयं न च मण्डलं च ।
न मन्त्रजापो न तपो न होमः समासतश्चित्तसमाजरूपी ॥ १ ॥

ततो न रक्षणीयमित्यादि न होम इति पर्यन्तं सुबोधम् । यदि रक्षणीय-
प्रभृतिकमनुपयुक्तं कस्तर्हि भाव्य इत्याह— समासत इत्यादि । समासतो न
रक्षणीयादि सर्वसंग्रहतः । चित्तसमाजरूपीति । चित्तमहासुखमयमद्वयं बोधि-
चित्तम्, तदेव समाजो मिलनम्, सर्वधर्माणामेकरसरूपत्वात् । तद्रूपी भा-
वानिति शेषः ॥ १ ॥

२ग्राह्यं विज्ञानज्ञानस्य गुरोर्देशनतत्परम् ।

३न तु मार्गबाह्यानां शास्त्रेणापि तु^५ दूरतः ॥ २ ॥

ग्राह्यमित्यादि । स भगवान् ग्राह्यः । विज्ञानज्ञानस्येति । सविकल्प-
निर्विकल्पाभ्याम् । गुरोर्देशनतत्परमिति । गुरोर्देशना^६परस्यैव शिष्यस्य, न
तु मार्गबाह्यानामिति श्रावकादीनाम् । शास्त्रेणापि च दूरत इति । बहिः-
शास्त्रविदोऽपि दूरे भवन्तीत्यर्थः ॥ २ ॥

-----७त्रैव गृहीतोद्योगत्वेन एकाग्रः, तस्माद् गुरोः सकाशात् शिष्येण
ग्राह्यविज्ञानं श्रुतादिरूपं ज्ञानं स्यादिति । क्रमेण श्रुतचिन्ताभावनापूर्वकं तत्प्रकर्ष-

१. अस्य श्लोकस्य टीका नास्ति ।
२. ग्राह्यविज्ञानं ज्ञानं स्यात्- टी०
३. न तु मार्गः स मोक्षाणां- क. ख.
४. शास्त्रेण न तु- टी०
५. च- नि०
६. परमस्यैव- भो०
७. इतः पूर्वांशोऽनुपलब्धः ।

प्राप्त्या ज्ञानं निर्विकल्पात्मकम्, समनन्तरोक्ततत्त्वात्मकं भवेत् स्यादित्यर्थः। ननु च गुरोः सकाशादेव ग्राह्यविज्ञानं कथं भवति, यावत् पारमितादिदर्शनक्रमेण श्रुतादि-करणादपि ग्राह्यविज्ञानं ज्ञानं भवतीत्याह— न त्वित्यादि। बाह्यानां मन्त्रनयपरित्यागेन बाह्यरूपाणां पारमितादिदर्शनप्रसिद्धानाम्। शास्त्रेणेति। समस्तक्लेशरिपुशासकेन शास्त्रानुसारम्। न तु नैवेत्यर्थः। ग्राह्यविज्ञानं ज्ञानं न भवति मार्गस्य। दूरत इति। त्रिकल्पासंख्येयक्रमेण ज्ञानस्य निष्पत्तेः। मन्त्रनयक्रमेण तु गुरुपादप्रसादमहिममार्ग-नैकट्यात् ॥ २ ॥

उपायेन तु योगीनां १गुरोः शुश्रूषतत्परः ।

२लक्षणं शास्त्रमुद्देशं ३तत्त्वानां वीरदेशकः ॥ ३ ॥

इदानीं देशकस्वरूपमाह— उपायेनेत्यादि। उपाय इति शुश्रूषो-पायेन। योगिनामिति। योगी। गुरोः शुश्रूषतत्पर इति गुरुपर्युपासनपरः। लक्षणं ४शास्त्रमुद्देशं ज्ञात्वेति। गुरोः सकाशादर्थग्रन्थद्वारेण सकलं तन्त्रं विदित्वा। वीरदेशक इति। वीरस्य श्रीसंवरात्मनः प्रकाशको भवति ॥ ३ ॥

यदि बाह्यशास्त्रादिलक्षणं मार्गमाश्रित्य ग्राह्यं विज्ञानं ज्ञानं न भवति, तर्हि कथं भवतीत्याह— उपायेन त्विति। गुरुसम्भाषणलक्षणेन, ज्ञानं भवतीत्यर्थः, योगिनां क्रमद्वयभावकानाम्। अत एवाह— गुरुशुश्रूषातत्पर इति। गुरोस्तन्त्रोक्तलक्षणस्य शुश्रूषा परिचर्या कायादिभिः, तस्यां तत्परमेकाग्रतारूपं यथा भवति तथेत्यर्थः। तथा लक्षणमिति। तेनैव गुरुणास्तु(गुरोः शास्तुः) सम्बन्धिलक्षणमात्मनि शास्तरूपता-मधिमुच्य। उद्देशमिति देशनीयम्। भगवति परिनिर्वृते अहमेव समयसंवरधारिणां शिष्याणां शास्तेत्यहङ्कारं कृत्वा देशनाकरणात्। तत्र शिष्यशासनाच्छास्ता। तेषां च शासनं प्रथममेव पोषधसंवरदानादारभ्य चतुर्थसेकपर्यन्तमभिषेकचतुष्टयं दत्त्वा क्रम-

१. गुरुशुश्रूषा- टी०

२. लक्षणं शास्तुरुद्देशं- भो०, टी०, लक्षणशास्त्र- नि०

३. ज्ञात्वा- नि०

४. शास्तुरुद्देश- भो०

द्वयप्रतिपादकतन्त्रादिदेशनेन विकल्पप्रहाणोपायदेशनात् । क्वचित्तु शास्त्रमुद्देशमिति पाठः । तत्पक्षे शास्त्रलक्षणमुद्देशनीयम् । तेनैव गुरुणा शास्त्रस्य मन्त्रनयात्मकस्य लक्षणं महामुद्राप्रापकमुद्देशनीयं प्रकाशनीयम् । तत्त्वानां वीरदेशक इति । वीरस्य सकलविपक्षनिर्जयेन भगवतः सम्बन्धनां तत्त्वानां विशुद्धिरूपाणां देशकः । स एव गुरुः, न तु पारमितादर्शनमाश्रित्य विशिष्टं ग्राह्यविज्ञानं ज्ञानं भवतीत्यर्थः ॥ ३ ॥

झटिता^१कारयोगात्मा झटिता^२कारमु^३द्रवत् ।

झटिता^४ सर्वसर्वेण झटिता^५ मन्त्रमुच्यरेत् ॥ ४ ॥

कथं देशयतीत्याह— झटितेत्यादि । झटिताकारयोगात्मेति । आयुध-मनपेक्ष्य संवरयोगवान् । झटिताकारमुद्रवदिति । आत्मसमकालमेव प्रज्ञा-वान् । झटिता सर्वसर्वेणेति । तदैव कूटागारादीनां निष्पत्तेः । झटितामन्त्र-मुच्यरेदिति । ॐ आः हूँ इत्यादिमन्त्रमुच्यरेदिति भावः ॥ ४ ॥

एवं द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां निष्पन्नक्रमावतारं प्रतिपाद्य उत्पत्तिक्रमभावनाचारं वक्तुमाह— झटित्याकारेणेति । झटित्याकारेण उपपादुकक्रमभावनारूपेण योगो मण्डलचक्रादिभावनं यस्यास्ति स तदात्मा । समयसत्त्वं झटित्येव निष्पन्नं भावयेत् । झटित्याकारमुद्रहन्त्रिति । ज्ञानसत्त्वं समाधिसत्त्वं च झटित्येव निष्पन्नं भावयेत् । झटित्या सर्वसर्वेणेति । माण्डलेयसमयसत्त्वांस्तज्ज्ञानसमाधिसत्त्वांश्च झटिति चिन्तयेत् । झटित्या मन्त्रमुच्यरेदिति । कायाद्यधिष्ठानमन्त्रांस्तद्दृढीकारमन्त्रांश्च झटित्येवोच्चारयेत्, पुनर्भगवता समापत्त्या जरायुजक्रमेण निष्पादयेत्, तस्यान्यत्रोप-योगा[दिति] भावः ॥ ४ ॥

१. झटित्या- टी०

२. झटित्या- टी०

३. मुद्रहन्- टी०

४. झटित्या- टी०

५. झटित्या- टी०

हसितेक्षणपाणिं तु आलिङ्गनं द्वन्द्वादिकम् ।

उक्तं तथागताश्वासे सेव्यं नैव व्यमेवोत्तरोत्तरम् ॥ ५ ॥

गोप्येक्षणपाणिन्तु आलिङ्ग्य द्वन्द्वादिकमिति । अत्र सप्तम्यर्थे प्रथमा । एवोत्तरोत्तरमिति परेण सम्बन्धः । एषु क्रियादितन्त्रेषु उत्तरोत्तरो भगवान् । ५ अस्त्येवेत्यर्थः । उक्तं तथागताश्वास इति । क्रियादितन्त्रेषु भगवतोऽभिधानादपरिज्ञाने तथागतानां ७ पूर्ववदसुखमुपजातम् । ततस्तदाश्वासनिमित्तं भगवतोक्तमिति भावः ॥ ५ ॥

एवमुत्पत्तिक्रमभावनाचारं प्रतिपाद्य सामान्येन निष्पन्नक्रमस्वरूपं वक्तुं सहजोत्पत्तौ व्याजैकहेत्वभिधानार्थमाह — हसितेति । सेवाकाले प्रज्ञोपाययोः परस्परं वक्त्रविकासः । ईक्षणमिति परस्परं मुखव्यवलोकनरूपम् । पाणिमिति योगिकरेण प्रज्ञाकरग्रहणम् । आलिङ्गनमिति परस्परसंश्लेषः । द्वन्द्वादिमिति परिचुम्बनं परस्परं द्वयोरेव । आदिशब्देन मैथुनम् । एवं षड्भिरुपायैः सहजस्य तावदभिनिर्वृत्तिर्भवति । एतत् षट्प्रकारं तथागतेन गन्तव्यं तथागमनात्तथागतायां वा गमनाद् यथा वा गन्तव्यम् । तत्तथैव गद(च्छ)तीति तथागतः, तेन भगवता रागिणां सत्त्वानां तत्त्वप्राप्तिनिमित्तम् । आश्वासं कथितं पूर्वोक्तमेव हसितादि । एतच्च त्रिविधं सहजाभिव्यक्तिहेतुरूपं धारयेदित्यवश्यमनुभवेत् । कथमित्याह — उत्तरोत्तरमिति । ईक्षणानन्तरं क्रमेण मैथुनपर्यन्तमित्यर्थः । अथवा उत्तरोत्तरं ----- ॥ ५ ॥

-
१. गोप्येक्षण- नि० भो० (दे०)
 २. आलिङ्ग्य द्वन्द्वादिक- नि०
 ३. तथागता- नि०
 ४. 'सेव्यं'- नास्ति क. ख., गृहीतस्तु भोटानुसारी ।
 ५. नास्त्येवे- क.
 ६. अनभिधानात्- क.
 ७. प्रत्यक्षवद्- भो०
 ८. इतः परं पत्रमेकं (६, ७ श्लोकयोः) न लभ्यते ।

अत्रैव तु^१ समुद्दिष्टं घुणम^२न्यत् पलालवत् ।

स एव प्राणिनां प्राणः स एव परमाक्षरः ॥ ६ ॥

किमुक्तमित्याह— अत्रैव समुद्दिष्टमिति । अत्राभिधानेऽस्माद् निर्देश-
मेव । अतः सुख^३मालम्ब्यतामित्याह— घुणमन्यत् पलालवदिति । अस्मा-
देव कारणाद् अन्य[त्] क्रियादितन्त्रं पलालवन्निस्सारम् । इदानीं माहात्म्यं
प्रकटयितुमाह— स एव प्राणिनां प्राण इति । महासुखाद्वयवि^४ज्ञप्तिरूपतया
जगतः प्राणभूतः । स एव परमाक्षरोऽनादिनिधनत्वात् ॥ ६ ॥

सर्वव्यापी स एवासौ सर्वदेहे व्यवस्थितः ।

स एव बुद्धज्ञानीति श्रीहेरुकः^५ स निगद्यते ॥ ७ ॥

सर्वव्यापी स एवासाविति । स्थिरपदार्थस्य तस्मादव्यतिभेदात् ।
सर्वदेहे व्यवस्थित इति । जङ्गमस्यापि तद्रूपत्वात् । स एव बुद्धज्ञानीति ।
तदेव बुद्धानां ज्ञानम् । श्रीहेरुकः स निगद्यते इति । स एव श्रीहेरुको
भण्यते ॥ ७ ॥

पुनर्पुंसकमादि^६त्वं सूक्ष्मपिण्डापि धार^७णात् ।

तस्माज्ज्ञानात् समुद्भूता ये केचित्प्रतिष्ठिता भुवि ॥ ८ ॥

सूक्ष्मपिण्डापि धारणादिति । स एव सूक्ष्मस्थूलपिण्डरूपाभ्यां लोकै-
र्धारित इत्यर्थः ॥ ८ ॥

१. सर्वमुद्दिष्टं-भो०

२. मानां- ख.

३. सुखमाश्वासमित्यर्थः - भो०

४. विज्ञान- भो०

५. कस्य- ख.

६. मोहित्वं- क.

७. धारयेत्-क. ख.

-----आनन्दः । उपायरूपत्वात् । यदुक्तम्— “आनन्दं प्रथमं वीरम्” इति । नपुंसकमुच्यते विरमानन्दः, सन्ध्यारूपत्वात् । परम उच्यते स्त्री, प्रज्ञारूपत्वात् । यदुक्तम्— “परमानन्दन्तु योगिनी” इति । तस्माज्ज्ञानादिति सहजलक्षणादेव । समुद्भूता इति उत्पन्नाः । ये केचिदिति सत्त्वलोकसंगृहीताः । प्रतिष्ठिता इति स्थिताः । भुवीति भूमौ ॥ ८ ॥

शास्त्राणि च समस्तानि वेदसिद्धान्तसंस्थिताः ।

न च तेन विना सिद्धिरिह लोके परत्र च ॥ ९ ॥

समस्तवेदसिद्धान्तसारमेकं प्रतिष्ठितम्^१ ॥ १० ॥

शास्त्राणि च समस्तानीति । सर्वतन्त्राणि । वेद इति बहिःशास्त्राणि । सिद्धान्तेति । सिद्धः पुनर्भवस्यान्त एभिरिति सिद्धान्ताः श्रावकपिटकादयः । संस्थिता इति । सर्व एते तस्मादुत्पद्य संस्थिताः ॥ ९-१० ॥

शास्त्राणि चेति । शिष्यशासनात् स्वपरदर्शनप्रसिद्धानि । समस्तानीति । अशेषविशेषणाणि, षड्दर्शनसंग्रहरूपत्वात् । एतदेवाह— वेदसिद्धान्तसंस्थिता इति । वेदा ऋग्यजुस्सामाथर्वणवेदभिन्नाश्चत्वारः । सिद्धान्ता वेदान्तादयः । तस्मादेव सहजलक्षणत्वाद् उत्पत्तिं गृहीत्वा स्थिताः । न च तेन विनेति । सहजलक्षणेन तत्त्वेन विना । सिद्धिरिति । लौकिकलोकोत्तराकारा भवति, नैव । इह लोके इति । अभ्युदयाकारा । परत्र चेति । मार्गानुष्ठानेनान्यश्चे(न्या चे)यं साकारा ।

ततश्च समस्तवेदेति । समस्तानां पूर्ववत् चतुर्णाम् । सिद्धान्तेति स्वपरदर्शनप्रसिद्धाः, तेषु मध्ये । सारमिति मण्डभूतम्, फलरूपत्वात् । एकमिति । असहजमसाधारणम् । सहजमेव प्रकीर्तितम् कथितम् ॥ ९-१० ॥

पञ्चबुद्धात्मकु सर्वजगोऽयं पश्यतु नाटक^१चित्रकु दिव्यम् ।
यस्य च षष्ठम बुद्धति^२ नाम्ना नृत्यति एकमनेकरसेन ॥ ११ ॥

उपसंहरन्नाह— पञ्चबुद्धात्मकु इत्यादि । पञ्चबुद्धात्मकेति वैरोचनादि-
पञ्चतथागतस्वरूपम् । सर्वजगोऽयमिति । सर्वमिदं जगद्रूपवेदनादिकम् ।
यस्य चेति । यः पुनः । षष्ठम इति । षष्ठो वज्रसत्त्वाख्यो महासुखापरनामा ।
बुद्धति नाप्नेति । नाम्ना बुद्ध इति । नृत्यति एकमनेकरसेनेति । स चैकोऽने-
काकारेण ख्याती(त इ)त्यर्थः ॥ ११ ॥

एवं तस्मादेव समस्तनिष्पत्तिस्वरूपं प्रतिपाद्य तस्यैव जगतश्चित्र[त]त्वप्रति-
पादनार्थमाह— पञ्चबुद्धात्मकु इति । सर्व जगत् त्रैधातुकलक्षणं पञ्चबुद्धात्मकम्,
पञ्चानां स्कन्धानां पञ्चतथागतरूपत्वात् । अयमिति । इदम् । योगिनः प्रतिभासमानम् ।
पश्यत्विति दृश्यते । तच्च नाटकमिति बुद्धनाटकरूपत्वात् । यथा नाटके तत्तद्-
रूपमवलम्ब्य नर्तकैर्लोकयात्रा क्रियते, तद्वद् भगवानेव त्रैधातुकरूपमवलम्ब्य पञ्च-
स्कन्धाकारेण पञ्चतथागताकारां सत्त्वार्थचर्यां निष्पादयति । तदपि चित्रकु इति
विचित्रितं नानाविनयरूपेण नानासत्त्वाकारम् । दिव्यमिति प्रकृत्यैव परिशुद्धम् ।
यस्येति यत्र यस्मिन् । बुद्धति बुद्धनाटकाकारैः । षष्ठम इति । संख्यया --- ॥ ११ ॥

स्थानव्युत्थानतश्चैव प्रवेशनिष्पत्तिमेव च ।
अधिष्ठानोऽभिषेकश्च समाधिः^४ पूजोपसंहतिः ॥ १२ ॥

अनेकत्वमेव दर्शयति— स्थानेत्यादिना । स्थानेति स्थितिः । व्युत्थानत-
श्चैवेति व्युत्थानम् । प्रवेशेति प्रवेशः । निष्पत्तिमेव चेति निष्पत्तिः । अधि-
ष्ठानेत्यधिष्ठानम् । समाधीति समाधिः । उपसंहत इति उपसंहतिः । सर्वमिदं
महासुखप्रभवमिति भावः ॥ १२ ॥

-
१. विचित्र तु- क. ख.
 २. महासुखनाम्ना- भो०
 ३. 'जगद्' नास्ति- भो०
 ४. समाधि- क. ख.
 ५. संहतः- क. ख. भो० नि०, गृहीतस्तु टीकानुसारी ।

----णदृढीभावसमयजापपर्यन्तमङ्गकल्पेयं गृह्यते। अभिषेकश्चेत्यनेन मन्त्रो-
द्देशाभिषेकविधिग्रहणम्। समाधिरिति। वक्ष्यमाणनिष्पन्नक्रमभावनम्। पूजति। अनेन
पूजाविधिः, बलिविधिः, वीराङ्गविशुद्धिः, मन्त्रोद्धारेणाभरणविशुद्धिः, चर्याव्रतनियम-
लक्षणान्यङ्गानि संगृह्यन्ते। उपसंहृतिरिति। चर्याव्रतविशुद्धिः, अहोरात्रविशुद्धिः,
माण्डलेयविशुद्धिः, प्रज्ञोपायात्मकमध्यनायकविशुद्धिः, योगिना सारणाभावलक्षणा-
न्यङ्गानि गृह्यन्ते ॥ १२ ॥

अथा^१त्र विधिसंज्ञं^२ वै प्रज्ञोपायस्य चाद्वयम् ।

तत्रैव^३ निःसृताः सर्वे सृष्टिसंहारकारकाः^४ ॥ १३ ॥

विधिसंज्ञं वै इति। यः संज्ञया विधिः स विधिसंज्ञः। विधिनेत्यर्थः।
प्रज्ञोपायस्याद्वयमिति प्रज्ञोपायस्वभावयोरालिकाल्योर्मिश्रीभावम्। तत्रै-
वेति। आलिकालिरूपात्। निर्गताः सर्वे इति। आलिकाल्योः प्रज्ञोपाय-
रूपत्वात्। सृष्टिसंहारकारका इति वीरादयः ॥ १३ ॥

एवमङ्गसंग्रहेणोत्पत्तिक्रमभावनास्वरूपं प्रतिपाद्य प्रज्ञोपाययोरुत्पत्तिहेत्वभि-
धानार्थमाह— अथेति। उत्पत्तिक्रमसंग्रहव्याख्यानन्तरम्। अत्रेति उत्पत्तिक्रमप्रस्तावे।
विधिसंज्ञेति। भावनाविधानस्य नाम भवतीति शेषः। प्रज्ञोपायस्येति भगवत(द्)-
भगवतीरूपस्य आलिकालिरूपस्य च। अद्वयमिति समाहि(धि)प्रतिपत्तिरूपम्,
आलिकाल्यभेदरूपं वा। तत्र आलिः प्रज्ञारूपा, कालिरूपायाकारा, तयोरद्वयमेक-
रसरूपम्। तत्रैव निर्जाता इति। ततो जाताः। कथमित्याह— प्रज्ञोपायस्वभावा-
द्भगवतो मध्यनायकात्। सर्वे इति परिज्ञानापरिज्ञानावस्थायां माण्डलेयसत्त्वधातु-
स्वभावाः, चतुरशीतिसाहस्रधर्मस्कन्धरूपा वा। कीदृशप्रज्ञोपायात्मकमित्याह—
सृष्टिसंहारकारकमिति। सृष्टिः मण्डलचक्रस्योत्पादः, संहारो रश्मिमुखेन सत्त्वधातो-

१. अथातः सर्व- क. ख., अथान्यद्विधि-भो०

२. संज्ञा- क. ख. टी०

३. महासुखात्- भो० (फु०), निर्गता- नि०, निर्जाता- टी०, भो०

४. कारकम्- टी०

रेव विशुद्ध्यर्थम्, तयोः कारकम्। तदाश्रयणेन तयोर्निष्पत्तेः। अथवा सृष्टिः पद-
वाक्यादिभेदेन, संहारो वाक्प्रपञ्चस्य निरवशेषस्य मातृकायामेव, तयोः कारकः
निष्पादकः ॥ १३ ॥

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ लृ ए ऐ ओ औ अं अः क ख
ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब
भ म य र ल व श ष स ह क्षः ॥ १४ ॥

अद्वयमाह— अ आ इत्यादिना ॥ १४ ॥

एवं प्रज्ञोपाययोरुत्पत्तिहेत्वभिधानं प्रतिपाद्य मन्त्रजापविशुद्ध्यर्थं मातृका-
स्वरूपं प्रतिपादयितुमाह— अ आ इत्यादि ॥ १४ ॥

इयं सा भगवान्^१ देवः परं चैवाधिवासनम् ।
उत्पत्तिः सर्वदेवानां मन्त्राणां^२ तन्त्रमेव च ॥ १५ ॥

इयं सेति। भगवती, आलेर्भगवतीरूपत्वात्। भगवान् देवेति भगवान्
देवः श्रीसंवरः, कालेस्तद्रूपत्वात्। परञ्चैवाधिवासनमिति। अस्मादेवो-
च्चारितादेवतादीनामधिवासनं भवतीत्यर्थः। उत्पत्तिरिति। अस्मादेव प्रज्ञो-
पायात्मकान्निष्पत्तिः। मन्त्रमेव चेति ॥ १५ ॥

एवं मातृकास्वरूपं प्रतिपाद्य तस्या एव माहात्म्यं वक्तुमाह— इयं सेति।
समनन्तरप्रतिपादिता मातृका। भगवन् देवी। किं विशिष्टेत्याह— परमिति प्रकृष्ट-
रूपा। अधिवासनमिति। स्थानमित्यर्थः। सर्धस्यैव मण्डलमाण्डलेयाकारस्य षड्-
दर्शनरूपस्य वाक्प्रपञ्चस्याश्रयभूता। तथा उत्पत्तिरिति निष्पत्तिः। सर्वदेवतानामिति।
माण्डलेयानां षट्कुलप्रतिबद्धानाम्। मन्त्राणामिति। हृदयोपहृदये(य)मालामूलमन्त्र-
प्रभृतीनाम्। तन्त्रमेव चेति। प्रबन्धरूपत्वेनाश्रयत्वादुत्पत्तिहेतुभूता ॥ १५ ॥

१. भगवन् देवी- टी०

२. मन्त्र- क. ख. भो० नि०

य इमां ध्यायते नित्यं पठते चिन्तयेत् सदा ।
प्रथममुच्चारयेद् योगी^१ भवेच्छ्रीहेरुकोऽद्वयम् ॥ १६ ॥

मन्त्राणां चानुशंसामाह— य इमामित्यादिना । सुगमम् ॥ १६ ॥

एवं तस्या एव माहात्म्यमभिधाय तद्भावनानुशंसां वक्तुमाह— य इत्यादि । योगी । इमामिति समनन्तरोक्तं (क्तां) मातृकी (काम्) । ध्यायेद् इति भावयेत् । ज्वल-दीपशिखाकारत्वेन बहिरन्तश्च वक्ष्यमाणनिष्पन्नक्रमभावनाक्रमेण चतुर्षु चक्रेषु । नित्यमिति चतुःसन्ध्यासु । पठेद् इति । उच्चारयेद् विशिष्टाधिमोक्षेण । चिन्तयेदिति । प्रज्ञोपायरूपत्वेन समस्तवाक्प्रपञ्चस्योत्पादिका भवति । बोधिपाक्षिकदेवतासंग्रहं ताभिर्वा तेषां संग्रहादर्थैक्यमुपादायेत्यर्थः । सदेति सर्वान्तरालेषु सर्वकालम् । प्रथम-मिति कर्मकाले पूजाकाले च । उच्चारयेदिति उदीरयेत्, मन्त्रीति मन्त्रनयभावकः । मातृकां तदुद्धृतं वा मन्त्रं यथारुचि उदीरयेत्, स श्रीहेरुको भवेदिति योगः । अवि-कले कारणेऽवस्थिते सत्यवश्यमेव कार्यस्य निष्पत्तेः । कथमित्याह— अद्वयमिति । वज्रवाराह्याद्वययोगवान् युगनद्धरूपः ॥ १६ ॥

^२भूषणं तत्र देव^३स्य मेखलं सर्वमालयम् ।
धारयेदिदं सदा नित्यं सर्वधर्मावबोध^४कम् ॥ १७ ॥

भूषणं तत्र देवस्येति । पञ्चाशन्मण्डलमालिकालिरूपत्वात् । मेखलं सर्वमालयमिति । मेखलान्यायेन परिवेष्ट्य स्थितत्वात् सर्वसाधकाना-मालयः । उपसंहर्तुमाह— धारयेदिदमित्यादि । सर्वधर्मावबोधकमिति । सर्वधर्मा अवबुध्यन्तेऽनेनेति सर्वधर्मावबोधकः, अवबोधकशास्त्राणामालि-कालिस्वरूपत्वादिति भावः ॥ १७ ॥

१. मन्त्री- टी०

२. करादि भूषणं - भो० (दे०)

३. देवादि- भो०, देवस्य- नास्ति- भो० (पे०)

४. बोधनम्- टी०

एवं तद्भावानुशंसां प्रतिपाद्य तस्या एव विशुद्धिप्रतिपादनमुखेन योगिनस्तद्
वा(धा)रणमाह— भूषणमिति आभरणम्। तत्रेति भगवत्कण्ठे। देवस्येति भगवतो
मण्डलाधिपतेः। मेखलेति शतार्धभूषितम्। सर्वमिति समस्तविघ्नमुण्डैर्विरचितम्।
आलयमिति। मेखलाकारहाराकारेण शोभितत्वात्। धारयेदिति सर्वकालमवि-
च्छेदेन। इदं भूषणरूपं मुण्डमालास्वभावम् आलिकालिविशुद्धं धारयेत्। सर्वकालं
विदध्यादित्यर्थः। सर्वधर्मावबोधनमिति। सर्वेषां संस्कारस्वभावानां धर्माणामनु-
त्पन्नत्वेनावबोधकमधिगमोत्पादकमित्यर्थः॥ १७ ॥

आलिकालि पुरो ध्यात्वा महायोगेन विश्र^१मम् ।

भावयेन्नाभिमूलस्थं सम्पूर्णं चन्द्रमण्डलम् ॥ १८ ॥

महायोगसमाधिमाह— आलिकालीत्यादिना। साधन^२टिप्पणौ
गुरुभिर्य्याख्यातत्वात् सर्वं सुगमम् ॥ १८-२१ ॥

इति द्वादशमो निर्देशः ॥ १२ ॥

एवं षड्भिरर्थैरङ्गसंग्रहक्रमेणोत्पत्तिक्रमभावनां प्रतिपाद्य विशेषतो निष्पन्नक्रम-
भावनां वक्तुमाह— आलिकालीति। समनन्तरप्रतिपादितमालिकालिद्वयर(म)क्षर-
वर्जितम्। पुर इति निर्माणादिषु चक्रेष्वग्रत उपरि यथासंभवम्। ध्यात्वेति विभाव्य।
महायोगेनेति उत्पत्तिक्रमाद् विशिष्टत्वान्महता योगेनेति निष्पन्नक्रमसमाधिना। विश्र-
मेदिति उत्पत्तिक्रमभावनाजनितं खेदं विनिवार[यन्] तन्त्रज्ञानौलिक्रमेणेत्यर्थः।
तथाहि षोडशस्वरावलिर्द्विगुणीभूता हिमधवला आलिरुच्यते। एवमक्षरद्वयं वर्जयित्वा
द्वात्रिंशद्व्यञ्जनावली रक्तवर्णा कालिः। आलिश्च कालिश्च ते आलिकाली, एते द्वे
पुरो ध्यात्वेति। निर्माणचक्रे चतुःषष्टिदलात्मके चिन्तयेद्। भावयेदिति। चन्द्रमण्डल-
मिति तद्वद्देदीप्यमानमातृकारूपम्। नाभिमूलस्थमिति। निर्माणचक्रमध्यगतम्। तच्च
सम्पूर्णमिति ----मण्डलोपरि पूर्णचन्द्रमण्डलरम्याकारमित्यर्थः॥ १८ ॥

१. विश्रमेत्- टी०

२. निबन्धे- भो०

तस्य मध्यगतं चिन्तेदक्षरं परमं पदम् ।
भावयेद् देवतारूपं कायवाक्चित्तवज्रिणम् ॥ १९ ॥

एवं चतुष्पष्टिदलेष्वक्षरन्यासमुक्त्वा मध्यनाड्या[म]क्षरन्यासमाह— तस्य मध्य-
गतमिति । निर्माणचक्रमध्यगतं नाभिः, तद्गतमक्षरमाद्यस्वरः, तं भावयेत् । कीदृशम्?
परममिति । आद्यनुत्पन्नधर्मतारूपत्वाद् विशिष्टम्, तथा पदमिति । ज्ञानाग्नेराश्रय-
त्वात् । अन्यच्चक्रविन्यासमाह— भावयेद्देवतारूपमिति । कायवाक्चित्तवज्रिण-
मिति । कायशब्देन महासुखचक्रम्, वाक्चक्रेन(शब्देन) संभोगचक्रम्, चित्तशब्देन
धर्मचक्रमिति । तदेतच्चक्रत्रयं देवतारूपमिति । तत्र यथाक्रमं हँकार-ॐकार-
ह्रूँकाराश्च देवताभिन्नरूपत्वाद्देवता इव देवता भाव्याः । अत्रापि चक्रत्रये परिवार-
रूपाणि यथान्यासं मन्त्राक्षराणि चिन्त्यानि । तथाहि म^२ ----- ॥ १९ ॥

पिण्डातीतं भवेत्तस्य नाभावे चित्तमेव च ।
अचि^३न्त्यं चिन्तयेच्चैव चित्तं सोऽपि न लक्षितम् ॥ २० ॥
चिन्तयेत् ^४सोऽप्यचिन्त्यं वा ततः प्राप्स्यति धारणीम् ॥ २१ ॥

५इति योगिनीसञ्चारे सर्वतन्त्रनिर्णयतत्त्वैकपदनिर्देशो
द्वादशमः ॥ १२ ॥

*

-
१. वर्जितम्- क. ख.
 २. इतः परं त्रयोदशोद्देशस्य १४ श्लोकं यावत् टीका खण्डितत्वान्नोपलब्धा ।
 ३. अचित्ता- क. ख.
 ४. दात्मचित्तं वा- भो०
 ५. 'इति' नास्ति- भो०

त्रयोदशो निर्देशः

अथापरं प्रवक्ष्यामि वीरयोगिनीमद्वयम् ।

श्रीहेरुकमहायोगी स्थानमक्षरभूम्य^१कम् ॥ १ ॥

अथापरमित्यादि । वीरयोगिनीमद्वयमिति । वीरस्य संवरस्य योगिनीभिः
सहाद्वयमेकरूपताम् । कथमद्वयमित्याह — श्रीहेरुकेत्यादि । अक्षरभूमक-
मिति । ३पुङ्गवाद्यक्षराणां भूमिरिति भावः ॥ १ ॥

पुल्लिरमलयं^४ शिरसि जालन्धरं शिखा[या]मेव च ।

ओडियानं सव्य^५कर्णे अर्बुदं पृष्ठ^६वंशके ॥ २ ॥ पीठाः ॥

गोदावरीं वाम^७कर्णे रामेश्वरं भूमध्यके ।

देवीकोटं चक्षुर्भ्यां (षोस्तु) मालवं बाहुमूलयोः ॥ ३ ॥ उपपीठाः ॥

कामरूपं कक्षयोन्यस्य^८ ओङ्गे (इङ्) स्तनयुगलं वरम् (ले वरे) । क्षेत्रे ॥

त्रिशकुनिं नाभिमध्यस्य (ध्ये च) कोसलं नासिकाग्रके ॥ ४ ॥

उपक्षेत्रे ॥

कलिङ्गं मुखे विन्यस्य लम्पाकं कण्ठमध्यके । छन्दोहौ ॥

^९काञ्चीं तु हृदये^{१०} न्यस्य हिमालयं मेढ्रके न्यसेत् ॥ ५ ॥ उपछन्दोहौ ॥

१. भूमकम्- नि०, भूमिकम्- भो०

२. एकमद्वय- भो०

३. पुकारा- भो०

४. मलयः- क. ख., नि०

५. कर्णदाक्षिण्य-क.

६. मस्तके- ख.

७. कर्णस्य- क, कर्णे च- ख.

८. उङ्गे- क.

९. काञ्चिकं- क.

१०. हृदये तु विन्यसेत्- क.

प्रे^१ताधिवासिनीं लिङ्गे गृहदेवतां गुद एव च । मेलापके ॥
सौराष्ट्रमूरुद्वये ^२चिन्त्य सुवर्णद्वीपं जङ्घयोः ॥ ६ ॥ उपमेलापके ॥

नगरमङ्गुलीषु विन्यस्य सिन्धुं पादपृष्ठयोः । श्मशाने ॥
मरुमङ्गुष्ठयोर्यस्य ^३कुलूतां जान्ववस्थिताम् ॥ ७ ॥ उपश्मशाने ॥

पु जा ओ अ गो रा दे मा का ओ त्रि को क ल का हि प्रे गृ सौ सु
न सि म कु ॥ ८ ॥

पुल्लीरमलयं शिरसीति ^४पुङ्काराक्षरपरिणामेन पुल्लीरमलयस्वरूपं
शिरो वेदितव्यम् । एवमन्यदपि तत्तदक्षरपरिणामेन तत्तद्रूपमवसेयम् । तत्तद्-
गतनाडीरूपदेवताश्च सप्तदशनिर्देशे वक्तव्या इति ॥ २-८ ॥

जाग्रत्^५ सुप्तकृतो तिष्ठन् ^६भुञ्जानो मैथुनोऽपि वा ।
यत्र तत्रापि विन्यस्य त्रैलोक्यमपि न^७ चाल्यते ॥ ९ ॥

मैथुनोऽपीति । मैथुनं कुर्वाणोऽपि । यत्र तत्रापि विन्यस्येति । यत्र तत्रापि
स्थित्वा ^८पुङ्कारादीनि यथास्थानं भावयेत् । त्रैलोक्यमपि न चाल्यत इति ।
एवं सति हरिहरादीनामप्यधृष्यो भवतीत्यर्थः ॥ ९ ॥

-
१. प्रेतपुरी- भो०
 २. चिन्तयेत्- ख.
 ३. कुलूतां- क. ख.
 ४. पुकारा- भो०
 ५. जाग्रतः- क. ख.
 ६. भुञ्जमानो- क. ख.
 ७. 'न' नास्ति- क. ख.
 ८. पुकारा-भो०
 ९. ज्ञानं- क. गृहीतपाठस्तु भोटानुसारी ।

लक्षाभिधानतन्त्रस्य उद्धृतं तेन संवरम् ।
खसमतन्त्रैकलक्षस्य तत्त्वं मध्ये तु ख्यापितम् ॥ १० ॥

लक्षाभिधानतन्त्रस्येति । अत्र पञ्चम्यर्थे षष्ठी । तेनेति । १येन हेतुना महानुशंसस्तेन हेतुनेति भावः । कथितमेवोद्धृत्यत आह— खसमतन्त्रैकलक्षस्येति एकलक्षखसमतन्त्रस्य । तत्र तत्त्वं मध्ये ख्यापितमिति । कथितमेव ॥ १० ॥

पिण्डसारं^२ समाख्यातमभिधानं^३ तूदये स्थितम् ।
उद्देशेन तु निर्माणं निर्देशं^४ सांभोगिकं मतम् ॥ ११ ॥

पिण्डसारमिति । पिण्डरूपं सारं पिण्डसारं श्री^५संवररूपम् ।
उद्देशेन तु निर्माणमिति । उद्देशकथनेन निर्माणकायात्मकं कथितम् । निर्देशं सांभोगिकं मतमिति । निर्देशेन सम्भोगकायात्मकम् ॥ ११ ॥

प्रतिनिर्देशं समस्तं वै निर्वाणं तत्त्वदर्शितम् ।
काय^६त्रयं त्रिचक्राख्यं^७ धर्मादिसंभोगलक्षणम् ॥ १२ ॥

प्रतिनिर्देशं समस्तं वै निर्वाणं तत्त्वदर्शितमिति । समस्तप्रतिनिर्देशं धर्मकायाभिन्नमित्यर्थः । प्रकारान्तरेण कायत्रयं वक्तुमाह— कायत्रयमित्यादि । धर्मसंभोगनिर्माणलक्षणमिति चित्तचक्रादिकं यथाक्रमं धर्म-कायादिस्वभावमित्यर्थः ॥ १२ ॥

-
१. 'येन हेतुना' नास्ति- भो०
 २. सारत्वमा- क. ख. टी०
 ३. नस्तूदये- क. ख., प्रज्ञातन्त्रं तु गुह्यकं- भो० (दे०)
 ४. निर्देश- क. ख.
 ५. हेरुकरूपम्- भो०
 ६. कायत्रये- क. ख.
 ७. धर्मसंभोगनिर्माणलक्षणम्- नि०, धर्माद्य-क. ख.

ज्ञानसंभारपुण्यस्य सत्यद्वयसमाश्रयम् ।
दु^१र्मुखाजडमूकस्य(काश्च) हीनप्रज्ञाः कुदृष्टिकाः ॥१३ ॥

ज्ञानसंभारपुण्यस्येति पुण्यज्ञानसंभारप्राप्यम् । सत्यद्वयसमाश्रयमिति ।
सत्यद्वयात्मकत्वात् सत्यद्वयस्याश्रयभूतम् । येषामत्र ३गौरवं भवति तान्
दर्शयितुमाह— दुर्मुख इत्यादि । दुर्मुख इति मुखभावेन दुष्टो दुर्मुखः । जड-
मूकस्येति जडो मूकश्च । हीनप्रज्ञेति प्रज्ञाहीनः । कुदृष्टिका इति मिथ्या-
दृष्टिसम्पन्नाः ॥ १३ ॥

बाह्यशास्त्रविडम्बका^४ गुरुमार्गे^५ऽपि कण्टकम् ।
ते^६ऽपि सर्वे निराकृत्य यदि ख्यातोऽथ गौरवम् ॥ १४ ॥

बाह्यशास्त्रविडम्बकानामिति । बहिःशास्त्रपराः । गुरुमार्गे^५ऽपि
कण्टकमिति । येषां गुरूपदिष्टो कण्टकस्थानीयः, तेऽपि सर्वे निराकृत्य
यदि ख्यातोऽथ गौरवमिति । एतान् सर्वान् दूरीकृत्य यद्यन्येभ्यो व्याख्यायते,
तदा तेषां गौरवं भवतीत्यर्थः ॥ १४ ॥

भागाभागविशेषस्य^७ तत्त्वमद्वयमुच्यते ।
पूजनीयेश्वरी देवी आज्ञा^८ दैवत्यवीरजम् ॥ १५ ॥

भागाभागेत्यादि । भागः प्रज्ञोपाययोर्विभागः,^७ अभागस्तस्य भागस्य
१भेदाभावः, स एव विशेषस्तेन । तत्रेति अद्वयप्रश्ने । पूजनीयेश्वरी देवीति ।

१. दुर्मुख- नि०
२. 'ज्ञान----स्येति' नास्ति- भो०
३. शक्यं- भो०
४. कानाम्- नि०
५. मार्गेऽपि- नि०
६. तत्र अद्वय- नि०, भो०
७. वीरवीरजम्- भो०, टी०
८. विभागाः- भो०
९. प्रज्ञोपायस्याविशेषः- भो०

तत्र योगिनीनां प्राधान्यात् प्रथमत ईश्वरी देवी वज्रवाराही पूजनीया ।
आज्ञादैवत्येति आज्ञाप्रदाने दैवतं स्वामी भगवान् पूजनीयः ॥ १५ ॥

-----त्साधनकाले तासामाज्ञादानात् । ता अपि परिशोधनीयाः । वीरज-
मिति । चतुर्विंशतिवीरस्वरूपमप्यन्तरेव धातुरूपेण शोधनीयम् ॥ १५ ॥

पश्चात् समस्तसञ्चारं संसारोत्तारणं प्रभुम् ।
समस्तवेदनिर्माणं सिद्धान्तं तत्प्रकीर्तितम् ॥ १६ ॥

पश्चादिति । परेण सम्बन्धः । वीरजमिति वीररूपेण जातः । समस्त-
सञ्चारमिति । समस्तस्य सञ्चारस्यार्थः । संसारोत्तारणमिति । संसारात्
सत्त्वानामुत्तारकः । प्रभुमिति धातुत्रयस्यापि स्वामी । समस्तवेदनिर्माण-
मिति सर्वेषां तन्त्रादीनां निर्माता । किम्भूतं तदद्वयमित्याह— सिद्धान्त-
मित्यादि । सिद्धान्तमिति बौद्धानामवश्यम्भावनीयतया समयः, तदिति
अद्वयम् ॥ १६ ॥

पश्चादिति । तदुपसंहारानन्तरम् । समस्तसञ्चारमिति सर्वाकारयोगिनीसञ्चारं
विशोधयितव्यमेव । कीदृशम्? संसारोत्तारणमिति । व्यवदानपक्षसंगृहीतस्य संसारस्य
मण्डलचक्रात्मकस्य उत्तारणमिति, तदुपसंहाररूपत्वात् । अन्यच्च प्रभुमिति । सर्वोप-
संहारेण प्रज्ञाया एवाविकल्पसंविद्रूपाया केवलाया एवावस्थानात् । कीदृशं समस्त-
सञ्चारम्? समस्तवेदनिर्माणमिति । समस्तानां चतुर्णामपि वेदानां निर्माणमिति
योगिनीसञ्चारमेव, तदाधिपत्येनैव तादृग्विधविनयोद्देशेन तस्यैवावस्थानात् । सिद्धान्त-
मिति षड्दर्शनप्रसिद्धम् । तदिति [पूर्व]मेव । प्रकीर्तितमिति कथितम् । यदुक्तम्—

परवादिनश्च ये केचिल्लिङ्गभेदे व्यवस्थिताः ।

तेऽप्यत्र नावमन्तव्या----- तम् ॥ इति ॥ १६ ॥

त्वया वीर ममाख्यातं दुर्बोध्यं बुद्धतीर्थिकैः ।

शब्दापशब्दसंकेतं मार्गमेवानुसारतः ॥ १७ ॥

त्वया त्वयि । बुद्धतीर्थिकैरिति श्रावकादिभिः । दुर्बोधत्वमेव दर्शयति—
शब्दापशब्देत्यादिना । शब्दापशब्दविषये यः संकेतः, स एवार्थप्रापकत्वाद्
मार्गः, तस्यानुसारतः तद्द्वारेण ॥ १७ ॥

त्वयेति । शास्त्रभूतेन । वीरेति । भगवदामन्त्रणं सकलविपक्षान(णां) जयात् ।
ममेति । मम वज्रपाणेर्वाराह्या वा । आख्यातमिति देशितम् । अन्यच्च कीदृशम् ?
दुर्बोध्यमिति अगम्यम् । कस्येत्याह— बुद्धतीर्थिकैरिति । श्रावकप्रत्येकबुद्धयानाधि-
मुक्तिकैः । अन्यच्च शब्दापशब्देति शब्दापशब्दरूपो यः संकेतो व्यवहारात्मकः शब्दः,
तस्यैव शब्दस्य । अनुमानत इति । अनुगमनं कृत्वा ॥ १७ ॥

पिण्डार्थमुद्धृतं सम्यक् संकेतपदविस्तरम् ।

यो न ज्ञातव्यसञ्चारं योगयोगीदर्शितम् ॥ १८ ॥

पिण्डार्थमिति । पिण्डरूपोऽर्थः श्रीसंवरारख्यः । उद्धृतमिति कथितः ।
सम्यगिति अविपरीतम् । सङ्केतपदविस्तरमिति संकेतितपदैर्विस्तीर्णैः ।
यस्माच्छब्दापशब्दाभ्यामभिहितं तस्माद् दुर्बोधमित्यर्थः । यो न ज्ञात-
सञ्चारमिति । यो न जानाति सञ्चारार्थम् । योगेति योगी । योगी दर्शित-
मिति । आत्मनो योगित्वं दर्शयति ॥ १८ ॥

पिण्डार्थमिति । क्रमद्वयपिण्डीकरणलक्षणमर्थम् । उद्धृतमिति बृहन्मूलतन्त्रा-
दानीतम् । कथम् ? सम्यगिति अविपरीतक्रमद्वयभावनोपदेशात् । संकेतपदमिति ।

१. नुमानतः- टी०

२. ये न- क., ज्ञातसंचारं- नि०

३. योगिनी- क.

४. संवरार्चनम्- भो०

विशिष्टलोकोचितभाषयाऽर्थस्य क्रमद्वयरूपस्य निःशङ्कमाख्यानात् संकेतपदानां वज्र-
पदस्वभावानां यथाविस्तरं भवति तथा उद्धृतमित्यर्थः। एवं त्रिभिरर्थैस्तत्प्रतिपादक-
तन्त्रव्याख्यानानधिकृतपुद्गलनिर्देशमभिधाय एतत्तन्त्रापरिज्ञानादी^१----- ।

वृथा परिश्रमस्तेषां नैव तत्फलमाप्नुते ।

उक्तं ^२पूर्वादिसत्त्वस्य गोपितमन्यभाषितम् ॥ १९ ॥

तेषामिति । तस्य । तत्फलमिति सञ्चारार्थफलम् । प्रकारान्तरेण दुर्बोध-
त्वं दर्शयन्नाह— उक्तमित्यादि । पूर्वेति पूर्वम् । आदिसत्त्वस्येति आदि-
सत्त्वेन संवरेण । अन्यभाषितमिति अवाचकेन शब्देन कथितम् ॥ १९ ॥

अथ^३ सञ्चारवर्णिते सुसमाहितसाधकः ।

उक्तं पूर्वं महातन्त्रे जिन^४मन्त्राक्षरसाधितम् ॥ २० ॥

सुसमाहितसाधक इति । श्रुतचिन्ताविषये समाहितमनसा साधकेन
ज्ञातव्यमित्यर्थः । इदानीमालिकालिप्रभावमाह—उक्तमिति । जिन इत्यादिना
॥ २० ॥

यत्किञ्चित् कुरुते कर्म चिन्त^५येच्च शुभाशुभम् ।

अक्षरा^६न्तरमध्यस्य तत्र सर्वं प्रसिद्ध्यति ॥ २१ ॥

इति योगिनीसञ्चारे आलिकालिसर्वकर्मनिर्णयाद्वयनिर्देश-
स्त्रयोदशमः ॥ १३ ॥

१. इतः परं चतुर्दशोद्देशस्याष्टमश्लोकपूर्वार्धं यावत् खण्डिता टीका ।

२. मृद्वादि- क.

३. अत्र- भो०

४. मन्त्रं वरमोदितम्- क.

५. चिन्तयन्ति- क.

६. रान्तमध्यस्य- भो०

७. नास्ति- भो०

यत्किञ्चित् कुरुते कर्म चिन्तयेच्च शुभाशुभमिति । साधको
 यत्किञ्चिच्छुभमशुभं वा चिन्तयति, तत्सर्वं तस्य साधयतीति भावः ।
 अक्षरान्तरमध्यस्येति आलिकालिपरिवेष्टितस्य । तत्रेति तस्य । सर्वे प्रसि-
 द्ध्यन्तीति सर्वं सिद्धं भवतीति ॥ २१ ॥

इति त्रयोदशो निर्देशः ॥ १३ ॥

*

चतुर्दशो निर्देशः

अथ गुह्यविधिं वक्ष्ये सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ।

चतुर्बुद्धासनासीनं वज्राद्यं वीरयो^१गिनम् ॥ १ ॥

अथेत्यादि । सर्वतन्त्रेष्विति क्रियादितन्त्रेषु । चतुर्बुद्धासनासीनमिति । आत्मनः पुरो देशे गोमयादिबिम्बितचतुर्बुद्धासनविशुद्धं चतुरस्रमण्डलगत-
सुमेरुपृष्ठस्थसूर्यमण्डलासनासीनम् । वज्राद्यमिति । आद्यं वज्रसत्त्वं २संवरा-
परनामकम् । पूजयेदित्यध्याहार्यम् । किम्भूतमित्याह— वीरयोगिनीत्यादि ।
वीरयोगिनीति वज्रवाराह्याः ॥ १ ॥

डाकिन्यादि तु वज्रस्य वीरयोगेश्वरी^३विभुम् ।

आदर्शादि तु चत्वार अद्वयाद्वययोगतः ॥ २ ॥

डाकिन्यादि त्विति । डाकिन्यादिचतुष्टयस्य चक्रस्य । वीरयोगेश्वरी-
प्रभुमिति । चक्रत्रयस्थखण्डकपालादिवीरयोगिनीनां तथा काकास्याद्यष्टानां
च नायकम् । आदर्शादि तु चत्वार इति कोणेष्वदर्श[शब्द]रसस्पर्शधर्म-
विशुद्धपञ्चामृतपूर्णकपालचतुष्टयं च । कथं पूजयेदित्याह— अद्वयाद्वय-
योगत इति । अद्वयः श्रीवज्रवाराहीयुक्तो भगवान्, तेनाद्वययोगोऽभेदाहङ्कारः ।
ततः स्वयं चक्रनायकः सन् भगवन्तं पूजयेदित्यर्थः ॥ २ ॥

१. योगिनी- क. नि०, गृहीतस्तु भोटानुसारी ।

२. 'पञ्चकुले लक्षितम्' इत्यधिकम्- भो०

३. प्रभुम्- नि०

४. त्रिचक्र- भो०

अद्वयं द्रव्यपुष्पादि दातव्यं ^१कुसुमैककम् ।
पञ्चमुद्रादि ^२गात्रं च षट्पारङ्गतपारगैः ॥ ३ ॥

अद्वयमिति । चित्तमात्रतया पूज्यपूजकपूजानामभेदं पश्यता । द्रव्य-
पुष्पादीति द्रवद्रव्यपुष्पधूपादिकम् । एतदेवाह— दातव्यमित्यादिना । कुसु-
मेति कुसुमादिकम् । एकैकमिति एकैकशः । प्रत्येकं देवताभ्यो दातव्य-
मित्यर्थः । एवं बाह्यपूजामभिधाय हस्तपूजां दर्शयितुमाह— पञ्चमुद्रेत्यादि ।
पञ्चमुद्रादिगात्रस्येति । श्रीसंवराहङ्कारपूर्वकं गात्रगतपञ्चमुद्रादिधारिणा ।
आदिशब्देन भस्मपरिग्रहः । षट्पारङ्गतपारगैरिति मुद्राणां पारमितारूपि-
णीनां धारणात् षट्पारमितापारगेण ॥ ३ ॥

हस्तपूजादि ज्ञानीनां ज्ञातव्यं वीरधीमताम् ।
षड्योगिन्यो यथा^३पूर्वं वज्रसत्त्वादि द्वादशम् ॥ ४ ॥

हस्तपूजादीति । हस्तपूजैवादिभूतत्वादादिः । ज्ञानिनामिति । पूजार्ह-
वज्रसत्त्वादीनां परिज्ञानयुक्तेन साधकेन । ज्ञातव्यमिति ज्ञातव्या । वीर-
धीमतामिति वीरवज्रयोगिनीयुक्ता । वामहस्ते पूजा वीरयोगिनीनां^४ ज्ञात-
व्येत्यर्थः । कियत्यस्ता देवताः? इत्याह— षड्योगिन्य इति वज्रवाराह्यादि-
योगिन्यः षट् । यथापूर्वमिति । यथा कवचप्रस्तावे ७बीजात्मा कथिताः ।
वज्रसत्त्वादीति वज्रसत्त्वादयः षट् । द्वादशेति षड्योगिन्यः षड्वीराश्च ता
देवता द्वादश भवन्ति । अपरापरदेवताश्च मूलतन्त्रेऽवगन्तव्याः ॥ ४ ॥

-
१. एकमेककम्- भो०
 २. वरगात्रं - भो०, दिगात्रस्य- नि०
 ३. नास्ति- भो०
 ४. मुद्राचक्रादि- भो०
 ५. यथापर्व- भो०
 ६. 'सप्तबीजैः' इत्यधिकम्- भो०
 ७. सप्तबीजात्मा- भो०

यो ^१जानीते महावीर हस्तपूजादि ^२दुर्लभम् ।
पञ्चपञ्चेति सम्मिश्रं क्षीरकेण तु मिश्रितम् ॥ ५ ॥

यो जानीत इति यो ज्ञात्वा । महावीरिति महावीरः साधकः । पञ्च
पञ्चेति सम्मिश्रमिति पञ्चामृतपञ्चप्रदीपसहितपुष्पादिभिः । क्षीरकेण तु
मिश्रितमिति । अभावाद्बोधितमात्रसहितैरित्यर्थः ॥ ५ ॥

पूजनीते संस्थाने तु भुक्तिमुक्तिं तु कामिकाम् ।
योगी दरिद्र अर्थी स्याद् हस्तपू^४जेन सेवितम् ॥ ६ ॥

पूजनीते इति पूजयति । संस्थान इति सम्यक् स्थाने वामहस्ते ।
भुक्तिमुक्तिं तु कामिकामिति तस्य भुक्तिमुक्तिलक्षणमभिलषितं भवति ।
दरिद्रमिति दरिद्रः । हस्तपूजनेनेति हस्तपूजया ॥ ६ ॥

^५प्राप्यान्यन्नात्र चिन्त्यं वै खानपानादिव^६स्तुकम् ।
कुरुते ^७नित्यपूजाभिः चिन्ति^८तं तस्य सिद्ध्यति ॥ ७ ॥

प्राप्येति प्राप्नोति । पूजाभिरिति पूजाम् ॥ ७ ॥

एष वीरो महावीरयोगिन्यौ भुवि दुर्लभम् ।
चर्याव्रतं तु योगि^९नां सर्वयोगेश्वरः प्रभुः ॥

-
१. योजनीते- भो०
 २. दिभिः स्तुतम्- भो०
 ३. मिश्रिकाम्- क.
 ४. पूजनेन- नि०
 ५. प्राप्य नात्र- क. ख., गृहीतपाठस्तु भोटानुसारी ।
 ६. वस्त्रकम्- भो०
 ७. दिव्य- भो०
 ८. चिन्तित्वं- क.
 ९. योगिन्यां- क., योगिनीनां- नि०

य इमां स्वयं ^१पूज्य सर्वकामफलप्रदम् ॥ ८-९ ॥

२इति योगिनीसञ्चारे चतुर्वीरसंयोगहस्तपूजानिर्देश-
श्चतुर्दशमः ॥ १४ ॥

एष वीरो महावीर इति । एते वज्रसत्त्वादयो वीराः स्वयं श्रीसंवरः ।
दुर्लभमिति दुर्लभाः । चर्याव्रतं त्वित्यादि । सर्वं कामफलप्रदमिदमित्यस्मा-
दनन्तरं योजयितव्यम् । चर्याव्रतं त्विति । वक्ष्यमाणचर्याविधिम् । पुनः
प्राप्येता(त्य) ध्याहार्यम् । योगिनीनामिति योगी । सर्वयोगेश्वरः प्रभुरिति ।
सर्वान्ययोगिनां स्वामी भवतीति भावः । इमामिति अनन्तरोक्तां हस्तपूजाम् ।
स्वयं पूज्येति स्वयं कुर्यात् । सर्वकामफलप्रदमिति । तस्य सर्वाभिलषित-
फलप्रदानसमर्थं श्रीसंवरस्य रूपं सिद्ध्यतीत्यर्थः ॥ ८-९ ॥

इति चतुर्दशो निर्देशः ॥ १४ ॥

-----स्वरूपगोपनं कृत्वा देशदेशान्तरगमनलक्षणम् । योगिनामिति
क्रमद्वयभावकानां सम्बन्धि । सर्वयोगेश्वरेति सर्वेषामुत्पत्तिक्रमसमाधिस्वभावानां
वज्रचतुष्कादीनां योगानां मध्ये ईश्वरम्, कुत्राप्यभिनिवेशस्याभावेन स्वातन्त्र्यात् ।
प्रभुमिति । प्रज्ञोपायसंयोगेन प्रकृष्टस्य सहजस्य भावनात्प्रभुः, तम् । य इति चर्याव्रती
योगी हस्तपूजाकर्ता । इमामिति अनेन । पूजितेन हस्तेन । नित्यमिति पूजाकाले
सर्वकालम् । स्वयमिति आत्मना । पूज्येति पूजयित्वा । मण्डलचक्रदुर्लभा योगिनी-
वासाः । सर्वकाममिति सर्वकामेन रूपादिविषये संसेवनालक्षणेन । फलम् सहज-
स्वभावं प्रकर्षेण ददातीति तत्प्रदः, तादृशो भवेदित्यन्वयेन संसाध्यम् ॥ ९ ॥

इति श्रीपण्डिताचार्य-अलककलशविरचितायां योगिनीसञ्चारतन्त्रटीकायाम्
उपदेशानुसारिण्यभिधानायां चतुर्दशपटले विस्तरव्याख्या ॥ १४ ॥

*

पञ्चदशो निर्देशः

अथ चर्याविधिं वक्ष्ये वीराद्वययोगिनी ।

प्रथमं समाहितो योगी शक्तिमुत्पाद्य यत्नतः ॥ १ ॥

अथ चर्याविधिमित्यादि । वीरेति संवरात्मा साधकः । अद्वययोगिनीति । विद्यया सार्धमद्वययोगयुक्तः । सप्रज्ञ इत्यर्थः । शक्तिमिति । ईषद्योग-प्रभावम् ॥ १ ॥

एवं चतुर्दशपटलेन चतुर्वीरसंयोगहस्तपूजादिकमभिधाय सम्प्रति हस्तपूजा-दाववस्थितेन योगिना चर्याव्रतादिकं कर्तव्यमिति चर्याव्रतप्रतिपादनार्थं पञ्चदशपटल-मुपक्षिपन् प्रथमं तावच्चर्याव्रतव्याख्यानप्रतिज्ञामाह— अथेत्यादि । चतुर्दशपटल-व्याख्यानन्तरं वीरयोगिन्याश्चर्याविधिं वक्ष्ये इति सम्बन्धः । वीरो निर्भयत्वात् साधकः, योगिनी क्रमद्वयभावेन समयमुद्रा, स च सा च योगिन्यौ, तयोः चर्या समाहित-योगादुत्थाय समाहितयोगावस्थायां तत्त्वयोगेन प्रतिवेधलक्षणा । तस्या विधिरिति करणप्रकारविशेषः, तम् । वक्ष्ये कथयिष्ये । कथमित्याह— अद्वयमिति । प्रज्ञोपा-याभेदमाश्रित्येति यावत् । एवं व्याख्यानप्रतिज्ञामभिधाय साक्षात् तद्देशनां वक्तुं तदङ्ग- [भूत]तदधिकृतपुद्गलनिर्देशमाह— प्रथममिति । आदियोगप्रस्तावे । समाहित इति । क्रमद्वयसमाधिना विक्षेप^१----- ॥ १ ॥

पश्चादुत्पन्नसामर्थ्यो व्रतचर्या^२ मनेप्सिताम् ।

पर्यटति महावीरः सत्त्वानुग्रहेहेतुना ॥ २ ॥

व्रतचर्यामिति चर्याव्रतम् । मनेप्सितमिति चर्यात्रयादन्यतरत् । महावीर इति साधकः ॥ २ ॥

१. इतः परं पञ्चमश्लोकं यावत् टीका खण्डिता ।

२. चर्यानये- क.

१प्राण्यङ्गवाससावासं सुखार्थी २चालयेत् सुखम् ।
यज्ञोपवीतं संत्यज्य शौचं श्रीहेरु^३कस्थितम् ॥ ३ ॥

प्राण्यङ्गवाससावासमिति व्याघ्रचर्मविहितपरिधानाः । सुखार्थी
चालयेत् सुखमिति । यदा सुरतसुखार्थिनो भवन्ति, तदा सुखमुत्पाद-
यन्तीत्यर्थः । यज्ञोपवीतमित्यादि । श्रुतिस्मृतिविहितयज्ञोपवीतं परित्यज्य
गौधातुरन्येन पवित्रशरीरा इति भावः ॥ ३ ॥

कामयेत् सर्वयोगिन्य इच्छा^४मुक्तिफलार्थिभिः ।
मूलमन्त्रस्य यद्वीरं ^५ब्रह्मसूत्रादि कल्पितम् ॥ ४ ॥

कामयेदिति कामयमानाः । सर्वयोगिन्य इति पञ्चकुलप्रतिबद्धाः
सर्वयोगिनीः । इच्छेति यदीच्छा भवति । भुक्तिमुक्तिफलार्थिभिरिति भुक्ति-
मुक्तिफलार्थिनः । इदानीं मन्त्रादिरूपामनेकप्रकारां विशुद्धिमाह— मूल-
मन्त्रस्येत्यादिना । मूलमन्त्रस्येत्यादि मालामन्त्रः । यद्वीरमिति यद्वीरस्य ।
ब्रह्मसूत्रादीति आदिसंसिद्धं ब्रह्मसूत्रम् ॥ ४ ॥

हृदयमन्त्रं तु देवस्य माला वै^६ शतार्धभूषितम् ।
षड्भिः कवचस्य वीरेण मुद्रेयं गात्रशोभनम् ॥ ५ ॥

माला वै शतार्धभूषितमिति पञ्चाशन्मुण्डमाला । षड्भिः कवच-
स्येति षड्भिः कवचमन्त्रैः । वीरेणेति वीरस्य । मुद्रेयं गात्रशोभनमिति
गात्रालङ्कारमुद्राषट्कम् ॥ ५ ॥

-
१. प्राणाङ्ग- क.
 २. पालयेत्- भो० (दे०, पे०, ल्हा०)
 ३. हेरुकं- ख.
 ४. इच्छन्तु भुक्तिमुक्ति- क., इच्छाभुक्तिमुक्ति- नि०
 ५. ब्राह्मामृतादि- क.
 ६. च- क.

वज्र^१वाराह्या यन्मन्त्रं कण्ठे^२ कण्ठिकशोभितम् ।

सर्वबुद्धस्य डाकिन्यश्चर्माम्बरधराः परम् ॥ ६ ॥

वज्रवाराह्या यन्मन्त्रमिति । मालामन्त्रः । कण्ठाकण्ठिकेति कण्ठगत-
कण्ठिका । शोभनमिति शोभना । सर्वबुद्धस्य डाकिन्य इति । “ॐ सर्व-
बुद्धडाकिनीये” इत्यादि हृदयमन्त्रेण । चर्माम्बरधराः परमिति । परिधानी-
कृतव्याघ्रचर्माम्बरं परमम् ॥ ६ ॥

-----भगवतो येयं कण्ठकण्ठिका सा वज्रवाराही तन्मन्त्रेण तस्या अष्ट-
पदमन्त्रविशुद्ध्या ज्ञातव्या । कण्ठादिभ्योऽष्टस्थानेभ्यस्तस्य चानुत्पत्तेरष्टनाडीमयत्वाद्
वा । सर्वबुद्धस्येति । यद्येवं भगवतश्चर्माम्बर[धर]त्वं गजचर्मलक्षणम् । तत्सर्वबुद्ध-
डाकिनीये इति भगवतीहृदयमन्त्रविशुद्धिस्वभावं ज्ञातव्यम्, गजचर्मणो मोहस्व-
भावत्वात्, भगवत्याश्च प्रज्ञास्वभावत्वेन तत्प्रतिपक्षभूतत्वात् । परमिति प्रकृष्टस्वभावम् ।
आलयविज्ञानप्रतिपक्षभूतत्वाद् वा ॥ ६ ॥

खट्वाङ्गं देवतामूर्तिः प्रज्ञा डमरु^३कल्पितम् ।

खण्डकपालादयः सर्वे^४ शरीरधातुकल्पितम् ॥ ७ ॥

देवतामूर्तिरिति संवरशरीरम् । प्रज्ञाडमरुकल्पितमिति डमरुकं वाराही ।
धातुकल्पितमिति नखदन्तादिरूपेण व्यवस्थापिताः ॥ ७ ॥

खट्वाङ्गं देवतामूर्तिरिति । अविशुद्धकायवाक्चित्तविनिवृत्त्या विशुद्धकायवाक्-
चित्तद्यो(त्तेभ्योऽ)नुस्मृतिद्योतनार्थेन खट्वाङ्गं देवतामूर्तिरुच्यते । प्रज्ञा डमरुकध्वनि-
रिति । डमरुकध्वनिः प्रज्ञेत्युच्यते । सर्वविकल्पप्रतिपक्षभूता धर्मता प्रज्ञापारमिता-

१. वज्रवीराहृदयं- ख., वाराह्याद्यं- भो०

२. कण्ठ- टी०, कण्ठा- नि०

३. डमरुकध्वनिः- टी०

४. सर्वशरीर- क.

रूपमुत्पादयितुम्। खण्डकपालादय इति चित्तचक्रानन्तरं चतुर्विंशतिवीर्यस्वभावाः। सर्व इति निरवशेषाः। शरीर इति योगिदेहः। धातुकल्पितमिति नखदन्तादिधातु-
रूपत्वेन कल्पितास्तद्विशुद्धिस्वभावा इत्यर्थः ॥ ७ ॥

सप्ताक्षरस्य मन्त्रेण कुण्डलं कर्णशोभनम् ।
षड्योगि^१न्याश्च मन्त्रेण मेखलाकृतभूषणम् ॥ ८ ॥

सप्ताक्षरस्य मन्त्रेणेति उपहृदयमन्त्रेण। षड्योगिन्य इति। मन्त्रेणेति योगिनीनां षड्भिः कवचमन्त्रैः ॥ ८ ॥

सप्ताक्षरस्येति। भगवतः कर्णद्वये यदेतत्कुण्डलद्वयं शोभनं चारुरूपं तत्सप्ताक्षर-
मन्त्रेण भगवदुपहृदयमन्त्रविशुद्ध्या ज्ञातव्यम्, कुण्डलद्वयस्य सप्तरत्नमयत्वात्।
षड्योगिन्याश्च मन्त्रेणे(णे)ति। भगवतो येयं मेखला सा षड्योगिनीमन्त्रेण
भगवतीकवचस्वभावा ॐ वामित्यादिमन्त्रविशुद्ध्या ज्ञातव्या। मेखलापञ्चोपादान-
स्कन्धविशुद्धयै पञ्चाङ्गलकपालखण्डस्वभावा क्रियते, मध्यसूत्रं च षष्ठम्। तस्माद्
योगिनीमन्त्रविशुद्धिः ॥ ८ ॥

सर्वचक्रस्य योगिन्यो मन्त्रपान^२करोटकम् ।
^३वैरोचनीति यन्मन्त्रं कपालाङ्कृत(ङ्कि)तशेखरम् ॥ ९ ॥

सर्वचक्रस्य योगिन्य इति चक्रत्रयगतयोगिनीनां मन्त्रैः। मन्त्रपान-
करोटकमिति ज्ञानामृतपात्रम्। वैरोचनीति यन्मन्त्रमिति। देव्या उपहृदय-
मन्त्रम् ॥ ९ ॥

सर्वचक्रस्येति। भगवतो हस्ते यत्करोटकमिति कपालं तत्सर्वचक्रस्य योगि-
नीनां ----द्विस्वभावं ज्ञातव्यम्। सर्वचक्रयोगिनीनां शून्यतास्वभावत्वात् कपालस्य
च प्रतिपादकत्वात् पानसमा^४----- ॥ ९ ॥

१. षड्योगिन्येति यन्मन्त्रं- क.

२. यान- क.

३. वैरोचनमालामन्त्रं- भो०

४. इतः परं चतुर्दशश्लोकस्य पूर्वार्धं यावत् टीका खण्डिता ।

एवं विचिन्त्य आत्मानमाक्षेपमन्त्रसुरक्षितम् ।
ब्रह्मचर्यं सदा ^१कृत्वा मन्त्रं वै अष्टपदार्चितम् ॥ १० ॥

एवं विचिन्त्य आत्मानमिति । एवमुक्तक्रमेणात्मानं कवचयित्वा ।
आक्षेपमन्त्रसुरक्षितमिति । चतुर्मुखमन्त्रेण पुनः पुनरुच्चारितेन निरन्तरं रक्षां
कुर्यात् । ब्रह्मचर्यमिति ब्रह्मणा संवरात्मना चर्यं चरणं भावानां व्यव-
लोकनम् । सदा कृत्वेति निरन्तरं कृत्वा । मन्त्रं वै अष्टपदार्चितमिति । अष्ट-
पदमन्त्रेणात्मानं परं च गुरुबुद्धादिकमर्चयेत् ॥ १० ॥

दिवसं तु भगवान् वीरो रात्रौ ^२योगिनी कल्पितम् ।
नाकार्यं विद्यते किञ्चिन्नाचिन्त्यं विद्यते सदा ॥ ११ ॥

दिवसं त्वित्यादि सुगमम् ॥ ११ ॥

नाभक्ष्यं विद्यते किञ्चिन्नावाच्यं यच्छुभाशुभम् ।
यथात्मनि तथा सत्त्वा तथात्मनि अहं परम् ॥ १२ ॥

इति सञ्चिन्त्य योगात्मा सर्व^३मुद्रामन्त्रवर्जितम् ।
सिंहवद् विचरेद् वीरः सर्वाशापरिपूरकः ॥ १३ ॥

यथात्मनीत्यादि । यथात्मनीति यथा आत्मनि अहङ्कारस्तथा सत्त्वा
इति तथा सत्त्वेषु । तथात्मनीति यथा परेष्वहङ्कारस्तथात्मन्यपि । अहं पर-
मिति अहं परमः संवर इत्यर्थः ॥ १२-१३ ॥

यावन्तो [ह्य]ङ्गविक्षेपा वचसः प्रसराणि च ।
तावन्तो मन्त्रमुद्राः स्युः श्रीहेरुकपदे स्थिताः ॥ १४ ॥

श्रीहेरुकपदे स्थिता इति । श्रीहेरुकपदे स्थितत्वात्, योगिन इति भावः

॥ १४ ॥

-
१. भूत्वा- क. भो०
२. भगवती- भो० (दे०)
३. सर्वभयपरिवर्जितम्- भो०

-----सर्वकायिकवाचिका मन्त्रमुद्राः स्युरिति मुद्रामन्त्रा भवेयुरिति यावत् ।
आङ्गिकः सर्व एव तदीयो व्यायामः । वाचिकश्च सर्वो मन्त्रः संगृहीत इति ।
कस्याङ्गविक्षेपादयो मन्त्रमुद्राः स्युरित्याह— श्रीहेरुकेति । श्रीहेरुकस्य पदे आकारे
स्थितस्य योगिन इत्यर्थः ॥ १४ ॥

पञ्चवर्णस^१माचार एकवर्णस्तु कल्पितः ।

^२इति सत्त्वादिमात्मानं ^३पर्यटन्ति परमं पदम् ॥ १५ ॥

पञ्चवर्णेत्यादि । वस्तुत एकवर्णमेव विश्वं पञ्चवर्णत्वेन कल्पितम् ।
अतस्तत्राचारो न विरुद्धयत इति भावः । चर्याफलमाह— एत इत्यादिना ।
एते चर्याचारिणः सत्त्वाः । पर्यटन्तीति गच्छन्ति । परमं पदमिति श्रीसंवरा-
वस्थाम् ॥ १५ ॥

अन्यच्च कीदृशो योगीत्याह— पञ्चवर्णसमाचार इति । ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-
शूद्रान्त्यजातिषु मध्ये समाचारः समतया चर्याकर्ता । तत्र मध्ये स्थितोऽपि एक-
वर्णत्वेन तथागतरूपत्वलक्षणेन । कल्पितः कल्पनां विदध्यादित्यर्थः । एवमन्यस्यागतां
मन्त्रमुद्रादिविशुद्धिमभिधायोपसंहारव्याजेन विकल्पकपदप्रतिष्ठानं वक्तुमाह— इति
सत्त्वेति । पूर्वोक्तेन न्यायेन सर्वं ज्ञात्वा । आत्मानमिति समतापदेऽवस्थितम् । परमं
पदमिति सहजाकारं महामुद्रालक्षणम् । पर्यटेदिति गच्छेत् ॥ १५ ॥

नास्ति किञ्चिदकर्तव्यमद्वयज्ञानचेतसा ।

निर्विकल्पैकचित्तात्मा ^४भुञ्जितं कामपञ्चकम् ॥ १६ ॥

^५इति योगिनीसञ्चारे चर्याव्रतमन्त्राद्वयनिर्देशः पञ्चदशमः ॥ १५ ॥

१. संचार- क.; कुलसमाचार- भो०

२. एते- क. नि०, एवं- भो०

३. पर्यटेत्- टी०

४. भुञ्जध्वम्- टी०

५. नास्ति- भो०

अद्वयज्ञानचेतसेति श्रीसंवराहङ्कारेण ॥ १६ ॥

इति पञ्चदशो निर्देशः ॥ १५ ॥

नास्ति किञ्चिदिति । अद्वयज्ञानचेतसा विशिष्टज्ञानवता । अकर्तव्यमिति हित-
मारणादिकमकर्तव्यं नास्ति । क्लेशपारतन्त्र्येण हि अकर्तव्यादिकं क्रियमाणं नरका-
दिलक्षणफलावाहकं भवति । अद्वयज्ञानावस्थितेन तदेव महाकरुणावेधि(दि)नः
सत्त्वार्थहेतोः क्रियमाणं प्रत्युत विशिष्टफलवाहकं भवतीति भावः । अद्वयज्ञाने सर्वत्र
समतालक्षणे चित्तं यस्यास्ति स तथा । तेन ततश्च । निर्विकल्पेति विकल्परहितेन
चित्तेन । कामपञ्चकमिति रूपादिविषयलक्षणम् । भुञ्जध्वमिति तदुपभोगं मन्त्रमुद्रो-
पायबलेन कुरुध्वमित्यर्थः ॥ १६ ॥

इति श्रीपण्डिताचार्य-अलककलशविरचितायां योगिनीसञ्चारतन्त्रटीकायाम्
उपदेशानुसारिण्यभिधानायां पञ्चदशपटले विस्तरव्याख्या ॥ १५ ॥

षोडशो निर्देशः

१अत्र पश्चिमकालेऽस्मिन् न सिद्ध्यति तव मन्यके ।

अन्यत्र २बुद्धसंज्ञा वै मुद्रामण्डलजापतः ॥ १ ॥

अत्र पश्चिमकाल इत्यादि। पश्चिम इत्यादि कलियुगे। अस्मिन्निति सति क्लेशविप्लवे। न सिद्ध्यतीति। इह जन्मनि वेदितव्यम्। तवेति त्वम्। मन्यक इति मन्यस्व। किं सर्वथैव न सिद्ध्यतीत्याह— अन्यत्र बुद्धसंज्ञा वै इति। श्रीसंवरादन्यस्मिन् बुद्धसंज्ञको न सिद्ध्यतीत्यनुवर्तते। मुद्रेत्यादि। मुद्रादिनापि ॥ १ ॥

एवं पञ्चदशपटलेन चर्याव्रतमभिधाय तत्रावस्थितस्यापि यदि क्षिप्रतरं सिद्धिर्न भवति, तदा तस्य सिद्धिविशेषनिर्देशान्तरं -----सोत्पादनार्थं सिद्धिनिश्चयश्रीहेरुकी-करु(र)णं वक्तुं षोडशपटलमुपक्षिपन् प्रथमं तावत्सिद्धिप्राप्त्यादीनवम-----अपि चेत्तस्मिन्नर्थे वाच्यः। पश्चिमकाल इति पञ्चकषायाकीर्णकलिकाले। अस्मिन्निति प्रत्यक्षपरि---लान्त इति। भावनाकालपर्यन्तम्। सिद्धिरिति श्रीहेरुकपदप्राप्तिलक्षणे। न सिद्ध्यतीति। यदि----- कुतो न सिद्ध्यतीत्याह— अन्यत्रेति। प्रकृत्या भावनां विहायान्यस्मिन्नालम्बने हेरुकपदप्राप्ता-----न, बुद्धयोगिसम्बन्धिन्याः प्रज्ञाया व्याकुलत्वात्, अनेकाग्रत्वात्। कस्मिन्नान्यत्रेत्याह— मुद्रेति हस्त[चालना]दिलक्षणायाम्। मण्डलेति रजोमण्डलादिलिखने। पूर्वसेवार्थं समयजपकरणेन तस्मिन् विषये व्याकुलत्वात्। सा सिद्धिर्न भवतीत्यर्थः ॥ १ ॥

नैव सिद्धिं सुखं यान्ति बुभुक्षाक्षुत्पिपासिनः ।

इच्छामाल^३म्ब्य यत्नेन अहंतत्त्वेन योगिना ॥ २ ॥

नैव सिद्धिमिति। अत्र यान्तीति परेण सम्बन्धः। क इवेत्याह— सुखं यान्तीत्यादि। यथा व्याधिवशात् क्षुत्पिपासार्ताः भुक्त्वा पीत्वा सुखं

१. अन्यत्र- भो०

२. बुद्धसंख्यां- क. ख., बुद्धिसंख्या- भो०, गृहीतपाठस्तु निबन्धानुसारी।

३. मालम्ब- क. ख.

यान्ति । नैवेति पूर्वेण सम्बन्धः । तद्वदित्यर्थः । **इच्छामिति** यदीच्छा भवति ।
यत्नेनेति आदरेण । **अहमिति** माम् । **तत्त्वेन** रूपेण । **योगिनेति** १योगी ॥ २ ॥

तस्माद्धेतोः **सिद्धिमिति** हेरुकपदप्राप्तिलक्षणां महामुद्रासिद्धिं न यान्ति । बोधिं
न गच्छन्ति । कथन्न यान्तीति? **सुखमिति** । व्रतधूतगुणादिपरिहारेण पञ्चकामोपभोग-
चर्यया यदा (था) सिद्धिं न यान्ति, तदाब्दात् तदपि (तद्वत् तेऽपि) योगिनां भवेयु-
रित्याम्नायः । प्रत्युत सिद्धेर्न प्राप्त्या बुभुक्षापिपासादुःखेनाकुलाः स्युरित्यर्थः । एवं
सिद्ध्यप्राप्त्यादीनेवमभिधाय सिद्धिनिश्चयोत्पादनं वक्तुं तदङ्गमेकाग्रतोत्पादनमाह—
इच्छामित्यादि । अन्यस्मिन्नालम्बने मुद्रामण्डलजपादिके बुद्धिं विनिवार्य क्रमद्वय-
भावनायामेव इच्छामभिप्रायमुत्पाद्य यथेप्सितं पर्यटन्तीति सम्बन्धः । एतदाह—
आलम्ब्येति । मनसि कृत्वा । कथमित्याह— **यत्नेनेति** । अन्यमनस्कारपरिष्करणेन
वीर्येणेत्यर्थः । अहं तत्त्वेनेति । आत्मतत्त्वेन^१ ----- ॥ २ ॥

यथा श्रीहेरुकज्ञानी पर्यटन्ती(ति) यथेप्सितम् ।
दूरश्रवण^२चक्षुर्भ्यां क्षणात् पश्यति योगि^३नीम् ॥ ३ ॥

यथा श्रीहेरुकज्ञानीति । यथावत् श्रीहेरुकस्य विशुद्धिज्ञः । पर्यटन्ती-
(ती)ति भ्रमति । **यथेप्सितमिति** पीठादौ । पर्यटनफलमाह— दूरेत्यादिना ।
योगिनीनां प्रसादात् सन्निहितानिव शब्दान् दूरतः शृणोति । **चक्षुर्भ्यां क्षणात्**
पश्यतीति व्यवहितमपि रूपं सन्निहितमिव पश्यति । एवमपरमप्यभिज्ञा^४-
त्रयं वेदितव्यम् ॥ ३ ॥

एवं ज्ञात्वा इमान् धर्मान् सर्वाशापरिपूरकः ।
कुर्वन्ति ते महाप्राज्ञा अद्वयज्ञानसुव्रतम् ॥ ४ ॥

१. चक्रसंवरस्य योगी- भो०
२. इतः परं १३ श्लोकं यावत् टीका नोपलब्धा ।
३. कर्णाभ्यां- भो०
४. योगिनाम्- भो०
५. गन्धरसस्पर्शत्रयं- भो० इत्याधिकम् ।

एवं ज्ञात्वा इमान् धर्मानिति । एवमुक्तक्रमेण इमाननुशंसान् विदित्वा ।
सर्वाशापरिपूरक इति । बहुवचने । अद्वयज्ञानसुव्रतमिति । अद्वयज्ञानप्रापकं
१ चर्याव्रतमित्यर्थः ॥ ४ ॥

आलिकालिविनिर्मुक्तः^२ धर्मोऽयं यदि मन्यते ।
वृथा परिश्रमस्तस्य नैव तत्फलमाप्नुयात् ॥ ५ ॥

जगतः प्रज्ञोपायाद्वयतां निवेदयितुमाह— आलिकालीत्यादि ।
आलिकालिविनिर्मुक्त इति । अव्यतिभिन्नप्रज्ञोपायरहितः । धर्मोऽयमिति
बाह्य आन्तरश्च । यदि मन्यक इति यदि मन्यते, जन इत्यध्याहार्यम् ।
वृथापरिश्रमस्तस्य नैव तत्फलमाप्नुयादिति । सुगमम् ॥ ५ ॥

सूत्रक्रियाभिचर्याणां योगगुह्यादिवेदितः^४ (भेदतः) ।
ख्यापितं सर्वलोकस्य बोधनार्थाय हेतवे ॥ ६ ॥

सूत्रेत्यादि । सूत्रादिष्वप्ययमेवार्थो हितबुद्ध्या प्रतिपादित इति
समासार्थः ॥ ६ ॥

प्रवृत्तिं तु यथाप्रोक्तं^५ सम्भारद्वयमद्वयम् ।
तत्त्वधर्मस्वभावज्ञः^६ केवलं निर्वृतिं मतम् ॥ ७ ॥

का पुनः प्रज्ञोपायरूपतेत्याह— प्रवृत्तिं त्विति श्रीसंवरस्योत्पत्तिः ।
यथा प्रोक्तमिति यथोक्ता प्राक् । सम्भारद्वयमिति सम्भारद्वयलभ्या ।
अद्वयमिति विद्यया सार्धमभिन्ना । इयता संवृत्तिसत्यमुक्तम् । परमार्थसत्यं

-
१. उपायमित्यर्थः- भो०
 २. मुक्तं धर्मोदयं- क. ख.
 ३. मन्यकः- क. ख. नि०
 ४. भेदितः- भो०
 ५. सञ्चार- क. ख.
 ६. स्वभावश्च- क. ख.
 ७. केनचित्- नि०

वक्तुकाम आह— तत्त्वधर्मस्वभावज्ञ इति । षष्ठ्यर्थे प्रथमा । तत्त्वेत्युद्देशः । धर्मेति निर्देशः । स्वभावेति प्रतिनिर्देशः । केनचिदिति श्रीकारमद्वय-ज्ञानमित्यादिना । निर्वृतिः परमार्थसत्यम् । मतमिति कथिता ॥ ७ ॥

उक्तं पूर्वं मया सर्वं सत्यद्वयसमाश्रयम् ।
योगिना सर्वभावेन भावनाभिरतिं मता(त)म् ॥ ८ ॥

उपसंहरन्नाह— उक्तं पूर्वं मयेति । किमुक्तमित्याह— सत्यद्वय-समाश्रयमिति । अत्र कुर्यादित्यध्याहार्यम् । योगिनेति योगी ॥ ८ ॥

सर्वप्रपञ्चमालम्ब्य प्रपञ्चे निष्प्रपञ्चितम् ।
सर्वतन्त्रेषु यद् गुह्यं निर्वाणं तस्य दर्शितम् ॥ ९ ॥

सर्वप्रपञ्चमिति देवदेवतीरूपम् । आलम्ब्येति आलम्बयेत् । याव-निर्वृतिगोचरमिति विशुद्धिपर्यन्तम् । सर्वतन्त्रसाधारणं परमार्थसत्यमिति दर्शयितुमाह— सर्वतन्त्रेष्वित्यादि । क्रियादितन्त्रेषु यद्रहस्यं निर्वाणं दर्शितं तदत्रापि दर्शितमित्यर्थः ॥ ९ ॥

अनेन हेतुना योगी असत्यद्वयसमाश्रयम् ।
सर्वचिन्तां निराकृत्य सर्वभोगोपभोगकृत् ॥ १० ॥

सत्यद्वयसमाश्रयमिति । अत्रापि कुर्यादिति वेदितव्यम् । सर्व-चिन्तां निराकृत्येति सर्वान्यचिन्तां परिहृत्य ॥ १० ॥

-
१. स्वभावज्ञेति- भो०
 २. सत्त्व- क. ख.
 ३. सर्वसिद्धि- भो०
 ४. निर्माणं- भो०
 ५. 'साधारणं' नास्ति- भो०
 ६. तन्त्रेण- भो०
 ७. सत्त्व- क. ख.
 ८. 'कुर्यादिति' नास्ति- भो०

विच^१रिष्यते महायोगी चक्रसंवर^२संवरे ।
योगिन्यस्य तु यच्चिह्नं रूपसंकेत^३छोम्मकम् ॥ ११ ॥

विचरिष्यत इति ^४विचरति । चक्रसंवरसंवर इति । चक्रसंवरसंवृते
पीठोपपीठादिके । किं कृत्वेत्याह— योगिन्यस्य त्वित्यादि । योगिन्यस्य
त्विति ^५योगिनीनाम् । रूपसंकेतछोमकमिति । विदित्वेति शेषः ॥ ११ ॥

गृहपञ्चादिग्रामेषु^६ स्थिता वै चक्र^७योगिनी ।
साधनीते सतः सर्वं वामावर्तेन^८ तत्परम् ॥ १२ ॥

गृहपञ्चादिग्राम इति । गृहपञ्चकविशिष्टग्रामादिषु । स्थिता वै इति ।
तिष्ठन्त्येव । साधनीते सतः सर्वं इति । अतो हेतोस्ताः सर्वाः साधयतीत्यर्थः ।
वामावर्तनतत्परमिति । वामाचारो योगी ॥ १२ ॥

यथा पूर्वोक्तचक्रस्य ^९संलिख्य विधिवद् व्रती ।
वीरमन्त्रादियोगिन्यो न्यासं कुर्यान्मनेप्सितम् ॥ १३ ॥

पूर्वोक्तचक्रस्येति । द्वितीयार्थे षष्ठी । संलिख्येति विभाव्य । इदानीं
हेरुकीकरणमाह— वीरमन्त्रादीत्यादिना । वीरमन्त्रादियोगिन्य इति वीरादि-
योगिनीनाम्^{१०} । न्यासं कुर्यादिति यथास्थानं भावनं कुर्यात् । मनेप्सितमिति
मनोऽभिलषितं गर्दभाद्याकारम् ॥ १३ ॥

१. विचारिष्येत्- क. ख.

२. सञ्चये- क. ख.

३. छोमकम्- भो० नि०

४. समाधिं विच- भो०

५. डाकिनीकुलयोगिनी- भो०

६. गृहप्रपञ्चादिग्रामस्य- क. ख.

७. पञ्चयोगिनी- भो०

८. वर्तन-नि०

९. संख्येयविधिना- भो०

१०. 'मन्त्रः' इत्यधिकम्- भो०

पूर्व^१पत्रस्य डाकिन्यो गर्दभाकारभावितम् ।

श्रीहेरुकीति नाम्ना वै करणं सार्व^२कर्मिकम् ॥ १४ ॥

पूर्वपत्रस्येति पूर्वादपत्रेषु । डाकिन्य इति डाकिन्यादयः । गर्दभा-
कारभावितमिति गर्दभाकारेण भाविताः । श्रीहेरुकीति नाम्ना वै करण-
मिति नाम्ना श्रीहेरुकीकरणमिदं भावनमित्यर्थः । सर्वकर्मकमिति सर्व-
कर्मण्युपयुक्तम् ॥ १४ ॥

-----सर्वदेहविशुद्धिरूपेण । तथाहि भगवांश्चतुर्विंशतिपक्षात्मकद्वादशमास-
विशुद्धेर्भगवद्योगिचित्तम् । वज्रवाराही मध्यनाडीस्वभावा । चत्वारि चत्वारि चक्राणि
-----ण्यः कायचक्रे श्वेतवीरयोगिनीः सिंहमुखाः प्राग्वायुधारिण्यः । काकास्यादि-
चतुष्टयडाकिन्यादिवत् काकोलूकश्चानहस्त्यश्वगर्दभोष्ट्रमुखीः प्राणिजातिविशुद्ध्यर्थ
ध्येया इति । श्रीहेरुकेति नाम्ना । सार्वकर्मिकमिति कर्मसमस्तं -----दर्भणमयोग-
भेदेन कुर्यात् ॥ १४ ॥

कायवाक्चित्तेषु यत्कर्म उक्तमनुक्तं ^३विचिन्तितम् ।

^४तत्सर्वं कुरुते क्षिप्रं श्रीहेरुकपदे स्थितम् ॥ १५ ॥

^५इति योगिनीसञ्चारे सिद्धिनिश्चयश्रीहेरुकीकरणनिर्देशः

षोडशमः ॥ १६ ॥

कायवाक्चित्तेष्विति कायवाक्चित्तैः । उक्तमनुक्तेति उक्तमनुक्तं वा ।
चिन्तितमिति कर्तुमध्यवसितम् । श्रीहेरुकपदे स्थितमिति । ^६श्रीगर्दभाकार-
योगे स्थितः ॥ १५ ॥

इति षोडशो निर्देशः ॥ १६ ॥

-
१. पूर्वपद्यस्य- क. ख.
 २. सर्वकर्मकम्- नि०
 ३. यच्चिन्ति- टी०
 ४. तत्सत्त्वं- टी०
 ५. नास्ति- भो०
 ६. वीरगर्द- भो०

कायवाक्चित्तेष्विति । त्रिषु चक्रेषु गरुडमयूरसिंहवक्त्रेषु भावितेषु सत्सु ।
 यत्कर्मैति अभिचारकं वश्यशान्तिकरूपम् । उक्तमिति त्रयोदशमपटले किञ्चिन्मात्रम् ।
 अनुक्तमिति अस्मिन्नपि तन्त्रे । यच्चिन्तितमिति । गर्दभयोगव्यवस्थितेन योगिना । तत्-
 सत्त्वमिति कर्मवृन्दम् । कुरुत इति करोति । क्षिप्रमिति गर्दभाकारयोगभावनाक्षणा-
 देव । कः करोतीत्याह— श्रीहेरुकपदे स्थित इति । तादृश भगवद्रूपे भावनायामव-
 स्थित इत्यर्थः ॥ १५ ॥

इति श्रीपण्डिताचार्य-अलककलशविरचितायां योगिनीसञ्चारतन्त्रटीकायाम्
 उपदेशानुसारिण्यभिधानायां षोडशमपटले विस्तरव्याख्या ॥ १६ ॥

*

सप्तदशो निर्देशः

ततः—

श्रीहेरुकस्य निर्माणं ^१षष्ठमं चित्तनिर्मितम् ।

शुद्धधर्मस्य निर्माणं वाराहीरूपदर्शितम् ॥ १ ॥

तत इत्यादि । श्रीहेरुकस्येति श्रीहेरुकः । षष्ठममिति षष्ठस्य वज्रसत्त्व-
स्य । चित्तनिर्मितमिति चित्तस्वभावस्य । शुद्धधर्मस्येति ^२शून्यतायाः ॥ १ ॥

एवं षोडशपटलेन सिद्धिनिश्चयं श्रीहेरुकीकरणं वाभिधाय सम्प्रति सिद्धिविशेष-
विषये समुत्पन्नाश्वासेन मण्डलाधिपतिमाण्डलेयादीनां योगतन्त्रादिप्रसिद्धं (द्धा) विशु-
द्धिर्गवेषणीयेति । अन्तरे स्वस्थाने त्रिचक्रवीरिण्यभिधानार्थविशुद्धिं तदभिधानं वक्तुं
सप्तदशपटलमुपक्षिपन् प्रथमं तावत् तद्व्याख्यानोपपीठिकां विरचयन्नाह— तत इत्यादि ।
षोडशमपटलव्याख्यानन्तरम् । श्रीहेरुकस्येति । चतुर्विमोक्षमुखाकारस्य । निर्माणमिति
मध्यमण्डलैः समयसत्त्वाकारम् । विमलमिति । सत्कायदृष्ट्यादिमलव्यपगमात् । चित्त-
निर्मितमिति । प्रकृतिप्रभास्वरचित्तविजृम्भणकरमित्यर्थः । शुद्धधर्मस्येति । समस्त-
क्लेशप्रहाणाकारस्य शुद्धस्य स्वलक्षणस्य द्वारेणाधर्मस्य निर्माणं^३----- ॥ १ ॥

तत्रैव निर्^४र्गताः सर्वे ^५मन्थमन्थानयोगतः ।

आदर्शादि तु चत्वारश्चतुः^६पूजेति गीयते ॥ २ ॥

तत्रैवेति । तस्मादेव देहद्वयात् । मन्थमन्थानयोगत इति । जरायुजमण्डल-
भावनापक्षे । आदर्शादि तु चत्वार इति । आदर्शादिविशुद्धकपालचतुष्टय-
कोणेषु । चतुःपूजेति गीयत इति । एतदेव पूजाचतुष्टयं भण्यते ॥ २ ॥

१. विमलं- टी०, भो०

२. सर्वशून्यतायाः- भो०

३. इतः परं चतुर्थश्लोकं यावत् टीका नोपलब्धा ।

४. निर्जाताः- क. ख.

५. प्रज्ञोपाययोगतः- भो० (दे०)

६. पद्मदलस्थयोगिनी- भो०

७. अत्रैव- भो०

चतुर्डाकिनीपद्मस्थं मामक्यादि तु सुन्दरी ।
खण्डकपालादि चक्रस्थं चतुर्विंशतिमद्वयम् ॥ ३ ॥

चतुर्डाकिनीपद्मस्थमिति पद्मपत्रचतुष्टये डाकिनीचतुष्टयम् । मामक्यादि तु सुन्दरीति । इदमेव डाकिनीचतुष्टयं यथायोगं मामक्यादिस्वभावमित्यर्थः । चक्रस्थमिति चक्रत्रयस्थम् । अद्वयमिति योगिनीसमापन्नम् ॥ ३ ॥

संसारोत्तारसत्त्वस्य वीरस्यैव तु कीर्तितम् ।
क्रोधविजया^१दयो द्वारे कोणे पर्यन्तमष्टमम् ॥ ४ ॥

संसारोत्तारसत्त्वस्येति । सत्त्वानां संसारादुत्तारकस्य । क्रोधविजयादित इति । क्रोधविजयादयः काकास्यादयः । द्वारे कोणे इति द्वारेषु कोणेषु च । पर्यन्तमष्टममिति । यावदष्टौ भवन्ति ॥ ४ ॥

-----आग्नेयादिकोणचतुष्टये यमदाढ्यादिचतुष्टयम् । स्थिता इति व्यवस्थिताः त्रैलोक्यविजयादिक्रोधाष्टकविशुद्ध्या ज्ञातव्याः ॥ ४ ॥

नाना^२विनयोपायेन सत्त्वार्थकरणोद्यतः ।
गोपनीयं प्रयत्नेन ^३गूढस्थानं तु विश्रमम् ॥ ५ ॥

योगिनो मरणं चित्तविश्राममात्रमिति दर्शयितुमाह— नानेत्यादि । नाना-विनयोपायेनेति । नानाप्रकारेण सत्त्वविनयोपायेन । सत्त्वार्थकरणोद्यत इति । षष्ठ्यर्थे प्रथमा । गोपनीयमिति गोपितम् । गूढ^४मन्त्रमिति अतिरहस्यधर्म-त्वाद् गूढम् । विश्रममिति चित्तविश्राममात्रम् । अत्रैव “चित्तं विश्राम्यते योगी निर्वाणं नैव दर्शितम्” (१७.८) इति सम्बन्धनीयम् । योगीति ध्योगिनः । निर्वाणमिति मरणम् ॥ ५ ॥

१. दयः सर्वे द्वारे- क., विजयादितः- नि०

२. नानाविधमहोपाय- क.

३. गूढमन्त्र- क. ख. नि०

४. त्यागिनो- क.

५. गूढस्थान- भो०

६. साधकयोगिनः भो०

नानाविनयेति । नानाविधानां सत्त्वानां विनयमार्गावतारणलक्षणे योऽसौ महानुपायः काकास्यादिरूपप्रदर्शनम् । तेन सत्त्वार्थकरणे परार्थे समुद्यताः गृहीत-वीर्याः । अन्यच्च कीदृशम्— गुह्यस्थान इति । कायद्वाराष्टके व्यवस्थिताः । एवं रूपणीयाः । अपात्राणां सर्वथा न प्रकाशयितव्याः । कथम्? प्रयत्नेन स्मृतिसम्मुखीकरणलक्षणेन वीर्येण सर्वथेत्यर्थः ॥ ५ ॥

योगिन्यादि तु वीरस्य ^१यावत्सिद्धिविभावितम् ।
फलप्राप्तस्य योगीनां पतन्ते न भवार्णवे ॥ ६ ॥

योगिन्यादि तु वीरस्य यावत्सिद्धिविभावितमिति । योगिन्यादिवीराणां भावनं सिद्धिं यावदित्यर्थः । फलप्राप्तस्येति । किञ्चित् फलं प्राप्ता अपि । योगिनामिति योगिनः ॥ ६ ॥

एवं समयचक्रदेवताविशुद्धिं प्रतिपाद्य तद्भावानुशंसां वक्तुं तदङ्गं समस्य स्वरूपमाह— योगिन्यादीति योगिनीनां सप्तत्रिंशताम् । वीरस्येति चतुर्विंशतिसंख्यानां वीराणां भावनेन विशुद्ध्यः । यथेच्छमिति यथाभिप्रायम् । सिद्धिरिति स्वसमुच्चिता । विभावितमिति । फलप्राप्तस्येति योगी स्वलक्षणफलं प्राप्य । भवार्णव इति संसार-समुद्रे । अनन्तत्वात्, क्लेशेन नक्रादिव्याकुलितत्वात्, गम्भीरत्वाच्च समुद्रसादृश्यं ज्ञातव्यम् । न पतन्ते इति नैव पतति । मण्डलचक्रविशुद्धेः क्षान्तिप्रतिलम्भात् ॥ ६ ॥

^२संसारविनयोपायं तन्त्रसारसमुच्चयम् ।
नाख्यातं विधि^३विस्तारं ^४सुखार्थं ^५गुरुशिष्ययोः ॥ ७ ॥

संसारेति संसारिणाम् । हितशिष्य वै इति शिष्याणां हिताय ॥ ७ ॥

एवं समस्य स्वरूपमभिधायास्मिन् तन्त्रे विशुद्धेन प्रतिपाद्यत्वं वक्तुमाह— संसारविनयोपायमिति । षड्गतिभेदभिन्नस्य संसारस्य विनयोपायं समस्तमण्डल-

१. यथेच्छं- टी०
२. संचार- क.
३. विधिवत्सर्व- क.
४. गोपितं- क.
५. हितशिष्य वै- क. ख. नि०, गृहीतस्तु टीकानुसारी ।

चक्रविशुद्धिलक्षणं प्रसिद्धम् । तन्त्र इति श्रीयोगिनीसञ्चारतन्त्रे । सारमिति मण्डभूतम् । समुच्चयमिति संग्रहाकारम् । नाख्यातमिति न कथितम् । विधिविस्तारमिति एकैकस्य मण्डलमाण्डलेयस्य विशुद्धिव्याख्यानरूपम् । किमिति नाख्यातमित्याह— सुखार्थमिति सुखावबोधाय, बाहुल्यतः प्रपञ्चस्याप्रतिपादनात् । कस्य सुखार्थमित्याह— गुरुशिष्ययोरिति^१ । ----- ॥ ७ ॥

चित्तं विश्राम्यते योगी निर्वाणं नैव दर्शितम् ।

यः समाचरति श्रेष्ठः सर्वपापविशुद्धिकृत् ॥ ८ ॥

यः समाचरतीत्यादि सुगमम् ॥ ८ ॥

क्षणात्पश्यति बुद्धत्वम् इह लोके परत्र च ।

यथा पूर्वादि पापस्य हीनो वा सर्वलक्षणैः ॥ ९ ॥

य इमां ध्यायते योगी सर्वकामेश्वरक्षितौ^४ ।

सर्वदेवादि यद् गुह्यं मानुषादि तु यच्छुभम् ॥ १० ॥

तत्पुण्यं भवते तेषां श्रीहेरुकेति नामतः ।

ध्याने चिन्तितमात्रं वा पाठस्वाध्यायलेखनात् ॥ ११ ॥

यथा पूर्वादि पापस्येति तृतीयार्थे ॥ ९-११ ॥

स्वर्गभोगमवाप्नोति अथवा चक्रवर्तिताम् ।

च्युतिकाले तु योगिनां श्रीहेरुकादि^७ वीरयोगिनी ॥ १२ ॥

१. इतः परं अष्टदशश्लोकं यावत् टीका नोपलब्धा ।

२. सर्वापायविशुद्धात्मा- क.

३. पूर्वोक्त- भो०

४. स्थितौ- क.

५. देवाधिप- क.

६. लभते- भो०

७. अतः परं “यावन्तश्चैव वीराः स्युर्यावत्यश्चाथ योगिनीः” इत्यधिकः पाठः- भो०

नानापुष्पकरव्यग्रा^१

नानाध्वजपताकिनः ।

नानातूर्यनिर्घोषं

नानागीतोपहारतः ॥ १३ ॥

योगिनामिति योगी । श्रीहेरुकादिवीरयोगिनीति । अत्र परत्रापि सर्वत्र तृतीया वेदितव्या ॥ १२- १३ ॥

मृत्युर्नाम विकल्पस्य नीयते खेचरीपदे ।

एवं देवमहावीर^२योगिन्यो भुवि दुर्लभम् ॥ १४ ॥

देवमहावीरेति देवो महावीरः । योगिन्य इति देव्यश्च । दुर्लभमिति दुर्लभाः ॥ १४ ॥

यथाङ्गनाबालकथानुमोदितं

संलाप्य सम्पर्ककथां च ख्यापितम् ।

मार्ग^३ च ख्यातं^४ न च बन्धनं च

एवंविदो योगकृ^५ते च ^६दर्शितः ॥ १५ ॥

यथाङ्गनाबालकथानुमोदितमिति यथा रागिणां स्त्रीपुरुषकथया हर्षो जायते । संलापसम्पर्ककथां च ख्यापितमिति यथा च हर्षार्थं स्त्रीपुरुषयोः सम्पर्कादिकथा ख्याप्यते । मार्गं च ख्यापितं न च बन्धनं चेति । तद्वन्मार्गो बन्धनाभावश्च ख्यापितः । बुद्धैरिति शेषः । एवंविदो योगकृते च मार्ग इति । एवंविदः साधकस्य कृते देवदेवीयोगलक्षणो मार्ग इत्यर्थः ॥ १५ ॥

अथान्यत्र संवक्ष्ये पीठादि योगिनीस्थानकम् ।

श्रीहेरुकादियोगिन्यो वीरमद्वयसंस्थिताः^७ ॥ १६ ॥

१. धरा:- भो०

२. योगिन्या- क.

३. मार्गोऽपि- क.

४. ख्यापितं- नि०

५. कुमार्ग- क.

६. मार्ग:- नि०

७. वीरमद्वययोगिनी- भो०, मद्वयमङ्कितम्- क.

पीठादि योगिनीस्थानकमिति पीठादिस्थानेषु योगिन्यः कथ्यन्त इत्यर्थः । वीरमद्वयसंस्थिता इति वीरसमापन्नाः स्थिता इत्यर्थः ॥ १६ ॥

पुल्लिरमलये प्रचण्डा । जालन्धरे चण्डाक्षी । ओड्डियाने प्रभाव^१ती । अर्बुदे महानासा । गोदावर्या वीरमती । रामेश्वरे खर्वरी । देवीकोटे लङ्केश्वरी । मालवे द्रुमच्छाया । कामरूपे ऐरावती । ^२ओड्डे महाभैरवी । त्रिशकुनौ वायुवेगा । कोसले सुराभक्षी । कलिङ्गे श्यामादेवी । लम्पाके सुभद्रा । काञ्च्या हयकर्णा । हिमालये खगानना । प्रेतपुर्या चक्रवेगा । गृहदेवतायां खण्डरोहा । सौराष्ट्रे शौण्डिनी । सुवर्णद्वीपे चक्रवर्मिणी । नगरे सुवीरा । सिन्धुदेशे महाबला । मरुदेशे चक्रवर्तिनी । कुल^३तायां महावीर्या ॥ १७ ॥

पुल्लिरेत्यादि । सुगमम् ॥ १७ ॥

एतेषु देशेषु या कन्या वीराद्वययोगिनीः ।

साधनीयं प्रयत्नेन गूढमन्त्राः सदा स्थिताः ॥ १८ ॥

वीराद्वययोगिनीरिति । वीरेण सहाद्वययोगमापन्ना इत्यर्थः ॥ १८ ॥

एकैकस्य तु योगिन्याः कोटिसंख्यापरिवृताः ।

चिह्नलक्षणमुद्रादि गोपितं^४ वामसाधनम्^५ ॥ १९ ॥

वामसाधनम्^६ इति योगिनीसाधना^७र्थम् ॥ १९ ॥

----पायतत्परिवाराभिधानार्थमाह — एकैकस्येत्यादि । एकैकस्या वीरिण्याः प्रचण्डादिरूपायाः । एतदाह — योगिन्या इति वीरिण्याः । कोटिसंख्यापरिवृता इति

१. मती- ख.

२. उड्डे- क.

३. कुलूतायां- भो०

४. शोधितं- क.

५. साधकम्- क., साधकैः- टी०

६. साधनोपाय इति - भो०

७. साधनोपाय इत्यर्थः- भो०

अनन्तरपरिवारः। विशेष्य संसारानन्दवद् विशोधकरूपवीरिणीनामपि तथैवानन्दात्।
चिह्नमिति गृहे लिखितं वज्रपद्मचक्ररत्नविश्ववज्रत्रिशूलपरशुप्रभृतिकम्। लक्षणमिति
दीर्घपरिमण्डलशमश्रावृतादिकम्। मुद्रेति यदुक्तम्—

याभिवक्ति चरणेन पाणिना या युज्यत मन्युनावलोकिनी ।
वामतः प्रियतमस्य सर्वदा सन्निषीदति कुलानुरूपया ॥
मुद्रया तदनुकूलमन्तरा वर्णभाषणरता कथञ्चन ।
योषितां कथनकेलिकान्तके हर्षफुल्लनयनोत्पला भवेत् ॥ इत्यादि।

तदनुसारेण कूर्मपताकादयो मुद्राः। गोपितमिति--- चादिकम्। केनेत्याह—
वामसाधकैरिति वामाचारचारिभिः साधकैर्महामुद्राभावकैरित्युक्तम् ॥ १९ ॥

येन येन हि बध्यन्ते जन्तवो रौद्रकर्मणा ।
सोपायेन तु तेनैव मुच्यते भवबन्धनात् ॥ २० ॥

सोपायेनेति। आराधनार्थमुपायसहितेन ॥ २० ॥

एवं तत्परिणामतो येन येन हि रौद्रकर्मणा कायिकवाचिकमानसरूपेण
जन्तवो मनुष्यप्रभृतिप्राणिनः। बध्यन्ते इति संसर्गबन्धनं यान्ति। कर्मणा कीदृशेने-
त्याह— रौद्रेण अतिशयेन नस्कादिलक्षणफलावासकत्वात्सोदुमसहेन। सोपायेन
त्विति। कायादिकृतानां कर्मणां त्रितथागताकारत्वाधिमोक्षेणानुपलम्भतया परिज्ञानात्
सोपायः। तेन तेनैवेति कर्मणा। मुच्यत इति विमुक्तो भवति। कुत इत्याह—
भवबन्धनादिति। संसारबन्धनादित्यर्थः ॥ २० ॥

संसारात् पारमुत्तार्य १स्वेच्छाज्ञानी भवत्यसौ ।
कण्ठिकारुचककेयूरं कुण्डलं ब्रह्मसूत्रकम् ॥ २१ ॥

उत्तार्येति उत्तीर्य। भावनाक्रममाह— कण्ठिकेत्यादिना। सुगमम् ॥

२१-२३ ॥

संसारादिति षड्गतिकात्। पारमिति निर्वाणोपायलक्षणम्। उत्तार्येति तरणं कृत्वा। स्वेच्छाज्ञानीति आत्मीयस्पृहाबलेन विशिष्टज्ञानसमन्वागतः। भवतीति स्यात्। असाविति वीरवीरिणीभावक इत्यर्थः। एवं चतुर्भिरर्थैः स्वरूपमपि (भि) धाय तद्भा-
वनास्थाननिर्देशं वक्तुमाह— कण्ठकेति कण्ठचूडे। शिरसि [रुचक] केयूरमिति हस्तद्वये रुचकद्वयम्। कुण्डलमिति श्रोत्रद्वये कुण्डलद्वयम्। ब्रह्मसूत्रकमिति केशमयं यज्ञोपवीतम् ॥ २१ ॥

कण्ठालङ्कृतशिरोमाला मेखला घुर्घुरारवैः ।

गिरिमस्तककिञ्जल्कैर्विश्वपद्मालिका^१लितः ॥ २२ ॥

शिरोमालेति एकपञ्चाशदात्मिका मुण्डमाला। मेखलेति कटिप्रदेशे। घुर्घुरा-
रवैरिति मेखलाव्यवस्थितैः [किङ्कि]णीशब्दैः षण्मुद्राधारी भगवान्। गिरिमस्तक
इति धर्मोदयमुद्रोपरि वाय्वादिमण्डलचतुष्टयपृष्ठे गिरेः सुपर्वतस्य मस्तके मध्यशृङ्गाट-
रूपे पंकारपरिणतविश्वपद्मे तन्मध्ये। किञ्जल्क इति कर्णिकायाम्। आलिकालि
चेति। उपलक्षणम्। स्वरव्यञ्जनपरिणतं चन्द्रसूर्यमण्डलं पृष्ठे हूँ वमित्यक्षरपरिणतं
वज्रकर्तिद्वयं तद्रश्मिचक्रस्फरणपूर्वकम्। सर्वपरिणामेन भगवन्तं श्रीहेरुकवाराही-
समापन्नं पूर्ववन्मुखवर्णभुजायुधधरं विभाव्य ॥ २२ ॥

^२चतुर्विंशार्धसंयुक्तं

वीरयोगिनीवृन्दकम् ।

^३गौर्याः पतिं समाक्रम्य वज्रघण्टाचिह्ना^४लिङ्गितम् ॥ २३ ॥

तदनु चतुर्विंशतिसंयुक्तमिति लां मां पां तां हाकाराष्टकपरावृत्त्या डाकिन्यादि-
चतुष्टयं काकास्याद्यष्टकं च विभाव्य तेन परिवृतं पूर्वप्रतिपादितवर्णभुजसंस्थानं
विभावयेत्। एतदाह— चतुर्विंशार्धेति चतुर्विंशत्यर्थं द्वादश, तेन संयुक्तं सहितम्।
किमित्याह— वीरयोगिनीवृन्दकमिति। वीरः सकलविपक्षविजयात् स्वयं प्रज्ञोपाया-

१. काल्यतः- भो०, कालि च- टी०

२. चतुर्विंशद्विसं- क., चतुर्विंशतिसं- भो०, टी०

३. उमापतिं- भो०

४. कायालिङ्गित- भो०, अङ्गालिङ्गित- टी०

त्मको भगवान्, योगिन्यो ज्ञानसमयचक्रस्था द्वादश । वीरयोगिनीनां वृन्दकमिति समूहं द्वादशसंख्यारूपम् । कुड्यासने स्थितमित्याह— गौर्याः पतिमिति । गौरी उमा तत्पतिं भैरवमाक्रम्यावस्थितम्, तृष्णाविद्वेषविशुद्धात्मकत्वात् । वज्रघण्टा सहितैः (त) भुजाभ्याम् । अङ्गालिङ्गितमिति वज्रवाराह्यङ्गान्यालिङ्ग्यावस्थितमित्यर्थः ॥ २३ ॥

श्रीहेरुकमहाराजं भावयेत् परमं पदम् ।

१अथोद्वर्तयेद् गात्रं वारिणा गन्धकैः सदा ॥ २४ ॥

वर्तयेदिति उद्वर्तयेत् । वारिणेति अक्षोभ्येण । गन्धकैरिति वैरोचनेन ॥ २२-२४ ॥

श्रीहेरुकमिति चतुर्विमोक्षमुखविशुद्धिम् । महाराजमिति । समस्तमण्डलचक्रस्य स्वामिभूतत्वात् । भावयेदिति अभ्यसेत् । कीदृशम् ? परममिति । युगनद्धरूपस्वभावत्वात् । पदमिति प्रतिष्ठास्थानमित्यर्थः । एवं तद्भावनास्थानमुपपाद्य चर्याव्रतस्थस्य वेशविशेषकथनार्थं तदङ्गस्वरूपमाह— अथेत्यादि । त्रयोदशात्मकमण्डलं चक्रव्याख्यानन्तरम् । उद् ऊर्ध्वम् । वर्तयेदिति वलयेत् । गात्रमिति श्रीहेरुकाकारस्य योगिनः सम्बन्धात्मानम् । केनेत्याह— वारिणेति जलेन । गन्धकैरिति विशिष्टेन धूपचन्दनकुङ्कुमादिना । सदेति असमाहितयोगावस्थायां सर्वकालम् ॥ २४ ॥

अलङ्कारयेत् सुगन्धाङ्गो भस्ममुद्रादिवाससा ।

वर्णकाच्छादितं रूपं स्ववेशपरिवर्तनम् ॥ २५ ॥

वर्णकाच्छादितं रूपमिति वर्णकैः श्वेतादिरूपं कुर्यात् । स्वरेण परिवर्तनमिति । स्वरः क्रोधानां वचनं हूँकारः, तेनात्मनो निष्पत्तिं भावयेत् ॥ २५ ॥

अलङ्कारयेदिति अलङ्कारणादिकं कुर्यात् । सुगन्धाङ्ग इति । समनन्तरोक्तगन्धोदकेनेत्यर्थः । भस्ममुद्रादिवाससामिति भस्मना प्रज्ञापारमितास्वभावेन, मुद्रादिभिः

१. अथ वर्तयेद्- भो० नि०

२. स्वकाय- भो०, स्वरेण-नि०, स्वदेह- टी०

पञ्चेति, वाससामिति वस्त्रैः, व्याघ्रचर्मादिभिरित्यर्थः। वर्णकेति पञ्चभिर्वर्णैः। आच्छा-
दितमिति आवृतम्। रूपमिति योगिशरीरम्। कीदृशम्? स्वदेहपरिवर्तनमिति। स्वस्य
देहस्य सामान्याकारस्य परिवर्तनमिति वर्णकादिद्वारेण विशिष्टकायनेपथ्यकारक-
मित्यर्थः ॥ २५ ॥

चर्याव्रतप्रवृत्तस्य १ज्ञेयं योगसुसंस्थितम् ।
आङ्गिको वाचिकश्चैव आहार्यः सात्त्विकस्तथा ॥ २६ ॥

चर्याव्रतप्रवृत्तस्येति सप्रपञ्चचर्याधारिणः। योगसुसंस्थितमिति योगे
सम्यगवस्थानम्। सात्त्विक इति वीरबीभत्स्या(त्सा)दिको २नाट्यरसः॥
२६-२७ ॥

चर्याव्रतप्रवृत्तस्येति। योगिनश्चर्याव्रते प्रज्ञया समं देशदेशान्तरगमने प्रवृत्तस्य।
ज्ञेयमिति ज्ञातव्यम्। योगमिति विशिष्टनेपथ्यरचनालक्षणम्। कीदृशमित्याह—
सुसंस्थितमिति निषिक्तमुखभुजादिधारणेन सुष्ठु कृत्वा संस्थितं भगवद्भवस्थित-
मित्यर्थः। एवं चर्याव्रतस्थस्य वेशविशेषकथनस्वरूपं प्रतिपाद्याभिनयचतुष्टयोद्देशं
वक्तुमाह— आङ्गिकमित्यादि। अङ्गमुखेन कृतमाङ्गिकं हस्तपादविक्षेपलक्षणम्।
वाचिकमिति वाग्द्वारेण प्रवृत्तत्वात्। आहार्यमिति चेतस उपसंहारणीयम्। सात्त्विक-
कमिति हृदयदाढ्यबलेन निष्पन्नम् ॥ २६ ॥

चत्वारोऽभिनया ह्येते विज्ञेया योगदर्शिना ।
आहार्याभिनयो नाम ज्ञेयो योगविधिः स्मृतः ॥ २७ ॥

चत्वार इति तत्संख्याः। अभिनया इति नाट्यप्रकारविशेषाः। एत इति परतः
शास्त्रादिषूक्ताः। विज्ञेया इति ज्ञातव्या अधिगन्तव्याः। केनेत्याह— तत्त्वदर्शिनेति
चर्याव्रततत्त्वपरिज्ञानवता योगिनेत्यर्थः। एवमभिनयचतुष्टयो^१----- ॥ २७ ॥

१. ज्ञात्वा- भो०

२. नवनाट्य- भो०

३. योगदर्शितम्- क. ख., तत्त्वदर्शितं- भो०, तत्त्वदर्शिना- टी०

४. अतः परं टीका नोपलभ्यते ।

तत्र ^१कायप्रयत्नेन नाट्ये तु सुभगो महान् ।
अलङ्कारस्तु विज्ञेयो सर्वनेपथ्यवाससाम् ॥ २८ ॥

सुभगो महानिति । नाट्ये कृते योगिनीनामतिशयेन प्रियो भवतीत्यर्थः ॥
२८ ॥

^२आवेध्यं बन्धनीयं च पक्षेऽप्याक्षेपकस्तथा ।
आवेध्यं कुण्डलानीह तथा ^३मात्रादिभूषणम् ॥ २९ ॥

ब्रह्मसूत्राङ्गमुक्ता [तु] ^४बन्धनीयोद(या च) ^५सर्वदा ।
प्रक्षेप्यं ^६कुपुंरं विद्याद् हस्ताभरणमेव च ॥ ३० ॥

अवेधेत्याद्युद्देशः । अवेध्यमित्यादि निर्देशः ॥ २९-३० ॥

एकयष्टि भवेत् सूत्रं मेखला त्वष्ट^७यष्टिका ।
रसना षोडश ज्ञेया पञ्चविंशत्तु मेखला ॥ ३१ ॥

इति योगिनीसञ्चारे तत्त्वविशुद्धिपीठस्थाननाट्यचर्यानिर्देशः
सप्तदशमः ॥ १७ ॥

एकयष्टि भवेत् सूत्रमिति । एकयैकावल्या ब्रह्मसूत्रं कर्तव्यम् । मेखला
त्वष्टयष्टिकेति । अष्टभिरेकावलीभिर्युक्ता मेखला कार्या । रसना षोडश
ज्ञेयेति । रसनेति मेखलाविशेषः, सा च षोडशभिरेकावलीभिर्युक्ता वेदितव्या ।

-
१. कार्य- क.
 २. आकर्षणं बन्धनं च- भो०
 ३. मन्त्रादि- भो०
 ४. वकुलीपाद- ख.
 ५. सर्वाकारा- भो०
 ६. घुपुंरं- भो०
 ७. षष्टिका- भो०

पञ्चविंशत्तु मालिनमिति मुण्डमाला पञ्चविंशत्या मुण्डैः कर्तव्या, अथवा मालिनमिति कण्ठिका, सा च पञ्चविंशत्या गुलिकाभिर्वेदितव्येति ॥ ३१ ॥

इति सप्तदशो निर्देशः ॥ १७ ॥

यत्पुण्यमिन्दुसदृशं गगनावरोधि सञ्चारतन्त्रविशदीकरणान्मयाप्तम् ।
तेनास्तु सर्वजगतो जगतो हिताय सम्बोधिलब्धिरचिरेण विनैव पीडाम् ॥

१आचार्यतथागतरक्षितविरचितो योगिनीसञ्चारतन्त्रनिबन्धः समाप्तः ॥

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

१योगिनीसञ्चारक्रमविधिः

प्रथमं तावद्योगी रत्नत्रयशरणमभिगच्छेत्। तत्र पापदेशना पुण्यानुमोदना परिणामना आत्मभावनिर्यातना करुणाचित्तोत्पादनं मार्गाश्रयणं बोधिचित्तोत्पादः। ॐ शून्यताज्ञानवज्रस्वभावात्मकोऽहम्। ॐ सुम्भ नि^१सुम्भ हूँ फट्, ॐ गृह् गृह् हूँ फट्, ॐ गृहापय २ हूँ फट्, ॐ आनय होः भगवन् विद्याराज हूँ हूँ फट्। स्फरणाद् वज्रप्राकारः वज्रपञ्जरं वज्रमणिः पृथ्वी कृष्णधनुराभवायुमण्डलं रक्तत्रि-कोणमाग्नेयमण्डलं हरितं चतुरस्रं पृथ्वीमण्डलम् अष्टांशं सुमेरं विश्वदलपद्मे आलि-कालिपुञ्ज आलिद्वयपरिणतं सम्भूतं चन्द्रसूर्यमण्डलं हूँकारपरिणतं भैरवकालरात्रि-संस्थितपादयुग्मं भट्टारकं श्रीहेरुकं भुजद्वये[न] वज्रवज्रघण्टासहितेन आलिङ्गितां वज्रवाराहीं रक्तवर्णां नग्नां मुक्तकेशाम् ईषदंष्ट्राभयानकामाक्रान्तदक्षिणोरं महाराग-रक्तरुचककुण्डलकण्ठिकाशिरोमणियज्ञोपवीतभस्मोद्भूलितषण्मुद्राविभूषिताम्। वाम-करे रुधिरपरिपूर्णकपालम्, दक्षिणे वज्रम्, उभयकरयोस्तर्जनीम्, पादे अस्थिनूपुराणि, घघ्घरमालावृतकटिम्, भट्टारकस्य करद्वयेन गण(ज)पतिचर्मप्रावरणम्, परशु-त्रिशूल-कर्ति-डमरुकं सव्ये, अवसव्ये खट्वाङ्ग-कपाल-पाश-ब्रह्मशिरश्चेति, चतुर्मुख-भूभङ्ग-कुटिलानन-लेलिहज्जिह्व-धूमान्धकारवपुः, जटामकुटिनम्, शिरसि कपालमालाविभूषितम्, मुण्डमालावृतकटिम्, जटामकुटाग्रविश्ववज्रम्, पञ्चाश-न्मुण्डमालान्त्रग्रथितविभूषितगात्रम्, षण्मुद्राविभूषितम्। पूर्वपद्मदले डाकिनी। उत्तरे लामा। पश्चिमे खण्डरोहा। दक्षिणे रूपिणी। परिशिष्टेषु चतुर्षु दलेषु विदिक्ष्व-वस्थितेषु पञ्चामृतपरिपूर्णकपालानि। योगिनीः(न्यः) खट्वाङ्ग-कपाल-कर्तिहस्ता रक्तवर्णा नग्ना मुक्तकेशाः षण्मुद्राविभूषिता ईषन्नर्तितपदाः। पूर्वरं चक्र[स्य] महावीर्या वैरोचनः, उत्तरारं चक्रवर्तिनी पद्मनृत्येश्वरः, पश्चिमारे सुवीरा श्रीवज्रगर्भः, दक्षिणारे चक्रवर्तिनी हेरुकश्चैव, ऐशान्यारे सौ(शौ)ण्डिनी आकाशगर्भः, वायव्यारे खण्डरोहा हयमे(ग्री)वः, नैऋत्यारे चक्रवेगा रत्ननेत्रा(वज्रः), आग्नेयारं [प्रभामती?] महाबलः। चित्तचक्रे। चक्रस्य पूर्वरं हयकर्णा विरूपाक्षः, उत्तरारं

१. अज्ञातकर्तृकोऽयं योगिनीसञ्चारक्रमविधिः नेपालराष्ट्रीयभिलेखालयतः प्राप्त 'ख'-संज्ञकमातृकायां सप्तदशनिर्देशानन्तरं लिखितो वर्तते।

२. निसुम्भे- ख.

सुभद्रा भैरवः, पश्चिमारे श्यामादेवी वज्रप्रभः, दक्षिणारे सुराभक्षी वज्रहूँकारः, ऐशान्यारे वायुवेगा महावीरः, वायव्यारे महाभया वज्रजटिलः, नैऋत्यारे भैरवा अङ्कुरिकः, आग्नेयारे ऐरावती वज्रदेहः। एता वाक्चक्रे। पूर्वारि वज्रस्य द्रुमच्छाया वज्रप्रभः, उत्तरारे लङ्केश्वरी अमिताभः, पश्चिमारे शङ्करी सुरावैरिणः, दक्षिणारे वीरमती विकटदंष्ट्रिन्, ऐशान्यारे महानासा कंकालम्(लः), वायव्यारे प्रभामती महाकङ्कालः, नैऋत्यारे चण्डाक्षी रुटङ्कटः, अग्न्यारे प्रचण्डा खण्डकपालः। एताः कायचक्रे। योगिनीः(न्यः) कपालकर्तिहस्ता रक्तवर्णा नग्ना मुक्तकेशाः षण्मुद्राविभूषिता वज्रवज्रघण्टाहस्ताः। एताः समापत्तिस्थाः सर्वदेवताः श्रीहेरुकाद्या-स्त्रिनेत्राः प्रत्यालीढपदस्था इति। पूर्वद्वारे काकास्या, उत्तरद्वारे उलूकास्या, पश्चिमद्वारे श्वानास्या, दक्षिणद्वारे शूकरास्या, ऐशान्यां यमदाढी, वायव्यां यमदूती, नैऋत्यां यमदंष्ट्री, आग्नेय्यां यममथनी, एता योगिन्यः कपाल-कर्तिहस्ता रक्तवर्णा नग्ना मुक्तकेशाः षण्मुद्राविभूषिताः। (मृन्मन्त्रे कटे स्वात्मना?) [काय]चक्रस्य पूर्वारि पुल्लीरमलये(यः), उत्तरारे जालन्धरः, पश्चिमारे गोदावरी, दक्षिणारे रामेश्वरम्, ऐशान्यारे देवीकोटः। वायव्यारे मालवः, ऐशान्यारे कामरूपः, आग्नेयारे ओडियानः। चित्तक्रस्य पूर्वारि त्रिशकुनिः, उत्तरारे कोशलः, पश्चिमारे कलिङ्गः, दक्षिणारे लम्पाकः, ऐशान्यारे काञ्ची, वायव्यारे प्रेताधिवासिनी, नैऋत्यारे हिमालयः, आग्नेयारे गृहदेवता। वाक्चक्रस्य पूर्वारि सौराष्ट्रः, उत्तरारे सिन्धुः, पश्चिमारे मरुः, दक्षिणारे कुलता, ऐशान्यारे नगरः, वायव्यारे आरण्यः, नैऋत्यारे सुवर्णद्वीपः, आग्नेयारे ओड्रविषयः। एते पीठोपपीठ-क्षेत्रोपक्षेत्र-छन्दोहोपछन्दोह-मेलापकोप-मेलापक-श्मशानोपश्मशान इति दश विशुद्धाः। ॐ हः हृदि नमः। हि शिरः स्वाहा। ॐ हु शिखायां वषट्। ॐ हे स्कन्धो(न्धयोः) हूँ हूँ। हो चक्षुषोः वौषट्। आः फट् फट् हं सर्वाङ्गेषु कवचः। ॐ ह्रीः ह ह हूँ हूँ फट्। ॐ धर्मधातुवज्र-स्वभावात्मकोऽहम्।

इति योगिनीसञ्चारक्रमविधिः।

गगनशररसेऽब्दे चैत्रके कृष्णपक्षे

शतवृषब्रह्मयोगे विश्वतिथ्यां बुधेऽक्षौ।

लिखितां जिनचरणेन हेरुकस्यापि तन्त्रं
सकलकलुषहर्ता भुक्तिमुक्तिप्रदात्री ॥

योगिनीसञ्चारनामेदं पुस्तकं लिखितं मया ।
तेन पुण्येन लोकानां सर्वसिद्धिः समाप्नुयात् ॥ इति ॥

॥ शुभम् ॥

*

श्लोकार्थानुक्रमणी

अ आ इ ई उ ऊ	१२.१४	अन्यत्र बुद्धसंज्ञा वै	१६.१
अक्षरान्तरमध्यस्य	१३.२१	अपरिपाचितसत्त्वस्य	११.७
अचिन्त्यं चिन्तयेच्चैव	१२.२०	अभिमानरता नित्यं	११.८
अत्र पश्चिमकालेऽस्मिन्	१६.१	अलङ्कारयेत् सुगन्धाङ्गो	१७.२५
अत्रैव तु समुद्दिष्टं	१२.६	अलङ्कारस्तु विज्ञेयो	१७.२८
अथ कवचद्वयं वक्ष्ये	७.१	अवसव्येति समाख्यातं	६.४
अथ गुह्यविधिं वक्ष्ये	१४.१	आक्रान्तपादोर्ध्वदृष्टिस्तु	८.२
अथ चर्याविधिं वक्ष्ये	१५.१	आक्रान्तपादोर्ध्वदृष्टिं तु	१०.३
अथ सञ्चारवर्णिते	१३.२०	आङ्गिको वाचिकश्चैव	१७.२६
अथ सप्तत्रिंशद्वोधिपाक्षिका	२.१	आदर्शादि तु चत्वार	१४.२
अथ सर्वाधिपत्यादि	६.१	आदर्शादि तु चत्वारः	१७.२
अथातः संप्रवक्ष्यामि	१.१	आधाराधेयरूपस्य	५.३
अथातः संप्रवक्ष्यामि	४.१	आध्यात्मिकं यथा ज्ञेयं	५.२
अथात्र विधिसंज्ञं वै	१२.१३	आनन्दं प्रथमं वीरं	८.६
अथान्यत्र संवक्ष्ये	१७.१६	आनीते चक्रगर्भस्थाः	५.७
अथान्यदपि संवक्ष्ये	५.१	आलिकालिविनिर्मुक्तः	१६.५
अथापरं प्रवक्ष्यामि	१३.१	आलिङ्गणं कपालं च	६.५
अथोद्धर्तयेद् गात्रं	१७.२४	आवेध्यं कुण्डलानीह	१७.२९
अदोषस्तु (दोषं तु) शाश्वतपदं	९.३	आवेध्यं बन्धनीयं च	१७.२९
अद्वयं द्रव्यपुष्पादि	१४.३	आसु(शु)प्रयत्नात् प्रपूजनीया	१०.४
अधिष्ठयेन्नाभौ हृदि च	८.५	आहार्याभिनयो नाम	१७.२७
अधिष्ठानोऽभिषेकश्च	१२.१२	इच्छामालम्ब्य यत्नेन	१६.२
अनुत्पन्नानां कुशलाना-	२.८	इति सञ्चिन्त्य योगात्मा	१५.१३
अनुत्पन्नानां कुशलाना-	३.८	इति सत्त्वादिमात्मानं	१५.१५
अनुयोगादिमन्त्राणां	११.१४	इयं सा भगवान् देवः	१२.१५
अनेन हेतुना योगी	१६.१०	उक्तं तथागताश्वासे	१२.५

उक्तं ताथागताश्वासे	११.१४	क इति कलिङ्गे सुभद्रः	५.१२
उक्तं पूर्वं मया सर्वं	१६.८	कक्षयोरङ्कुरिकः	४.३
उक्तं पूर्वं महातन्त्रे	१३.२०	कण्ठालङ्कृतशिरोमाला	१७.२२
उक्तं पूर्वादिसत्त्वस्य	१३.१९	कण्ठिकारुचककुण्डल	६.१२
उत्पत्तिः सर्वदेवानां	१२.१५	कण्ठिकारुचककेयूरं	१७.२१
उद्देशं च यथा प्रोक्तं	१.२	कलिङ्गं मुखे विन्यस्य	१३.५
उद्देशेन तु निर्माणं	१३.११	कवचद्वयेनात्मानं ज्ञात्वा	८.१
उपायेन तु योगीनां	१२.३	क्षणात्पश्यति बुद्धत्वम्	१७.९
एकयष्टि भवेत् सूत्रं	१७.३१	का इति काञ्च्यां महाभैरवः	५.१३
एकैकस्य तु योगिन्या	१७.१९	का इति कामरूपे अङ्कुरिक	५.१०
एतेषां देवतायोगं	३.१	काकास्या उलूकास्या	५.१८
एतेषु देशेषु या कन्या	१७.१८	काकास्यादि तु चत्वारो	६.१६
एते स्मृत्युपस्थान	२.९	काञ्चीं तु हृदये न्यस्य	१३.५
एते स्वभावतः शून्यं	९.८	कामयेत् सर्वयोगिन्य	१५.४
एवं ज्ञात्वा इमान् धर्मान्	१६.४	कामरूपं कक्षयोन्यस्य	१३.४
एवं त्रिचतुःपञ्चवारानुच्चार्य	१०.६	कायत्रयं त्रिचक्राख्यं	१३.१२
एवं देव महावीर	१७.१४	कायवाक्चित्तभेदेन	६.१४
एवं बाह्याध्यात्म	५.२०	कायवाक्चित्तेषु यत्कर्म	१६.१५
एवं यथा यथारूढं	११.३	कायानुस्मृत्युपस्थानम्	२.२
एवं विचिन्त्य आत्मानम्	१५.१०	कायानुस्मृत्युपस्थानम्	३.२
एवं समस्तचक्रस्य	६.१८	कुरुते नित्यं पूजाभिः	१४.७
एवं स्कन्धधात्वायतनेषु	१.९	कुर्वन्ति ते महाप्राज्ञ	१६.४
एष वीरो महावीर	१४.८	कृत्वाग्रग्रन्थिं खलु मध्यसूचिम्	८.३
ओडियानं सव्यकर्णे	१३.२	कृष्णपक्षे दशम्यां च	१०.३
ॐ आरल्लि होः जः हूँ वँ	१०.५	क्रोधविजयादयो द्वारे	१७.४
ॐ ख २ खाहि २ सर्वयक्ष	१०.७	खट्वाङ्गं देवतामूर्तिः	१५.७
ॐ वं हमों ह्रीमों हँ	७.५	खट्वाङ्गेति कपालासृक्	६.३
ॐ ह नमः हि स्वाहा	७.२	खण्डकपालादयः सर्वे	१५.७

खण्डकपालादि चक्रस्थं	१७.३	जङ्घां पादेन संवेष्ट्य	६.७
खसमतन्त्रैकलक्षस्य	१३.१०	जडमूर्खकूपायस्य	११.७
ख्यापितं सर्वलोकस्य	१६.६	जन्मकोटिसहस्रं वै	११.६
गिरिमस्तककिञ्जलकै	५.४	जाग्रत्सुप्तकृतोत्तिष्ठन्	१३.९
गृहपञ्चादिग्रामेषु	१६.१२	जिह्वावधूतीद्वये वीरं	८.५
गो इति गोदावर्यां सुरावैरी	५.९	ज्ञात्वा यस्तु विधिर्होष	५.३
गोदावरीं वामकर्णे	१३.३	ज्ञानसंभारपुण्यस्य	१३.१३
गोपनीयं प्रयत्नेन	१७.५	झटिताकारयोगात्मा	१२.४
गोपितं यत्तथा तन्त्रे	१.२	झटिता सर्वसर्वेण	१२.४
गौर्या पतिं समाक्रम्य	१७.२३	डाकिनीजालसंवरात्	९.३
ग्राह्यं विज्ञानज्ञानस्य	१२.२	डाकिनी तु तथा लामा	५.५
चक्षुषोर्मोहवज्रः	१.७	डाकिन्यादि तु चत्वारः	६.८
चतुर्डाकिनीपद्मस्थं	१७.३	डाकिन्यादि तु वज्रस्य	१४.२
चतुर्बुद्धासनासीनं	१४.१	तत्त्वधर्मस्वभावज्ञः	१६.७
चतुर्मुद्राशिरोमणि	६.११	तत्पुण्यं भवते तेषां	१७.११
चतुर्विंशति योगिन्यो	६.१०	तत्र कायप्रयत्नेन	१७.२८
चतुर्विंशतिवीरैश्च	६.९	तत्र मध्य स्थितो वीरः	५.४
चतुर्विंशार्धसंयुक्तं	१७.२३	तत्रैव निर्गताः सर्वे	१७.२
चत्वारोऽभिनया ह्येते	१७.२७	तत्रैव निःसृताः सर्वे	१२.१३
चर्याव्रतप्रवृत्तस्य	१७.२६	तत्सर्वं कुरुते क्षिप्रं	१६.१५
चर्याव्रतं तु योगिनां	१४.८	तद्वत् पादेन चाक्रम्य	६.१७
चरुं च भक्षयेत्तत्र	१०.१०	तस्माज्ज्ञानात् समुद्भूता	१२.८
चित्तं विश्राम्यते योगी	१७.८	तस्य मध्यगतं चिन्तेद्	१२.१९
चिन्तयेत् सोऽप्यचिन्त्यं वा	१२.२१	तस्य हस्तगता लक्ष्मीर्	१०.१०
चिह्नलक्षणमुद्रादि	१७.१९	तारयेदं त्रिचक्रात्मा	१.१
च्युतिकाले तु योगिनां	१७.१२	तावन्तो मन्त्रमुद्राः स्युः	१५.१४
छन्दऋद्धिपादः	२.३	ताः पूजिता भक्तिमतो	१०.११
छन्दऋद्धिपादः प्रचण्डा	३.३	तृतीयं पद्मनर्तेश्वरो राजा	७.३

तृतीया मोहनी चैव	७.६	न च तेन विना सिद्धि	१२.९
तेन तन्मयतां याति	११.२	न तु मार्गबाह्यानां	१२.२
तेऽपि सर्वे न जानन्ति	११.८	न मन्त्रजापो न तपो न होमः	१२.१
तेऽपि सर्वे न जानन्ति	११.९	न रक्षणीयं न [च] भक्षणीयं	१२.१
तेऽपि सर्वे निराकृत्य	१३.१४	न शक्यते तस्य पुण्यस्य	६.१५
त्रि इति त्रिशकुनौ महाभैरवो	५.११	नाकार्यं विद्यते किञ्चित्	१५.११
त्रिशकुनिं नाभिमध्यस्य(ध्ये च)	१३.४	नाख्यातं त्वया कश्चिद्	११.५
त्वया वीर ममाख्यातं	१३.१७	नाख्यातं विधिविस्तारं	१७.७
दक्षिणाभिमुखो योगी	१०.८	नानातूर्यनिर्घोषं	१७.१३
दक्षिणे तु सदा धार्या	६.६	नानापुष्पकरव्यग्रा	१७.१३
दर्शनं स्पर्शनं चैव	११.११	नानाविजयोपायेन	१७.५
दातव्यमात्मशक्त्या [च]	१०.९	नाभक्ष्यं विद्यते किञ्चित्	१५.१२
दातव्यं सर्वसद्भावं	१०.१०	नाभौ हृदये ततो वक्त्रे	७.५
दातव्यं स्वेच्छकर्मेषु	१०.२	नास्ति किञ्चिदकर्तव्यम्	१५.१६
दिवसं तु भगवान् वीरो	१५.११	निर्विकल्पैकचित्तात्मा	१५.१६
दुर्मधाजडमूकस्य(काश्च)	१३.१३	निवृत्तिस्तु यथोद्दिष्टं	९.७
दूरश्रवणचक्षुर्भ्यां	१६.३	नैर्माणिकं तु ज्ञातव्यं	९.१
देवीकोटं चक्षुर्भ्यां(षोस्तु)	१३.३	नैव सिद्धिं सुखं यान्ति	१६.२
द्विभुजमेकवक्त्रं वा	६.९	न्यसेत् पद्मदिशः स्थाने	५.५
द्विभुजा एकवक्त्रा वा	५.६	न्यासं यथा प्रयोक्तव्यं	५.२
धर्मसंभोगनिर्माण	९.९	पञ्चपञ्चेति सम्मिश्रं	१४.५
धारयेदिदं सदा नित्यं	१२.१७	पञ्चबुद्धात्मकु सर्वजगोऽयं	१२.११
ध्यानचिन्तितमात्रं वा	११.३	पञ्चमं वज्रसूर्येति	७.४
ध्याने चिन्तितमात्रं वा	१७.११	पञ्चमं संत्रासिनी ख्याता	७.७
ध्यायात् स्वभावमात्मानं	६.१४	पञ्चमुद्रादि गात्रस्य	६.८
न इति नगरे श्रीहेरुकः	५.१६	पञ्चमुद्रादि गात्रं च	१४.३
नखदन्तयोः खण्डकपाली	४.२	पञ्चवर्णसमाचार	१५.१५
नगरमङ्गुलीषु विन्यस्य	१३.७	पर्यटति महावीरः	१५.२

पर्शुं त्रिशूलं कर्तिं तु	६.३	प्राण्यङ्गवाससावासं	१५.३
पश्चात् समस्तसञ्चारं	१३.१६	प्राप्यत इहैव जन्मस्य	११.४
पश्चादुत्पन्नसामर्थ्यो	१५.२	प्राप्यान्यन्नात्र चिन्त्यं वै	१४.७
पारमिता षण्मात्रादि	११.१	प्रे इति प्रेतपुर्या महाबलः	५.१४
पिण्डसारं समाख्यातम्	१३.११	प्रेताधिवासिनीं लिङ्गे	१३.६
पिण्डानीतं भवेत्तस्य	१२.२०	फलप्राप्तस्य योगीनां	१७.६
पिण्डार्थमुद्धृतं सम्यक्	१३.१८	बाह्यशास्त्रबिडम्बका	१३.१४
पीठादि दशभूम्यस्य	११.१	ब्रह्मचर्यं सदा कृत्वा	१५.१०
पु इति पुल्लीरमलये	५.८	ब्रह्मसूत्राङ्गमुक्ता[तु]	१७.३०
पुकारादिसमायोज्या	९.३	भगवत्याः पुरः स्थाप्यम्	६.५
पु जा ओ अ गो रा	१३.८	भागाभागविशेषस्य	१३.१५
पुल्लीरमलयं शिरसि	१३.२	भावनाखिन्नः संहार्यः	१०.१
पुल्लीरमलये प्रचण्डा	१७.७	भावनाऽहम्मयं प्रोक्तं	८.७
पुष्यमासादिमात्मानं	१०.९	भावना हि मया प्रोक्तं	११.४
पुनपुंसकमादित्वं	१२.८	भावयित्वा समासेन	९.९
पूजनीते संस्थाने तु	१४.६	भावयेद् देवतारूपं	१२.१९
पूजनीयेश्वरी देवी	१३.१५	भावयेन्नाभिमूलस्थं	१२.१८
पूर्वपत्रस्य डाकिन्यो	१६.१४	भूषणं तत्र देवस्य	१२.१७
पूर्वोक्तमुद्रादिकमन्त्रयोगैः	१०.४	म इति मरुदेशे वैरोचनः	५.१७
प्रक्षेप्यं कुषुरं विद्याद्	१७.३०	मरुमङ्गुष्ठयोन्यस्य	१३.७
प्रतिनिर्देशं समस्तं वै	१.३, १३.१२	महामुद्रात् परं नास्ति	९.२
प्रथममुच्चायेद् योगी	१२.१६	महायानं महामुद्रा	९.१
प्रथमं तावद् योगेश्वरेण	१.५	मार्गं च ख्यातं	१७.१५
प्रथमं वज्रवाराही	७.६	मुक्तकेशीं त्रिनेत्राङ्गीं	६.७
प्रथमं वज्रसत्त्वं तु	७.३	मुच्यते सर्वपापेभ्यः	११.१२
प्रथमं समाहितो योगी	१५.१	मूलमन्त्रस्य यद्वीरं	१५.४
प्रवृत्तिं तु यथाप्रोक्तं	१६.७	मृत्युर्नाम विकल्पस्य	१७.१४
प्रवृत्तिं तु समासेन	९.६	य इमां ध्यायते नित्यं	१२.१६

य इमां ध्यायते स्वयं पूज्यं	१४.९	योगी दरिद्र अर्थी स्याद्	१४.६
यज्ञोपवीतं भस्मेन(भस्मेति)	६.१३	यो जानीते महावीर	१४.५
यज्ञोपवीतं संत्यज्य	१५.३	यो न ज्ञातव्यसञ्चारं	१३.१८
यत्पुण्यं भवते तस्य	६.१५	रक्तवर्णा महाज्वालीं	६.६
यत्किञ्चित् कुरुते कर्म	१३.२१	रसना षोडशं ज्ञेया	१७.३१
यत्र तत्रापि विन्यस्य	१३.९	रात्रौ मुक्ता शिखो भूत्वा	१०.१२
यथाङ्गनाबालकथानुमोदितं	१७.१५	रुकारोऽपगतव्यूहं	९.८
यथा डाकिन्य उत्पन्ना	६.१८	रूपस्कन्धे वैरोचनः	१.६
यथात्मनि तथा सत्त्वा	१५.१२	लक्षणं शास्त्रमुद्देशं	१२.३
यथा पूर्वादि पापस्य	१७.९	लक्षाभिधानतन्त्रस्य	१३.१०
यथा पूर्वोक्तचक्रस्य	१६.१३	लोके प्रभाव्य विख्याताः	१.४
यथावत्पूर्वमुक्तस्य	१०.२	वज्रघण्टे समालिङ्ग्य	६.१०
यथा श्रीहेरुकज्ञानी	१६.३	वज्रवाराह्या यन्मन्त्रं	१५.६
यमदाढी तथा ध्यात्वा	६.१७	वज्राञ्जल्यूध्वविकचा	१०.६
यमदाढी यमदूती	५.१९	वर्णकाच्छादितं रूपं	१७.२५
यस्य च षष्ठम बुद्धति नाम्ना	१२.११	वामदक्षिणपाणिभ्यां	८.८
यः समाचरति श्रेष्ठः	१७.८	विचरिष्यते महायोगी	१६.११
यावन्तोऽङ्गविक्षेपा	१५.१४	विदिशेन तु चत्वारः	५.६
येन ज्ञातव्य सा क्षिप्रं	११.५	विपरीतदेवतान्यासं	११.१२
येन ज्ञातेन क्षिप्रं हि	७.१	विपरीतभावनागोप्यं	११.१३
येन येन हि बध्यन्ते	१७.२०	वीरचक्रादिमन्त्रस्य	१०.८
येन येन हि भावेन	११.२	वीरमन्त्रादियोगिन्यो	१६.१३
येन विज्ञातमात्रेण	१.३, ५.१	वृथा परिश्रमस्तस्य	१६.५
योगपात्रकमालिङ्ग्य	६.११	वृथा पमिरश्रमस्तेषां	१३.१९
योगवियोगं न कर्तव्यम्	१०.१	वैरोचनीति यन्मन्त्रं	१५.९
योगिना सर्वभावेन	१६.८	व्याकारं विन्यस्य च लिङ्ग	८.४
योगिन्यस्य तु यच्चिह्नं	१६.११	शतमर्थं तु विज्ञेयं	६.४
योगिन्यादि तु वीरस्य	१७.६	शब्दापशब्दसंकेतं	१३.१७

शवमाक्रम्य पादेन	६.१६	षड्योगिन्याश्च मन्त्रेण	१५.८
शास्त्राणि च समस्तानि	१२.९	षड्योगिन्यो यथा पूर्वं	१४.४
शुद्धधर्मस्य निर्माणं	१७.१	स एव प्राणिनां प्राणः	१२.६
श्रद्धाबलम्, वीर्यबलम्	२.५	स एव बुद्धज्ञानीति	१२.७
श्रद्धाबलं महाभैरवा	३.५	सञ्चारविधियोगज्ञ	११.१०
श्रद्धामुत्पादितं सम्यग्	११.६	सञ्चोदयेत् तु मन्त्रेण	८.२
श्रद्धेन्द्रियम्, वीर्येन्द्रियम्	२.४	सन्तुष्टचित्ता वरदा भवन्ति	१०.११
श्रद्धेन्द्रियं वीरमती	३.४	सप्तत्रिंशत्तु बोधिः स्यात्	९.१०
श्रीकारमद्वयं ज्ञानं	९.७	सप्तत्रिंशद्योगेन	१.४
श्रीहेरुकमहायोगी	१३.१	सप्ताक्षरस्य मन्त्रेण	१५.८
श्रीहेरुकमहाराजं	६.२	समयचक्रे प्रविश्याशु	८.१
श्रीहेरुकमहाराजं	९.२	समस्तवेदनिर्माणं	१३.१६
श्रीहेरुकमहाराजं	१७.२४	समस्तवेदसिद्धान्त	१२.१०
श्रीहेरुकयोगात्मा	१०.१२	समाधिसंबोध्यङ्गम्	२.६
श्रीहेरुकसमावेशम्	११.९	समाधिसंबोध्यङ्गं हयकर्णा	३.६
श्रीहेरुकस्य अङ्गाङ्गं	४.१	सम्यक्दृष्टिर्महाबला	३.७
श्रीहेरुकस्य धातुरिति	१.८	सम्यक्दृष्टिः, सम्यक्संकल्पः	२.७
श्रीहेरुकस्य निर्माणं	१७.१	सर्वचक्रस्य योगिन्यो	१५.९
श्रीहेरुकं परं वीरं	९.४	सर्वचिन्तां निराकृत्य	१६.१०
श्रीहेरुकात्मविन्यस्य	९.५	सर्वतन्त्रेषु यद् गुह्यं	१६.९
श्रीहेरुकादयः सर्वे	६.१२	सर्वदेवादि यद् गुह्यं	१७.१०
श्रीहेरुकादियोगिन्यो	१७.१६	सर्वप्रपञ्चमालम्ब्य	१६.९
श्रीहेरुकीति नाम्ना	१६.१४	सर्वबुद्धस्य डाकिन्यः	१५.६
श्लेषम[णि] महाबलः	४.४	सर्वव्यापी स एवासौ	१२.७
षट्पारमिताविशुद्धं तु	६.१३	संलाप्य सम्पर्ककथां च	१७.१५
षड्भिः कवचस्य वीरेण	१५.५	संसारविनयोपायं	१७.७
षड्भिः कवचं वज्रवाराह्या	७.७	संसारारूपारमुत्तार्य	१७.२१
षड्भिः कवचैः	७.४	संसारोत्तारसत्त्वस्य	१७.४

संस्थाप्य तां मध्यललाटदेशे	८.३	सौ इति सौराष्ट्रे हयग्रीवः	५.१५
साधकैरल्पपुण्यैश्च	११.५	सौराष्ट्रमूरुद्वये चिन्त्य	१३.६
साधनीते सतः सर्व	१६.१२	स्थानव्युत्थानतश्चैव	१२.१२
साधनीयं प्रयत्नेन	१७.१८	स्वर्गभोगमावाप्नोति	१७.१२
सामान्यं सर्वतन्त्राणां	११.१३	स्वर्गं मर्त्यञ्च पातालम्	८.७
सांभोगिकं तु ज्ञातव्यं	९.६	स्ववर्णभुजसंस्थानं	६.१
सिद्धिमुत्पाद्य तां क्षिप्रं	११.१०	हसितेक्षणपाणिं तु	१२.५
सिंहवद् विचरेद् वीरः	१५.१३	हस्तद्वयसमालिङ्गं	६.२
सुरतानन्दं समस्तं वै	८.६	हस्तपूजादि ज्ञानीनां	१४.४
सूत्रक्रियाभिचर्याणां	१६.६	हृदयमन्त्रं तु देवस्य	१५.५
सोपायेन तु तेनैव	१७.२०	हृदय शिरः शिखा स्कन्ध	७.२
सोमपानाद् भवेत् सिद्धिः	९.४		

टीकयोरुद्धतवचनानुक्रमणी

अक्षोभ्यश्चक्रिरूपेण	६४
अथ वज्रधरः (ना० सं०)	५
अथ शब्दानुशासनम्	५
अध्यात्मकाये बहिर्धाकाये	२०
आदर्शज्ञानवांश्चन्द्रः	४५
आनन्दं प्रथमं वीरम् (यो० सं० १८.४४)	११४
आनुकूल्यानुवृत्तिभ्यां (म० सू० १८.४४)	२१
आलम्बनमनस्कार (म० वि० का० ४.१३)	२१
आशु चाशेषबोधा[य] (म० सू० १८.५९)	२५
आश्रयाङ्गं स्वभावाङ्गं (म० वि० का० ४.८-९)	२६
आश्रयोऽथाश्रितस्तस्य (म० वि० का० ४.५)	२३
उद्देशाद् मन्थमन्थानम्	१०
उपेक्षया यथाकामं (म० सू० १८.६१)	२६
कर्मण्यता स्थितेस्तत्र (म० वि० का० ४.२)	२३
कामशोकभयोन्माद (प्र० वा० २.२८२)	१०२
कौशीद्यमालम्बनसंप्रमोषो	२३
चतुर्थं तत्पुनस्तथा (गु० त० १८.११२)	११
चतुर्दानं प्रदातव्यं	१०१
तन्त्रान्तरान्निदानवाक्यं	२
तालुदेशे भवेद् देव्या	७८
त्रिचीवराद् बहिस्त्यजेद् (बो० च०)	२८
दृष्टौ शीले च संलेख्ये (म० वि० का० ४.११)	२८
दौष्ठल्यात्तर्षहेतुत्वाद् (म० वि० का० ४.१)	२०
धर्मालोकविवृद्ध्या च (म० सू० १८.५९)	२५
धातून् विशोध्य वीरैस्तु	३८
न बुद्धः परिनिर्वाति	१

निर्देशात्पृथगासनम्	१०
निश्रयात् प्रतिपक्षाच्च (म० सू० १८.४३)	२१
परमानन्दं तु योगिनी (यो० सं० ८.६)	११४
परवादिनश्च ये केचित्	१२५
परिच्छेदोऽथ संप्राप्तिः (म० वि० का० ४.१०)	२८
परिज्ञाते विपक्षे च (म० वि० का० ४.२)	२८
पूर्वप्रकृतापेक्षम्	५
मयि परिनिर्वृते	१
मुद्रया तदनुकूलमन्तरा	१५२
यक्षराक्षसभूतानि	९३
यवर्गादष्टमं बीजं	७०
याभिवक्ति चरणेन पाणिना	१५२
येन विज्ञातमात्रेण (यो० सं० १.३)	४
रोपिते मोक्षभागीये (म० वि० का० ४.६-७)	२४
वाममाप्रथमं सव्य	६
विण्मूत्रचन्द्रमार्तण्ड	९२
सर्वविकल्पनिमित्तानां (म० सू० १८.५८)	२६
सर्वावरणनिर्मोक्षात् (म० सू० १८.६०)	२६
सिद्धार्थं सिद्धसम्बन्धं	२
स्मृतिश्चरति सर्वत्र (म० सू० १८.५८)	२६

टीकागतग्रन्थ-ग्रन्थकारानुक्रमणी

अन्ये	२	भगवान् मैत्रेयः	२०
अपरे	२	महातन्त्रम्	१२७
आम्नायः	७१	मूलतन्त्रम्	५, ६, ७, ९, १२, ५२, ५५, ६९, ७०, १३०
उक्तञ्च	१, २०, ४५	यदुक्तम्	५, ६, १०, २०, २१
कृष्णपादः	१०, ४१	(भगवता), २३-२६, २८, ३८, ७८, ९२, १०१, १०२, ११४, १२५, १५३	
केचिदाचार्याः	१		
खसमतन्त्रम्	२, ८५		
(अस्मद्) गुरुपादाः	४०		
गुरुः	११९	रत्नवज्रः	४१
गुह्यतत्त्वप्रकाशः	१०	रत्नाकरशान्तिपादः	८०
चक्रसंवरतन्त्रम्	२	लक्षाभिधानम्	६
डाकिनीजालसंवरम्	८५	विस्तरतन्त्रम्	८१
तथा हि	२३	व्याख्यानतन्त्रम्	७
तदुक्तम्	२	साधनटिप्पणी	११९
(अस्मत्) परमगुरुपादाः	१४	सूक्ष्ममूलतन्त्रम्	५, ९, १२
बृहत्तन्त्रम्	४, ७	सूत्रम्	१, २०
बृहन्मूलतन्त्र	९	हेवज्रपञ्जिका	८०

शब्दानुक्रमणी

अकनिष्ठादिभुवन	८६, ८७	अद्वययोग	७९, ८४, १२९, १३३
अकुशलप्रहाण	२३	अधिगमधर्मसम्प्रत्ययो-	
अक्षर	११९, १२०	(या)ऽभिलाष	२३
अक्षरन्यास	१२०	अधिपतिपरिवार	६३, ६५, ९३
अक्षरभू	१४	अधिमात्रसंभारभूमि	२३
अक्षरभूमि	१२१	अधिमुक्ति	१९, १२६
अक्षरान्तर	१२७	अधिमोक्ष	९६, १५३
अक्षोभ्य १५, ४४, ६४, ७१, १५५		अधिवासन	११७
अक्षोभ्यस्वाभा	७३	अधिष्ठान	११५
अग्निज्वाला	४४	अध्यात्मकाय	२०
अङ्कुरिक	३९, ४९	अध्यात्मबहिर्धाकाय	२०
अङ्कुश	७२	अ(आ)ध्यात्मिकपूजा	४
अङ्गचतुष्टय	४३	अनागतशिष्याचार्यसम्बन्ध	१०४
अङ्गनाबालकथा	१५१	अनादिनिधन	११३
अङ्गसंग्रह	२६	अनाभोगमिश्रोपमिश्रभावना	२२
अङ्गुली	१२२	अनाहत	८८
अङ्गुष्ठ	१२२	अनिमित्त	८८
अङ्गुष्ठवज्र	७७	अनुयोग	१०७, १०८
अतियोग	१०८	अनुलोम	६
अतृप्तवीर्य	२९	अनुवृत्ति	२२
अद्वय ७८, ७९, ८८, १०९, ११६, ११८, १२१, १२४, १२५, १२९, १३०, १३३, १४२, १४८, १५१, १५२		अनुशंसाङ्ग	२६
अद्वयज्ञान ७३, ८७, ८८, १३९, १४३		अनुस्मृति	१३५
अद्वयज्ञानचेतस् १३८, १३९		अन्यमनस्कार	१४१
अद्वयज्ञानसुव्रत १४१, १४२		अपगतव्यूह	८८
		अपरपर्याय	९
		अपरापरदेवता	१३०

अपरिपाचितसत्त्व	१०४	अमृतास्वादविधि	९१, ९४, ९७
अपस्मारडाकिनी	९४	अमृतीकृत	९३
अपस्मृति	९३	अमृतोत्पादनक्रम	९४
अप्रणिहित	८८	अमोघ	६४
अप्रतिष्ठितनिर्वाण	२१, ८८	अमोघसिद्धि	१५, ४४, ७२, ७४, ९६
अब्धातु	७३	अयलयत्न	२३
अभयधर्म	१०१	अर्घ	७५
अभिचर्या	१४२	अर्चिष्मतीभूमि	५७
अभिचारक	४२, १४६	अर्थग्रन्थ	११०
अभिज्ञात्रय	१४१	अर्बुद	४८, १२१, १५२
अभिधान	२, १२३	अलङ्कार	१५७
अभिधानाभिधेयभाव	२	अवधानीकरण	४
अभिधेय	२	अवधूत	५०, ७९
अभिध्या	२१	अवधूतीद्वय	७९
अभिनय	१५६	अवसव्य	५८
अभिनयचतुष्टय	१५६	अविकल्पसंविदात्मिका	८४
अभिमन्त्रित	९४	अविप्रतिसाराधिपति	२४
अभिरति	९८	अविमोह	२०
अभिषेक	११५, ११६	अश्रु	४०
अभिषेकचतुष्टय	११०	अष्टनाडी	१३५
अभिसमय	१४, २४, २५, ४६	अष्टपदमन्त्र	१३५, १३७
अभिसमयप्रक्रिया	४८	अष्टप्रहाणसंस्कार	२३, ५७
अभिसम्बोधि	८४	अष्टयष्टिका	१५७
अभेदाहङ्कार	१२९	अष्टश्मशान	९५
अभ्युदयाकारा	११४	अष्टाङ्गिकमार्ग	२८
अमिताभ	१५, ३८, ३९, ४४, ४९, ६४, ७१	अष्टाष्टारसंस्थान	४७
अमिताभस्वाभा	७३	असमाहितचर्या	९०
		असमाहितयोग	९०, १५५

असहज	११४	आधेयमण्डलभावना	४५
असंप्रमोष	२०	आध्यात्मिक	४७
असि	७०	आध्यात्मिकपूजा	९०
अस्त्र	७०, ७२	आनन्द	७८, ८०, ९२, ११४
अस्थि	३८	आनुकूल्य	२२
अस्थिमाला	३८	आमन्त्रण	८८
आकर्षण	१६, १७, ४६, ७७, ७८	आमिष	१०१
आकाशगर्भ	४०, ५१	आम्नाय	७१, १४१
आकाशधातु	७०, ७३	आयतन	१०१
आक्रान्तपाद	७६, ७७, ९१	आयतनविशुद्धि	४३
आक्षेपक	१५७	आयतनाधिष्ठान	१७
आक्षेपमन्त्र	१३७	आयुध	७१, १११
आगन्तुकत्वपरिज्ञा	२२	आयुधद्वादशक	१२
आङ्गिक	१३८, १५६	आर्यदुःख	२०
आचार्य	१०५	आर्याष्टाङ्ग	३६
आचार्यरत्नाकरशान्ति	८०	आर्याष्टाङ्गमार्ग	२७, २९
आत्मतत्त्व	१४१	आलम्बन	२३
आदर्श	१२९, १४७	आलम्बनसम्प्रमोष	२३, ३२
आदर्शज्ञान	१५, ४५, ७३	आलम्बनासंप्रमोषाधिपत्य	२४, ३३
आदर्शादिपञ्चज्ञानोपाय	५६	आलय	११८
आदिमन्त्र	१०७, १०८	आलयविज्ञान	१३५
आदियोगप्रस्ताव	१३३	आलि	४, ४५, ११७, ११९
आदिसत्त्व	१२७	आलिकालि	११६, ११८, ११९, १२७, १२८, १४२, १५४
आदिसमाधि	३४	आलिकालिविशुद्ध	११९
आदिसिद्ध	१००	आलिङ्गन	११२
आद्यपुद्गल	१०३	आलीढस्थान	७६
आधारमण्डल	४३	आलीढासन	६६, ६७
आधारमण्डलभावना	४३, ४५		

आवर्तक्रम	६	उपपीठ	४९, १२१
आवाहन	७६	उपमेलापक	५१, १२२
आवेध्य	१५७	उपराग	१०२
आश्रव	२०	उपश्मशान	५२, १२२
आसनविभाग	४५	उपसंहारक्रम	८८
आहार्य	१५६	उपसाधनाङ्ग	१०
आहार्याभिनय	१५६	उपहृदय	६९, ११७
आह्वानमन्त्र	९४	उपहृदयमन्त्र	१३६
इन्द्रिय	२४	उपाय	४२, ८०, १०४, ११०, १११,
ईक्षण	११२		११६, १५३
ईर्या	३६	उपायतन्त्र	६
ईर्ष्यावज्र	१५, १६	उपायपारमिता	५६, ६२
ईश्वरी	१२४, १२५	उपायवीर्य	२९
उच्छिष्टबलि	९७, ९९	उपायोपेयभाव	२
उत्पत्तिक्रम	८०, ८३, ८४, १०२	उपेक्षा	२३, २५, २६
उत्पत्तिक्रमप्रस्ताव	११६	उपेक्षासंबोध्यङ्ग	२५, २६, ३४, ३५
उत्पत्तिक्रमभावक	६९	उमा	१५५
उत्पत्तिक्रमभावना	५, ११६, ११९	उलूक	३५, ५२
उत्पत्तिक्रमभावनाचार	१११, ११२	ऊरुद्वय	१२२
उत्पत्तिक्रमसमाधि	८, १३२	ऊरुयुगल	४०, ५१
उत्पत्तिक्रमसंग्रह	११६	ऋग्युजस्सामाथर्वणवेद	११४
उत्पत्तिक्रमाङ्ग	४	ऋद्धि	२३
उदित	१००	ऋद्धिपाद	२९, ३२
उद्देश	६, ११, १२३, १४३	ऋद्धिपादचतुष्टय	२२-२४
उन्माद	९५	ऋद्ध्युत्पाद	२२
उपक्षेत्र	५०, १२१	एकमूर्ति	८१
उपच्छन्दोह	५०, १२१	एकयष्टि	१५७
उपपादुकक्रमभावना	१११	एक[क]लाभिधान	९२

एकावली	१५७	कर्मण्यचित्त	२४
ऐरावत	४९, १५२	कर्मत्रयविशुद्धि	२७
ऐरावती	३३	कर्मराजाग्री	३८
ऐश्वर्यवज्र	१५, १६	कर्मवृन्द	१४६
ओडियान	४८, १२१, १५२	कलिङ्ग	१२१, १५२
ओड्र	३९, ४९, १२१, १५२	कलिङ्गमुख	३९
औद्धत्य	२३, ३२, ३६	कलियुग	१४०
औलिट्यकाल	३४	कवच	३४, ७१-७४, १३४
कक्षद्वय	३९, ४९, १२१	कवचद्वय	३, १२, ६९, ७५, ९२
कङ्काल	३८, ४८	कवचद्वयभावना	३, ६९, ७५, ९३
कटिप्रदेश	१५४	कवचप्रस्ताव	१३०
कण्ठ	१४, १५, ३९, ५०, १३५	कवचमन्त्र	६९, १३४, १३६
कण्ठचूड	१५४	काकास्या	३५, ५२, ६६, ६८, ९३, १२९, १४५, १४८, १४९
कण्ठमध्य	१२१	काकास्यादिसप्तक	५३
कण्ठमाला	६४	काकास्याद्यष्टक	५२, १५४
कण्ठिका	६३, १३५, १५३, १५४, १५८	काञ्ची	३९, ५०, १२१, १५२
कण्ठी	६१, ६३, १००, १०१	काद्य	६१
कपाल	१७, ४७, ४८, ५७, ५८, ६०, ६१, ६३, ७०, ७२, १३६	कामपञ्चक	१३८, १३९
कपालचतुष्टय	१२९	कामरूप	३९, ४९, १२१, १५२
कर	१०१	कामावचरसत्त्व	४९
करच्छोमा	४	कामिकी	८८
करण	१४५	कामेश्वर	१५०
कर्ति	५७, ७२	काय	८७
कर्तिका	१७, ३२, ६०, ६१, ६३, ७२	कायचक्र	१५, १६, ३४, ३५, ५१, ५२, १४५
कर्तिपात्र	१७	कायचक्रदेवता	३५
कर्मकाल	११८	कायचक्रदेवतान्यास	५२

कायचक्रवीर	४०	कुदृष्टिका	१२४
कायचित्तकर्मण्यता	२३	कुन्तखण्ड	९३
कायत्रय ८, ८३, ८४, ८७-९०, १२३		कुम्भ	९३
कायत्रयभावना	८८	कुम्भा(कूष्मा)ण्ड	९३
कायत्रयसंग्रह	८७	कुलत्रय	४८, ६५
कायद्वय	१२	कुलूता ९, ४०, ५२, १२२, १५२	
कायद्वाराष्टक	१४९	कुशलबलच्छन्दाधिपति	२४
कायमण्डल	४३	कुशलमूलोत्पत्ति	६६
कायवाक्चित्त	१४५	कुशलोत्पाद	२३
कायवाक्चित्तवज्री	१२०	कुषुर	१५७
कायवाक्छोमा	७	कुसुम	१३०
कायविवेक ५४, ६५, ८९		कूटागार ४२-४४, ८३, ९३, ९५	
कायविवेकलक्षण	४२	कूटागारभावना	४२
कायाकाश	३२	कूर्मपताका (मुद्रा)	१५३
कायादिधर्मनैरात्म्य	२२	कृत्यानुष्ठानज्ञान १५, ४५, ७४	
कायाद्यधिष्ठान ६५, १११		कृष्णपाद १०, ४१	
कायानुस्मृत्युपस्थान १९, २०, ३१		केयूर ६०, १५३, १५४	
कायेन्द्रिय १६		केशरोम ३८	
कालरात्रि ५६		कोशल ३९, ५०, १२१, १५२	
कालाग्नि ९२		कौशीद्य २३, ३२, ३३	
कालि ४, ४५, ११७, ११९		क्रमद्वय ४, १२, ११०, १२६, १२७,	
किङ्किणी १५४		१३२	
किञ्जल्क १५४		क्रमद्वयभाव ८५, ८६	
कुङ्कुम १५५		क्रमद्वयभावक ११०	
कुड्यासन १५५		क्रमद्वयभावना ६, १४, ८४, ९८,	
कुण्डल ६१, ६३, ६४, १००, १५३		१२६, १३३, १४१	
१५४, १५७		क्रमद्वयसमाधि १३३	
कुण्डलद्वय १०१, १३६, १५४		क्रमद्वयसाधक १३	

क्रियातन्त्र	१३, १४	गणचक्र	८६, ९१
क्रियादितन्त्र	११२, ११३, १२९, १४३	गणचक्रपूजा	९६
क्रोधविजय	१४८	गणचक्रविधान	९८
क्रोधाष्टक	१४८	गणचक्रसूचना	९७
क्लेशपारतन्त्र्य	१३९	गणभोजन	८५
क्षान्ति	१४९	गणमण्डल	९७
क्षान्तिपारमिता	५७, ६१, ६३	गन्धक	१५५
क्षान्तिपारमिताविशुद्धि	१०१	गन्धर्व	९३
क्षीरक	१३१	गर्दभयोग	१४६
क्षेत्र	४९, १२१	गर्दभाकार	१४५
क्षेत्रजा	४८	गर्दभाकारयोग	५२
खगानना	३४, ५०, १५२	गर्दभाकारयोगभावना	१४६
खट्वाङ्ग	१७, ३२, ४८, ६०, ६१, ६६, ७०, ७२, १३५	गर्दभाद्याकार	१४४
खण्डकपाल	९, १६, ३७, ३८, ४७, ४८, ९४, १२९, १३५, १३६, १४८	गात्रालङ्कारमुद्राष्टक	१३४
खण्डरोहा	१७, ३१, ३२, ३४, ४६, ५१, १५२	गिरिमस्तक	१५४
खर्वरी	३३, ४९, १५२	गीत	१५१
खसम	८५	गुद	१२२
खसमतन्त्र	२, ८५, १२३	गुदस्थान	५३
खेचरी	४९	गुदा	४०, ५१
खेचरीपद	१५१	गुरु	१००, १०९, ११०, १११, ११९, १३७
खेट	४०	गुरुपर्व	४३, ४४, १०३, १०४
खेदवीर्य	२९	गुरुपादप्रसाद	११०
गगनगङ्ग	३४	गुरुप्रसाद	१०३
गगनगङ्गादिसमाधि	२५	गुरुमार्ग	१२४
गजचर्म	५६	गुरुशिष्य	१४९, १५०
		गुरुसम्भाषण	११०
		गुलिका	१५८

गुह्य	१४, १५, १४२, १४३, १५०	चक्रत्रय	४७, १२०, १२९, १३६, १४८
गुह्यतत्त्वप्रकाश	१०	चक्रद्वय	३, ४९
गुह्यपूजा	४७	चक्रनायक	१२९
गुह्यविकल्प	३३	चक्रमाला	४८
गुह्यविधि	१२९	चक्रयोगिनी	१४४
गुह्यस्थान	५३, १४८, १४९	चक्ररत्न	२६
गुह्यौलि	८४	चक्रवर्तिनी	३५
गुह्यौलिसाधना	११	चक्रवर्तिसुख	२६
गूढमन्त्र	१४८, १५२	चक्रवर्ती	२५, १६, ५२, १५०, १५२
गृहदेवता	४०, ५१, १२२, १५२	चक्रवर्मिणी	३४, ५१, १५२
गृहपञ्चक	१४४	चक्रविन्यास	१२०
गोकुदहन	९४	चक्रवेगा	३४, ५१, १५२
गोचरपरिशुद्धि	१३	चक्रसंवरसंवर	१४४
गोदावरी	३८, ४९, १२१, १५२	चक्राकर्षणविधि	९१
गोप्यतन्त्र	५५, ६९	चक्रिका	६३
गौरी	१५५	चक्री	६१, ६४
गौरीपति	१५४	चक्षुरिन्द्रिय	१०६
ग्राह्य-ग्राहकाकार	८८	चक्षुर्द्वय	३९, ४९
ग्राह्यविज्ञान	१०९-१११	चण्ड	३२
घटद्वय	४४	चण्डकर्म	७४
घण्टा	१४, ७२	चण्डाक्षी	३२, ४८, १५२
घण्टाध्वनि	९३	चण्डाली	४८, ४९, ६०
घुण	११३	चण्डिका	७१, ७३, ७४
घुर्घुरारव	१५४	चण्डोग्र	५३, ९६
चक्र	१४, ९१, १००, १४८, १५३	चण्डोग्रादि	४५
चक्रघण्टा	७०	चतुरशीतिसाहस्रधर्मस्कन्ध	११६
चक्रचक्रघण्टा	४०, ६२, ६५	चतुरानन्द	४६
चक्रचतुष्टय	७९	चतुर्डाकिनी	१४८

चतुर्थ तत्त्व	१०, ११	चत्वार आनन्दाः	८०
चतुर्थ सेक	११०	चत्वारिंशदक्षर	४५
चतुर्थाभिसंबोधि	४५	चन्दन	१५५
चतुर्दान	१०१	चन्द्र	९२
चतुर्देवी	१३	चन्द्रमण्डल	४५, ७०, ११९
चतुर्बुद्धासन	१२९	चरु	९७
चतुर्मुखमन्त्र	१३७	चर्माम्बर	१३५
चतुर्मुद्रा	६२, ६३	चर्याचारी	१३८
चतुर्विधपूजा	४३	चर्यात्रय	१३३
चतुर्विमोक्ष ९, १५, ३७, ५६, ८४, १४७		चर्याफल	१३८
चतुर्विमोक्षमुखविशुद्धि	१५५	चर्यायोग	९०
चतुर्विंशतिधातु	९८	चर्यायोगी	९०
चतुर्विंशतिपीठ	७७	चर्यालक्षण	१२
चतुर्विंशतिपीठोपपीठादिबीज	४७	चर्याविधि	१३२, १३३
चतुर्विंशतिवीर ८३, ८९, १२५, १३६		चर्याव्रत ४, ९९, १३१, १३२, १३३, १४०, १४२, १५५, १५६	
चतुर्विंशतिवीरन्यास	९३	चर्याव्रततत्त्वपरिज्ञान	१५६
चतुर्विंशतिवीरिणी	९७	चर्याव्रतनियम	११६
चतुर्विंशत्यक्षर	८६, ८७	चर्याव्रती	१३२
चतुर्वीर	४, १२, १३३	चाण्डाली	६२
चतुश्चक्र	१७	चातुर्महाराजकायिकबलि	९३
चतुष्पथ	९३	चित्तऋद्धिपाद	२२, ३२
चतुःपूजा	१४७	चित्तचक्र १६, ३३, ४७-४९, १०६, १२३, १३६	
चतुःषष्टिदल	११९, १२०	चित्तचक्रदेवता	३३
चतुःसत्यावतार	२०	चित्तचक्रभावना	४७
चतुःसन्धि	४८	चित्तचक्रवीर	३९, ६२
चतुःसन्ध्या	११८	चित्तचक्रस्थदेवता	३२
चतुःसंग्रहविशुद्धि	४७		

चित्तधातु	३४	जानुद्वय	४०, ५२
चित्तधारण	७८, ७९	जाप	१४०
चित्तनाथ	१	जालन्धर	४८, १२१, १५२
चित्तनिर्मित	१४७	जालमुद्रा	९२
चित्तमहासुख	१०९	जिनमन्त्राक्षर	१२७
चित्तमात्रता	१३०	जिह्वा	७९
चित्तवाक्कायचक्र	४७, १०६	जिह्वाद्वार	८६
चित्तविश्राम	१४८	ज्ञानचक्र ३, १२, ३२, ४५, ४७, ७५,	
चित्तसमाज	१०९	७६, ८१, ८३, १०१	
चित्तसमाधि	२३	ज्ञानचक्रडाकिनी	४६, ६१
चित्तानुस्मृत्युपस्थान	१९, ३१, ३२	ज्ञानचक्रदेवी	४६
चिह्नमुद्रागण	५५	ज्ञानचक्रभावना	४७
चिह्नलक्षण	१५२	ज्ञानचक्राकर्षण	९३
चेतना	२३	ज्ञानचक्राकर्षणभावना	८१
च्युतिकाल	१५०	ज्ञानपद्म	४६
छन्द	२३, २९, ३२	ज्ञानपद्मयन्त्र	६८
छन्दऋद्धिपाद	२२, २३, ३२	ज्ञानपारमिता	५७
छन्दसमाधि	२३	ज्ञानमण्डल	७५-७७, ८२
छन्दोह	५०, १२१	ज्ञानमण्डलाधिपति	९८
छोम्मक	१४४	ज्ञानमयदेवताकार	१०८
जङ्घा	१२२	ज्ञानमूर्ति	५६
जङ्घायुगल	४०, ५१	ज्ञानसत्त्व	८३, ९३, १११
जटा	६१	ज्ञानसमयचक्र	१५५
जडमूर्खकूपाय	१०४	ज्ञानसंभार	१२४
जरायुजक्रम	१११	ज्ञानाग्नि	७३, ९७, १२०
जरायुजमण्डलभावना	१४७	ज्ञानामृतपात्र	१३६
जातिविशोधन	३५	ज्ञानौलिकाल	३३
जानु	१२२	ज्ञेयावरण	२७, २८

[ज्ञे] यावरणविशुद्धि	२७	तन्त्रान्तर	२
झटिताकारमुद्रा	१११	तन्त्रोक्तविधि	१०६
झटिताकारयोग	१११	तन्त्रौलि	३२, ३५
झटितामन्त्र	१११	तन्त्रौलिकाल	३३, ३४
झटित्याकार	८, ९३	तप	१०९
झटित्याकारयोग	९२	तर्जनकर्तिका	६२
झटित्याकारादियोग	५	तर्जनी	१७, ७७
डमरु १७, ४८, ५७, ७०, ७२, १३५		तर्जिका	५९
डमरुक	१३५	तर्षहेतुत्व	२०
डाकडाकिनीगण	९३	ताथागताश्वास	१०७, १०८, ११२
डाकिनी १३, १७, ३१, ३२, ४६, ६०, ७२, ८१, ८२, ८५, ९४, १२९, १३५, १४५		तायित्व	५७
डाकिनीचतुष्टय	१४८	तारिणी	७४
डाकिनीजाल	६८	तालुदेश	७८
डाकिनीजालसंवर	८५	तिर्यग्जाति	५२
डाकिन्यादिचतुष्टय	१५४	तुरीय	७८
तत्त्व ११०, १११, १२३, १२४, १४१, १४३		तूर्य	१५१
तत्त्वधर्म	१४२	तृतीयाभिसम्बोधि	४५
तत्त्वयोग	१३३	तेजोवायु	७३
तथता ८४, ११२		त्रिचक्र ९, ३७, ९२, १२३, १४६	
तथागत १५, ७१, ९४, ११२, १३८		त्रिचक्रवीरिणी	४१, ६१, ६२
तन्त्र २, ६, ११७, १२५		त्रिचक्रव्यवस्थित	६२
तन्त्रज्ञानौलिक्रम	११९	त्रिचक्रात्म	२, ५, ८, १२
तन्त्रनय	१४	त्रिचक्रात्मयोगमार्ग	१, २
तन्त्रव्याख्यान	१२७	त्रितथागताकार	१५३
तन्त्रसार	१४९	त्रिप्रकारा योगिनी	४८
		त्रिविध बलि	४१
		त्रिविमोक्ष	८८
		त्रिशकुनि ३९, ५०, १२१, १५२	

त्रिशूकवज्र	४४	दुर्मुख	१२४
त्रिशूल	५७, १५३	दुर्मेधा	१२४
त्रिसन्धि	४८	दुष्टकर्तिका	५९
त्रैधातुक	११५	दूरङ्गमाभूमि	५६
त्रैलोक्य	१२२	दृष्टिमुद्रा	७६
त्रैलोक्यविजय	१४८	देव	१३४
त्र्यक्षर	६४, ६५	देवता	९६, ९८, ११७, १२०
त्वङ्मल	३८	देवताकारभावना	७१, ७३
दक्षिणकर्ण	४८	देवतादेह	८३
दक्षिणकर्णमूल	३८	देवतान्यास	४३, ४९, १०६
दम्भोलि	७७	देवतामूर्ति	१३५
दशदिग्लोकधातु	७६, ७७	देवतायोग	१९, ३१, ९५
दशभूमि	७७, १००, १०१	देवताविशुद्धि	१४९
दशभूमिक्रम	९२	देवताहङ्कार	१३, १८, ९०
दशभूमीश्वरबोधिसत्त्व	७	देवतीगण	८६
दशमीपरिपालन	९०	देवदेवती	१४३
दशमीपूजन	९६	देवदेवीयोग	१५१
दशमीपूजालक्षण	१२	देवमहावीर	१५१
दर्शन	१०५	देविकोट्ट	३९, ४९, १२१, १५२
दर्शनमार्ग	२५, २७, ३५	देवी	११७, १२४, १२५
दानपारमिता	५६, ६३, १०१	देशक	४
दानपारमिताविशुद्धि	१००	देशना	४
दार्ष्टान्तिक	१०	दैवत्यवीर	१२४
दार्ष्टान्तिकवस्तुनियोजन	१०२	दौर्मनस्य	२१
दार्ष्टान्तिकसहजलक्षण	८०	दौष्टुल्य	२०
दिक्पाल	९५	दौष्प्रज्ञ	३४
दिगम्बर	९८	द्रवद्रव्य	९६, ९७
दीर्घषट्क	७०	द्रव्यपुष्प	१३०

द्रुमच्छाया	३३, ४९, १५२	धृतराष्ट्र	९३
द्वन्द्व	११२	ध्यान	१०२
द्वार	६७	ध्यानपारमिता	५७, ६१, ६३, ६४
द्वारचतुष्टय	६६	ध्यानपारमिताविशुद्धि	१०१
द्विपात्र	९७	ध्वज	१५१
द्वेषवज्र	१५	ध्वजपट	४४
धर्म ७९, ८८, ८९, १२३, १४२, १४३		नखदन्त	३८
धर्मकवच	३४	नगर	४०, ५१, ५२, १२२, १५२
धर्मकाय	१२, ८४, ८५, १२३	नपुंसक	११४
धर्मकायभावना	८७	नरक	५२, १३९, १५३
धर्मचक्र	१२०	नर्तेश्वरी	१७
धर्मचक्रद्वय	७९	नहरु	३८
धर्मता	५६, १३५	नाग	५२
धर्मदेशना	८३	नाडी	८६, ९२
धर्मधातुज्ञान	४५	नाडीजाल	४८
धर्मप्रविचय	२५, २६	नाडीत्रय	६१, ६३
धर्मप्रविचयसंबोध्यङ्ग	२५, २६, ३४	नाडीधातु	७७
धर्ममेघा	१०१	नाडीरूपदेवता	१२२
धर्ममेघा भूमि	५७	नाद	६५
धर्मसम्भोग	८३	नाभि	१४, १५, ३९, ५०, ७२, ७३, ७८, १२०
धर्मानुस्मृत्युपस्थान	१९, ३१, ३२	नाभिमध्य	१२१
धर्मोदय	४४	नाभिमूल	११९
धर्मोदयमुद्रा	१५४	नासिकाग्र	३९, ५०, ७८, १२१
धातु	१०१	निदानवाक्य	१, २
धातुत्रय	१२५	निराभासीकरण	७०
धात्वधिष्ठान	१७, १८	निरावरणज्ञान	१९
धारणी	१२०	निरुपधिषेष्निर्वाण	२२
धूतगुण	१४१		

निरुपमसमाधि	८७	नैर्याणिकमार्ग	२८
निरोधसत्य	२०	न्यास	४२, ७२, १४४
निर्देश	६, ११, १२३, १४३	न्यासस्थाननियम	७३
निर्माण	७९, ८८, १२३	पञ्चकषाय	१४०
निर्माणकाय	८३, ८५, ८६, १२३	पञ्चकामोपभोगचर्या	१०३, १४१
निर्माणकायाहङ्कार	१४	पञ्चकुल	१३४
निर्माणचक्र	४९, ११९, १२०	पञ्चचक्र	१२, ७९
निर्वाण	५३, १२३, १४३, १४८, १५०	पञ्चचक्रस्थयोगिनी	९९
निर्वाणाश्रय	२६	पञ्चचक्राकार	४३
निर्वाणोपायलक्षण	१५४	पञ्चचक्रात्मक	६८, १०१, १०३
निर्वेधभागीयकुशलमूलपरिनिष्पत्ति	२४	पञ्चचक्रात्मकमण्डलभावना	१२
निवृत्ति	८७, १४२, १४३	पञ्चतथागत	८४, ११५
निवृत्तिक्रम	१२, ८७, ८८	पञ्चपारमिता	६१
निष्पत्ति	११५, ११७	पञ्चप्रदीप	९४, १३१
नि[ष्पन्नक्रम]	४, ८४, ११२	पञ्चबल	२९
निष्पन्नक्रमभावना	११६, ११८, ११९	पञ्चबुद्धकुल	६१
निष्पन्नक्रमसमाधि	११९	पञ्चबुद्धात्मक	११५
निष्पन्नक्रमावतार	१११	पञ्चमार्गभावना	८
निष्पन्द	८४	पञ्चमुद्रा	१४, ४८, ६०, ६१, १३०
निःक्लेशाङ्ग	२६	पञ्चमुद्रादिमात्रा	६६
निःस्वभाव	८८	पञ्चम्यभिसम्बोधि	४५
नीत	२६	पञ्चवक्त्रात्मकमण्डल	६६
नीलयोगिनी	७०	पञ्चवर्ण	१३८
नेत्र	७०	पञ्चस्कन्ध	१३, ११५
नेत्रद्वय	७१, ७२	पञ्चाकाराभिसंबोधि	५, ३५, ४५, ५२
नेपथ्य	१५७	पञ्चाङ्गुलकपालखण्ड	१३६
नेय	२६	पञ्चामृत	१३, ४७, ८६, ९४,
नैर्माणिक	८३		१२९, १३१

पञ्चामृतगुलिका	१३	परवादी	१२५
पञ्चाशन्मण्डल	११८	परशु	५७, १५३
पञ्चेन्द्रिय	२४, २९	परसन्तान	३४
पञ्चोपचारपूजा	९६	परसंभावना (त्रिधा)	२८
पञ्चोपादानस्कन्ध	५९, १३६	परसम्भावनाङ्ग	२७
पट्टाङ्क	६१	परसंज्ञिति	२८
पठनपरिपाटिविपरीतमन्त्र	१०६	परिणायकरत्न	२६
पताका	१५१	परिमीमांसा	२३
पद्म	१४८, १५३	पलाल	११३
पद्मजालिनी	१६	पश्चिमकाल	१४०
पद्मज्वालिनी	१७	पाणि	११२
पद्मनर्तेश्वर	१४, १५, ४०, ५१, ७०-७२	पाण्डरावासिनी	७३
पद्मनर्तेश्वरी	१६	पातनी	१६, १७
पद्मनासिकाग्र	७८	पाताल	८१
पद्मपत्रचतुष्टय	१४८	पातालचारिणी	५२
पद्मपद्मघण्टा	४०, ६२	पातालवासिनी	५२
पद्मपात्र	५९	पात्र	६३, ६६, ९३
पद्ममाला	४८	पादपृष्ठ	४०, ५२, १२२
परमपद	८६	पादमुद्रा	७६
परमाक्षर	११३	पादाङ्गुली	४०, ५२
परमानन्द	८०, ११४	पादाङ्गुष्ठद्वय	४०
परमानुभव	११	पाद्य	७५
परमायु	१००, १०१	पानकरोटक	१३६
परमायुदेवतात्म	१००	पारमार्थिकसहजानुभव	११
परमार्थ	२६, ६३, ८८	पारमिता	१२, १४, ५६, १००-१०२, १३०
परमार्थसत्य	१४२, १४३	पारमितादर्शन	८, ८४, ११०, १११
परमाश्व	७२, ७३	पारमितानय	८

पारमिताषट्क	१००	पूजाचतुष्टय	१४७
पार्षद्य	७	पूजाविधि	११६
पाश	५७, ७२	पूय	४०
पाशाङ्कुश	१७	पूयधातु	४०
पिण्डसार	१२३	पूर्वसेवा	१४०
पिण्डातीत	१२०	पूर्वार	४८
पिण्डार्थ	४	पृथग्जन	२१, ८६
पिण्डार्थपदार्थ	४	पृथिवी	७३
पिण्डीकरण	१२६	पृथिवीधातु	७४
पित्तधातु	३९	पृष्ठवंश	१२१
पिशाच	९३, ९५	पोषधसंवरदान	११०
पिशित	९४	पौष्टिक	४२, ४६
पीठ ४८, ९२, १००, १०१, १२१ १४१, १५१, १५२		प्रकृतिप्रभास्वरचित्त	१४७
पीठसंज्ञा	४९	प्रकृतिप्रभास्वरपरिज्ञा	२२
पीठोपपीठादि	१४४	प्रचण्ड	९, ३२, ४७, ४८, ८६, १०६, १५२
पुण्यसंभार	६६	प्रज्ञा	८, २०, २४, ११६, १३५
पुण्यस्कन्ध	६६	प्रज्ञाकर	११२
पुद्गल	९०	प्रज्ञाघण्टिका	५६
पुरीष	३९	प्रज्ञापारमिता	६२, ६४, १३५, १३६
पुल्लीरमलय ९, ४३, ४७, ४८, ८३ ८६, १००, १२१, १२२, १५२		प्रज्ञापारमिताविशुद्धि	१०१
पुष्यमास	९६	प्रज्ञाबल	२४, ३३, ३४
पुष्यमासदशमी	९६	प्रज्ञेन्द्रिय	२४, ३३
पुस्तकवाचकाभिमान	६, २१, ६९	प्रज्ञोपाय	४२, ४३, ६०, ७८, ७९, ९७, १०६, ११२, ११६, ११७, १२४, १३२, १३३, १४२
पूजा	९८, ११५	प्रज्ञोपायद्वय	७९
पूजाकाल	११८	प्रज्ञोपाययोग	१०

प्रज्ञोपायसमापत्ति	९, ४४, ६४, ८०, १०७	प्रवृत्ति	१४२
प्रज्ञोपायस्वभाव	६२	प्रवृत्तिक्रम	१२, ८७
प्रज्ञोपायाकार	६८	प्रवेश्य	७६
प्रज्ञोपायात्मकमध्यनायक-		प्रश्रब्धि	२३, २५, २६, ३२
विशुद्धि	११६	प्रश्रब्धिसंबोध्यङ्ग	२५, ३४
प्रज्ञोपायाद्वय	७८, १४२	प्रस्ताववचन	९२
प्रणिधानपारमिता	५७	प्रस्वेद	४०
प्रतिनिर्देश	७, ११, ३८, १२३, १४३	प्रस्वेदधातु	४०
प्रतिपक्ष	१९	प्रहाणज्ञान	८३
प्रतिभासरोचनीभाव	८५	प्राकृतविकल्प	९०
प्रतिष्ठज्ञानसत्त्वोत्कृष्टक	९३	प्राकृताहङ्कार	१८, १९, ४३, ९०
प्रतीत्यसमुत्पाद	५६	प्राणवायु	७७
प्रत्यवेक्षणाज्ञान	१५, ४५, ७१, ७३	प्राणसंस्कार	३२
प्रत्यालीढस्थ	४८	प्राणातिपात	१०१
प्रत्येकबुद्ध	२१, २२, १२६	प्राणायाम	९, ७७
प्रथमादिकर्मिक	१०६	प्राण्यङ्गवाससावास	१३४
प्रथमाभिसंबोधि	४५	प्रीति	२५, २६
प्रभाकरीभूमि	५७	प्रीतिसंबोध्यङ्ग	२५, ३४
प्रभावती	३२, ४८, १५२	प्रेत	५२, ६७, ९३, ९५
प्रभु	८४, १२५, १२९, १३१, १३२	प्रेतपुरी	४०, ५१, १५२
प्रमुदिता	५६	प्रेताधिवासिनी	१२२
प्रयोगमार्ग	२४, २५	फलतन्त्र	६
प्रयोगवीर्य	२९	फुफ्फुसधातु	३९
प्रयोगाधिपति	३३	फेत्कार	९१
प्रयोजन	२, ४	बन्धन	१५१
प्रयोजन-प्रयोजन	२	बल	२४, २५
प्रविचयाधिपति	२४	बलपारमिता	५७
		बलि	३८, ९१, ९५, ९६, ९८, ९९

बलिदान	४१ ९२	बुद्धचतुष्टय	४४
बलिद्रव्य	९४	बुद्धज्ञान	११३
बलिपात्र	९३	बुद्धडाक	७९
बलिविधान	९१, ९९	बुद्धडाकिनी	७९
बलिविधि	३८, ९२, ९६, ११६	बुद्धतीर्थ	१२६
बल्युपचार	४, ९०	बुद्धत्व	१०२, १०३, १५०
बल्युपहार	१००	बुद्धत्वलक्षण	४६
बहिर्धाकाय	२०	बुद्धनाटक	११५
बालज्ञान	१०४	बुद्धभूमि	१९
बाहुमूल	३९, १२१	बुद्धयोगी	१४०
बाहुमूलद्वय	४९	बुद्धसंज्ञा	१४०
बाह्यपीठ	१२	बुभुक्षापिपासादुःख	१४१
बाह्यपीठलक्षण	८६	बृहत्तन्त्र	४, ५, ७
बाह्यपूजा	१३०	बृहन्मूलतन्त्र	१२६
बाह्यवज्रावली	९५	बोधि	८, ११, १३, १९, १४१
बाह्यशास्त्र	१०४, ११०	बोधिचित्त	१०, ३७-४०, ४७-५०, ५२, ८०, १०९, १३१
बाह्यशास्त्रविडम्बक	१२४	बोधिचित्तधातु	१५, ५१, ७८
बाह्यश्मशानाष्टक	९३	बोधिचित्तधातुविशुद्धि	७१
बाह्याध्यात्म	९८	बोधिपक्ष	१०, ११, १३
बाह्याध्यात्मिकगुह्यपूजा	९७	बोधिपाक्षिक	८, ३४, ३५, १००
बिन्दु	१०	बोधिपाक्षिकदेवतासंग्रह	११८
बीज	१०	बोधिपाक्षिकधर्म	३, ९, १९, ४२, १०३
बीजन्यास	७८, ७९	बोधिपाक्षिकधर्मदेवता	३७
बीजात्मा	१३०	बोधिपाक्षिकधर्मभाव	१२
बुक्क	३८, ३९	बोधिपाक्षिकादिदेवता	१०२
बुद्ध	७२, १००, ११५, १३७	बोधिषट्त्रिंश	१००
बुद्धक्षेत्र	७५, ८७		
बुद्धगोचर	१०५		

बोधिसत्त्व	२१, २६, ६३, १०१, १०३	भावनाभिरति	१४३
बोधिसत्त्वसमाधि	९	भावनाभिसमय	३८
बोध्यङ्ग	२५	भावनामार्ग	२८
बौद्ध	१२५	भावनालक्षण	६५
ब्रह्मचर्य	१३७	भावनाविधान	११६
ब्रह्मविहार	४३	भुक्ति	१०३
ब्रह्मविहारचतुष्टय	१४	भुक्तिमुक्ति	१३१, १३४
ब्रह्मशिर	५७	भुजायुध	७१, ७२
ब्रह्मसूत्र	६४, १३४, १५७	भुवनत्रय	८१, १०५, १०६
ब्रह्मसूत्रक	१५३, १५४	भूचरी	५०, ५१
ब्रह्मसूत्राङ्ग	१५७	भूत	९३, ९५
भक्तव्यञ्जन	९७	भूमीश्वर	८६
भगवच्छ्रीहेरुक	१०६	भैरव	५६, १५५
भगवत्तत्त्व	८८	भैरवकालरात्रि	४५
भगवती	५८, ११७	भ्रूमध्य	३८, ४९, १२१
भगवतीहृदयमन्त्र	१३५	मणि	१०, १०१
भगवान्	४५, ९५, १०७, १०९, ११२, ११७, १२५, १२९, १३७, १५४, १५५	मणिप्रान्त	७८
भगवान् श्रीहेरुक	३५	मणिरत्न	२५
भवार्णव	१४९	मण्ड	४३, १५०
भस्म	६१, ६४, ६६, १००, १०१	मण्डल	४३, ९२, ९६, १०३, १०९,, १४०
भस्ममुद्रा	१५५	मण्डलचक्र	४२, ६८, ६९, ८१, ८६, ८७, ९०, ९२, ९६, १११, १३२
भागाभागविशेष	१२४	मण्डलचक्रदेवता	१०१
भावना	१०३	मण्डलचक्रभावना	१२
भावनाक्रम	९६, १०७, १५३	मण्डलचक्रविशुद्धि	१४९
भावनानुशंसा	११९	मण्डलचक्रसंग्रह	८९
भावनापरिपाटी	९१	मण्डलचक्रस्थदेवता	३१

मण्डलचक्रात्मक	१२५	मन्त्रजाप	१०९, ११७
मण्डलचक्रोत्पाद	११६	मन्त्रनय	८, १२, ११०
मण्डलचतुष्टय	४३, ४४, १५४	मन्त्रनयभाव	११८
मण्डलबलि	९६	मन्त्रनयभावक	७८
मण्डलमाण्डलेय	११७, १५०	मन्त्रबीज	५, ७०, ७२, ७५
मण्डलमाण्डलेयाद्याकार	८५	मन्त्रबीजचतुष्टय	७५
मण्डलाधिपति	४, ३७, ५५, ६६, १०६, ११९, १४७	मन्त्रभावनाक्रम	४८
मण्डलाधिपतिसिद्धि	९९	मन्त्रमहायान	३, १०, १९, ८३
मण्डलोपसंहार	८३	मन्त्रमुद्रा	४७, १३७-१३९
मण्डलोपसंहारविधि	७८	मन्त्रमुद्राक्रम	९७
मद्य	९२, ९४	मन्त्रमुद्राद्युपाय	७
मद्यमांसादि	९१	मन्त्रमुद्रालक्षण	१०७
मध्यनाडी	६४, १०१, १२०, १४५	मन्त्रमूर्ति	५६
मध्यनायक	५९, १०६	मन्त्राक्षर	१०, १२०
मध्यनायिका	७४	मन्त्रोद्देशाभिषेकविधि	११६
मध्यमण्डल	१४७	मन्त्रोद्धारेणाभरणविशुद्धि	११६
मध्यमा	७७	मन्त्रौलि	१०, ८४
मध्यसूचि	७७	मन्थमन्थानकर्म	५६
मध्यसूत्र	१३६	मन्थमन्थानयोग	१४७
मन	१०१, १०२	मरण	१४८
मनसिकार	२३	मरु	४०, ५२, १२२
मनस्कार	२२	मरुदेश	५२, १५२
मन्त्र	७३, ७६, ७८, ९२-९६, ११७, १३५, १३८	मर्त्य	८१
मन्त्रचिह्न	८३	मलयशिर	४८
मन्त्रजप	१०१	मस्तक	१५४
मन्त्रजा	४८	महाकङ्काल	३८, ४८
		महाकरुणा	५७, १३९
		महाकरुणाराग	५९

महाज्वाली	५९	महासुखपद	९७
महातन्त्र	१२७	महासुखाद्वयविज्ञप्ति	११३
महानासा	३२, ४८, १५२	महोज्ज्वल	५९
महानुशंस	१२३	माण्डलेय	४, ५५, ९०, १०९, १११,
महाप्राज्ञ	१४१		१४७
महाबल	३५, ४०, ५१, १५२	माण्डलेयविशुद्धि	११६
महाभैरव	३३, ३९, ४९, ५०	माण्डलेयसत्त्वधातु	११६
महाभैरवी	१५२	मात्सर्यवज्र	१५, १६
महामुद्रा	१०, ८३, ८४, ८९	मानादिसप्तचेतस्	१०५
महामुद्राभाव	१५३	मामकी	१३, ७३, ७४, १४८
महामुद्रालक्षण	१३८	मायाज्ञान	१०४
महामुद्रासिद्धि	८, १३, १०८, १४१	मार	२४
महायान	२२, ८३	मारण	१६, १७, ४६
महायोग	१६, ८७, ११९	मारुत	७३
महायोगसमाधि	८७, ११९	मार्ग	१२६, १५१
महायोगी	१४४	मार्गपुद्गलभेद	२०
महारागानुराग	६२	मार्गसत्य	२०
महाराज	५६, ८४, ९३, १५५	मार्गानुष्ठान	११४
महावज्रधर	४४	मार्गावरण	२७
महावज्रधरकुल	४४	मार्तण्ड	९२
महावीर	३९, ४५, ५२, १३१-१३३	मालव	३९, १२१, १५२
महावीर्य	३५, १०६, १५२	माला	११७, १३४
महासाधनाङ्ग	१०	मालामन्त्र	१३४, १३५
महासुख	४४, ४८, ५२, ७९, ८१, ८४, ८५, ८८, ११५	मांस	३८, ९२
महासुखचक्र	१०, ७३, ७९, १२०	मिथ्याज्ञान	१०३, १०४
महासुखचक्रगतदृष्टि	७७	मीमांसाऋद्धिपाद	२२, ३२
महासुखध्वनि	५६	मीमांसासमाधि	२३
		मुकुट	६१

मुक्ति	१०३	मेढ्र	३९, ५०
मुख	५०, ५२, १२१	मेढ्रक	१२१
मुण्ड	१७, ५७, ५८, ७२	मेलक	८६
मुण्डधरा	७०	मेलापक	५१, ८६, १२२
मुण्डमाला	५८, ११९, १३४, १५४, १५८	मेदस्	४०
मुदिता	१००	मैत्रीरत्नकुल	१०१
मुद्रा	४४, ७६, ७७, ८२, ८४, ९२, ९३, ९५, १३०, १३४, १४०, १५२, १५५	मैत्रेय	२०
मुद्राकथन	९४	मैथुन	११२, १२२
मुद्राक्रम	३	मोहनी	७३
मुद्राचतुष्टय	७५	यक्ष	९३, ९५
मुद्रादिकमन्त्रयोग	९२	यज्ञक	५८
मुद्रामण्डलजप	१४१	यज्ञोपवीत	६४, १००, १०१, १३४
मुद्रामन्त्र	७५, ८१, ९१, १३७	यमदंष्ट्री	३६, ५३
मुद्राषट्क	६४	यमदाढी	३६, ५३, ६७, ९४, १४८
मूक	१२४	यमदूती	३६, ५३
मूत्र	९२	यममथनी	३६, ५३, ९४
मूलतन्त्र	५, ६, ७, ९, ५२, ५५, ६९, १३०	यामिनी	७२, ७३
मूलमन्त्र	११७, १३४	युगनद्ध	११८, १५५
मृत्यु	१५१	योग	५, ९, १२, १३, ८४, ९०, १०८, १४२
मृदुमध्याधिमात्रपुद्गल	९	योगचर्यानय	१०४
मृदुसंभारभूमि	२१	योगतन्त्र	१४७
मेखला	५९, ६१-६४, १००, १०१, ११८, ११९, १३६, १५४, १५७	योगपात्रक	६२
मेखलाकार	११९	योगमार्ग	५, ७, ९, १०, १२
		योगयोगी	१२६
		योगविज्ञान	१३
		योगविदेवता	८०
		योगविधि	१५६

योगवियोग	९०	रक्तवाराही	७०
योगसमाधि	९०	रक्षा	९२
योगात्मा	१३७	रजोमण्डल	१४०
योगिचित्त	१४५	रत्न	१५३
योगिदेह	१३६	रत्नघण्टा	७१
योगिनी ३१, ४७, ७४, ७९, ८०, ८२, ८४, ८६, ९६, ११४, १२१, १२५, १३१, १३३, १३७, १४१, १४४, १५१, १५५		रत्नद्वीप	५१
योगिनीचित्त	४४	रत्नवज्र	४०, ४१, ५१, ५६
योगिनीमन्त्रविशुद्धि	१३६	रत्नसम्भव	१५, ४४, ७२, ७४
योगिनीलक्षण	७	रत्नसम्भवतथागत	१०१
योगिनीवीर	७८, ७९	रत्नेश	६४
योगिनीषट्क	१३०	रवि	६१
योगिनीसिद्धि	८३	रश्मिचक्र	४५
योगिनीसिद्धिदा	८४	रश्मिस्फरण	४४
योगियोगिनीसमापत्ति	८६	रसना	४९, ५०, १५७
योगिशरीर	१५६	रहस्य	१०५
योगी ४२, ७५, ७८, ८०, ९५, १०१, ११०, १११, ११८, १२६, १३२, १३३, १४१, १४३, १४४, १४८, १५०, १५१		राक्षस	९३, ९५
योगेश्वर	१३, १४	रागचर्या	१०
योनितन्त्र	१४	रागजातीय	८३
रक्तधातु	४०	रागवज्र	१५, १६
रक्तधातुविशुद्धि	७२	राजाग्रीसमाधिकाल	४१
रक्तपीत	६७	रामेश्वर	३८, ४९, १२१, १५२
रक्तवज्र	४४	राहु	९२
		रुचक	६१, ६३, १००, १५३, १५४
		रुचकद्वय	१०१, १५४
		रूपकाय	५
		रूपसंकेत	१४४
		रूपस्कन्ध	१५
		रूपिणी	१७, ३१, ३२, ४६

रौद्रकर्म	१५३	वज्रघण्टा	६२, १५४, १५५
लक्षाभिधान	६, ८५	वज्रघण्टिका	५६
लक्षाभिधानतन्त्र	१२३	वज्रचतुष्क	८४, १३२
लङ्केश्वर	४९	वज्रजटा	३९
लङ्केश्वरी	३३, १५२	वज्रजटिल	३९, ४९
लम्पाक	३९, ५९, १२१, १५२	वज्रडाकिनीसमय	९४
लय	२३, ३२, ३६	वज्रदेवी	९२
लयौद्धत्य	२३	वज्रदेह	१६, ३८, ३९, ४९
ललना	४९, ५०	वज्रधर	५, ९७
ललाट	४८	वज्रधात्वीश्वरी	४४
ललाटदेश	७७	वज्रपद	१२७
लामा	१७, ३१, ३२, ४६	वज्रपर्यङ्क	१४, ६५
लिङ्ग	४०, ५१, १२२	वज्रपाणि	२, ९, ८३, १०४, १२६
लिङ्गभेद	१२५	वज्रप्रभ	३८, ३९, ४९
लिङ्गवरटक	७८	वज्रभद्र	३९, ५०
लोकोत्तरमण्डलचक्रबलि	९२, ९३	वज्रमणि	११
लोकोत्तरमण्डलचक्राकार	९२	वज्रमूर्ति	५६
लोचन	७३	वज्रराज	१४, १५
लोहित	४०	वज्रवज्रघण्टा	४०, ४४, ४८, ६२, ७०, ७१
लौकिकलोकोत्तरमार्ग	१९	वज्रवज्रमाला	४८
लौकिकलोकोत्तरसमाधिसमापत्ति	२३	वज्रवरटक	७८
लौकिकलोकोत्तरसिद्धि	८५	वज्रवाराही	३६, ५५, ५६, ५९, ७१, ७३, ७४, ७९, ८०, ९५, १०१, १२५, १२९, १३०, १३५, १४५
लौकिकलोकोत्तराकारा	११४	वज्रवाराहद्वययोग	१५५, ११८
वक्त्र	७२, ७३		
वज्र	५६, ७३, ७७, १२९, १५३		
वज्रकर्तिद्वय	४५, १५४		
वज्रगर्भ	९		

वज्रसत्त्व	१४, १५, ४०, ५२, ७०-७२, ११५, १२९, १३०, १३२, १४७	वायुधातु	७४, ७९
वज्रसत्त्वस्वाभा	७३	वायुधातुविशुद्धि	७२
वज्रसूर्य	१४, १५, ७१-७३	वायुवेग	३३, ३४, ५०, १५२
वज्रहूँकार	३९, ५०	वाराही	१७, ७२, ७४, १२६, १३५, १४७
वज्राञ्जलि	९४	वारि	१५५
वज्राञ्जलिविधि	९१	वासस्	१५५
वज्राद्य	१२९	विकटदंष्ट्री	४८
वज्रोपमसमाधि	५६	विकल्प	२०
वज्रोपमसमाधिभावना	८	विकल्पकपद	१३८
वर्णकाच्छादित	१५५	विकल्पप्रहाण	८४, १११
वशीकृत	७६	विज्ञानचक्र	९६
वश्य	४२, ४६, १४६	विज्ञानज्ञान	१०९
वस्तुपरीक्षा	२१	विट्	९२
वाक्कायचक्र	६२	विङ्धातु	५१
वाक्चक्र	१६, ३४, ४९-५१	वितर्क	२०
वाक्चक्रदेवता	३३	विद्या	१४२
वाक्चक्रदेवतान्यास	५१	विधानपरिपाटी	६८
वाक्चक्रवीर	३९, ४०	विधानविधि	१०५
वाक्चक्रवीरिणी	३४	विनयमार्गावतार	१४९
वाक्प्रपञ्च	११७	विनयोपाय	१४८, १४९
वाचिक	१३८, १५६	विपक्षप्रतिपक्षाङ्ग	२८
वामकर्ण	३८, ४९, १२१	विपरीतदेवतान्यास	१०६
वामदक्षिणनाडी	७७	विपरीतभावना	१०७
वामसाधन	१५२	विपरीतमन्त्रभेद	१०६
वामाचारचारी	१५३	विपश्यना	२५
वायुतत्त्वबल	७७	विमला	५७
		विमुख	५३

विमोह	२०	वीरकवचभावना	७०, ७२
विरमस्वभाव	८०	वीरचक्र	९६
विरमानन्द	११४	वीरचक्रादिमन्त्र	९५
विरमानुभव	११	वीरणी	३, ९
विरूढकर	६०	वीरदेशक	११०, १११
विरूपाक्ष	१६, ३९, ५०	वीरबीभत्स	१५६
विलोम	६	वीरमती	३२, ४९, १५२
विशिष्टकाय	१५६	वीरमन्त्र	९५, १४४
विशिष्टबलिदान	९२	वीरयोगिनी	७६, ७७, ९४, १२१, १२९, १३०, १३३, १५०, १५४, १५५
विशिष्टसहज	९९	वीरयोगी	१२९
विशिष्टाधिमोक्ष	११८	वीरयोगेश्वरी	१२९
विशिष्टाप्तता	४	वीरवज्रयोगिनी	१३०
विशिष्टाहङ्कार	४	वीरवीरिणी	८२
विशुद्धकपालचतुष्टय	१४७	वीरवीरिणीकवच	६९
विश्वपद्म	४५, ६५, ९३, १५४	वीरवीरिणीभावक	१५४
विश्वरूप	१०१	वीरवीरेश्वर	५५
विश्वरूपमणि	१०२	वीरसंग्रह	१६
विश्ववज्र	४४, ७१, १५३	वीराङ्गविशुद्धि	११६
विषयविषयिविज्ञानविकल्प	५७	वीराद्वय	३७
विस्तरतन्त्र	५५, ६९, ८१, १०६	वीराद्वययोगिनी	७३, ७४, १३३, १५२
वीर	३, ५, ९, ३७, ३८, ४१, ४४, ४५, ४८, ७४, ७९, ८०, ८५, ८६, ९४, ९८, १०६, ११४, ११६, १२१, १२६, १३१-१३४, १३७, १४८, १४९, १५१, १५२, १५४	वीरिणी	५, ३७, ४१, ६२, ९४, १०६, १५३
वीरकवच	६९	वीरिणीकवचप्रस्ताव	७०, ७१
वीरकवचप्रस्ताव	७२	वीरिणीकवचभावना	७२
		वीरेश्वर	४५

वीर्य ८, २०, २३-२६, २९, ३६, १४१	व्रतचर्या	१३३
वीर्यऋद्धिपाद २२, ३२	व्रती	१४४
वीर्यपारमिता ५७, ६३	शक्ति	१३३
वीर्यपारमिताविशुद्धि १०१	शक्तिप्रतिबन्ध	९८
वीर्यबल २४, ३३	शब्दापशब्द	१२६
वीर्यभावना २३	शमथ २३, २५, २७	
वीर्यसमाधि २३	शमथपक्ष २३	
वीर्यसंबोध्यङ्ग २५, ३४	शरीरधातु १३५	
वीर्येन्द्रिय २४, ३३	शव ६६, ६७	
वृक्षाष्टक ५३, ९३	शशि ६१, ८६	
वेद ११४, १२५	शशिपान ८६	
वेदनानुदर्शी २१	शस्त्रिका ६०, ६६	
वेदनानुस्मृत्युपस्थान १९, ३१, ३२	शान्ति ४२, १४६	
वेदनास्कन्ध १५	शान्तिकादिकर्म ९१	
वेदान्त ११४	शाश्वत ८५, ८६	
वैरम्भ ४४	शाश्वतपद ८५	
वैरोचन १४, १५, ४०, ४४, ५२, ६४, ७०-७२, ११५, १३६, १५५	शास्ता ११०	
वैरोचनस्वाभा ७३	शास्त्र १०३, ११०, १११, ११४	
वैशेषिकगुणाभिनिर्हार ३६	शिखा ४८, ७०-७२, ७४, १२१	
वैशेषिकगुणावरण २७	शिरस् १४, ७०, ७२, ७७	
व्याख्याततन्त्र ७	शिरश्च्युति १०	
व्याख्यानप्रतिज्ञा ४, ३१, ७०	शिरोमणि ६२, ६३	
व्याघ्रचर्म १३४	शील ९७	
व्याद्याबीजन्यास ९	शीलपारमिता ५७, ६३, १०१	
व्यायाम ३२	शीलसंवर १०१	
व्यावसायिकमार्ग २९	शीलस्कन्ध २७	
व्रत १४१	शुद्धकाय १०७, १०८	
	शुद्धधर्म १४७	

शूकर	३५, ३६, ५२	श्रीसंवरपदप्राप्ति	२
शून्य	८८	श्रीसंवरमण्डल	९३
शून्यता	३२, ४३, ४४, ८५, ८७, ८८ १३६, १४७	श्रीसंवरयोग	१३
शून्यताकार	८८	श्रीसंवरशरीर	८३
शौण्डिन्	३४, ५१, १५२	श्रीसंवरस्वभाव	६५
श्मशान	४५, ५१, ५२, ९३, ९५, ९६, १२२	श्रीसंवरात्म	३७, ७५
श्मशानाष्टक	५३, ९६	श्रीसंवरावस्था	१३८
श्यामरक्त	६७	श्रीसंवराहङ्कार	९०, १३०, १३९
श्यामा	३३, ३४	श्रीहेरुक	३७, ४०, ५१, ५५, ५६, ६३, ७०-७२, ७९-८१, ८५-८८, ९३, ९६, ९८, १००, १०३, १०५, १०८, ११३, ११८, १३४, १३८, १४७, १५०
श्यामादेवी	५०, १५२	श्रीहेरुकज्ञानी	१४१
श्रद्धा	२३, २४, ३२, १०४	श्रीहेरुकपद	८, ४२, ८८, ९८, १३७, १४०, १४५, १४६
श्रद्धाबल	२४, ३३	श्रीहेरुकमहायोगी	१२१
श्रद्धेन्द्रिय	२४, ३३	श्रीहेरुकमहाराज	८४, १५५
श्रद्धोत्पाद	१०४	श्रीहेरुकयोगभावना	९९
श्रवण	१०५	श्रीहेरुकयोगात्मा	९८
श्रावक	२०-२५, २७, २८, १०९, १२६	श्रीहेरुकवज्र	१४, १५
श्रावकपिटक	११४	श्रीहेरुकवाराहीसमापन्न	१५४
श्रावकमार्ग	२९	श्रीहेरुकसमावेश	१०५
श्रीकार	८७, ८८, १४३	श्रीहेरुकाकार	९०, १५५
श्रीगर्दभाकारयोग	१४५	श्रीहेरुकादिवीरयोगिनी	१५१
श्रीचक्रसंवरतन्त्र	३	श्रीहेरुकी	१४५
श्रीवज्रवाराही	१२९	श्रीहेरुकीकरण	४, १४०, १४५, १४७
श्रीवज्रहेरुक	९३	श्रुतचिन्ताभावना	१०९
श्रीसंवर	९२, १०७, ११७, १२३, १२६, १३२, १४०, १४२		

श्रुतादिक्रम	७	सज्जनमैलापक	८६, ९७
श्रुतिचिन्ताभावनाक्रम	६९	सञ्चार	१०६
श्रुतिचिन्ताभावनामयी प्रज्ञा	२२	सञ्चारतन्त्रक्रम	१०६
श्रोतेन्द्रिय	१०६	सञ्चारतन्त्रविधि	१, २
श्लेष्म	४०	सञ्चारविधियोग	१०५
श्लेष्मधातु	४०	सञ्चारिणी	७२, ७३
श्वान	३५, ५२	सत्कायदृष्टि	१४७
श्वेतवीरयोगिनी	१४५	सत्कायाद्यधिष्ठान	८३
षट्कुल	११७	सत्त्वधातु	८६, ११६
षट्चक्रवर्ति	१४	सत्त्वलोक	११४
षट्पारङ्गतपारग	१३०	सत्त्वविनयोपाय	१४८
षट्पारमितापारग	१३०	सत्त्वार्थकरण	१४८, १४९
षट्पारमिताविशुद्धि	१०१	सत्त्वार्थचर्या	५, ११५
षडभिज्ञा	६९	सत्यचतुष्टय	२७
षडानन्द	९२	सत्यद्वय	४६, ६१, १२४, १४३
षड्गति	१४९, १५४	सत्यसम्भार	१०५
षड्दर्शन	११७, १२५	सत्याभिसमय	२७
षड्दर्शनसंग्रह	११४	सन्त्रासिनी	७१, ७२, ७४
षड्धातु	९२	सन्ध्याचतुष्टय	९१
षड्बुद्ध	७४	सन्नाहवीर्य	२९
षड्योगिनी	१३०	सप्तत्रिंशत्तत्त्वयोग	४
षड्योगिनीमन्त्र	१३६	सप्तत्रिंशदात्मकमण्डलचक्र	८५, ८९
षड्वीर	१३०	सप्तत्रिंशद्बोधिपाक्षिकधर्म	२९-३१,
षण्मुद्रा	१५४		८९, १००
षोडशकला	४५	सप्तत्रिंशद्योगिनी	१९
संकेतपद	१२६, १२७	सप्तबोध्यङ्ग	२७, २९
सङ्केतविधि	७	सप्तरत्न	१३६
सङ्गीतिकार	१०४	सप्ताक्षरमन्त्र	१३६

समताज्ञान	१५, ४५, ५९	समाधिसत्त्व	१११
समताज्ञानलक्षण	७४	समाधिसर्वाकार	८३
समन्तप्रतिभास	५६	समाधिसंबोध्यङ्ग	२५, ३४
समय ९५, १०१, १०७, १०८, १२५		समाधीन्द्रिय	२४, ३३
समयचक्र ३६, ५२५ ५५, ७५, ९६,		समापत्तिप्रयोजन	८०
१४९		समाहितप्रतिपत्ति	६०
समयचक्रदेवता	३५, ६६, ६८	समाहितयोग	१२, १३३
समयचक्रात्मकज्ञानमण्डल	६९	समुदयसत्य	२०
समयजप	१४०	सम्पर्ककथा	१५१
समयजाप	११६	सम्प्रजन्य	२०, २३
समयदर्शक	१०८	संप्रमोष	२३
समयद्रव्य	९४	सम्बन्ध	२
समयपरिपालन	९८	संबोधि	२५
समयमण्डल	७५, ८२	सम्भार	१०४
समयमुद्रा	८६, १३३	सम्भारद्वय	८६, १४२
समयमुद्राकारा	८४	संभारमार्ग	२९
समयसत्त्व	८३, १११	संभोग ७९, ८८, ८९, १२३	
समयसत्त्वाकार	१४७	संभोगकाय ८०, ८३, ८६, ८७, १२३	
समयसंवर	९७	संभोगचक्र ७९, १२०	
समयसंवरधारणी	११०	सम्भोगादिचक्रत्रय	१०
समाज	१०९	सम्यक्कर्मान्त	२७, ३५
समाधि ८, १९, २३-२६, २८, १०२,		सम्यक्चित्त	१०४
११५, ११६		सम्यक्प्रधान	२९
समाधित्रय	८४, ९३	सम्यक्प्रहाण २३, २९-३१, ३६	
समाधित्रयभावना	८२, ९०	सम्यक्प्रहाणचतुष्टय	२८
समाधिदोष	२३, ३२	सम्यक्प्रहाणभावना	२१, २२
समाधिप्रतिपत्ति	११६	सम्यक्समाधि २७, ३५, ३६, १००	
समाधिबल	२४, ३३, ३४	सम्यक्संबुद्ध	८५, १०८

सम्यक्संकल्प	२७, ३५	सहजसिद्ध	११
सम्यक्समृति	२७, २९, ३५	सहजद्वय	११
सम्यगाजीव	२७, २८, ३५	सहजक्रम	८१
सम्यग्ज्ञान	१०४	सहजस्वभाव	१३२
सम्यग्दृष्टि	२७, ३५	सहजा	४८
सम्यग्वाक्	२७, ३५	सहजाकार	१३८
सम्यग्व्यायाम	२७, २८, ३५	सहजानन्द	८०, ८१, ८४
सर्वकर्मप्रसर	४२	सहजानन्दविशुद्धि	५९
सर्वज्ञ	८५, १०६	सहजानुभव	११
सर्वज्ञज्ञान	८१, ८५	सहजोत्पत्ति	११२
सर्वज्ञवर्ण	१०५	संज्ञासंस्कार	३२
सर्वतन्त्र	१०७, ११४, १२९, १४३	संज्ञास्कन्ध	१५
सर्वतथागतात्मा	१४	संवर १२१, १२३, १२७, १२९, १३७	
सर्वतथागतत्व	१५	संवरयोग	१११
सर्वधर्मावबोधक	११८	संवरशरीर	१३५
सर्वप्रपञ्च	१५३	संवरात्म	१३७
सर्वयोगिनी	१३४	संवरात्मासाधक	१३३
सर्वयोगी	८४	संवृतबोधिचित्त	९
सर्वयोगेश्वर	८४, १३१, १३२	संवृति	२६, ६३
सर्वविकल्पप्रहाण	८५	संवृतिपरमार्थभावना	४
सर्वसंज्ञानमेलक	८५, ९७	संवृतिसत्य	१४२
सर्वाकार	९५	संस्कारस्कन्ध	१५
सर्वाकारयोगिनीसञ्चार	१२५	संहरण	८३
सर्वाकारसम्पत्	८४	संहरणक्रम	४५
सर्वाधिपति	५५	संहार ८१, ८२, ११६, ११७	
सव्यकर्ण	१२१	सात्त्विक	१५६
ससन्नाह	९३	साधक ४२, ८८, १०७, १२७, १२८,	
सहज	८०, ११२, ११४, १३२	१५१	

साधनटिप्पणी	११९	सुरावैरी	३८, ४९
साधनाङ्ग	१०	सुवर्णद्वीप	४०, ५१, १२२, १५२
साधुमति	५७	सुविशुद्धधर्मधातु	७३, ८५
सार्वभौतिकबलि	९३, ९५	सुविशुद्धधर्मधातुज्ञान	१५
सार्वभौतिकबलिमन्त्र	९५	सुवीर	३५, ५१, १५२
सास्पन्द	८४	सुवीरा	३४
सांभोगकाय	७	सूक्ष्मपिण्ड	११३
सांभोगिक	८७, १२३	सूक्ष्ममूलतन्त्र	५, १२
सांवृतबोधिचित्त	८०	सूत्र	६, १५७
सिद्धान्त	११४, १२५	सूत्रक्रिया	१४२
सिद्धि	४२, ८५, ८६, ८८, ८९, १०५, ११४, १४०, १४९	सूर्यमण्डल	४५, १२९
सिंघाणक	४०	सूर्यवज्रपञ्जर	८४
सिङ्घाणधातु	४०, ५०	सृष्टि	११६, ११७
सिन्धु	४०, १२२	सृष्टिसंहारकारक	११६
सिन्धुदेश	५१, ५२, १५२	सेनाधिपति	९३
सीमन्तधातु	३९	सेवाकाल	११२
सुख	८०, ११३, १३४	सोमपान	८५, ८६
सुदुर्जया	५७	सौराष्ट्र	४०, ५१, १२२, १५२
सुभद्र	३९	स्कन्ध	७०, १०१
सुभद्रा	३३, ३४, ५०, १५२	स्कन्धधातु	४३
सुमेरु	४४	स्कन्धधात्वायतन	१७
सुमेरुपर्वत	४५	स्कन्धधात्वायतनविशुद्धि	१९, ४३
सुमेरुपृष्ठ	१२९	स्कन्धाधिष्ठान	१४, १८, ६५
सुरतध्वनि	७७	स्तनयुगल	३९, १२१
सुरतसुखार्थी	१३४	स्त्रीरत्न	२६
सुरतानन्द	८०	स्पर्शन	१०५
सुराभक्षी	३३, ३४, ५०, १५२	स्फटिकमणि	१०२
		स्फरण	४५, ८३

स्मृति	२०, २३, २४, २८		
स्मृतिसंप्रजन्य	२९	हसित	११२
स्मृतिसंबोध्यङ्ग	२५, २६, ३४	हस्तचालन	१४०
स्मृतिबल	२४, ३३, ३४	हस्तपूजा	४, १३०-१३३
स्मृतीन्द्रिय	२४, ३३	हस्तमुद्रा	७७, ९३
स्मृत्युपस्थान	८, ११, २०, २१ २८,, २९, ३१, ३२	हस्तावरण	८६
स्मृत्युपस्थानभावना	२०, २२	हस्तिरत्न	२६
स्वचक्र	३५	हार	८६
स्वचित्तप्रत्यवेक्षण	१४	हिमालय	३९, ५०, १२१, १५२
स्वदेहपरिवर्तन	१५६	हीनप्रज्ञ	१२४
स्वपरदर्शन	११४	हुतवह	६१
स्वप्नोपमत्वपरिज्ञा	२२	हृत्	१४, ७९
स्वयं पुस्तकाभिमानी	२२	हृदय	१५, ३८, ३९, ५०, ७०, ७२, ७३, ११७, १२१
स्वर्ग	८१	हृदयमन्त्र	१३४, १३५
स्वलक्षणफल	१४९	हृदयोपहृदयमन्त्र	७८, ७९, १०६
स्ववर्णभुजसंस्थान	५५	हेतुतन्त्र	६
हकारषट्क	७०	हेरुकपद	१४१
हयकर्ण	३४, ५०, १५२	हेरुकीकरण	१४४
हयग्रीव	४०, ५१	हेवज्रपञ्जिका	८०
हरिहरादि	१२२	होम	१०९

རྣལ་འབྱོར་མ་ཀུན་ཏུ་སྒྲིབ་པའི་གྱུད་དང་།
སྒྲིབ་དཔོན་ཏུ་བླག་ཏུ་རྒྱུ་ཏུ་མཛད་པའི་
བཤད་སྒྲུབ་བཞུགས་སོ།།

[བོཌ-ཁུཤ:]

རྒྱལ་འབྱོར་མའི་ཀུན་ཏུ་སྤྱོད་པ་བཞུགས་སོ།

ངེས་པར་བསྟན་པ་དང་པོ།

༄༅། །ཐུགས་སྐད་དུ། ཡོག་ནི་སྒྱུ་འུ་¹ བོད་སྐད་དུ། རྒྱལ་
འབྱོར་མའི་ཀུན་ཏུ་སྤྱོད་པ། བཅོམ་ལྷན་འདས་² རྩོམ་སྐུ་མཁས་
དཔལ་ལ་ཕྱག་འཆལ་ལོ།³ །

གང་གི་དྲིན་གྱིས་བདེ་ཆེན་གནས། །

སྐད་ཅིག་གིས་ནི་འཕྲོ་བ་འགྱུར་བ།⁴ །

སྒྲ་མ་རིན་ཆེན་ལྟ་བུ་ཡི། །

རྩོམ་ཅན་ཞབས་པད་ལ་འདུད།⁵ །

དེ་ནས་ཡང་དག་བཤད་བྱ་བ། །

ཀུན་ཏུ་སྤྱོད་པའི་ཆོ་ག་མཆོག་ །

འཁོར་ལོ་གསུམ་བདག་འདི་སྒྲུལ་པ།⁶ །

རྒྱལ་འབྱོར་ལམ་ལ་གནས་པ་ཡིན། ། །

1. བོ། སྒྱུ་འུ། ཕྱ། སྐུ་འུ། སྒྲ། སྐུ་འུ། སྒྲ། སྐུ་འུ།

2. བོ། ཕྱ། སྒྲ། སྐུ་འུ། དཔལ་རྩོམ་

3. ཐུ་དཔེ། (ཨོམ་མེ་ སྤྱི་ཉེ་རྒྱལ་ལ) ཨོ་ཉེ་རྒྱལ་དཔལ་ལ་ཕྱག་འཆལ།

4. བོ། སྒྲ། སྐུ་འུ། ལྟ་བུ་གྱུར་བ།

5. ཐུ་དཔེ། ཆེན་ཆེན་བཞི་པོ་འདི་མི་འདུག

6. སྒྲ། སྐུ་འུ། ཕྱ། འདི་སྒྲུལ་པ།

ནལ་འབྱོར་མའི་ཀུན་དུ་སྤྱོད་པའི་སྤྱོད་པའི་བཤད་སྤྱུར་ བཞུགས་སོ།།

༡༡། །ཐུ་གར་སྐད་དུ། ཡོག་ནི་སྤྱོད་ནི་བརྒྱ།¹ བོད་སྐད་དུ། ནལ་
འབྱོར་མ་ཀུན་དུ་སྤྱོད་པའི་བཤད་སྤྱུར། འཛིག་ཅེན་དབང་ཕུག་ལ་ཕུག་འཆལ་
ལོ།² །རྟག་དུ་བདེ་བའི་སེམས་ནི་ཐུགས་ཀྱི་མགོན་པོ་གཅིག་པོ་སྟེ།³
ནང་གི་ངོ་བོར་བདེན་ཞིང་མི་བདེན་གྱི་མི་གསུང་བ། །སྤྱོད་ལ་ཕན་པའི་
དོན་དུ་གང་གིས་སྤྱོད་ནི་སྤྱལ་མཛད་དེ། །སྤྱུ་གུ་མཛེས་མའི་ཕུག་གིས་འབྱུང་པས་
འགྲོ་ལས་སྤྱལ་བུར་ཅིག། །སྤྱོད་འདིར་འདི་སྐད་བདག་གིས་ཐོས་པ་ཞེས་བྱ་བ་
ལ་སོགས་པའི་སྤྱོད་གཞིའི་ཆིག་ཅེའི་ཕྱིར་མེད་ཅེས་སྟོན་པ་ལ། བཅོམ་ལྷན་
འདས་ནི་རྟག་དུ་གནས་པའི་ཕྱིར་ཡོངས་སུ་སྤྱུང་ན་ལས་འདས་པ་ཉིད་མ་ཡིན་ནོ་
ཞེས་སྟོན་དཔོན་ཁ་ཅིག་གསུང་ངོ་། །ཡང་གསུངས་པ། སངས་བྱུང་སྤྱུ་
ངན་མི་འདའ་ཞིང་། །ཞེས་བྱ་བས་སོ། །ཡོངས་སུ་སྤྱུང་ན་ལས་འདས་པ་
སྤྱོད་ན་སྤྱུང་པ་པོས་སྤྱོད་གཞིའི་ཆིག་ཅོད་པར་བྱེད་དོ། །དེ་བཞིན་དུ་མདོ་ལས་
ཀྱང་། དག་སྤྱོད་དག་ང་ཡོངས་སུ་སྤྱུང་ན་ལས་འདས་ནས་འདི་སྐད་བདག་
གིས་ཐོས་པའི་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པའི་ཆིག་གིས་ངའི་ཆོས་བསྐྱུ་བར་གྱིས་གིག་

1. ཐུ་དཔེར། (སྤྱོད་ནི་བརྒྱ) །

2. ཐུ་དཔེར། (ནམ་ ཙཀ་སྤྱོད་ལྷན་ལ་ཕུག་འཆལ་ལོ།)

3. ཐུ་དཔེར། (ཞེས་) འདི་ལོ།

4. གསེར། 'ལས་' མི་འདུག

ཅེས་སོ། །གཞན་ཡང་¹རྒྱ་གཞན་གྱིས་སྤང་གཞིའི་ཆོག་རྒྱ་འདིར་བྲང་བར་
བྱ་སྟེ་དུ་སེམས་སོ། །དང་པོར་རེ་ཞིག་རྫོང་པར་བྱེད་པ་དང་། བརྫོང་
པར་བྱ་བ་དང་།² འབྲེལ་བ་དང་། དགོས་པ་དང་། དེའི་དགོས་པ་
རྣམས་ཉི་བར་མཐོང་ནས་³རྟོག་པ་དང་ལུན་བ་རྣམས་འཇུག་པར་འགྱུར་རེ་ཞིག་
བྱ་བ་སྟེ། དེ་ཉིད་བསྟན་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར་འདི་སྐད་དུ།

ཉམ་པོ་⁴ཐོས་ལ་འཇུག་བྱའི་ཕྱིར། །དོན་སྦྱབ་⁵འབྲེལ་པ་གྲུབ་པ་དང་། །
འབྲེལ་པ་⁶དགོས་པར་བཅས་པ་ནི། །བསྟན་བཅོས་ཀྱི་ནི་དང་པོར་བརྫོང་། །

ཅེས་སོ། །དེ་ལ་དེ་ནས་ཞེས་བྱ་བ་ནས་བརྩམས་ནས། ཀུན་དུ་⁷སྦྱོད་པ་
ཞེས་བྱ་བའི་གཞུང་གི་ཆོགས་ཐམས་ཅད་ནི་རྫོང་བྱེད་དོ། །གང་ཞིག་དེའི་
བརྫོང་བྱ་བཅོམ་ལུན་འདས་དང་། བཅོམ་ལུན་འདས་མའི་ངོ་བོ་ཉིད་ནི་བརྫོང་
པར་བྱ་བའོ། །བརྫོང་བྱ་དང་རྫོང་བྱེད་དག་གི་དངོས་པོའི་མཆན་ཉིད་དང་།
ཐབས་དང་ཐབས་ལས་བྱུང་བའི་དངོས་པོའི་མཆན་ཉིད་ནི་འབྲེལ་པའོ་⁸ཞེས་བྱ་
བ་ནི་གཞན་གྱི་འོ། །དགོས་པ་ནི་ཀུན་དུ་སྦྱོད་པའི་དོན་གྲས་པས་རྒྱན་མི་འཆད་

1. རྒྱ་དཔེར། (ཨ་ཏྲི་ཡུ་རུ་ཏྲུ) གཞན་ཡང་སྤང་གཞི་སྤངས་པ།

2. གསེར། བརྫོང་པར་བྱེད་པ།

3. རྒྱ་དཔེར། (ཞུ་པ་ལ་སྟེ་ཉི་བར་ཐོབ་ནས།

4. གསེར། 'པོ་' མི་འདུག

5. གསེར། བསྟུབ།

6. བོ། བ།

7. བོ། གསེར། དུ།

8. བོ། བའོ།

པར་དུས་རིང་བར་གོམས་པར་བྱེད་པའོ། །དགོས་པའི་དགོས་པ་ནི་དཔལ་
 བདེ་མཆོག་འཁོར་ལོའི་¹གོ་འཕང་ཐོབ་པར་བྱེད་པ་ཡིན་ནོ། །དེ་ནས་ཞེས་བྱ་
 བ་ལ་སྐབས་པ་ལ། དེ་ནས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་འདིར་ཆེག་ཕྱད་ཀྱི་ཆོགས་སོ།
 དེ་ལ་དེ་ནས་ཀྱི་སྒྲ་ནི་ཇེས་ཐོགས་དང་། རིམ་པ་སྟོན་པ་སྟེ་ནམ་མཁའ་དང་
 མཉམ་པའི་རྒྱུ་ཀྱི་ཇེས་ཐོགས་ལ་རིམ་པ་འདིས་འོག་ནས་འཆད་པར་འགྱུར་
 བའི་དོན་དོ། །ཡང་དག་བཤད་བྱ་བ་ཞེས་པ་ནི་ཡང་དག་པ་ཕྱིན་ཅི་མ་ལོག་
 པར་བསྟན་པར་བྱ་བའོ། །ཀུན་དུ་²སྤྱོད་པའི་ཆོག་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཀུན་དུ་³སྤྱོད་
 པ་ནི་རབ་དུ་སྤྱོད་པ་སྟེ། ཀླུ་འབྱོར་མ་རྣམས་དང་ཀླུ་འབྱོར་བའི་⁴ལུས་ཀྱི་
 དཀྱིལ་འཁོར་རོ། །དེའི་ཆོག་ནི་ཆོག་རྣམ་པར་གཞག་པའོ། །གང་ན་མེད་
 པའི་གོ་འཕང་ཐོབ་པའི་རྒྱུར་གྱུར་པས་ན་མཆོག་གོ། །སྟོན་ཅིག་ཅེས་བྱ་བའི་
 སྟོན་པ་ནི་འདིར་གསལ་བར་བྱེད་པ་སྟེ། དེ་ཡང་སེམས་ཅན་རྣམས་ལ་སྟོན་
 ཅིག་ཅེས་པའི་དོན་དོ། །ཕྱག་ན་དོ་ཇེ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ལྷག་མའོ། །དེ་ཉིད་ཀྱིས་
 ན་ཕྱག་ན་དོ་ཇེས་སྤྱད་པ་པོ་མཛད་དོ། །འདི་ཞེས་བྱ་བ་ནི་འདིར་ཐུགས་ལ་
 གནས་པར་བྱས་པའི་ཀུན་དུ་⁵སྤྱོད་པའི་ཆོག་འོ། །ཅིར་གྱུར་པ་ཞེ་ན།
 འཁོར་ལོ་གསུམ་བདག་འདི་བསྟོམ་པ། ཀླུ་འབྱོར་ལམ་ལ་རྣམ་གནས་པ།
 ཞེས་པ་ནི། འཁོར་ལོ་གསུམ་གྱི་བདག་ཉིད་བཅོམ་ལྷན་འདས་དེའི་རྣལ་

-
1. རྒྱ་དཔེར། 'འཁོར་ལོ་' མི་འདུག
 2. བོ། གསེས། དུ།
 3. བོ། གསེས། དུ།
 4. བོ། པའི།
 5. བོ། གསེས། དུ།

འབྱོར་ནི་སྒྲིམ་པའོ། །དེ་ཉིད་ཀྱི་ཟིམ་པས་སྐྱབ་བྱེད་ཉི་ཤར་གནས་པར་བྱེད་
པའི་ཕྱིར་ལམ་སྟེ། དེའི་ཚུལ་གྱིས་རྣམ་པར་གནས་པའོ། ༡ །

ལུགས་འབྱུང་ལུགས་ལས་བརྒྱུག་པར་¹ནི། །

རྒྱུད་དུ་སྐྱས་པར་གནས་གང་དེ།² །

བསྟན་པ་རུ་ནི་³ཇི་སྐད་⁴གསུངས། །

བཤད་པ་ཡང་ནི་དེ་བཞིན་ནོ། ། ༣ །

སྐར་ཡང་ཅིར་འགྱུར་ཞེན་གསུངས་པ། སྐྱས་པ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་སྟེ།
སྐྱས་པ་ནི་མ་དང་པ་རྣམས་ལ་མི་གསལ་བར་བྱས་པའོ། །གང་ཞེས་པ་ནི་གང་
ཞིག་ལའོ། །དེ་བཞིན་ཞེས་པ་ནི་དེ་བཞིན་དུ་ཡོད་ཀྱང་སྟེ། ལམ་ཉིད་དུ་ཡོད་
ཅེས་པའི་དོན་དེ། །རྒྱུད་དུ་ཞེས་པ་ནི་མངོན་པར་བཞེད་པ་འབྱམ་པར་རོ།
ཇི་ལྟར་སྐྱས་ཤེ་ན། གསུངས་པ། ལུགས་འབྱུང་ལུགས་ལས་བརྒྱུག་པར་
གནས། །ཞེས་པ་སྟེ། ཟིམ་པ་དང་ཟིམ་པ་ལས་བརྒྱུག་པ་གཉིས་སུ་བཞེད་
པའི་ཕྱིར་རོ། །དེ་ནི་སྐྱས་པ་ཞེས་བྱ་བའི་དོན་དོ། །ཟིམ་པ་དང་ཟིམ་པ་
ལས་བརྒྱུག་པ་གཉིས་སུ་མངོན་བསྟན་པ་ལ་སོགས་པ་དེ་ལས་གསུངས་པ་དེ་
འདྲིར་བསྟན་པའི་ཕྱིར་རོ། །མངོན་བསྟན་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་དེ།

1. རྒྱུད་པེ་ལ། (སྤྲི་ཏུམ་) གནས་པ།
2. སྐྱ། དེ་གང་།
3. སྐྱ། སྟེག སྐྱ། འདི་བྱ།
4. སྐྱ། ཇི་ལྟར་
5. པེ། ལུགས་པ།

མདོར་བསྟན་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་མདོར་བསྟན་པ་སྟེ་མདོའོ། །ཇི་ལྟར་བསྟན་ཞེས་
བྱ་བ་ནི་ཇི་ལྟར་བཞིན་དུ་བརྗོད་པ་སྟེ། བཤད་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་མ་ལུས་པར་
བསྟན་པས་འབྲེལ་བའི་¹རང་གི་ངོ་བོ་ཡིན་ནོ། ३ །

སོ་སོར་བསྟན་པ་མ་ལུས་ཉིད། །

བརྟེན་ཡི་ཚེ་ག་རྒྱས་པ་ཡིན།² །

གང་གིས་³ཤེས་པ་ཙམ་གྱིས་ནི། །

སྐྱབ་པ་པོ་ཡིས་གྲུབ་ཐོབ་པ། ३ །

རྒྱས་བཤད་ཅེས་བྱ་བ་ནི་རང་གི་ངོ་བོ་མི་གསལ་བ་གསལ་བར་སྟོན་པ་རྒྱས་བཤད་
ནི་འབྲེལ་བཤད་དོ། །མ་ལུས་ཉིད་ཅེས་པ་ནི་འདི་གསུམ་མོ། །བརྟེན་ཡི་ཚེ་
ག་རྒྱས་པ་ཡིན། །ཞེས་པ་ནི། བརྟེན་ཡི་ཚེ་ག་ཚེས་⁴མང་པོ་ཞེས་པའི་དོན་
དོ། །ཕན་ཡོན་གང་ཡིན་ཞེ་ན། གསུངས་པ། གང་ཞིག་ཅེས་པ་ལ་
སོགས་པ་སྟེ། གང་ཞིག་ཅེས་པ་ནི་ཀུན་དུ་⁵སྤྱོད་པའི་ཚེ་གའོ། །ཤེས་པ་
ཙམ་གྱིས་ནི་ཞེས་པ་ནི་བསྟོམས་པའི་སྟོབས་ཀྱི་རིམ་པས་ཁྱད་པར་དུ་ཤེས་པ་ཙམ་
གྱིས་མདོན་དུ་བྱས་པར་འགྱུར་ལོ། །སྐྱབ་པ་པོ་ནི་བདེ་མཆོག་གི་བདག་ཉིད་
དོ། །གྲུབ་པ་ནི་སངས་རྒྱས་ཉིད་དོ། །ཐོབ་པ་ནི་བརྟེན་པའོ། ३ །

1. དེ། ཅི། གསེས། འབྲེལ་པའི།

2. ལྟ། ཡིས།

3. ལྟ། གང་ཞིག་

4. རྒྱ་དཔེས། ‘བདུད་རྩི’ ཞེས་གསལ་བ་ལྟར་ན་གོང་འཁོད་དེར་‘ཆེས་མང་པོ་’ ཡིན་ནམ་སྟེ།

5. དེ། དྲ།

སྲུམ་ཅུ་ཙ་བདུན་ཚུལ་གྱིས་¹ནི། |
 བྱང་ཚུབ་ཕྱོགས་ལ་གནས་པ་ཡིན། |
 འཛིག་རྟེན་དུ་ནི་བསྐྱེད་བྱར་བཤད། |
 ཉི་རུ་ཀ་དཔལ་འགྲོ་བའི་མཆོག ུ |

ད་ནི་རྒྱུད་ཀྱི་དོན་བསྐྱེད་པའི་ཕྱིར་གསུངས་པ་སྲུམ་ཅུ་ཙ་བདུན་ཞེས་པ་ལ་སོགས་
 པ་སྟེ། སྲུམ་ཅུ་ཙ་བདུན་ཚུལ་འབྱོར་གྱིས་ཞེས་པ་ནི། བཙམ་ལྷན་འདས་དང་
 བཅས་པའི་ལྷ་སྲུམ་ཅུ་ཙ་བདུན་དང་སྦྱར་པོ། |བྱང་ཚུབ་ཕྱོགས་ཞེས་²པ་ནི།
 རྩན་པ་ཉི་བར་གཞག་པ་ལ་སོགས་པ་བྱང་ཚུབ་ཀྱི་ཕྱོགས་ཀྱི་ཆོས་རྣམས་སོ།
 འཛིག་རྟེན་དུ་ནི་བསྐྱེད་བྱར་³བཤད། |ཅེས་པ་ནི་ཐབས་ཀྱི་ངོ་བོ་ཉིད་ཡིན་
 པའི་ཕྱིར་རབ་དུ་བསྐྱེད་པར་བྱ་བ་ཡིན་པར་འཛིག་རྟེན་ལ་རབ་དུ་གྲགས་པར་གྱུར་
 པའོ། |ཐབས་ཉིད་ཇི་ལྟར་ཡིན་ཞེ་ན། འདིར་གསུངས་པ། ཉི་རུ་ཀ་
 དཔལ་འགྲོ་བའི་མཆོག |ཅེས་པ་སྟེ། དཔལ་ཉི་རུ་ཀ་ཞེས་པ་ནི་ཉི་བར་
 མཆོན་པ་སྟེ། རབ་དུ་གདུམ་མོ་ལ་སོགས་པ་གཞན་⁴ཡང་རིག་པར་བྱའོ།
 གང་གི་ཕྱིར་འདི་རྣམས་འགྲོ་བའི་གཙོ་བོར་གྱུར་པ་བསྐྱེད་པར་བྱ་བ་ཡིན་པས་ན་
 དཔལ་ཉི་རུ་ཀ་ལ་སོགས་པའོ། |རྩན་པ་ཉི་བར་གཞག་པ་ལ་སོགས་པ་ནི་བྱང་
 ཚུབ་ཀྱི་ཕྱོགས་ཏེ། དེའི་ཕྱིར་ཐབས་ཉིད་ཡིན་མོ་ཞེས་དགོངས་སོ། ུ |

1. རྒྱ་དཔེར། (ཡོག་ན) རྣལ་འབྱོར་གྱིས།
2. པེ། གསེར། བེས།
3. པེ། གསེར། པར།
4. རྒྱ་དཔེར། 'གཞན' མི་འདུག

དེ་ལ་ཐོག་མར་ནལ་འབྱོར་གྱི་དབང་ཕྱག་གིས་ཕུང་པོ་ལྷ་ལ་
ལྷའི་ང་རྒྱལ་བསྐྱེད་པར་བྱ་1སྟེ། ༥ །

དེ་ནི་སྒྲོམ་པའི་རིམ་པ་བསྒྲན་པའི་ཕྱིར་གསུངས་པ་དེ་ལ་ཐོག་མར་ཞེས་བྱ་བ་ལ་
སོགས་པ་སྟེ། ཐོག་མར་ཞེས་པ་ནི་སྒྲོམ་པ་ཙུང་པའོ། །ནལ་འབྱོར་གྱི་
དབང་ཕྱག་གིས་ཞེས་བྱ་བ་ནི། སྐད་ཅིག་གིས་ལྷག་པར་མོས་པས་དཔལ་བདེ་
མཆོག་གི་ནལ་འབྱོར་དང་ལྷན་པས་སོ། །ཕུང་པོ་ལྷ་ལ་ལྷའི་ང་རྒྱལ་ཞེས་བྱ་བ་
ནི་བདག་ཉིད་ཀྱི་ཕུང་པོ་ལྷ་ལ་ལྷའི་ང་རྒྱལ་བྱ་བྱེད་པའོ། ༥ །

གཟུགས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ལ་ནི་རྣམ་པར་སྒྲུང་མཇུག་དོ། །ཚེར་
བའི་ཕུང་པོ་ལ་ནི་དོ་ཆེ་ཉི་མའོ། །འདུ་ཤེས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ལ་ནི་པར་
གར་གྱི་དབང་ཕྱག་གོ། །འདུ་བྱེད་ཀྱི་ཕུང་པོ་ལ་ནི་དོ་ཆེ་རྒྱལ་པོའོ། །
རྣམ་པར་ཤེས་པའི་ཕུང་པོ་ལ་ནི་དོ་ཆེ་སེམས་དཔལ་འདྲེ། དེ་བཞིན་
གཤེགས་པ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་བདག་ཉིད་3ནི་བྱི་ཉི་རུ་ཀ་4དོ་ཆེའོ། །
མིག་གཉིས་ལ་ནི་གདི་ལྷག་དོ་ཆེའོ། །ན་བ་གཉིས་ལ་5ནི་ཞེ་སྒྲུང་
དོ་ཆེའོ། །སྒྲ་དག་ལ་ནི་སྤྲལ་དོག་དོ་ཆེའོ། །ཁྱེ་ལ་6ནི་འདོད་

1. ཕུ ཕུང་པོ་ལྷའི་ང་རྒྱལ་བསྐྱེད་པར་བྱ། སྟེ། སྟེག ཕུང་པོ་.....བྱ་བ།
2. པེ། སྒྲོམས་ཙུང་།
3. ཕུ དེ་ཁོ་ན་ཉིད།
4. ཕུ ཀའི།
5. ཕུ ལྷ།
6. ཕུ ཕྱེད་ག་ལ་ནི། རྒྱ་དཔེར། (མཁྱེ) ཁ་ལ།

ཆགས་དོན་མེད། །ལུས་ལ་ནི་སེར་སྒྲ་དོན་མེད། །སྐྱེ་མཆེད་ཐམས་
ཅད་ལ་ནི་དབང་ཕྱག་དོན་མེད་དཔྱིངས་སོ།² ༥ - ལ །

གཟུགས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ལ་སོགས་པ་ནི་གོ་སྟོན། ༥ - ལ །

སའི་འཁམས་ལ་ནི་ལྟངས་ཀྱི་མེད། །ཆུའི་ཁམས་ལ་ནི་
གསོད་ཀྱི་མེད། །མེའི་ཁམས་ལ་ནི་འགྲུགས་མེད། །ལྷུང་གི་
ཁམས་ལ་ནི་གར་དབང་མེད།⁴ །ནམ་མཁའི་ཁམས་ལ་ནི་པ་སྒྲའི་
འདྲ་བ་མོ་སྟེ། དེ་ལྟར་ཕུང་པོ་དང་། ཁམས་དང་། སྐྱེ་
མཆེད་ནམས་ལ་ལྟའི་འདྲ་བ་སྐྱེད་པར་བྱའོ། ༥ - ལ །

ཆུའི་འཁྲུང་མའི་ཀྱན་ཏུ་སྟོད་པ་ལས། ལྷ་ནམས་ཀྱི་
གནས་ཀྱི་ནམ་པར་དག་པ་གནས་པ་སྟེ་དང་པོའོ། ॥

1. རྒྱ་དཔེ་ལ། (མེ་མོ) རེག་པ་ལ།

2. སྒྲ་ 'སོ' ཞེས་པ་མེད། སྟོག་ དབང་ཕྱག་དོན་མེད་དཔལ་ཉེ་རྒྱའི་དཔྱིངས་སོ།
རྒྱ་དཔེར་དཔྱིངས་ཀྱི་དོན་མ་གསལ།

3. རྒྱ་དཔེ་ལ། (སྒྲི་ཉེ་རྒྱུ་སྒྲི་ཉེ་རྒྱུ་)འདྲིར་དཔལ་ཉེ་རྒྱའི་ཁམས་ཞེས་པ་ནི་ཞེས་ཀྱང་འདུག

4. རྒྱ་དཔེ་ལ། (པ་སྒྲ་ནི་ལྟེ་) པ་སྒྲ་གར་དབང་མ།

5. པལ་ 'ལྟའི་' ཞེས་པ་མི་འདུག

6. སྒྲ་ སྟོག་ ལྷ་ ལྷ་ཉིད་ཀྱི། རྒྱ་དཔེ་ལ། (མེ་མོ) 'ཅེས་' ཞེས་ཀྱང་འདུག

7. རྒྱ་དཔེར་ (ལྷ་ལྟན) སྐྱེ་མཆེད།

8. ལྷ། མདོར་བསྟན་པ་སྟེ་དང་པོའོ། རྒྱ་དཔེ་ལ། ལྷ་ནམས་ཀྱི་སྐྱེ་མཆེད་ནམ་པར་དག་པ་
བསྟན་པ་སྟེ།

ཁམས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཁམས་གསུམ་ཐམས་ཅད་¹ལྟའི་རྣམ་པར་བསྟན་པའོ།
 སའི་ཁམས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ནི་གོ་སྟོའོ། །དེ་ལྟར་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་ནི་
 མཇུག་བསྟུ་བའོ། ༥ - ༩ |

འདི་ནི་ངེས་པར་བསྟན་པ་དང་པོའོ། ||

1. རྒྱ་དཔེར། ‘གསུམ་ཐམས་ཅད་’ མི་འདུག

ངེས་པར་བསྟན་པ་གཉིས་པ།

དེ་ནས་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཕྱོགས་ཀྱི་ཚོས་སྤྲུལ་ཅུ་ཙ་བདུན་ལྟའི་སྒྲིབ་
བས་སྒྲིབ་བར་བྱ་སྟེ། དེ་ཐམས་ཅད་ཀྱང་གང་ཞེ་ན།

ལུས་¹དྲན་པ་ཉི་བར་གཞག་པ་དང་། ཚོར་བ་²དྲན་པ་ཉི་
བར་གཞག་པ་དང་། ཚོས་³དྲན་པ་ཉི་བར་གཞག་པ་དང་།
སེམས་⁴དྲན་པ་ཉི་བར་གཞག་པ་དང་། ༡-༣ །

དེ་ནས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ནི་ལྟའི་ནྟལ་འགྱུར་གང་གིས་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་
ཕྱོགས་ཀྱི་ཚོས་དང་སྒྲིབ་བར་བྱ་བ་དེ་ཀྱན་ཀྱང་གང་ཞེ་ན་ཞེས་པ་ནི་སྒྲིབ་བར་བྱ་བ་
སྟེ་ཞེས་པ་ལ་སོགས་པ་ལོ། ༡ - ༣ །

འདུན་པའི་རྩ་འཕུལ་གྱི་རྒྱུ་པ་དང་། བརྩོན་འགྲུས་ཀྱི་རྩ་
འཕུལ་གྱི་རྒྱུ་པ་དང་། དཔྱོད་པའི་རྩ་འཕུལ་གྱི་རྒྱུ་པ་དང་།
སེམས་ཀྱི་རྩ་འཕུལ་གྱི་རྒྱུ་པ་དང་། ༣ །

-
1. རྩ་དཔེས། ལུས་རྩེས་སྟེ།
 2. རྩ་དཔེས། ཚོར་བ་རྩེས་སྟེ།
 3. རྩ་དཔེས། ཚོས་རྩེས་སྟེ།
 4. རྩ་དཔེས། སེམས་རྩེས་སྟེ།
 5. ལུ། ལྟའི་པའི།

དད་པའི་དབང་པོ་དང་། བཙུན་འགྲུས་ཀྱི་དབང་པོ་དང་།
 དྲན་པའི་དབང་པོ་དང་། ཉིང་ངེ་འཛིན་གྱི་དབང་པོ་དང་།
 ཤེས་རབ་ཀྱི་དབང་པོ་དང་། ལ །

དད་པའི་སྒྲོབས་དང་། བཙུན་འགྲུས་ཀྱི་སྒྲོབས་དང་།
 དྲན་པའི་སྒྲོབས་དང་། ཉིང་ངེ་འཛིན་གྱི་སྒྲོབས་དང་། ཤེས་རབ་
 ཀྱི་སྒྲོབས་དང་། ཡ །

ཉིང་ངེ་འཛིན་ཡང་དག་བྱང་རྒྱུ་ཀྱི་ཡན་ལག་དང་།
 བཙུན་འགྲུས་ཡང་དག་བྱང་རྒྱུ་ཀྱི་ཡན་ལག་དང་། དགའ་བ་
 ཡང་དག་བྱང་རྒྱུ་ཀྱི་ཡན་ལག་དང་། ཤིན་ཏུ་སྤྱངས་པ་ཡང་དག་
 བྱང་རྒྱུ་ཀྱི་ཡན་ལག་དང་། ཚེས་རྒྱུ་ཡང་དག་བྱང་རྒྱུ་ཀྱི་ཡན་
 བྱང་རྒྱུ་ཀྱི་ཡན་ལག་དང་། དྲན་པ་ཡང་དག་བྱང་རྒྱུ་ཀྱི་ཡན་
 ལག་དང་། བཏང་སྒྲོམས་ཡང་དག་བྱང་རྒྱུ་ཀྱི་ཡན་ལག་དང་། ༡།

ཡང་དག་པའི་ལྟ་བ་དང་། ཡང་དག་པའི་རྟོག་པ་དང་། ༡
 ཡང་དག་པའི་ངག་དང་། ༢ ཡང་དག་པའི་ལས་ཀྱི་མཐུན་དང་།

-
1. ལྟ་ རྟོག་པའི་ངག་དང་།
 2. ལྟ་ རྟོག་པའི་ལས་ཀྱི་མཐུན་དང་།

ཡང་དག་པའི་འཚོ་བ་དང་། ཡང་དག་པའི་ཚོལ་པ་དང་།
ཡང་དག་པའི་བླ་པ། ཡང་དག་པའི་ཉིང་ངེ་འཛིན་དང་། ༡ །

དག་པའི་ཚོས་མ་སྐྱེས་པ་རྣམས་བསྐྱེད་པ་དང་། དག་
པའི་ཚོས་སྐྱེས་པ་རྣམས་ཡང་དག་པར་སྤང་བ་དང་།² མི་དག་
པའི་ཚོས་སྐྱེས་པ་རྣམས་སྤོང་བ་དང་། མི་དག་པའི་ཚོས་མ་སྐྱེས་
པ་རྣམས་མི་སྐྱེད་པའོ། ༢ །

རྩ་འཕུལ་སྐྱེད་པར་བྱེད་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་འདིས་རྩ་འཕུལ་བསྐྱེད་པ་སྟེ།
འདུན་པ་ཉིད་རྩ་འཕུལ་³ཀང་པ་སྟེ། འདུན་པའི་རྩ་འཕུལ་⁴ཀང་པའོ། ༥།
ལྟར་གཞན་ལ་ཡང་ངོ་། ༣ - ༤ །

དེ་ལྟར་ན་བླ་པ་ཉི་བར་གཞག་པ་དང་། ཡང་དག་པར་
སྤོང་བ་དང་། རྩ་འཕུལ་གྱི་ཀང་པ་དང་། དབང་པོ་⁵དང་།
སྟོབས་⁶དང་། བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་⁷དང་། འཕགས་པའི་

1. ལྷ། བཙོལ་བ།

2. ཤི། གནས་པ་དང་། ལྷ། སྟེལ་བ་དང་།

3. ལྷ་དཔེས། (རིན་པོ་ལྷ་དཔེས་) རྩ་འཕུལ་བསྐྱེད་པ།

4. ལྷ་དཔེས། (རིན་པོ་ལྷ་དཔེས་) རྩ་འཕུལ་བསྐྱེད་པ།

5. ལྷ་དཔེས། (པལྟ་སྟོབས་) དབང་པོ་ལྷ།

6. ལྷ་དཔེས། (པལྟ་ལྷ།) སྟོབས་ལྷ།

7. ལྷ་དཔེས། (སྟོབས་ལྷ་དཔེས་) བྱང་ཆུབ་ཡན་ལག་བདུན།

ལམ་ཡན་ལག་བརྒྱད་པའི་མཐར་ཐུག་པ་¹རྣམས་ནི་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་
ཕྱོགས་ཀྱི་ཚོས་སུམ་ཅུ་ཙ་བདུན་ཡིན་ནོ། ལ །

²ནལ་འབྱོར་མའི་ཀུན་དུ་སྤྱོད་པ་ལས་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཕྱོགས་³ཀྱི་
ཚོས་སུམ་ཅུ་ཙ་བདུན་བསྟན་པ་སྟེ་གཉིས་པའོ། །

དེ་ལྟ་ན་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ནི་མཇུག་བསྟུ་བའོ། ལ །

འདི་ནི་ངེས་པར་བསྟན་པ་གཉིས་པའོ། །

1. ལུ་ ‘པ་’མི་འདུག

2. ཐུ་དཔེར། (མིདི) ‘ཅེས་’ཞེས་ཀྱང་གསལ།

3. ལུ་ ཚོས།

ངེས་པར་བསྟན་པ་གསུམ་པ།

དེ་ལ་དེ་ནམས་ཀྱི་ལྷོ་རྩེ་ར་བའི་གངས་ཇི་ལྟ་བུར་¹མདོར་
བསྟུས་ནས་བཤད་པར་བྱ་སྟེ། ²ལུས་³དྲན་པ་ཉི་བར་གཞག་པ་ནི་
མཁའ་འགྲོ་མའོ། |ཚེར་བ་⁴དྲན་པ་ཉི་བར་གཞག་པ་ནི་ལྷ་མའོ།
ཚེས་⁵དྲན་པ་ཉི་བར་གཞག་པ་ནི་ཁུ་རོ་དྲོའོ།⁶ |སེམས་⁷དྲན་པ་
ཉི་བར་གཞག་པ་ནི་གཟུགས་ཅན་མའོ།⁸ ༡ - ༣ །

འདུན་པའི་རྩེ་འཕུལ་གྱི་རྒྱ་པ་ནི་རབ་དྲུག་དུམ་མའོ།
བཙོན་འགྲུས་ཀྱི་རྩེ་འཕུལ་གྱི་རྒྱ་པ་ནི་གདུམ་པའི་མིག་ཅན་མའོ།
དཔྱོད་པའི་རྩེ་འཕུལ་གྱི་རྒྱ་པ་ནི་འོད་ལྡན་མའོ། |སེམས་ཀྱི་རྩེ་
འཕུལ་གྱི་རྒྱ་པ་ནི་སྣ་ཆེན་མའོ། ༣ །

-
1. ལྷ། དེ་ལ་ལྷ་ནམས་ཀྱི་ལྷོ་ར་བའི་ལྷ་བུ།
 2. རྩེ། འདི་ལྷ་སྟེ།
 3. རྩེ་དཔེས། ལུས་ཇིས་སྟེ།
 4. རྩེ་དཔེས། ཚེར་བའི་སྟེ།
 5. རྩེ་དཔེས། ཚེས་ཇིས་སྟེ།
 6. ལྷ། རྩེ། རྩེ་གྲུ་ རྩེ་འོ།
 7. རྩེ་དཔེས། སེམས་ཇིས་སྟེ།
 8. རྩེ། རྩེ་གྲུ་ རྩེ། རབ་གདུམ་མའོ། །

དང་པའི་དབང་པོ་ནི་དཔའ་བོའི་¹སྒོ་གྲོས་མའོ། |བརྩོན་
འབྲུས་ཀྱི་དབང་པོ་ནི་མིའུ་མུང་མའོ། |དྲན་པའི་དབང་པོ་ནི་ལང་
ཀའི་དབང་ཕྱག་མའོ། |དྲིང་ངེ་འཛིན་གྱི་དབང་པོ་ནི་ཤིང་གྲིབ་
མའོ། |ཤེས་རབ་ཀྱི་དབང་པོ་ནི་ས་སྤྱང་མའོ། ༥ |

དང་པའི་སྒྲོབས་ནི་འཛིགས་བྱེད་ཆེན་མོའོ། |བརྩོན་འབྲུས་
ཀྱི་སྒྲོབས་ནི་རྒྱང་གི་ཤུགས་ཅན་མའོ། |དྲན་པའི་སྒྲོབས་ནི་ཆང་
འམུང་མའོ། |དྲིང་ངེ་འཛིན་གྱི་སྒྲོབས་ནི་སྒྲོ་བསངས་ལྷ་མོའོ།²
ཤེས་རབ་ཀྱི་སྒྲོབས་ནི་ཤིན་ཏུ་བཟང་³མའོ། ༥ |

དྲིང་ངེ་འཛིན་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་ནི་ཏ་ན་མའོ།
བརྩོན་འབྲུས་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་ནི་བྱ་གདོང་⁴མའོ།
དགའ་བ་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་ནི་འཁོར་ལོའི་ཤུགས་ཅན་
མའོ། |ཤིན་ཏུ་སྤྱངས་པ་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་ནི་
ཁུར་རྩལ་ཏུ་⁵ |ཆོས་རྣམ་པར་འབྱེད་པ་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་

1. བཤེས་ 'དཔའ་བོའི་' ཞེས་པ་མི་འདུག

2. སྒྲོ་ 'ལྷ་མོའོ་' ཞེས་པ་མི་འདུག

3. བཤེས་ 'སྒྲོབས་བཟང་'།

4. བཤེས་ ལྷ་ བྱ་གདོང་།

5. བཤེས་ ལྷ་ སྒྲོག་ ལྷ་ ཏིལ་ ལྷ་ རོ་ཏ་མའོ།

ཡན་ལག་ནི་ཆང་འཛོང་མའོ།¹ །དྲན་པ་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་
ལག་ནི་འཁོར་ལོའི་གོ་ཆ་མའོ།² །བཏང་སྟོམས་ཡང་དག་བྱང་
ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་ནི་གིན་ཏུ་དཔའ་མའོ། ༥ །

ཡང་དག་པའི་ལྷ་བ་³ནི་སྟོབས་ཆེན་མའོ། །ཡང་དག་
པའི་རྟག་པ་ནི་འཁོར་ལོས་བསྐྱར་⁴མའོ། །ཡང་དག་པའི་ངག་ནི་
བརྩོན་འགྲུས་ཆེན་མའོ། །ཡང་དག་པའི་ལས་ཀྱི་མཐའ་ནི་ཁྲ་
གདོང་མའོ། །ཡང་དག་པའི་འཚོ་བ་ནི་འུག་གདོང་མའོ། །ཡང་
དག་པའི་རྩལ་བ་ནི་བྱི་གདོང་མའོ། །ཡང་དག་པའི་དྲན་པ་ནི་ཕག་
གདོང་མའོ། །ཡག་དག་པའི་ཉིང་ངེ་འཛིན་ནི་བཙུག་ལྷན་འདས་
དཔལ་ཉེ་རུ་ཀའོ།⁶ ༧ །

དག་པའི་ཆོས་མ་སྐྱེས་པ་རྣམས་བསྐྱེད་པ་ནི་གཤིན་ཇི་བདན་
མའོ།⁷ །དག་པའི་ཆོས་སྐྱེས་པ་རྣམས་ཡང་དག་པར་སྲུང་བ་ནི་

-
1. བེ རྩ་ཆེན་མའོ། ལཱ་ ཆང་འཛུང་མའོ།
 2. རྩ། (ཅུག་ལྷ་རྟེན་འོ།) ལཱ་ ཅུག་བར་མི་ནི་འོ།
 3. ལཱ་ ལྷ་བ་ནི།
 4. རྩ། སྐྱར།
 5. ལཱ་ ཡང་དག་པའི་ངག་ནི་བརྩོན་འགྲུས་པའི།
 6. རྩ། ཉེ་རུ་ཀ་རྟེན་འོ།
 7. ལཱ་ དག་པའི་ཆོས་མ་སྐྱེས་པ་བསྐྱེད་པ་ནི་ཡམ་དུ་བ་རྟེན་འོ།

གཤིན་ཇི་པོ་ཉ་མའོ།¹ །མི་དག་བའི་ཆོས་སྐྱེས་པ་རྣམས་སྤྲོད་²པ་
 ཉི་གཤིན་ཇི་མཆེ་བ་མའོ།³ །མི་དག་བའི་ཆོས་མ་སྐྱེས་པ་རྣམས་
 མི་སྤྲོད་པ་ཉི་གཤིན་ཇི་འཇོམས་མའོ། ༥ །

4ནལ་འབྱོར་མའི་ཀུན་དུ་སྤྱོད་པ་ལས་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཕྱགས་ཀྱི་
 ཆོས་སྐུམ་ཅུ་ཅ་བདུན་ལྟ་རྒྱུ་མས་ཀྱི་རྣམ་པར་དག་པ་བསྟན་པ་སྟེ་
 བསྐྱུམ་པའོ།། །།

དེ་ལ་དེ་རྣམས་ཀྱི་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སྟགས་པ་ནི། ད་ནི་འདི་ཀུན་གྱིས་
 རྟོག་པ་ཉི་བར་གཞག་པ་ལ་སྟགས་པ་ལྗང་ངོ་པོ་ཉིད་དུ་གོ་བར་བྱའོ། །དེ་ཀུན་ནི་
 གོ་སྟེན་འོ། ༡ - ༤ །

འདི་ནི་ངེས་པར་བསྟན་པ་གསུམ་པོ། ་ ་

1. သ၊ ပျံ့အံ့၊

2. ལྟུང་གི་སྒོ་ནས།

3. དུ། བཤིན་རྒྱུ་མཆེ་བའོ།

4. རྒྱ་དཔེར། (མི་དྲི) 'ཅེས་' ཞེས་ཀྱང་གསལ།

ངེས་པར་བསྟན་པ་བཞི་པ།

དེ་ནས་ཡང་དག་བཤད་བྱ་བ། །

དཔའ་བོ་གཉིས་མེད་དམ་པ་སྟེ། །

ཉེ་རྒྱལ་དཔལ་སྐྱེའི་ཡན་ལག །

ཡན་ལག་ཀུན་ནི་ཆ་གས་གནས། ༡ །

དེ་ནས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སྟགས་པ་ལ། དཔའ་བོ་གཉིས་མེད་ཅེས་བྱ་བ་ནི།
དཔལ་བདེ་མཚལ་གི་བདག་ཉིད་ཀྱི་རྣལ་འབྱོར་པ་¹དཔའ་བོ་ཁར་ཀ་ཕུ་ལ་ལ་
སྟགས་པ་རྣམས་དང་ལྷན་ཅིག་གཉིས་མེད་ནི་གཅིག་པའོ། །གཉིས་མེད་པ་²ཉིད་
ཇི་ལྟར་ཡིན་ཞེ་ན། ཉེ་རྒྱལ་དཔལ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སྟགས་པ་གསུངས་དེ། སྐྱེ་
ཡན་ལག་ཅེས་བྱ་བ་ནི་མདོར་བསྟན་པའོ། །ཡན་ལག་ཀུན་གྱི་ཆ་གས་གནས།
ཞེས་བྱ་བ་ནི་རྒྱས་པར་བསྟན་པའོ། ༡ །

སེན་མོ་དང་སོ་ལ་ནི་ཐོད་པ་ཕྱིད་པའོ། །སྐྱེ་དང་སྐྱ་³ལ་ནི་
ཀེང་རུས་ཆེན་པོའོ། །ཤགས་པ་དང་རྩི་མ་ལ་ནི་⁴ཀེང་རུས་སོ།

1. བཤ བསེས། དང་།

2. བསེས། བཞིས་པ་མེད།

3. ལྟ ཁ་སྐྱེ།

4. ལྟ ཐམས་པའི་རྩི་མ་ལ།

ག་ལ་ནི་མཆེ་བ་ནམ་པར་གཅིགས་པའོ། །རྒྱས་པ་ལ་ནི་ལྟ་དགའོ།¹
 རུས་པ་ལ་ནི་འོད་དཔག་མེད་དོ། །མཁལ་མ་²ལ་ནི་དོ་རྩེའི་འོད་
 དོ། །སྤྱིང་ལ་ནི་དོ་རྩེའི་སྤྱོདོ། ³ །

སོ་དང་སེམས་མོ་ལ་ནི་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ནི་གིན་དུ་རྒྱས་པར་བསྟན་
 པ་ཡིན་ནོ། ³ །

མིག་གཉིས་³ལ་ནི་ལྷ་གུ་ཅན་ནོ། །མཁྲིས་པ་ལ་ནི་དོ་རྩེའི་⁴
 རལ་པ་ཅན་ནོ། །སྟོ་བ་ལ་ནི་དཔའ་བོ་ཆེན་པོའོ། །རྒྱ་མ་⁵ལ་ནི་དོ་
 རྩེ་རྒྱུ་མཛད་དོ། །གཉི་མ་⁶ལ་ནི་རབ་བཟང་ངོ་། །ལྟོ་བ་ལ་ནི་དོ་རྩེ་
 བཟང་པོའོ། །བཤང་བ་ལ་ནི་འཛིགས་བྱེད་ཆེན་པོའོ། །མཚོག་
 མའི་སྤྲུབས་⁷ལ་ནི་མིག་མི་བཟང་ངོ་། ³ །

བད་ཀན་ལ་ནི་སྟོབས་པོ་ཆེའོ། །རྟག་ལ་ནི་རིན་ཆེན་དོ་
 རྩེའོ། །ཁྲག་ལ་ནི་རྟ་མགྲིན་ནོ།⁸ །རྟུལ་ལ་ནི་ནམ་མཁའི་སྤྱིང་།

-
1. དེ། ལྟ་དགའོ།
 2. རྒྱ་དཔེས། (བུ་སྐེ)
 3. རྒྱ་དཔེས། (ཀུན་ལོ་) མཆན་ཁང་།
 4. ལྷ། ལྟོག་ རྩེ།
 5. ལྷ། ལྷ་མ།
 6. རྒྱ་དཔེས། (གུ་ཐབ་རྩོ་) གཉི་མ་ཅན།
 7. ལྷ། ལྟོག་ འཛིགས་མའི་བསྤྲུབས། དེ། ལྷ། མཚོགས་མའི་སྤྲུབས།
 8. ལྷ། རྟོ།

པོའོ། །ཆེལ་ལ་ནི་དཔལ་ཉི་རུ་ཀའོ། །མཆི་མ་ལ་ནི་པདྨ་གར་
 གྱི་དབང་ཡུག་གོ། །མཆིལ་མ་ལ་ནི་རྣམ་པར་སྤང་མཇད་དོ།
 སྤངས་ལ་ནི་དོ་ཇི་སེམས་དཔའོ།¹ ར །

²རྣལ་འབྱོར་མའི་ཀུན་རྒྱུད་པ་ལས་དཔའ་བོའི་ཡན་ལག་³
 རྣམ་པར་དག་པ་བསྟན་པ་སྟེ་བཞི་པའོ། །

འདི་ནི་ངེས་པར་བསྟན་པ་བཞི་པའོ། །

-
1. རྟོག་ དཔའ་འོ།
 2. གྱི་དབང་ (ཨིན་) 'ཅེས་' ཞེས་ཀྱང་འདུག
 3. རྟེ། དེ། ཡུ། 'ཡན་ལག་' ཞེས་པ་མེད།

ངེས་པར་བསྟན་པ་ལྟ་པ།

དེ་ནས་གཞན་ཡང་བཤད་བྱ་བ།

དངོས་གྲུབ་ཐམས་ཅད་སྒྲུབ་བྱེད་པ།

གང་ཞིག་ཤེས་པ་ཙམ་གྱིས་ནི།

ཐུག་པོས་དངོས་གྲུབ་ཐོབ་འགྱུར་བའོ། །

དེ་ནས་གཞན་ཡང་བཤད་བྱ་བ། ཁྱིམ་གྱི་ལ་སྐྱེས་པ་ནི་གོ་སྒྲུབ།༥

ཁོ་ལྟར་ནང་གི་བདག་ཉིད་ཤེས།

ཕྱི་ཡི་དགྱིལ་འཁོར་དམ་པ་ཡིན།

མཁའ་དགོང་ཁི་ལྟར་སྤྱར་བ་ནི།¹

སྒྲིང་པོ་ཐམས་ཅད་བསྐྱས་པ་སྟེ། 3 ।

རི་ལྷ་པ་ཅན་གྱི་བདག་ཉིད་རི་ལྷ་པ་དེ་བཞིན་དུ་ཕྱི་རོལ་གྱི་དགྲིལ་འཁོར་
 བཤེས་པར་བྱ་བ་ཞེས་སྒྲུར་རོ། །རྣམ་དགོད་རི་ལྷ་པ་སྒྲུར་བ་ནི། །ཞེས་བྱ་བ་
 ནི། དེ་མ་ཐག་དུ་ལྷ་མོ་རྣམས་²གྱི་དགོད་པ་གསུངས་པ་རི་ལྷ་པ་དེ་བཞིན་དུ་
 བཞུགས་ཡང་³ཞེས་པར་བྱའོ་ཞེས་པའི་དོན་ནོ། ༣ །

1. ལྷ་གསུངས་པ་ནི།

2. གྱུ་དཔེས། (དེབ་ཏུ་རྒྱུ་) ལྷ་རྩིས།

3. གྱུ་དཔེས། (སྟོན་པེ) དེ་ཡང་།

རྟེན་དང་བརྟེན་¹པའི་ཚུལ་གྱིས་ནི། |

སྒྲེའི་སྒྲ་²སྟོགས་ཡང་དག་གནས། |

སླ་མ་ལས་བརྒྱད་³རིམ་བཞིན་དུ། |

གང་ཞིག་⁴ཚེ་ག་འདི་ཤེས་པས། ༣ |

ད་ནི་ལྟ་རྟེན་སྟེན་དགོད་པ་ལ་འཇུག་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར། རྟེན་དང་ཞེས་བྱ་
བ་ལ་སྟོགས་པ་གསུངས་ཏེ། རྟེན་དང་བརྟེན་པའི་ཚུལ་གྱིས་⁵འཁོར་ལོ་སྒྲེ།⁶
དེར་ཡི་གེ་ཡི་ཡོངས་སུ་བྱུར་པ་ལས་སྤྱི་གི་དཀྱིལ་འཁོར་ལ་སྟོགས་པའི་སྤྱིང་དུ་
བྱུར་པར་⁷བསམ་མོ་ཞེས་དགོངས་སོ། |ཤེས་པས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སྟོགས་པ་ནི།
དེར་དཀྱིལ་འཁོར་བཞི་རྣམ་པར་བསྟོམ་པར་བྱའོ། |གང་ཞིག་ཚེ་ག་ཞེས་བྱ་བ་ནི་
གང་ཚེ་ག་བཞིན་ནོ།⁸ |སླ་མ་བརྒྱད་རིམ་⁹ཇི་བཞིན་དུ། | ཞེས་པ་ནི།
དེ་དང་དེ་རྣམས་སླ་མའི་གདམས་ངག་གི་རིམ་པ་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་དུ་བསྟོམ་པར་
བྱའོ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ལྟག་མའོ། ༣ |

-
1. སྒྲ། རྟེན།
 2. དེ། དེ་རམ་ལ། སྒྲ། དེ་རམ་ག།
 3. དེ། རྒྱད། སྒྲ། བརྒྱད།
 4. སྒྲ། གང་གིས།
 5. དེ། གྱི།
 6. རྒྱ་དཔེར། (དྲ) དེ།
 7. དེ། བྱུར་ལ། གསེར། རྒྱས་པར་བྱུར་བར།
 8. རྒྱ་དཔེར། (མཚུ) གཞན་ནོ།
 9. དེ། རིམས།

རི་སྒྲིང་¹པ་སྒྲིང་གི་སར་གྱི།² |

སྒྲིང་ཚོགས་འདབ་མ་³འཇམ་པ་ལ། |

དེ་ཡི་དབུས་བཞུགས་དཔའ་བོ་ནི། |

འདྲོད་པའི་དོན་ཀུན་སྒྲིབ་⁴མཇེད་པ། ུ |

རི་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ནི་དེ་མ་ཐག་དུ་བསྐྱེད་པའི་སྒྲིང་གི་དཀྱིལ་
འཁོར་ལ་སོགས་པ་བཞིའི་སྒྲིང་དུ་ཡི་གེ་སྟོ་ཡོངས་སུ་གྱུར་པ་ལས་རི་རབ་ཀྱི་སྒྲིང་
དུ་ཡི་གེ་པོ་ཡོངས་སུ་གྱུར་པ་ལས་སྒྲིང་ཚོགས་པ་སྒྲིང་འདབ་མ་བརྒྱད་པ་ལྟེ་བ་དང་
བཅས་པ་ལ་ཞེས་པའི་དོན་དོ། |དེ་ཡི་⁷དབུས་བཞུགས་དཔའ་བོ་ནི།
ཞེས་པ་ནི་དེའི་ལྟེ་བའི་སྒྲིང་དུ་ཨྲ་ལི་ཀྲ་ལི་ཡོངས་སུ་གྱུར་པ་ལས་ཟླ་བའི་དཀྱིལ་
འཁོར་ལ་གནས་པའི་ནམ་མཁའི་ཕྱོགས་ན་གནས་པའི་རྒྱ་ལས་སྒྲིས་པའི་ཡི་གེ་
སྟོ་ཡོངས་སུ་གྱུར་པ་ལས་དཔའ་བོའི་དབང་ཕུག་གོ་རྟེ་དང་། |དེའི་བདག་པོ་
གཡས་བརྒྱུད་བས་མནན་པ་ཉི་མའི་དཀྱིལ་འཁོར་ལ་བཞུགས་པ་ཞེས་བྱ་བར་
དགོངས་སོ། ུ |

-
1. སྒྲིང་ སྒྲིང་ རི་སྒྲིང་ས།
 2. སྒྲིང་ སྒྲིང་
 3. སྒྲིང་ པ་སྒྲིང་
 4. སྒྲིང་ སྒྲིང་
 5. སྒྲིང་ སྒྲིང་
 6. སྒྲིང་པའི་ 'བཅས་པ་' མི་འདུག
 7. སྒྲིང་ སྒྲིང་

མཁའ་འགྲོ་མ་¹དང་ལྷ་མ་དང་། །
 ཁུ་རྩྱུགས་ཅན་མ། །
 པདྨ་³ཕྱོགས་ཀྱི་གནས་ལ་དགོད། །
 དངོས་གྲུབ་ཐམས་ཅད་སྤྱུང་བྱེད་ཡིན། ༥ །

མཁའ་འགྲོ་མ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པའི་ཆོགས་སུ་བཅད་པ་འདིས་གར་
 ལ་སོགས་པའི་ཕྱོགས་དང་འདབ་མ་རྣམས་སུ་མཁའ་འགྲོ་མ་ལ་སོགས་པ་རྣམས་
 གཡོན་སྒྲོར་གྱིས་དགོད་པར་བྱའོ་ཞེས་བརྗོད་དོ། ༥ །

ཕུག་གཉིས་པ་ལ་ཞལ་གཅིག་པ། །
 སྒྲ་ཆོགས་གཟུགས་དང་རྣམ་རྟེན་མའོ། །
 མཚམས་⁴ཀྱི་བཞི་པོ་དག་ལ་ནི། །
 ལྷ་པས་གང་བའི་ཐོད་པ་གཞག་⁵ ༦ །

ཕུག་གཉིས་པ་ལ་ཞལ་གཅིག་པ་སྒྲ། དེ་ཐམས་ཅད་ཞལ་གཅིག་པ་ཕུག་
 གཉིས་པར་ཞེས་བྱ་བའི་དོན་དོ། །སྒྲ་ཆོགས་གཟུགས་དང་སྒྲིག་མའི་ཞེས་པ་ནི་

-
1. ཕྱུ རྣལ་འབྱོར་མ།
 2. བོ སྒྲ། ལྷ། སྒྲིག རྩྱུགས་
 3. སྒྲ། པདྨའི།
 4. ཕྱུ འཚམས།
 5. བོ སྒྲ། ལྷ། ཕྱུ གཞག

གཟུགས་སྒྲ་ཚོགས་པ་དང་སྒྲིག་པའོ། །མཆམས་ཀྱིས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་
ནི་གོ་སྟོའོ། ༥ །

ཕུསྟ་སོགས་¹དང་ཡང་དག་སྟུང་། །
ཡུལ་དང་²ཡུལ་དུ་གནས་པ་ཡིན། །
སྟུན་དང་འཁོར་ལོའི་དབུས་གནས་ལ། །
ནལ་འབྱོར་རིག་པས་ཉག་དུ་མཆོད། ༦ །

ཡི་གེ་ཕུ་སོགས་ཡང་དག་སྟུང་། །ཞེས་པ་ནི། ཕུསྟ་³མལ་⁴ཡ་ལ་
སོགས་པ་སྟོས་⁵དམིགས་པར་བྱའོ། །ཡུལ་དང་ཡུལ་དུ་གནས་པ་ཡིན།
ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཕུསྟ་⁶མལ་⁷ཡ་ལ་སོགས་པ་དེ་ནམས་སུ་བཞུགས་པའོ། །རབ་དུ་
གདུམ་མོ་ལ་སོགས་པ་དང་ལྷན་ཅིག་པ་ཐོད་པའི་དུམ་བུ་ལ་སོགས་པའོ། །སྟུན་
དང་ས་⁸ཞེས་བྱ་བ་ནི་དགུག་པའོ། །འཁོར་ལོའི་དབུས་གནས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་
བྱུགས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་ལ་སོགས་པ་འཁོར་ལོ་གསུམ་གྱི་དབུས་སུ་བཞུགས་པར་

-
1. བོ། སྒྲ། སྟུག་ སྟུ། སུ་ལ་སོགས།
 2. བོ། དག་
 3. བོ། ཕུསྟ།
 4. བསེར། 'ལ་' མི་འདུག་
 5. ཟུ་དཔེར། (བུརྟོ) སྟོ་ལ།
 6. བོ། ཕུསྟ།
 7. བོ། བསེར། 'ལ་' མ་གསལ།
 8. བོ། དང་།

མཛད་པའོ། །མཛད་ཅེས་པ་ནི་བསྟོམ་པའོ། །དྲག་ཏུ་ཞེས་པ་ནི་ཐུན་
མཛམས་སོ་སོར་རྟེན། ལ།

ཕུ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཕུལྱི་¹ར་མལ་²ལ་ན་ཁ་ཁྲ་ཀུཔལྱི་³དང་ཕུཅུལྱི་⁴། རྩ་⁵
ཞེས་བྱ་བ་ནི་རྩལ་རྩར་⁶ན་མདུག་⁷ཀུལ་⁸དང་ཅུལྱི་⁹། ཞོ་¹⁰ ཞེས་
བྱ་བ་ནི་ཞོ་ཁེལ་ན་¹¹ན་ཀང་ཀུལ་དང་ཕུལྱི་བཅུ་¹²། ཞུ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་
ཞུར་¹³བུད་ན་¹⁴བུ་ཀུལ་དེ་ལྟར་¹⁵དང་མདུག་སྒྲ་¹⁶སྒྲི་གནས་སོ། ས།

1. བུ་ ཕུལྱི་ རྩ་ ཕུལྱི་
2. ཕུ་ 'ལ་' མི་འདུག
3. རྩ་ ཀུཔལྱི་ བུ་ ཀུཔལྱི་
4. བུ་ ཅུ་ཁེལ་ ཕུ་ རྩ་ ཅུ་ཁེལ་
5. བུ་ ཕུ་ ར།
6. ཕུ་ རྩལ་ན་ད་ར།
7. རྩ་ ཀྱི་
8. བུ་ ཕུ་ ཀུལ་
9. བུ་ ཕུ་ རྩ་ རྩ་ རྩ་ ཅུ་
10. བུ་ ཕུ་ རྩ་ རྩ་ རྩ་ རྩ་
11. ཕུ་ རྩ་ རྩ་ རྩ་ རྩ་ རྩ་
12. ཕུ་ ཕུ་ལྱི་ལོ།
13. རྩ་ རྩ་
14. བུ་ རྩ་ ཕུ་ རྩ་
15. རྩ་ རྩ་
16. རྩ་ རྩ་

གོ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་གོ་དབང་ན་¹སྲུབ་པའི་ཆ་²དང་སྒྲིལ་མཁྱེད།
 རྒྱ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་རྒྱ་མེད་ཀྱི་ན་ཨ་མི་དྲ་སྒྲ་དང་ཁ་རྒྱ་སྒྲིལ། |དེ་ཞེས་
 བྱ་བ་ནི་དེ་མི་ཀོ་ར་ན་³བཟླ་པ་སྒྲ་⁴དང་ལང་ཀེ་ཤུ་སྒྲིལ། |སྒྲ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་
 སྒྲ་ལ་བེ་ན་⁵བཟླ་དེ་དང་དྲུམ་རྩུ་ཡུལ། |ཉི་པའི་གནས་སོ།
 བྱགས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་སྒྲེ་ན་མ་མཁའ་ལ་རྒྱ་བའོ། ༩ |

ཀླ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཀླ་མ་རྒྱལ་ན་ཨང་ཀྱི་⁶དང་ཨེ་རྒྱལ་ཁྱེད།

ཨོ་⁷ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཨོ་རེ་ན་⁸བཟླ་ཁྱེད་ཀྱི་དང་མཁྱེད་སྒྲིལ།

ཁིང་ངོ་། ༡༠ |

-
1. མེ། གོ་དྲུ་བ་རྒྱུ། དེ། གོ་དྲུ་བ་རྒྱུ།
 2. རྒྱ་དཔེ། སྲུབ་པའི་སྒྲ། སྒྲ། སྲུབ་པའི་རྒྱུ།
 3. དེ། ཀོ་རེ་ན། སྒྲ། དེ་མི་ཀོ་རེ་ན།
 4. སྒྲ། སྒྲ་བ་དང་།
 5. མེ། མ་ལ་བ་ན།
 6. མེ། ཨང་གུ་རེ།
 7. མེ། ཨོ།
 8. མེ། ཨོ་རེ་ན།

རྟི་ཞེས་བྱ་བ་ནི་རྟི་གཏུ་ནི་ན་¹མཉུ་སྒྲིལ་བ་དང་བུཡུ་བེགའོ།²
 ཀོ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཀོས་ལ་³ན་བཟོ་རྟུ་ར་⁴དང་། སུ་རུ་བཞྲིའོ། ཉི་
 བའི་ཞིང་ངོ་། ༡༡ །

ཀ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཀ་ལིང་ག་⁵ན་སུ་སྒྲུབ་⁶དང་བུ་མ་དེ་བྲིའོ།⁷
 ལ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ལ་མ་པ་⁸ཀ་ན་བཟོ་སྒྲུབ་⁹དང་། སུ་སྒྲུབ་⁹
 ཚན་དོ་ཉའོ། ༡༢ །

-
1. ཡུ ཏུ་ནི་ན་
 2. ཡུ བུཡུ་བེགའོ།
 3. སྒྲ། ‘ཀོ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཀོས་ལ་’ ཞེས་པ་མེད།
 4. ཡུ བཟོ་རྟུ་ར་ཡི་ཚབ་ཏུ་མཉུ་བེལ།
 5. བེ། ཀ་ལིང་ཀ་ སྒྲ། ཀ་ལོ་ཀ་
 6. ཡུ བད་ཏ།
 7. བེ། ག་མ་དེ་བའོ།
 8. སྒྲ། སྒྲ།
 9. སྒྲ། སྒྲ་བྲི།

ཀྲ་¹ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཀྲ་²མ་དྲུག་རབ་དང་ཉལ་ཀྲཱོའོ།³
 ཉི་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཉི་མུལ་ལ་ན་⁴བརྒྱུ་ལྷ་དང་ཁག་ན་ཉོ།⁵ །ཉི་བའི་
 ཚན་དོ་ཉོ། །གསུང་གི་འཁོར་ལོ་སྟེ་ས་ལ་གྱུ་བའོ། ༡༩ །

ཤེ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཤེ་ཉལ་ལྷ་ན་⁶མ་དྲུག་དང་ཙ་ཀྲ་བའོ།⁷ ཤེ་
 ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཤེ་ཉལ་དེ་བཟུ་ན་རྩ་བརྒྱུ་དང་ཁག་རྩ་ཉོ། །འདུ་བ་ཙན་
 རོ། ༢༠ །

སྟོ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་སྟོ་རྩ་ལྷ་ན་⁸ཉལ་གྱི་བ་དང་། ཤྟོ་རྩ་ཉོ།⁹
 སུ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་སུ་བརྒྱུ་རྩ་ལ་ཞུ་ཀྲ་གསུ་¹⁰དང་ཙ་ཀྲ་བ་རྩ་ཉོ།
 ཉི་བར་འདུ་བ་ཙན་རོ། ༢༡ །

-
1. ཤེ། ཀ
 2. ཤེ། ཀ་ན་ཙ་ན།
 3. ཤེ། ཉལ་ཀྲཱོའོ།
 4. ཤེ། ཉི་མུལ་ལ་ན།
 5. ཤེ། ཁག་ན་ཉོ།
 6. ཤེ། ཤེ་ཉལ་ལྷ་ན།
 7. ཤེ། ཤེ་ཉོ། ཤེ། ཤེ་ཉོ།
 8. ཤེ། ཤེ་རྩ་ན།
 9. ཤེ། ཤྟོ་རྩ་ཉོ།
 10. ཤེ། ཤེ་རྩ་

ན་¹ཞེས་བྱ་བ་ནི་ནུག་ར་ན་གྲི་དེ་རྒྱ་དང་སྤྲི་བྲོའོ། །སི་ཞེས་
བྱ་བ་ནི་སི་ན་རྒྱ་དེ་ག་ན། པ་རྒྱ་ན་དེ་ག་ར་²དང་། མ་རྒྱ་བྲོའོ།
དུར་ཁྲོད་དོ། ༡༥ །

མ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་མ་རྒྱ་དེ་ག་ན་³བེ་ཅེ་ན་དང་ཅ་ཀྱ་བར་དེ་ནིའོ།
ཀྱ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཀྱ་ལུ་རྒྱ་ན་བཟླ་ས་དྲ་དང་མ་རྒྱ་བྲོའོ། །ཉི་བའི་དུར་
ཁྲོད་དོ། །སྤྲི་འཁོར་ལོ་སྤེ་ས་འོག་ན་སྤྲི་བྲོའོ། ༡༦ །

ཕུ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ལ། ཕུ་ལ་སོགས་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་མདོར་
བསྟན་པའོ། །ཕུ་སྤྲི་ར་⁴མལ་ལ་ཞེས་པ་ནི་རྒྱས་པར་བཤད་པའོ། །དེ་ལྟར་ཀྱ་ན་
ལ་སྤྲི་ར་དེ། ཐམས་ཅད་དུ་གོ་སྤྲོའོ། ༡ - ༡༧ །

ཀྱ་ཀྱ་སྤྲི་⁵དང་ཅུ་ལུ་ཀྱ་སྤྲི་⁶དང་གུ་རྒྱ་སྤྲི་དང་གུ་ཀྱ་རྒྱ་⁷སྤྲི་ནི་སྤྲི་གས་
སྤྲོའོ།⁸ ༡༨ །

-
1. མེ། རྒྱ།
 2. བེ། བྲ། ལོ་གྲི་བྲ་དང་།
 3. བྲ། མ་རྒྱ་དེ་ག་ན། མེ། དེ་གེ།
 4. བེ། ཕུ་སྤྲི།
 5. བེ། ཀྱ་ཀྱ་སྤྲི། བྲ། ཀྱ་ཀྱ་སྤྲི།
 6. བེ། ཅུ་ལུ་ཀྱ་སྤྲི། བྲ། ཅུ་ལུ་ཀྱ་སྤྲི།
 7. བོད་འབྲུར་པར་མ་རྒྱ་མས་སྤྲི་སྤྲི་ཀྱ་ར་ཞེས་འདུག་ཀྱང་འདིར་རྒྱ་དེ་དང་མཐུན་པར་
'གུ་ཀྱ་རྒྱ་' ཞེས་བཞག་ཡོད།
 8. རྒྱ་དེ་ལེས་ (མུཁེ) མོ་རྒྱ་དོ།

ཁྱེད་ཀྱི་འགྲོ་ལུ་མཐོང་གི་ཀུན་ཏུ་སྤྱོད་པ་ལས་ལྷོད་གནས་ཀྱི་མེས་
བསྟན་པ་སྟེ་ལྟ་བུ། །

འདི་ནི་ངེས་པར་བཤད་པ་ལྟ་བུ། །

1. རྒྱ་དཔེ་པ་ ‘ཅེས་’ ཞེས་ཀྱང་གསལ།

2. དེ་ ལྟ་ ཀྱིས།

ངེས་པར་བསྟན་པ་དྲུག་པ།

དེ་ནས་བདག་པོ་སོགས་ཀྱང་གྱི། |

མཚན་མ་ཕྱག་གྱི་ཚོགས་རྣམས་དང་། | |

རང་མདོག་ཕྱག་མཚན་བཞུར་ཚུལ་རྣམས། |

ཁྱད་དུ་སྤྲས་པ་ངེས་པར་བྱ། ༡ |

དེ་ནས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ལ། བདག་པོ་སོགས་ཀྱང་གྱི་མཚན་
མ་ཕྱག་གྱི་ཚོགས་རྣམས་དང་ཞེས་པ་ནི་ལྟ་བུམས་ཅད་ཀྱི་བདག་པོ་ནི་བཅོམ་
ལྷན་འདས་སོ། |སོགས་པའི་སྤྲས་¹དྲི་རྩེ་ཡག་མོ་ལ་སོགས་པ་ཡོངས་སུ་
གཟུང་ངོ་། |དེ་རྣམས་ཀྱི་ཕྱག་མཚན་དང་བཅས་པའི་ཕྱག་མཚན་གྱི་ཚོགས་
ངེས་པར་བྱ་ཞེས་པ་གཞན་དུ་སྤྲས་སོ། |བཞེད་ཅེས་²པ་ལྷག་མའོ། |རང་
མདོག་ཕྱག་མཚན་བཞུགས་ཚུལ་རྣམས། |ཞེས་པ་ནི་ལྟ་བུམས་ཅད་ཀྱི་བདག་
པོའི་སྤྲ་མདོག་ལ་སོགས་པ་ཡང་ངོ་། |ཁྱད་དུ་སྤྲས་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཁྱས་པའི་
ཁྱད་དུ་སྤྲས་པ་འདིར་བཞེད་ཅེས་དགོངས་པའོ། ༡ |

ཁྱལ་ཆེན་གྱི་ཉེ་རྒྱལ་ནི།³ |

གདུག་པ་ཐམས་ཅད་རབ་འཛུམས་པ། |

1. གསེས་སྤྲས་ནི།

2. གསེས་བཞེད་པ་ཅེས།

3. ལྷ་ 'ནི' མི་སྤང་།

ཕུག་གཉིས་ཡང་དག་འབྱུང་པ་དང་། །

གཉིས་ཀྱིས་སྒྲུང་པོའི་པགས་པ་འཛིན། ༣ །

དཔལ་ཉི་རུག་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ནི་གོ་སྟོན། །ཕུག་གཉིས་ཡང་
དག་འབྱུང་པ་དང་། །ཞེས་བྱ་བ་ནི་འབྱུང་པའི་ཕུག་གཉིས་ཀྱིས་དོ་མི་དང་སྤྱིལ་
བྱ་བསྐྱམས་སོ་ཞེས་པ་ལྟག་མའོ། ༣ །

གཡས་པའི་ལྷག་མར་²དག་སྟ་མདུང་། །

ཅེ་གསུམ་གྱི་གྲག་རུམ་རྩུ³ །

གཡོན་གྱི་ལྷག་མར་ཁ་རྒྱུ་བསྐྱེད་། །

ཐོད་པ་དམར་ཆེན་ཞགས་པ་དང་། ༣ །

གཡས་ཀྱི་ལྷག་མར་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཕུག་གཡས་ཀྱི་ལྷག་མ་རྣམས་སུ་ཕུག་
མཚན་འདི་རྣམས་བསྐྱམས་ཞེས་པའི་དོན་རྟོ། །ཐོད་པ་ཁྲག་གིས་བཀང་བ་
ཞེས་བྱ་བ་ནི། །ཁྲག་གིས་བཀང་བའི་ཐོད་པའོ། །མགོ་བོ་ནི་ཚངས་པའི་
མགོ་བོའོ། ༣ །

-
1. གྲི་ འབྱུང་བ།
 2. རྒྱ་དཔེར། ‘གཡས་པའི་ལྷག་མར་’ ཞེས་པ་མེད།
 3. གྲི་ རུམ་རྩུ།

ཆངས་པའི་མགོ་པོ་རྣམ་བཤད་དོ།¹ |

བཅུ་གཉིས་ཀྱིས་ནི་བརྒྱན་པ་ཡིན།² |

ཐོད་པའི་ཕྱང་བའི་མཆོད་ཕྱིར་ཐོགས། |

བརྒྱ་ཕྱེད་པར་ནི་ཤེས་པར་བྱ། ུ |

གཡོན་གྱི་ལྷག་མར་ཞེས་བྱ་བ་ནི་སྤར་གྱི་བཞིན་དུ་ཕྱག་གཡོན་གྱི་ལྷག་མ་
རྣམས་ཀྱི་ཕྱག་མཚན་³རྣམས་བཤད་དོ། |བཅུ་གཉིས་ཀྱིས་ནི་བརྒྱན་པ་ཡིན།
ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཕྱག་མཚན་བཅུ་གཉིས་པོ་བསྐྱམས་པ་འདིས་ཕྱག་བཅུ་གཉིས་བརྒྱན་
པར་གྲགས་པའི་བཅོམ་ལྷན་འདས་སྒྲོམ་མོ་ཞེས་བྱ་བའི་དོན་དོ། |ཐོད་པའི་
ཕྱང་བའི་མཆོད་ཕྱིར་ཐོགས། |བརྒྱ་ཕྱེད་པར་ནི་ཤེས་པར་བྱ། |ཞེས་བྱ་བ་ནི་
བརྒྱ་ཕྱེད་པའི་མགོ་པོའི་ཕྱང་བ་འཕྱང་བའོ། |མཆོད་ཕྱིར་ཐོགས་ཞེས་པ་ནི་
མཆོད་ཕྱིར་ཐོགས་འཆང་བའོ། ུ |

བཅོམ་ལྷན་ཡུམ་ནི་མདུན་དུ་བཞུགས།⁴ |

ཞལ་གཅིག་འབར་བ་ཆེན་པོ་སྤེ། |

1. བོ། སྒྲ། ལྷ། དོ། ཕྱ། རྣམས་བཤད་པ་སྤེ།
རྒྱ་དཔེར། (ཨབས་བྱེད་སྐྱེད་ཀྱི་ལྷག་མར་ཡང་དག་བཤད།)
2. རྒྱ་དཔེར། (ཙྰ་འབྱོར་སྤྱོད་ཀྱི་ཙྰ་འབྲེལ་ལྷན་པ་ཡིན།)
3. བོ། གསེར། རྣམས་ཀྱི།
4. ཕྱ། མདུན་བཞུགས་པ།

འཕྱུང་པ་ཡིས་ནི་ཐོད་པ་དག །

གདུག་པའི་བདུད་ཀྱི་ཁྲག་བཀང་བསྐྱེད་མས།¹ ཡ །

བཙུག་ལྷན་འདས་ཡུམ་ནི་མདུན་དུ་བཞུགས་ཞེས་པ་ནི། བཙུག་ལྷན་
 འདས་མ་མདུན་ན་²བཞུགས་པ་ལ་གཟིགས་ཞེས་པ་ལྷག་མའོ། འཕྱུང་པ་
 ཡིས་ནི་ཐོད་པ་དག གདུག་པའི་བདུད་ཀྱི་ཁྲག་བཀང་བསྐྱེད་མས། ཞེས་པ་
 ནི་འཕྱུང་པའི་ཕྱག་རྒྱ་གཡོན་པ་ན་³གདུག་པའི་ཁྲག་དང་རྒྱ་མས་བཀང་བའི་ཐོད་པ་
 བསྐྱེད་མས་པའོ། ཡ །

གཡས་པས་རྟག་དུ་སྤྲིགས་མཛུབ་དང་། །

མ་རུངས་པ་ཡི་གྲི་གྲག་བསྐྱེད་མས། །

སྐྱུ་མདོག་དམར་ཞིང་ཆེར་འབར་བ། །

ཐོད་དུམ་བརྒྱན་པའི་⁴སྐྱུ་རགས་ཅན། ཅ །

གཡས་པས་རྟག་དུ་སྤྲིགས་མཛུབ་དང་། མ་རུངས་པ་ཡི་གྲི་གྲག་⁶
 བསྐྱེད་མས། ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཕྱག་གཡས་པ་ན་གདུག་པ་ཅན་ལ་བསྤྲིགས་པའི་

1. རྒྱ་དཔེ་ཡ (དུཤྲུམ་རྒྱུ་སྤྲིག་རམ) གདུག་པའི་བདུད་སྐྲག་ཀྱི་ཁྲག་བསྐྱེད་མས།

2. བྲ། ནི།

3. བྲ། གཞེས་ ནི།

4. རྒྱ་དཔེ་ཡ (ཁུ་མུ་ཆེད) དུམ་བྱ་བརྒྱན་པ།

5. བྲ། གཞེས་ པའི།

6. རྒྱ་དཔེ་ཡ (བཟློག་)

སྒྲིགས་མཛུགས་དང་བཅས་པའི་དོན་ཅུག་པར་ཀུན་དུ་བསྐྱམས་པའོ། །ཐོད་དུམ་
བརྒྱན་པའི་སྒྲིག་རགས་ཅུན། །ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཐོད་པ་དུམ་བྱར་བྱས་པའི་སྒྲིག་
རགས་ཀྱིས་ཆེད་པའི་ཕྱོགས་བརྒྱན་པའོ། ། ༦ །

དབུ་སྐྱོལ་ཞིང་སྤུན་གསུམ་སྐྱོ།

མཆེ་བ་གཅིགས་པ་འཛིགས་སུ་རུང་།

བྱིན་པ་ཞབས་4ཀྱིས་ལེགས་པར་འབྱུང།

གཉིས་ཀ་ཁ་སྐྱར་རྒྱལ་གྱིས་བཞུགས།⁵ ལ །

གཉིས་ཀ་ཁ་སྐྱར་ཚུལ་གྱིས་བཞུགས། །ཞིས་བྱ་བ་ནི་བཅོམ་ལྷན་འདས་
 དང་། བཅོམ་ལྷན་འདས་མའི་སྐྱེས་སྤྱུངས་པར་ཞུགས་གིང་ཁ་སྐྱར་བ་ཞིས་བྱ་
 བའི་དོན་དོ། ལ །

མཁའ་འགྲོ་མ་སྟགས་བཞི་པོ་ནི།

ཁྲི་བོ་སྐད་གྱོང་གི་གྲུ་གླིང་།

1. ཅོ་ པེ་ ཀུན་དུ།
2. པེ་ བསེས་ རྒྱ་རགས།
3. སུ་ ཅུང་ཟད་མཆེར་བཅིགས།
4. རྒྱ་ ཞགས།
5. ཅུ་དཔེས་ (ལྷན་ལོ་ སུ་ཁྱེད་ལ་མ) བཞིས་ཀ་ཁ་སྐྱར་བཞིས་སུ་མེད།
6. ཅུ་དཔེས་ (བཞི་ཀྱི་) མཚན་ཆ།

སྐྱུ་ལ་སྤྱན་གསུམ་¹ཀྱི་ལྷ་སྟགས། |

སྐྱུ་གྲོལ་བས་ནི་རྣམ་པར་བརྒྱན།² ས |

མཁའ་འགྲོ་མ་སྟགས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་མཁའ་འགྲོ་མ་ལ་སྟགས་པའོ།

བཞི་པོ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་བཞི་པོ་རྣམས་སོ། །ཁྲྀག་སྤྱོད་ཅེས་བྱ་བ་ནི་ཐམས་ཅད་ཀྱི་
གཡོན་ན་ཁྲྀག་དང་བཅས་པའི་ཐོད་པ་འཆང་བའོ།³ །མཚོན་ཆ་རྣམས་ཞེས་
བྱ་བ་ནི་དེ་བཞིན་དུ་གཡས་ན་གྲི་གུག་གོ། །སྐྱུ་ལ་སྤྱན་གསུམ་⁴ལྷ་ཀྱི་ལྷ།
སྟགས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་སྐྱུ་ལ་ཇི་ལྟར་རྟགས་པས་ལྷ་ཀྱི་ལྷ་འཆང་བའོ། །སྟགས་
པའི་སྤྱོད་དཔུང་རྒྱན་ལ་སྟགས་པ་ཡོངས་སུ་གཟུང་ངོ། །སྐྱུ་གྲོལ་བས་ནི་རྣམ་
པར་བརྒྱན། །ཞེས་བྱ་བ་ནི་སྐྱུ་གྲོལ་བས་མཛེས་པའོ། ས |

དཔའ་བོ་ཉི་ཤུ་ཅུ་བཞི་ནི། |

ལྷ་ཀྱི་ལྷ་ལ་སྟགས་པས་བརྒྱན། |

ལྷ་གཉིས་ཞེས་གཅིག་སྤྱན་གསུམ་⁵པ། |

རལ་པའི་ཅོད་པན་དར་གྲིས་བཅིངས། ཅ |

དཔའ་བོ་ཉི་ཤུ་ཅུ་བཞི་ནི། །ཞེས་བྱ་བ་ནི་དཔའ་བོ་ཉི་ཤུ་ཅུ་བཞིའོ།

ལྷ་ཀྱི་ལྷ་ལ་སྟགས་པས་བརྒྱན། །ཞེས་བྱ་བ་ནི་མགུལ་རྒྱན་ལ་སྟགས་པའི་ལྷ་

1. རྒྱ་དཔེས་ 'སྤྱན་གསུམ་' ཞེས་པ་མཛད།
2. རྒྱ་དཔེས་ (མི་རྒྱུ་རྒྱུ་) རྣམ་པར་མཛེས།
3. རྒྱ་དཔེས་ 'འཆང་བའོ་' མི་འདུག
4. རྒྱ་དཔེས་ 'སྤྱན་གསུམ་' མི་འདུག
5. རྒྱ་དཔེས་ 'སྤྱན་གསུམ་' ཞེས་པ་མཛད།

ཐུ་ལྷ་འཆང་བའོ། །སྐྱེས་པའི་སྤྱུང་དཔུང་གྱུན་དང་ཞབས་གདུབ་ལ་སྐྱེས་པ་
གཟུང་ངོ། །ཕུག་གཉིས་ཞལ་གཅིག་ཅེས་བྱ་བ་ནི། ཞལ་གཅིག་པ་ཕུག་
གཉིས་པའོ། །རལ་པའི་ཙུང་པན་དར་གྱིས་¹བཅིངས། །ཞེས་བྱ་བ་ནི་དང་
པོའི་མང་པོའི་ཆིག་གོ། ༩ །

དོ་ཤིང་བྱས་ལེགས་འཁྲུང་ཅིང་། །

ཆགས་པ་ཆེན་པོ་ཤིང་ཆགས་མཛད།² །

ནལ་འབྱོར་མ་ནི་ཉི་ཤུ་བཞི། །

དབུ་སྐྱོ་གྲོལ་བས་³ནམ་པར་བརྒྱན།⁴ ༡༠ །

དོ་ཤིང་བྱས་ལེགས་འཁྲུང་ཅིང་། །ཆགས་པ་ཆེན་པོ་ཤིང་ཆགས་
པས། །ཞེས་⁵པ་ནི་ཆགས་པ་ཆེན་པོ་ནི་ལྷན་ཅིག་སྤྱུང་པའི་དགའ་བའོ། །
དེའི་དོན་དུ་ཤིང་སུ་ཆགས་པའོ། །ཆགས་པ་ཆེན་པོས་དེའི་ཤིང་སུ་ཆགས་
པའི་ཐུ་དེའི་ཕྱིར་ན་འཁྲུང་པར་བཞུགས་པའི་ཕུག་གཉིས་ན་དོ་ཤིང་དང་གྲིལ་བུ་
བསྐྱམས་པ་ཡིན་ནི་ཞེས་དགོངས་པའོ། ༡༠ །

1. གསེས་པ་ དར་གྱི།

2. བོ། མཉེས་པར་མཛད།

3. སྤྱུ་ སྐྱོ་གྲོལ་བས་ནི།

4. ཐུ་དཔེས་ (ཁྱིའི་དུམ་) ནམ་པར་མཛེས།

5. བོ། གསེས་པ་ ཞེས།

6. བོ། གསེས་པ་ 'དང་' ཞེས་པ་མཛད།

ཕྱག་ཚུ་ལྔ་¹ལ་སོགས་པ་དང་། །

སྤྱི་བོར་ནོར་བུས་རྣམ་པར་བརྒྱན།² །

རྣལ་འབྱོར་སྣོད་དང་བཅས་པས་འབྱུང། །

སྤྲིགས་མཛུབ་³ཀྲིས་ནི་གྲི་གྲག་བསྐྱམས། ་་ །

ཕྱག་ཚུ་ལྔ་ལ་སོགས་པ་ནི་⁴སྤྱི་གཙུག་ནོར་བུ་དང་བཅས་པའི་ཕྱག་ཚུ་ལྔ་ལ་
སོགས་པ་འཆང་བའོ་ཞེས་བྱ་བའི་དོན་དོ། །འོག་པག་དག་གིས་བརྒྱན་ཞེས་བྱ་བ་
ནི་རྟེན་པའི་ཆ་ལ་སྤྱི། སྐར་རགས་ཀྲིས་བརྒྱན་པའོ། །རྣལ་འབྱོར་སྣོད་དང་
བཅས་པས་འབྱུང། །ཅེས་བྱ་བ་ནི་གཡོན་གྲིས་ཐོད་པ་བསྐྱམས་པའོ། ་་ །

དེ་རྟུག་དཔལ་ལ་སོགས་ཀྱི། །

གཡས་ཀྱང་པ་ཡི་གནས་པས་བཞུགས། །

1. རྒྱ་དཔེར། (ཅད་མུན་) ཕྱག་ཚུ་བཞི།
2. རྒྱ་དཔེར། (དྲི་ནེ་དྲུ་མེལ་ལུ་) སྤྱན་གསུམ་སྐར་རགས། ཆིག་ཀང་འདི་གཉིས། ཕྱག་ཚུ་བཞི་
ཡི་སྤྱི་བོ་རྩ། །ནོར་བུ་སྤྱན་གསུམ་སྐར་རགས་བརྒྱན། །ཞེས་བསྐྱུར་ན་རྒྱ་དཔེ་དང་མཐུན་
ཆེ་བར་སྣང་།
3. རྒྱ་དཔེར། (དུཙ་དམན་) གདུག་པར་སྤྲིགས་མཛུབ།
4. རྒྱ་དཔེར། (ཞུ་དི་ཤེན། ཀེལུ་རུ་དཔེ་) སོགས་པའི་སྤྱི་འབས་གདུབ་ལ་སོགས་པའོ།
5. རྒྱ་དཔེར། (ཡོག་པརྟི་ཀུ་ལུ་ཐུལ་) རྣལ་འབྱོར་འདབ་མར་དམིགས་པས།

མགུར་ཆུ་¹དཔུང་བྱུན་²ནྟ་ཆ་དང་། །

ཐོད་པའི་སྤྱང་བས་³ནྟ་མ་པར་བརྒྱན། ༡༣ །

ཉི་རུ་ཀ་དཔལ་ལ་སོགས་ཀུན། །ཞེས་བྱ་བ་ནི། དཔལ་ཉི་རུ་ཀ་ལ་
སོགས་པའོ། །ཀུན་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཐམས་ཅད་དོ། །གཡས་བརྒྱང་བ་⁴ཡི་
གནས་པས་བཞུགས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་དང་པོའི་མང་པོའི་ཆིག་གོ། །དཔལ་ཉི་རུ་
ཀའི་ཁྱད་པར་གང་ཞེ་ན་གསུངས་པ། མགུར་ཆུ་ཞེས་པ་ལ་སོགས་པའོ། ༡༣ །

མཆོད་ཕྱིར་ཐོགས་དང་ཐལ་བ་ནི། །

ཕྱག་བྱ་བྱུག་པར་རབ་དུ་བཤད། །

ཕ་རོལ་ཕྱིན་བྱུག་ནྟ་མ་དག་པས། །

ཕྱག་བྱ་བྱུག་གིས་བརྒྱན་པ་ཡིན། ༡༣ །

མཆོད་ཕྱིར་ཐོགས་དང་ཐལ་བ་ནི། །ཕྱག་བྱ་བྱུག་དུ་རབ་དུ་བཤད། །
ཅེས་བྱ་བ་ནི་རིམ་པ་འདིས་མཆོད་ཕྱིར་ཐོགས་དང་ཐལ་བ་སྟེ། གཉིས་པོ་དང་
བཅས་⁵པའི་མགུར་ཆུ་ལ་སོར་པ་ཕྱག་བྱ་བྱུག་གིས་བརྒྱན་པ་ཞེས་བྱ་བའི་དོན་དོ། །
ཕ་རོལ་ཕྱིན་བྱུག་ནྟ་མ་དག་པས། །ཕྱག་བྱ་བྱུག་གིས་བརྒྱན་པ་ཡིན། །ཞེས་

-
1. ལྷ། མགུལ་བྱུན།
 2. རྒྱ་དཔེས། (རུཅཀ) གདུབ་བྲ།
 3. རྒྱ་དཔེས། (གི་རོམ་ཆི) རྒྱུ་གཙུག་ཉོར་བྲས།
 4. བོ། གསེས། བའི།
 5. བོ། 'པའི་' ཞེས་པ་མི་འདུག

བྱ་བ་ནི་ཕ་རོལ་དུ་ཕྱིན་པ་བྱུག་ནམ་པར་དག་པའི་ཕྱག་རྒྱ་བྱུག་གིས་བཅོམ་ལྷན་
འདས་ཀྱི་སྐྱབས་བརྟན་པ་ཡིན་ནོ་ཞེས་དགོངས་པའོ། ༡༩ །

སྐྱབས་བརྟན་ཕྱག་སྐྱོད་ཅི། །

སྐྱབས་བརྟན་འོག་པག་དག་གིས་བརྟན།¹ །

སྐྱབས་བརྟན་ཕྱག་དཔྱེ་བ་ཡིས།² །

ཡི་གེ་གསུམ་གྱི་དངོས་གྲུབ་ཀྱི།³ །

ངོ་བོར་བདག་ཉིད་བསྟོམ་བྱ་ཞིང་།⁴ །

དངོས་གྲུབ་འདོད་པས་གཞན་མི་བྱ།⁵ གྲ། ༡༠ །

སྐྱབས་བརྟན་ཕྱག་དཔྱེ་བ་ཡིས། །ཡི་གེ་གསུམ་གྱི་དངོས་གྲུབ་ཀྱི།⁶
ཞེས་བྱ་བ་ནི་སྐྱལ་སོགས་པའི་ཡི་གེ་གསུམ་གྱི་ངོ་བོ་ནི་དེའི་གཟུགས་ཀྱིས་བསྟེན་
པའོ། །དེ་ལས་སྐྱེས་པའི་ངོ་བོ་ནི་ཡི་གེ་རྒྱ་གཞི་རྒྱུ་གི་རྣམ་པ་སྟེ། ཡི་གེ་གསུམ་གྱི་ངོ་
བོའོ། །དེ་བས་ན་དེའི་ཕྱིར་ན་བསྟེན་པ་ཞེས་གོ་བར་བྱའོ། །ངོ་བོར་བདག་
ཉིད་བསྟོམ་བྱ་ཞིང་། ཞེས་བྱ་བ་ནི་དཔལ་བདེ་མཆོག་གི་ངོ་བོར་བདག་ཉིད་
བསྟོམ་པར་བྱའོ། །དངོས་གྲུབ་འདོད་པས་གཞན་མི་བྱ། ཞེས་བྱ་བ་ནི་

1. ཆེག་རྒྱུ་འདི་གཉིས་རྒྱ་དཔེར་མི་གསལ།

2. ལྷ། ཆེག་རྒྱུ་འདི་མི་འདུག

3. ལྷ། དངོས་པོ་ནི། རྒྱ་དཔེར། (སྐྱབས་བརྟན་) ངོ་བོར་ནི།

4. ལྷ། ཡི།

5. རྒྱ་དཔེར། (ཀེམ་རྒྱུ་) གཞན་ཅི་བྱ།

6. རྒྱ་དཔེར། (སྐྱབས་བརྟན་) ངོ་བོ་ནི།

1 ཁྱ་གདོང་ལ་སྟགས་རྣམ་པ་བཞི། |

ཁ་ཏྲེ་ཁ་དང་ཐོད་པ་ཐོགས། |

སྐྱུ་ལ་ཕྱག་རྒྱ་ལྟ་སྟགས་ལྟ།² |

སྟོ་རྣམས་ཐམས་ཅད་བསྐྱང་བྱེད་པ། |

3 རྩ་ལ་གཡས་རྒྱང་ཡང་དག་བཞུགས། ༡༦ |

ཁྱ་གདོང་ལ་སྟགས་རྣམ་པ་བཞི། | ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཁྱ་གདོང་མ་ལ་སྟགས་
པ་བཞིའོ། | ཐམས་ཅད་རྒྱང་ནི་སྟོ་སྟོང་སྟེ། | ཞེས་བྱ་བ་ནི་འདི་དག་ཐམས་
ཅད་སྟོ་བཞི་ཀ་ནས་བཞུགས་པའོ་ཞེས་བྱ་བའི་དོན་རྟོ། ༡༦ |

1. ཐོད་འབྱུར་གཞན་རྣམས་སྟེ་ཆེགས་བཅད་བཅུ་དྲུག་དང་བཅུ་བདུན་པ་གཉིས་ཀྱི་ཆེག་རྒྱང་སྟེ་
ཕྱི་འོ་བང་རིམ་དང་འབྱུར་རྒྱང་ཟད་མི་མཐུན། ཁྱ་གདོང་ལ་སྟགས་རྣམ་པ་བཞི། ཐམས་
ཅད་རྒྱང་ནི་སྟོ་སྟོང་སྟེ། ཁྱུ་ལ་ཕྱག་རྒྱ་ལྟ་སྟགས་ལྟ། |
གཤིན་ཏེ་བཞན་སྟགས་མཆམས་བཞིར་རྟེ། འདི་དག་ཞབས་གཉིས་བརྒྱང་པ་དང་།
ཞེས་འདུག་རྒྱང་འདིར་རྒྱ་དཔེ་དང་མཐུན་ཆེ་བར་མཐོང་སྟེ་ཕྱག་བྲག་བཀའ་འབྱུར་ལྟར་བཞག་
ཡོད།
2. ཁ་ཏྲེ་ཁ་.....ལྟ། བར་གྱི་ཆེག་རྒྱང་གཉིས་པོ་རྒྱ་དཔེར་མི་གསལ།
3. འབྱུར་གཞན་རྣམས་སྟེ། དེ་དག་ཞབས་གཉིས་རྒྱང་པ་དང་། ཞེས་འདུག་རྒྱང་ཕྱག་
བྲག་ཏུ་གསལ་བའི་གོང་བཞོད་ཆེག་རྒྱང་འདི་བཞིན། ཞབས་ཀྱིས་རྩ་ལ་མནན་ནས་སྟེ།
གཡས་རྒྱང་བ་ཡི་གནས་པས་བཞུགས། ཞེས་བསྐྱར་ན་རྒྱ་དཔེ་དང་མཐུན་ཆེ་ཞིང་ཆེགས་
བཅད་དུ་རྒྱང་པའང་ཆང་བར་སྟོང་།

ནལ་འབྱོར་མའི་ཀུན་དུ་སྤྱོད་པ་ལས། རང་གི་མཚན་མ་¹དང་།
ཞལ་དང་། དུག་གྱ་དང་། སྐྱུ་མདོག་དང་མཚན་ཆ་བསྟན་པ་²སྟེ་
བྱས་པའོ། ॥

མཁའ་འགྲོ་མ་བསྐྱེད་ཇི་བཞིན་དུ། ཞེས་པ་ནི་མཁའ་འགྲོ་མ་
ལ་སོགས་པའི་མདོག་ཇི་ལྟ་བུར་གནས་པ་ཞེས་པ་ལྷག་མའོ། ལྷ་གདོང་³ལ་
སོགས་དབྱེ་བ་ཉིད། ཆེས་བྱ་བ་ནི་དེ་བཞིན་དུ་ལྷ་གདོང་མ་ལ་སོགས་པའི་
སྐྱུ་ཁྱེ་བྱས་ཀྱང་སོ་སོར་གནས་ཞེས་པའི་དོན་རྟོ། དེ་ལྟར་ཞེས་བྱ་བ་ལ་
སོགས་པ་ནི་མཇུག་བསྟུ་བའོ། མ་ལུས་འཁོར་ལོར་གནས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་མ་ལུས་
པར་འཁོར་ལོ་ལ་གནས་པ་རྣམས་སོ། མདོག་དབྱེའི་ཆོ་གའི་རིམ་བཞིན་ནོ།
ཞེས་པ་ནི་དང་པོའི་དོན་རྟེ།⁴ འདི་ནི་མཚན་པ་སྟེ། དུག་གཉིས་ཀྱང་རིག་
པར་བྱའོ། ༡༥ །

འདི་ནི་ངེས་པར་བསྟན་པ་བྱས་པའོ། ॥

-
1. ལྷ། རང་བཞིན་ཁ་དོག
 2. ལྷ། བསྟན་མས་པ།
 3. གསེས། ལྷ་གདོང་མ།
 4. དེ། གསེས། དོན་རྟོ།

ངེས་པར་བསྐྱེད་པ་བདུན་པ།

དེ་ནས་གོ་ཆ་¹གཉིས་པོ་ནི། །

གང་གེས་པས་ནི་²སྐྱུར་བ་སྤ། །

སྐྱུབ་པ་པོ་ཡིས་གྲུབ་ཐོབ་པ། །

སྐྱུད་དུ་སྐྱས་པ་³ངེས་བཤད་བྱ། །

དེ་ནས་གོ་ཆ་གཉིས་པོ་ནི། །ཞིས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ནི། བཙམ་ལྷན་
འདས་དང་བཙམ་ལྷན་འདས་མའི་གོ་ཆའི་⁴སྐྱགས་དུག་ཆན་གཉིས་སོ། །ངི་
ལྷར་ཞི་ན། གསུངས་པ། སྐྱུད་དུ་སྐྱས་པ་ངེས་བཤད་བྱ། །ཞིས་བྱ་བ་ནི་དུག་
པ་གཉིས་པོ་དེས་ངེས་པར་བསྐྱེད་པ་ནི་སྐྱས་པའི་སྐྱུད་དུ་སྐྱས་པ་སྤ། གང་གེས་
དེའི་ངེས་པར་གྱུར་པའི་སྐྱུད་འདིར་སྐྱས་པ་སྐྱུད་འདིར་གསལ་བར་བསྐྱེད་པར་བྱ་
བའི་དོན་དོ། །

1. ལྷ། ཆོ་ག

2. སྤ། གང་གེས་གེས་ནས།

3. སྤ། པའི།

4. གསེས། ཁྱ་གདོང་ལ།

5. པོ། ཚུན།

6. སྐྱུད་པེས། (ཏཱ་ལའི་བོ་དེས་)

ཨྱོ་རྟ། རྣམ་¹ རྟ། སྣུ་ རྟ།² བྱོ་རྟ། རྟ།³ སྟ་ རྟ།
སྟོང་ག་སྟོ་བྱོ་སྟོ་གུ་བྱོ་དང་། དཔུང་པ་མིག་གཉིས་⁴གྱོ་ཆ་⁵སྟུ་རྟ།

ཡན་ལག་ཅིས་བྱ་བ་ནི་ཆོས་ཀྱི་བདེ་སྟོ། ཡན་ལག་ཐམས་ཅད་དོ།
སྟུ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཨྱོ་རྟ་ལ་སྟོགས་པས་སྟོང་ག་ལ་སྟོགས་པ་རྣམས་སྟུ་སྟུ་བར་
བྱའོ་ཞེས་དགོངས་སོ། ༣ །

དང་པོ་རྩོ་རྩོ་སེམས་དཔའ་སྟོ། །

གཉིས་པ་རྣམ་པར་སྟོང་མཇེད་གནས། །

གསུམ་པ་པར་གར་དབང་བྱུ་ལ། །

བཞི་པ་རྟེ་རྟེ་དཔལ་བཤད། ༣ །

ལྷ་པ་རྩོ་རྩོ་མ་སྟོ། །

དུག་པ་ལ་ནི་རྟ་མཆོག་ཡིན། །

དེ་ནི་གྱོ་ཆ་རྣམ་དུག་གིས། །

ཤིན་དུ་བསྐྱེད་ས་པ་ཉིད་ཡིན་ནོ། ༤ །

1. རྟ་དཔེས་ མེ་

2. རྟ་དཔེས་ རྟ།

3. ལྷ་ 'རྩོ' མི་གསལ།

4. རྟ་དཔེས་ 'གཉིས་' མི་སྟོང་།

5. རྟ་དཔེས་ ཞུ།

6. རྟ་དཔེས་ (ཞུ་) མཆོན་ཆ།

དང་པོ་དོན་མཐུན་དཔལ་སྒྲི། ཁྱིམ་གྱི་བཞུགས་པ་དོན་མཐུན་
 དཔལ་དངོས་སུ་འཕྲུལ་པར་མཐུན་པས་བཟུང་བར་བྱའོ་ཁྱིམ་དགོངས་སོ། ཁྱིམ་
 ལྟར་ནམ་པར་སྤང་མཛད་ལ་སོགས་པ་དང་། དོན་མཐུན་མཐུན་པ་མཐུན་པ་མཐུན་
 ཐོགས་སུ་ཡོངས་སུ་བསམ་པར་¹ཐོག་པར་བྱའོ། ३ - ༥ །

ཨྲི་ བྱ། ཧྲིལྲི་² ཧྲིལྲི་ ཧྲིལྲི་³ ཧྲིལྲི་ ཡུ ཡུ།⁴

ལྟོ་བ་སྤྱོད་པ་དེ་བཞིན་ལ། །

སྤྱོད་པ་སྤྱོད་པ་ལྟར་ཆ་ཉིད། ༥ །

ཡན་ལག་ཉི་ཁྱིམ་གྱི་བཞུགས་པ་ཡན་ལག་ཐམས་ཅད་དོ། ༥ །

དང་པོ་དོན་མཐུན་མོ། །

གཉིས་པ་ཡམིནྲི་རུ་བཛྲོད། །

གསུམ་པ་མཛོངས་བྱེད་མ་ཉིད་དེ། །

བཞི་པ་སྤྱོད་པ་ཡམིན་པར་བཤད།⁶ ༦ །

1. བྱ། ཡུ།

2. ཧྲིལྲི་ ཧྲིལྲི་

3. ཧྲིལྲི་ ཧྲིལྲི་ ཧྲིལྲི་

4. ཧྲིལྲི་ ཧྲིལྲི་

5. ཧྲིལྲི་ ཧྲིལྲི་

6. ཧྲིལྲི་ (སྤྱོད་པ་ལྟར་ཆ་ཉིད་ཀྱི་ཀུན་སྤྱོད་མ་གཞི་སོ།)

ལྷ་པ་ཀུན་དུ་སྐྱབ་པར་བྲགས། །

དུག་པ་གདུམ་མོ་ཡིན་པར་བཤད། །

གོ་ཆ་དུག་ཉིད་ཕག་མོ་¹དང་། །

དཔའ་བོ་གཉིས་མེད་རྣལ་འབྱོར་མའོ། །

དཔའ་བོ་གཉིས་མེད་རྣལ་འབྱོར་མ། །ཞེས་བྱ་བ་ནི་དཔའ་བོ་དང་ལྷན་

ཅིག་གཉིས་སུ་མེད་པའི་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་རྣལ་འབྱོར་གྱིས་སྦྲུམས་པར་འབྲུག་པའོ། །

དེ་གང་ལ་ཡོད་པ་དེ་ལ་དཔའ་བོ་གཉིས་སུ་མེད་པའི་རྣལ་འབྱོར་མ་ཞེས་དགོངས་
པའོ། ཅ - ལ །

2རྣལ་འབྱོར་མའི་ཀུན་དུ་སྐྱབ་པ་ལས། གོ་ཆ་གཉིས་བསྟན་པ་སྟེ་
བདུན་པའོ། །

འདི་ནི་ངེས་པར་བསྟན་པ་བདུན་པའོ། །

1. རྒྱ་དཔེ་ (བཟོ་བྱ་རྒྱུ) རྩི་ཆེ་ཕག་མོའོ།

2. རྒྱ་དཔེ་ (ཨིན) 'ཅེས་' ཞེས་ཀྱང་གསལ།

ངེས་པར་བསྟན་པ་བརྒྱད་པ།

དེ་ནས།

གོ་ཆ་གཉིས་པ་བདག་ཤེས་ནས།¹ |

ཡེ་ཤེས་འཁོར་ལོ་རྣམ་བསྟོམས་ནས། |

ཐུགས་དང་ཕྱག་རྒྱའི་སྦྱོར་བ་ཡིས། |

དམ་ཆིག་འཁོར་ལོར་མུར་གཞུག་བྱ། ༡ |

དེ་ནས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ལ་གོ་ཆ་གཉིས་ཞེས་པ་ནི་བསྟན་མ་ཐག་
པ་ཡིས་སོ། །དམ་ཆིག་²ཅེས་བྱ་བ་ནི་དཔལ་བདེ་མཆོག་བདག་ཉིད་རང་གི་སྐྱའི་
གནས་ཇི་ལྟ་བུར་གོ་བཤོ་ཞེས་པ་ལྟག་མའོ། །ཡེ་ཤེས་འཁོར་ལོ་རྣམ་³བསྟོམས་
ནས། །ཞེས་བྱ་བ་ནི་སྤྱིང་གའི་ས་བོན་གྱི་འོད་ཟེར་རྣམས་ཀྱིས་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་འཁོར་
ལོ་⁴སྦྱར་བྱངས་⁵ཏེ། མདུན་དུ་བསྟོམ་པའོ། །གཞུག་བྱ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་གཞུག་
པར་བྱའོ། །མུར་བ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་མཆོད་ཡོན་དང་ཞབས་བསེལ་ལ་མི་ལྟོས་⁶པའོ།

1. མེ། དེ་ནས་གོ་ཆ་གཉིས་ཤེས་ནས།

2. རྒྱ་དཔེར། (ལྷ་རྒྱུ་མེད་ཀྱི་) བདག་ཉིད།

3. བེ། རྣམ་པ།

4. རྒྱ་དཔེར། (རྣམ་པ་སྦྱོར་བའི་) ཡེ་ཤེས་དཀྱིལ་འཁོར་ལ། གསེར་ལ། ཡེ་ཤེས་འཁོར་ལོ།

5. ཅེ། བྱངས།

6. བེ། གསེར་ལ། མི་བཟོས།

ཐུགས་དང་ཕྱག་གྱི་¹ཞེས་བྱ་བ་ནི་འོག་ནས་འཆད་པར་འགྱུར་བའི་ཐུགས་དང་
ཕྱག་གྱི་གཉིས་སོ། །སྟོར་བ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་རྣལ་འབྱོར་པས་སོ། ། ༡ །

ཀྱང་པས་²མནན་ལ་སྟང་དུ་བལྟ། །

སྟང་དུ་ཕེ་གྱི་³སྒྲ་བསྒྲགས་⁴ལ། །

ཕྱོགས་བཅུའི་འཛིག་རྟེན་ཁམས་གནས་པའི། །

དཔའ་བོ་རྣལ་འབྱོར་མ་རྣམས་དགལ། །

ཐུགས་ཀྱིས་ཡང་དག་བསྐྱལ་བ་དང་། །

སྐད་ཅིག་དེ་ལ་སྟུན་བྱང་བ། ། ༣ །

ཀྱང་པ་མནན་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཀྱང་པ་གཡོན་པས་གཡས་པ་མནན་པའོ།
སྟང་དུ་བལྟ་⁵ཞེས་བྱ་བ་ནི་གཡོན་ངོས་ཀྱིས་བྱེན་དུ་བལྟ་བའོ། །སྟང་དུ་ཞེས་བྱ་བ་
ལ་སོགས་པ་ནི་ཁ་ནས་ཕེ་གྱི་སྒྲ་བསྒྲགས་ལ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཡི་གེ་ཕེ་གྱི་ཐུགས་བརྗོད་
པའོ། །ཕྱོགས་བཅུའི་འཛིག་རྟེན་ཁམས་གནས་པའི། །དཔའ་བོ་རྣལ་འབྱོར་
མ་རྣམས་དགལ། །ཅིས་པ་ནི་ཐུགས་འདིས་ཕྱོགས་བཅུའི་འཛིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་
ན་བཞུགས་པའི་དཔའ་བོ་དང་རྣལ་འབྱོར་མ་རྣམས་སྟུན་བྱངས་པར་འགྱུར་རེ་
ཞེས་པའི་དོན་དོ། །ཐུགས་ཀྱིས་ཡང་དག་བསྐྱལ་བ་དང་། །ཞེས་པ་ནི་ཐུགས་

1. ཅོ། ཕྱག་གྱི།

2. ཐྱོ། པ།

3. དེ། གི།

4. རྒྱ། ལྟ། རྒྱོགས།

5. གསེས། བལྟ།

འདི་ཉིད་ཀྱིས་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་བསྐྱལ་བར་བྱའོ། །སྐད་ཅིག་དེ་ལ་སྒྲུབ་ངང་¹
 བྱ། ཞེས་པ་ནི་འཆད་ཡེར་འབྱུང་བའི་ཕྱག་རྒྱས་སྐད་ཅིག་གིས་སྒྲུབ་ངང་ངོ་
 ཞེས་པའི་དོན་དོ། ३ །

མཇུག་མོ་མདུད་³བྱས་གང་མོ་ངེས་པར་སྒྲུབ། །
 མཐེ་བོང་རྩོམ་བཅུན་པོར་ཡང་དག་སྒྲུབ། །
 དེ་ནི་དཔལ་བའི་ཕྱོགས་ཀྱི་⁴དབྱས་གཞག་ལ། །
 གཙུ་ཞིང་གཙུ་ཞིང་བསྐྱར་བ་བྱས་པ་ཡིས། ३ །

བྱ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སྐྱབས་པ་སྒྲེ། དེ་ནི་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཕྱག་རྒྱའོ། །དཔལ་
 བའི་ཕྱོགས་ཀྱི་དབྱས་ཞེས་པ་ནི་དཔལ་བའི་དཀྱིལ་དུའོ། །གཙུ་ཞིང་གཙུ་ཞིང་
 བསྐྱར་བ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་བསྐྱར་ཞིང་བསྐྱར་ཞིང་བསྐྱར་བའོ། ३ །

སྒྲགས་པས་དཔའ་བོ་ནལ་འབྱོར་མ་བྱིན་བཟླ་བ། །
 ཡི་གེ་བྱོ་འཛི་སྒྲ་ཅེར་ཡང་དག་སྒྲུབ། །
 བྱོ་ནི་མཚན་གྱི་ཉེ་བར་རྣམ་པར་འདོགས། །

-
1. བོ། བྱངས།
 2. གསེས། འཆད།
 3. རྒྱ། དགྲུག ལྷ། འདུད།
 4. རྒྱ་དཔེས། (མུའྲུའྲུ) ཕྱག་རྒྱ།
 5. རྒྱ། བྱ། བོ། རྒྱ། ལྷ། བཟླ།
 6. རྒྱ། ཡང་དག།

ལྷོ་བ་སྟོང་ག་ཁ་དང་དཔལ་བ་རྩ། |

སྒྲགས་ཀྱི་ཚྭགས་དང་བཅས་པས་བྱིན་གྱིས་བརྒྱབ།¹།

2ད་ནི་སྟོམས་པར་འཇུག་པ་བསྟན་པ་ནི། སྒྲགས་པས་དཔལ་བོ་རྣལ་
འབྱོར་མ་བྱིན་བརྒྱབ་ཅིས་པ་ལ་སྒྲགས་པ་སྟེ། བྱིན་གྱིས་བརྒྱབ་ཅིས་བྱ་བ་ནི་
སྒྲགས་སྟོན་དུ་འགྲོ་བས་སོ། །དཔལ་བོ་རྣལ་འབྱོར་མ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་དཔལ་བའི་
དཀྱིལ་དུའོ། །ལྷ་དང་ལྷ་མོ་གཉིས་མེད་ཅིས་བྱ་བ་ནི་སྟོམས་པར་ཞུགས་པའི་བྱ་
མཚན་ནོ། །སྒྲ་ཅེ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་པདྨའི་སྒྲ་ཅེར་³ལ། །མཚན་གྱི་ལྷོ་བར་ཞེས་
བྱ་བ་ནི་རྩྭ་ཆེའི་ལྷོ་བར་ལ། །སྒྲགས་ཀྱི་ཚྭགས་དང་བཅས་པས་བྱིན་གྱིས་
བརྒྱབ་ཅིས་བྱ་བ་ནི་བཙམ་ལྷན་འདས་དང་བཙམ་ལྷན་འདས་མའི་སྟིང་པོ་དང་ཉི་
བའི་སྟིང་པོའི་སྒྲགས་བརྗོད་པ་སྟོན་དུ་འགྲོ་བས་བཙམ་ལྷན་འདས་ཀྱིས་བཙམ་
ལྷན་འདས་མའི་ལྷོ་བ་ལ་སྒྲགས་པ་རྣམས་བྱིན་གྱིས་བརྒྱབ་པར་བྱའོ་ཞེས་པའི་
དོན་ནོ། ུ །

ལྷོ་བ་སྟོང་ག་དག་དུ་རྣལ་འབྱོར་མ། |

སངས་བྱུས་མཁའ་འགྲོ་མ་ཡི་སྒྲགས་ཀྱིས་⁴ནི། |

1. ཆེག་རྒྱུ་ཐ་མ་འདི་གཉིས་ཀྱི་དོད་བྱ་དཔེར་ (ལྷ་འདྲེན་ཀེ་མཁྲག་ཆེན་སྒྲུབ་ལྷ་) ཁ་སྒྲགས་སྒྲགས་
ཀྱི་ཚྭགས་དང་བཅས་པས་སོ། །ཞེས་ཆེག་རྒྱུ་གཅིག་རང་ཡོད།
2. ཅོ། དེ་ནི།
3. བྱ་དཔེར། 'ཅེ' ཞེས་པ་མེད།
4. ལྷ། ལྷགས་ཀྱིས། བྱ་དཔེར། ལྷོ་ཡིས།

ཨ་བརྒྱུད་ཀྱི་སྐུ་སྐྱེ་དཔལ་གྱི་བཟུང་བ།

ནལ་འགྱུར་མ་དང་དཔའ་བོ་གཉིས་མེད་ཡིན། ཡ

ནལ་འགྱུར་སངས་རྒྱས་མཁའ་འགྱུ་མ། །ཞིས་པ་ནི་དྲི་རྩེ་ཕག་མེའོ།

ལྷ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ལྷ་འོ། །ཨལ་རྒྱུ་དྲི་གཉིས་ཀྱིས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་བཙམ་ལྷན་འདས་ཀྱི་
སྒྲིང་པོ་དང་ཉི་པའི་སྒྲིང་པོའི་རྣམས་རྣམས་ཀྱིས་སོ། །དཔའ་བྱིན་བཟུང་ཅེས་བྱ་
བ་ནི་བཙམ་ལྷན་འདས་ཀྱིས་ལྷེ་བ་ཡལ་སྐྱེས་པ་རྣམས་སུ་འོ།³ རྣལ་འབྱུང་
མ་དང་དཔའ་བོ་གཉིས་མེད་ཡིན། །ཞེས་བྱ་བ་ནི། འདི་ཐམས་ཅད་བྱས་ནས་
དཔའ་བོ་དང་བཙམ་པའི་རྣལ་འབྱུང་མ་སྒྲུལ་པ་འཇུག་པ་བསྒྲུལ་མོ་ཞེས་པའི་
དོན་དོ། །

དང་པོར་དགའ་བ་དཔའ་བོ་སྟེ།

མཚོག་ཏུ་དགའ་བ་རྣམ་འབྱོར་མ།

རབ་ཏུ་དགའ་བ་མ་ལུས་ཉིད།

བདེ་བའི་ཐབས་དེ་4ཀྱི་ཟིག་པའོ། ༤ |

1. རྒྱ་དཔེར། (བློ་རྩེ) དཔལ་པོ་བཙུག་ལྷན།

2. དེ་ལྟར་

3. བོད་འཕྱར་པར་མར་ཚོགས་ཆིག་དྲུ་དགོངས་ནས་‘སུའོ།’ ཞེས་ཆིག་གཉིས་པོའི་པར་ཆེག་མེད་ཀྱང་ཐུང་པོར་(ཅུས་ཡིད) ‘འོ་’ ཞེས་གསལ་བ་ལྟར་ཆེག་ཐུབ་ཡོད།

4. ཡུ་ དེས། རྩོམ། དེ།

སྟོམས་པར་ཞུགས་པའི་དགོས་པ་གསུངས་པ། དགའ་བ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་
 སོགས་པ་སྟེ དཔལ་བོ་ཞེས་པ་ནི་དཔལ་བོ་ལྟ་བུའོ། །རྣལ་འབྱོར་མ་ཞེས་བྱ་བ་
 ནི་རྣལ་འབྱོར་མ་ལྟ་བུའོ། །རབ་དྲ་དགའ་བའི་ཆེད་དུ་ཐབས་དང་གཤེས་རབ་
 གཉིས་མེད་ཅེས་དགོངས་པའོ། །མ་ལུས་ཉིད་ཅེས་བྱ་བ་ནི་ཐམས་ཅད་ཉིད་
 ཏོ། །འདི་གསུངས་པ་ཡང་འཛིན་པའི་དོན་རྟོ། །དེ་ཉིད་གསུངས་པ་བདེ་
 བའི་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ། བདེ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་རབ་དྲ་དགའ་བའི་
 དགའ་བདེའོ། །ཐབས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་བསྐྱེད་པའི་མཆན་ཉིད་ཀྱིས་བྱ་བའོ། །
 ཀུན་རིག་ཅེས་བྱ་བ་ནི་ཀུན་རྫོབ་བྱང་རྒྱལ་གྱི་སེམས་ལོངས་སྤྱོད་རྫོགས་པའི་སྤྱོད་
 བདག་ཉིད་དེ། ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པ་སྐྱིས་གསུམ་ཆར་ཡང་ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པའི་རང་
 གི་ངོ་བོའོ་ཞེས་བྱ་བའི་དོན་རྟོ། ། ༤ །

ལྟ་ལུལ་ས་སྟེང་ས་འོག་དུ།³ །

སྐྱད་ཅིག་གིས་ནི་གཟུགས་གཅིག་འགྱུར། །

སྟོམ་པ་བདག་གིས་བཤད་པ་ཡི། །

བསྐྱེད་བདེ་ཉིད་བཤད་པ་ནི། །

1. རྒྱ་དཔེར། (ཡུལ་ཡུལ་མཆོད་པའི་) ཐབས་དང་གཤེས་རབ་གཉིས་ཉིད་ལ།
2. རྒྱ་དཔེར། (དཔལ་མཛེས་) གསུམ་ཡང་།
3. ལྟ་ ས་འོག་ས་སྟེང་དུ།
4. རྟོག་ དག རྒྱ་དཔེར། (མཉམ་པ་ལྟ་བུ་)
5. རྒྱ་དཔེར། (འཛིན་) ཆོག

ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པའི་ཆེ་བའི་¹བདག་ཉིད་གསུངས་པ། ས་སྤྱངས་²ཞེས་
 བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ། ས་སྤྱངས་ནམ་མཁའ་སྤྱོད་གཟུགས་དང་གཟུགས་
 མེད་དོ།³ །གཟུགས་གཅིག་ཅིས་བྱ་བ་ནི་ཅིག་གི་རང་གི་ངོ་བོའོ། །སྤྱང་ཅིག་
 གིས་ཞེས་པ་ནི་ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པའོ། །ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པའི་དགའ་བའི་སྒྲོབས་ཀྱིས་
 ས་སྤྱངས་ལ་སོགས་པ་བདེ་མཆོག་གི་རང་བཞིན་དུ་འགྱུར་རོ་ཞེས་བྱ་བའི་དོན་དོ།
 སྒྲོམ་པ་བདག་གིས་⁴བཤད་པའི་ཞེས་བྱ་བ་ནི་སྤྱགས་དང་ཕྱག་རྒྱ་གཉིས་ཀྱིས་ཡི་
 ཤེས་ཀྱི་དཀྱིལ་འཁོར་⁵སྤྱན་དྲངས་ཏེ་སྒྲོམ་པར་བཤད་པ་ཉིད་དོ། །བསྐྱུ་བ་ཞེས་
 པ་ནི་སྤྱན་དྲངས་པའི་ཡི་ཤེས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་བདག་ཉིད་ལ་གཞུགས་པར་བྱའོ།⁶ །དེ་
 གཉིས་བཤད་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་རྒྱས་པའི་རྒྱད་དུ་ཚོགས་པའི་ལྷ་པ་བསྐྱན་པ་སྤྱི། དེ་ནི་
 བསྐྱན་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ལྷག་མའོ། ། ཎ །

གཡས་དང་གཡོན་གྱི་ལག་གཉིས་ཀྱིས། །

བསྐྱོར་བ་མཁའ་འགྲོའི་བདེ་དེ་ཡིན། ། ས །

1. གསེས། 'ཆེ་བའི་' ཞེས་པ་མི་འདུག

2. བོ། ས་སྤྱང་།

3. རྒྱ་དཔེས། 'གསུངས་ཏེ་ནས་མེད་དོ།' ཞེས་པའི་བར་མི་གསལ།

4. གསེས། དག་གིས།

5. རྒྱ་དཔེས། (ཅཏྱ) འཁོར་ལོ།

6. བོ། བྱ་བའོ།

1 རྣལ་འབྱོར་མའི་ཀུན་དུ་སྤྱོད་པ་ལས། ཡི་ཤེས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་སྤྱན་
 བྱང་²བ་དང་། བསྟུ་བ་བསྟན་པ་སྟེ་བརྒྱད་པའོ། །

བསྟུ་བ་ཉིད་གསུངས་པ་³གཡོན་ཞེས་པ་ལ་སོགས་པ་སྟེ། བསྟོར་བ་
 ཞེས་བྱ་བ་ནི་བསྟོར་བའོ། །མཁའ་འགྲོ་མ་ཡི་⁴བདེ་བ་དེ། ཞེས་བྱ་བ་ནི།
 རྣལ་འབྱོར་མ་རྣམས་ཐུགས་⁵དང་ཕྱག་རྒྱས་མཉེས་པར་བྱའོ།⁶ །ཞི་
 ཡོག་གྲུང་སའམ་ཡོག་གྲུང་ཉི་ཉི། ཞེས་པའི་ཐུགས་བརྗོད་པ་སྤྱོད་དུ་འགྲོ་བའི་ཕྱག་
 རྒྱ་འདིས་ཡི་ཤེས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་⁷དམ་ཆེག་གི་འཁོར་ལོ་⁸ལ་གཞུག་པར་བྱ་ཞེས་བྱ་
 བར་དགོངས་པའོ། ། ༥ །

འདི་ནི་ངེས་པར་བསྟན་པ་བརྒྱད་པའོ། །

1. རྒྱ་དཔེར། (ཨིན) 'ཅེས་' ཞེས་ཀྱང་གསལ།
2. རྒྱ་དཔེར། (ཨྲྀཀཏཌ) བཀྲག་པ།
3. རྒྱ་དཔེར། (དམའཏི) བསྟན་ནོ།
4. བཤ། འགྲོ་མའི།
5. རྒྱ་དཔེར། (ཏཡ) དེ་གཉིས་ཀྱིས།
6. བཤ། བྱ་བའོ།
7. རྒྱ་དཔེར། དཀྱིལ་འཁོར།
8. རྒྱ་དཔེར། དཀྱིལ་འཁོར།

ངེས་པར་བསྟན་པ་དགུ་པ།

དེ་ནས་སྤྱལ་པར་¹ཤེས་བྱ་དང་² |

ལོངས་སྤྱོད་རྫོགས་པར་འདོད་པ་ཉིན།³ |

ཐེག་པ་ཆེན་པོ་ཕྱག་རྒྱ་ཆེ། |

རྣལ་འབྱོར་མ་ཡི་གྲུབ་སྟེར་བཤད། ། |

དེ་ནས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ལ། སྤྱལ་པར་ཞེས་པ་ནི། སྤྱོད་བ་དང་
བསྐྱབས་འགྲོ་བའི་དོན་བྱེད་པའི་ཆེད་དུ་ལྷན་སྐྱེའི་བདག་ཉིད་ནི་སྤྱལ་པའི་སྐྱེའི་
རང་བཞིན་ནོ། །ཤེས་བྱ་⁴ཞེས་བྱ་བ་ནི་ལྷག་མའོ་ཞེས་བྱ་བ་དང་། ལོངས་སྤྱོད་
རྫོགས་པར་འདོད་པ་ཉིན། །ཞེས་པ་ནི་དེ་ནས་འོག་ནས་ལོངས་སྤྱོད་རྫོགས་པའི་
སྐྱེའོ་ཆེད་པར་འབྱུང་བའི་རིམ་པ་འདིས་མཉམས་པར་བྱ་བ་ཉིན་ཞེས་པར་སྒྱུར་རོ། །
ཐེག་པ་ཆེན་པོ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཐེག་པ་ནི་དེར་འགྲོ་བས་ན་ཐེག་པའོ། །ཆེན་པོ་ཡང་
ཡིན་ལ་ཐེག་པ་ཡང་ཡིན་པས་ན་ཐེག་པ་ཆེན་པོའོ། །ཕྱག་རྒྱ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་དཔལ་
བདེ་མཆོག་གི་སྐྱེའོ། །རྣལ་འབྱོར་མ་ཡི་གྲུབ་སྟེར་བཤད། །ཅེས་བྱ་བ་ནི་དེ་
བཞིན་དུ་དེ་ལྟ་བུའི་སྐྱས་རྣལ་འབྱོར་པ་ལ་སོགས་པ་ལ་གཞལ་ཡས་ཁང་དུ་བཞུགས་
དེ། ཆོས་བསྟན་པའི་སློན་ནས་དངོས་གྲུབ་སྟེར་ཞེས་བྱ་བའི་དོན་དོ། །དེ་ཉིད་

1. རྒྱ་དཔེར། (རྟེན་རྫིང་།) སྤྱལ་པའི་སངས་རྒྱས།

2. ལྷ། ཤེས་བྱས་ནས།

3. ལྷ། རྒྱ་དཔེར། རྫོགས་པའི་བདག་ཉིད་ཉིན།

4. བོ། ཞེས་བྱ།

གྱིས་ན་ཆོས་ལ་ལོངས་སྤྱོད་པའི་སྒོ་ནས་གཞུགས་པའི་ལས་ཁང་ན་གནས་པའི་ལྷ་རྣམས་
 གྱིས་ལོངས་སྤྱོད་བཞིན་པ་ཉིད་གྱི་ཕྱིར་ལོངས་སྤྱོད་ཚུལ་པའི་སྒྲུ་ཞེས་བཟླ་དོ། ༡

ཕུག་གྱ་ཆེན་པོ་ལས་ལྷག་པའི། |

རྣལ་འབྱོར་ཀུན་ལས་མཆོག་གཞན་མེད།² |

ཉི་ཤུ་ཀ་དཔལ་གྱལ་པོ་ཆེ། |

རྣལ་འབྱོར་ཀུན་དབང་དབང་ཕུག་ཡིན། ༣ |

ཕུག་གྱ་ཆེན་པོ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ལྷ་འོ་སྒྲུ་ཕུག་གྱ་ཆེན་པོ་ལོ། |མཆོག་གཞན་
 མེད་ནི་⁴གཞན་མཆོག་དུ་གྱུར་བ་མེད་དོ། |ཅིའི་ཕྱིར་ཞེན་གསུངས་པ། རྣལ་
 འབྱོར་ཀུན་ལས་⁵མཆོག་ཡིན་ཏེ། ཞེས་བྱ་བ་ནི་གང་གི་ཕྱིར་རྣལ་འབྱོར་ཀུན་གྱི་
 རང་ནས་མཆོག་གི་རྣལ་འབྱོར་ཡིན་པ་དེའི་ཕྱིར་ཞེས་བྱ་བའི་དོན་དོ། |འདི་
 སྒྲུ་འོ་སྒྲུ་བྱ་ཞེས། གསུངས་པ། ཉི་ཤུ་ཀ་དཔལ་གྱལ་པོ་ཆེ། |རྣལ་འབྱོར་
 ཀུན་དབང་དབང་ཕུག་ཡིན། |ཞེས་པ་ནི་ཐམས་ཅད་གོ་སྒྲུའོ། |ཀུན་ལས་འདི་
 རྣེ་དང་པོའི་དོན་གྱི་གཉིས་པའོ། ༣ |

1. གསེས། གྱི།

2. སྒྲུ། གཉིས་མེད་མཆོག་མེད་དེ།

3. གྱ་དཔེས། 'ལྷ་འོ་སྒྲུ་' ཞེས་པ་མེད།

4. བཤ། ར།

5. སྒྲུ། དང་།

མཁའ་འགྲོ་མ་ཡི་དྲ་བ་¹སྒྲུལ། |

ནམ་མཁའ་དང་མཉམ་ལས་སྒྲངས་²པ། |

ཀུན་མཁྱེན་ཡི་ཤེས་དེའི་རང་བཞིན།³ |

ཉི་རུཀ་དཔལ་དཔའ་བོ་མཆོག་⁴ ३ |

ནམ་མཁའ་དང་མཉམ་ལས་བསྐྱུས་པ། |ཞེས་པ་ནི་མཆོག་དེ་ཉིད་
 ནམ་མཁའ་དང་མཉམ་པའི་མིང་ཅན་གྱི་རྒྱུད་ལས་སྒྲོན་ཞེས་པའི་དོན་དོ། |ཀུན་
 མཁྱེན་ཡི་ཤེས་དེའི་རང་བཞིན། |ཞེས་བྲ་བ་ནི། ཀུན་མཁྱེན་ཡང་དག་པར་
 རྟོགས་པའི་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཡི་ཤེས་བདེ་བ་ཆེན་པོར་བསྐྱེད་པ་དེའི་རང་བཞིན་འདི་
 ཡིན་ནི་ཞེས་དགོངས་པའོ། ३ |

སྒྲིབ་དམ་པ་⁶ཀུན་འདུས་པ། |

ཞི་བའི་བདུང་བས་བྲུབ་འབྱུང་བ། |

རྟག་པའི་གོ་འཕང་མཆོག་ཡིན་དེ། |

སྒྲིན་མེད་པ་ནི་རྟག་པའི་གནས།⁷ ༥ |

1. ལྷ། བའི།

2. ལྷ། བདོན་པ།

3. ལྷ། རང་བཞིན་དེ།

4. ཆེག་རྒྱུད་ཐ་མ་འདི་རྒྱ་དཔེར་ལེའུ་འདི་ཉིད་ཀྱི་ཆེགས་བཅད་བཞི་པར་གསལ།

5. ཤེ། མཉམ་པ།

6. རྒྱ་དཔེར། (སེལ་ན) འདུ་ཤེས།

7. ཆེག་རྒྱུད་འདི་རྒྱ་དཔེར་ཆེགས་བཅད་གསུམ་པའི་ནང་འདུག

ཉི་རུ་ཀ་དཔལ་དཔལ་པོ་མཆོག་ |ཅེས་པ་ནི་གོ་སྟོང་། |ཆེགས་སུ་
བཅད་པ་འདི་འི་¹ནང་དུ་ཆོག་གས་ཀྱི་སྟོན་མོའང་བསྟན་དོ། |འདི་ཉིད་ཀྱི་རྣལ་
འབྱོར་གྱིས་རྣལ་འབྱོར་པ་སེམས་མཚུངས་པ་རྣམས་ཀྱིས་ལྟན་ཅིག་པར་ཞི་བའི་
བདུང་བ་ལ་སོགས་པའི་ཆོག་གས་འཛིག་རྟེན་དང་འཛིག་རྟེན་ལས་འདས་པའི་
དངོས་གྲུབ་བསྐྱབ་པའི་ཕྱིར་ཞེས་བྱ་བའི་དོན་དོ། ར །

ཕུ་ལ་སོགས་པ་ཡང་དག་སྟུང་།² |

ཡུལ་དང་ཡུལ་དུ་རྣམ་པར་གནས། |

ཉི་རུ་ཀ་དཔལ་བདག་ཉིད་དགོང་། |

ཡི་གེ་ཉི་ཤུ་ཅ་བཞི་ནི། ཡ |

ཕུ་ལ་སོགས་པ་ཡང་དག་སྟུང་། |ཞེས་པ་ནི། ཕུ་སྤྱི་རམ་ལ་ཡུལ་སོགས་
པ་སྟོས་དམིགས་པར་བྱའོ། |ཡུལ་དང་ཡུལ་དུ་རྣམ་པར་གནས།| ཞེས་བྱ་བ་
ནི་དེ་དང་དེ་རྣམས་ཀྱི་ཡུལ་ན་གནས་པའི་རབ་དུ་གདུམ་མོ་ལ་སོགས་པའི་ལྟ་
མོའི་ཆོག་གས་སོ། |ཉི་རུ་ཀ་དཔལ་བདག་ཉིད་ཅེས་པ་ནི། ཉི་རུ་ཀའི་བདག་ཉིད་
ཀྱི་ངོ་བོར་བསྟོམ་ཞེས་གོ་བར་བྱའོ། |ཇི་ལྟར་བསྟོམ་པར་བྱ་བཞི་ན། གསུངས་པ་
བདག་ཉིད་དགོང་། ཡི་གེ་ཉི་ཤུ་ཅ་བཞི་ནི། |ཞེས་པ་ནི། ཕུ་ལ་སོགས་པའི་
ཡི་གེ་ཉི་ཤུ་ཅ་བཞི་མགོ་ལ་སོགས་པ་རྣམས་སུ་དགོང་ཅིང་། དེར་སོན་པའི་ཅ་

1. བ། འདི་ཡི།

2. ཟུ་དཔེར། (སུ་ཀྱི་ཏུ) ཡང་དག་དགུག

ལྷོག་པའང་ཇི་ལྟར་བསྟན་པ་ནི། །ཞེས་པ་ནི་ཇི་ལྟར་དེའི་ལྷོག་པ་ནི་
འགོག་པ་སྟེ། ཆོས་ཀྱི་སྐྱབས་སྒྲོལ་པར་བརྟེན་ཅིང་ཞེས་པའི་དོན་དོ། །ཕྱི་ནི་
གཉིས་མེད་ཡི་ཤེས་དེ། །ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ནི་གོ་སྟོན། ལ །

རུ་ནི་བཀོད་དང་བྲལ་བ་སྟེ། །
ཀ་ནི་གང་དུའང་མི་གནས་པའོ།¹ །
དེ་ནི་རང་བཞིན་སྟངས་པ་སྟེ། །
ཀུན་དུ་འགྲོ་ཞིང་མི་ཤིགས་པར། ས །

དེ་ནི་རང་བཞིན་སྟངས་པ་སྟེ། །ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཕྱག་དང་འཁེབས་ལ་སོགས་
པ་དེའི་རང་བཞིན་ནི་གཟུང་བ་དང་འཛིན་པའི་རྣམ་པས་སྟངས་པ་རང་བཞིན་མེད་
པ་དོན་དམ་པ་བདེ་བ་ཆེན་པོའི་རང་བཞིན་ཡིན་པའི་ཕྱིར་དེ་ཡང་བདེ་བ་ཆེན་
པོའོ། །ཀུན་དུ་འགྲོ་ཞིང་ཞེས་པ་ནི་འགྲོ་བ་ཐམས་ཅད་ལ་བྱུང་པའོ། །མི་
ཤིགས་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་གཟུང་བ་ལ་སོགས་པའི་རྣམ་པར་རྟོག་པས་གཞིམ་³དུ་
མེད་པའོ། ས །

མདོར་བསྟུས་ནས་ནི་སྒྲོལ་བྱེད་པ། །
འདོད་པའི་དངོས་གྲུབ་ཐོབ་པར་འགྱུར། །

-
1. ལྷ། ཀ་ནི་གང་ལ་འང་མི་གནས་ལ།
 2. ལྷ་དཔེས། ལྷུག་
 3. དེ། གཞུམ་

ཚུམ་དང་ལོངས་སྤྱོད་སྤྱུལ་པ་ཡི། |

སྤྱོད་གསུམ་དག་ནི་རྣམ་སྤྱོད་པ། ༩ |

སྤྱོད་བྱེད་པ་ཞེས་པ་ནི་གསལ། ༩ |

བྱང་ཆུབ་ཕྱོགས་ནི་སུམ་ཅུ་བདུན། |

དེར་ནི་ངེས་པར་བསྒྲམ་པར་བྱ། ༡༠ |

བྱང་ཆུབ་ཕྱོགས་ནི་སུམ་ཅུ་བདུན། |དེར་ནི་ངེས་པར་¹བསྒྲམས་པར་
བྱ། |ཞེས་བྱ་བ་ནི་གང་ཞིག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཚུམ་སུམ་ཅུ་ཙུང་བདུན་དང་ལྷན་ཅིག་དུ་
བསྒྲམ་པ་སྤྱོད། དེ་ལས་འབྱུང་བར་འབྱུར་རོ་ཞེས་པའི་དོན་དོ། ༡༠ |

²རྣལ་འབྱོར་མའི་ཀུན་དུ་སྤྱོད་པ་ལས། འཇུག་པ་³བསྒྲམ་པ་སྤྱོད་
དག་པའོ། ||

འདི་ནི་ངེས་པར་བསྒྲམ་པ་དག་པའོ། ||

1. གཤམ་ 'པར་'མེད།

2. རྒྱ་དཔེར་ (ཨིན་) 'ཅུམ་'ཞེས་ཀྱང་འདུག

3. སྤྱོད་ཀྱི་འཇུག་པ་དང་ལྷན་པ།

ངེས་པར་བསྐྱེད་པ་བརྩུ་པ།

དེ་ནས་བསྐྱེད་པ་པ་དུབ་གྱུར་ན། |

བསྐྱེད་པ་སྤྱོད་ཚུལ་ཁྱད་པར་གྱིས། |

སྤྱོད་དང་བྲལ་བར་མི་བྱ་གྱེ། |

སྤྱོད་པའི་རྣལ་འབྱོར་པ་འདི་ཡིན། ༡ |

དེ་ནས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ནི། བསྐྱེད་པ་སྤྱོད་ཚུལ་དུབ་གྱུར་ན།
 ཞེས་བྱ་བ་ནི་གང་ཞིག་བསྐྱེད་པ་སྤྱོད་ཚུལ་ལྟར་བར་འདོད་པར་གྱུར་ན་བདག་
 ཉིད་ལ་དགྱེལ་འཁོར་པའི་ལྷ་རྣམས་བསྐྱེད་ཏེ་ལྟར་བར་བྱའོ་ཞེས་པའི་དོན་ཏོ།
 ལངས་ནས་ཅི་བྱ་ཞེ་ན་གསུངས་པ། སྤྱོད་ཚུལ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་སྤྱོད་
 ཚུལ་ཁྱད་པར་གྱིས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་མཉམ་པར་མ་བཞག་པའི་སྤྱོད་པའོ། |སྤྱོད་
 དང་བྲལ་བར་མི་བྱ་ཞེས་པ་ནི་དཔལ་བདེ་མཆོག་གི་ང་རྒྱལ་དང་ཡོངས་སུ་མི་
 འབྲལ་བའོ། |འདི་ཡིན་ཞེས་བྱ་བ་ནི་འདིས་སོ། |སྤྱོད་པའི་རྣལ་འབྱོར་ཞེས་
 པ་ནི། མཉམ་པར་མ་བཞག་པའི་སྤྱོད་པ་དང་ལྷན་པས་སོ། ༡ |

ལྟར་ནི་ཇི་སྐད་པའདད་པ་བཞིན། |

བསམ་གཏན་ཆོ་ག་རྒྱས་བྱས་ལ། |

1. གསེར། ཡུལ།

2. ལྷ། རྒྱ་དཔེར། (ཡུལ་བཟོ) ཇི་ལྟར།

རང་འདོད་ལས་ལ་གདོར་མ་ནི། |

ཁྱད་པར་དུ་ཡང་སྤྱིན་པར་བྱ། 3 |

ད་ནི་གདོར་མའི་ཆོག་གསུངས་པ། ཇི་སྐད་ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་སྟེ།
 ཇི་སྐད་ཅེས་བྱ་བ་ནི་ཕྱིན་ཅི་མ་ལོག་པའོ། |སྒར་བཤད་པའི་བསམ་གཏན་ཞེས་
 པ་ནི་སྒྲགས་དང་ཕྱག་རྒྱས་སྒར་བསྐྱན་པའི་འཁོར་ལོ་མདུན་དུ་སྤྱིན་བྱངས་ཏི་
 བསྐྱེམ་པར་བྱའོ། |ཆོག་ཞེས་བྱ་བ་ནི་དྲི་ཐལ་མའི་ཆོག་འོ། |རྒྱས་བྱས་ལ་
 ཞེས་བྱ་བ་ནི་¹ཤ་དང་ཆང་ལ་སོགས་པ་ཆེས་མང་བའོ། |སྤྱིན་པར་བྱ་ཞེས་པ་ནི་
 བདུད་ཅི་མུང་བའི་ཆོག་ཇོགས་པར་བྱ་སྟེ་སྤྱིན་པར་བྱའོ། |ལས་ལ་ཞེས་པ་ནི་ཞི་
 བ་ལ་སོགས་པའི་ལས་ཀྱི་དོན་དུའོ། |ཁྱད་པར་དུ་ཞེས་པ་ནི་གཡས་དང་གཡོན་
 དུ་བསྐྱོར་བའི་ཁྱད་པར་གྱིས་སོ། 3 |

ཁྲི་བ་མར་ངོའི་ཆེས་བཅུ་དང་། |

ཁྲི་བ་ཡར་ངོའི་དེ་ཉིད་ལ། |

རྒྱང་པ་མནན་ཅིང་བྱེན་དུ་བཟ། |

བྱེན་དུ་ཕིང་ནི་སྤྲོ་སྤྲོགས་པའོ།² 3 |

1. བོ། ན།

2. ཆེག་རྒྱང་ཕྱི་མ་འདི་གཉིས་པར་གཞི་གཞན་ནམས་སུ་མི་སྤྲང་ཡང་འདིར་ཕྱག་བྲག་བཀའ་
 འབྱུང་ལྟར་བཞག་ཡོད།

མར་ངོ་འཁོར་གྱི་བུ་ལ་སྟགས་པ་ནི་གོ་སྟོན། །སྟོན་མོ་བུ་བའི་འཁོར་ལོ་
སྟོན་བྱངས་པ་¹གསུངས་པ། ཀྱང་པ་²མནན་པ་ཞེས་བུ་ལ་སྟགས་པ་སྟེར་
བཤད་པ་ཉིད་དོ། ³ །

འབད་པས་སྟུར་དུ་³ཆང་སྟགས་⁴དང་། །
དོ་ཇི་ལྟ་མོ་རབ་མཚན་ཅིང་། །
སྟེར་བཤད་སྟགས་དང་གྱུ་སྟུར་བ། །
ཆོ་ག་བཞིན་དུ་ཡང་དག་བསྟུང་།⁵ ུ །

དེ་ཉིད་གསལ་བར་བུ་བའི་ཕྱིར་གསུངས་པ། སྟེར་བཤད་ཅེས་བུ་ལ་
སྟགས་པ་ལ། སྟེར་བཤད་སྟགས་དང་གྱུ་སྟུར་བ། །ཞེས་པ་ལ་གྱུ་ནི་བུ་བའི་
ཕྱག་གྱུ་འོ། །སྟགས་པའི་སྟེར་ཀྱང་པ་མནན་པ་སྟོན་དུ་འགྲོ་བས་སྟོང་དུ་བལྟོ།
སྟགས་ཞེས་པ་ནི་ཡི་གེ་ཤོ་ངོ་། །སྟུར་ཞེས་པ་ནི་ཕྱག་གྱུ་ལ་སྟགས་པ་འདི་རྣམས་
དང་སྟུར་བར་བྱ་སྟེ། དཀྱིལ་འཁོར་སྟོན་བྱངས་ཞེས་པ་ནི་ལྟག་མའོ། །ཆོ་ག་
བཞིན་དུ་ཡང་དག་བསྟུང་ཞེས་པ་ནི་བདག་ཉིད་ཆོ་ག་ཇི་ལྟ་བར་དཔལ་བདེ་མཚན་ག་
གི་སྟུར་རྣམ་པར་བསྟོམ་ཞིང་གོ་ཆ་གཉིས་ཀྱིས་གོ་བཞོས་ཞེས་པའི་དོན་དོ། ུ །

1. གྱུ་དཔེས། སྟོན་བྱངས་པའི་ཆོ་ག
2. གསེས། ཀྱང་པ།
3. ལྟེ། དཔལ་གོ།
4. གྱུ་དཔེས། (སྟེ་ལྟེ་པེ) ཤ་ཡང་ཞེས་འདུག
5. གྱུ་དཔེས། (སྟེ་རྟེ་རྟེ་ཆེ) བསྟུང་བྱ་བསྟུང་།

ལྷོ་ཕྱོགས་ཁ་བལྟས་ནལ་འབྱོར་པས། |

གནས་ནི་མཐོན་པོར་¹རབ་དུ་མཆོད། ༥ |

ལྷའི་ནལ་འབྱོར་དང་ལྷན་པས་གདོར་མ་དབུལ་ཞེས་བསྟན་པའི་ཕྱིར་
གསུངས་སོ། |དཔའ་བོ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ལ་དཔའ་བོ་ནི་བཙམ་ལྷན་
འདས་སོ། |དེ་ཁོ་ན་ཉིད་ཀྱི་ཡིད་ཀྱིས་འགྲོ་བ་སྐྱེ་བ་པས་ན་ལྷགས་སོ། |སོགས་
པའི་སྐྱས་དོན་མཁོ་ལ་སོགས་པའི་ལྷ་ཀུན་གཟུང་སྟེ།² དེ་ནམས་ཀྱི་³འཁོར་
ལོ་ནི་གཞལ་ཡས་ཁང་ངོ་། |དུར་ཁྲོད་ལ་སོགས་ཀྱིས་ཀྱང་བརྒྱན། |ཞེས་པ་ནི་
དུར་ཁྲོད་བརྒྱན་ལ་སོགས་པ་དང་ལྷན་པའོ། |སོགས་པའི་སྐྱས་ཕྱི་རོལ་⁴ཀྱི་དོན་
ར་བའང་རིག་པར་བྱའོ། |ལྷོ་ཕྱོགས་ཁ་བལྟས་ཞེས་པ་ནི་ཉེ་བར་མཆོན་པ་ཙམ་
གྱིས་གཅེར་བུ་སྐྱ་གྲོལ་ཞེས་པ་ཡང་གོ་བར་བྱའོ། |གནས་ནི་མཐོན་པོར་ཞེས་པ་
ནི་དུར་ཁྲོད་དམ་རིའམ་གནས་མཐོན་པོར་རོལ་སྤེད་དུ་ཉེ་བར་འདུག་པའོ།⁵ |
མཆོད་ཅེས་པ་ནི་སྐྱེམ་པའོ། ༥ |

-
1. ལྷོག མཐུན་པར།
 2. དེ། གསེར། གཟུངས་ཏེ།
 3. དེ། ཀྱིས།
 4. དེ། རོལ།
 5. ཅ། བོལ།

ཀུན་ཏུ་དགེས་པའི་མཚེག་ནི་སྟོལ་འགྱུར་¹ཏེ། །

གང་ཕྱིར་མཚེག་ནི་དེ་ཡི་ལག་ན་གནས།² ༡༡ །

མཚན་མོ་སྐྱ་ནི་གྲོལ་གྱུར་པས། །

བརྟུལ་ཁྱགས་གོས་མེད་གཏོར་སྤྱིན་ན། །

ཉི་རུ་ཀ་དཔལ་རྣལ་འབྱོར་བདག །

དེས་ནི་མ་མོ་དགའ་བར་འགྱུར། ༡༢ །

³རྣལ་འབྱོར་མའི་ཀུན་ཏུ་སྟོན་པ་ལས་གཏོར་མ་དང་། མཚོད་པ་

ཆེས་བཅུར་བྱ་བ་སྤང་བ་བསྟན་པ་སྟེ་བཅུ་པའོ། །

འདི་ནི་ངེས་པར་བསྟན་པ་བཅུ་པའོ། །

1. ལྷ གསོལ་གྱུར་ཏེ།

2. རྩ་དཔེར། (ཀར་སྐྱ་ནི་ཡོད་ཆ་རྒྱུ་ལྷ) ལག་ན་ངེས་པར་གཟུང་།

3. རྩ་དཔེར། 'ཅེས་' ཞེས་ཀྱང་འདུག

ངེས་པར་བསྟན་པ་བཅུ་གཅིག་པ།

དེ་ནས་པ་ལ་ལ་ཕྱིན་དུག་¹དང་། །

བྱང་ཆུབ་ཕྱོགས་ནི་སུམ་ཅུ་བདུན།² །

གནས་སོགས་ས་ནི་བཅུ་པོ་རྣམས། །

ཆེ་མཆོག་³ལྷ་ཡི་བདག་ཉིད་ཅན། །

དེ་ནས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ལ་པ་ལ་ལ་ཕྱིན་དུག་ཅེས་པ་ནི་མགོ་རྒྱུ་
ལ་སོགས་པ་རྒྱུ་དུག་གོ། དང་པོར་ཞེས་པ་ནི་དང་པོར་གྲུབ་པའོ། །པ་ལ་ལ་
ཕྱིན་པ་ཞེས་པ་ནི་པ་ལ་ལ་ལ་ཕྱིན་པའི་རང་བཞིན་ཞེས་བྱ་བའི་དོན་དོ། །བྱང་
ཆུབ་ཕྱོགས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ལ། བྱང་ཆུབ་ཕྱོགས་ནི་སུམ་ཅུ་བདུན།⁴
ཞེས་པ་ནི། ཆེ་མཆོག་ལྷ་ཡི་བདག་ཉིད་ཅན། ཞེས་པའི་ཆིག་འདི་དང་སྐར་
རོ། །ཆེ་མཆོག་ཅེས་པ་ནི་ཡང་དག་པའི་དྲིང་ངེ་འཇིན་ནོ། །ལྷའི་བདག་ཉིད་
ཅེས་པ་ནི་གང་དུ་དཔལ་ཉེ་རྒྱལ་ལ་སོགས་པའི་ལྷའི་སྐྱ་སྐྱ། ཡང་དག་པའི་དྲིང་ངེ་
འཇིན་དང་ལྷན་ཅིག་དུ་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཕྱོགས་ཀྱི་ཆོས་སུམ་ཅུ་རྩ་བདུན་གྱི་རང་བཞིན་
ཞེས་དགོངས་པའོ། །གནས་སོགས་ས་ནི་བཅུ་པོ་རྣམས། ཞེས་པ་ནི་སྐྱབ་པ་

1. རྒྱ་དཔེར། (ལྷ་དྲི) ཅམ་སོགས།

2. རྒྱ་དཔེར། (ཁྲ་ལྷོ་ལམ་ལ) སུམ་ཅུ་དུག

3. ལྷ་གྱེན་ རྒྱ་དཔེར། ཆེ་མཆོག་

4. རྒྱ་དཔེར། (གཤམ་ལྷོ) སུམ་ཅུ་དུག

པོ་འདིས་གནས་ལ་སོགས་པ་དང་ཕུལྱིར་མཉམ་པ་¹ལ་སོགས་པ་དེར་རབ་དུ་དགའ་
བ་ལ་སོགས་པ་ས་བཅུའི་རང་བཞིན་ཞེས་འདིས་ཀྱན་དུ་གོ་བར་བྱའོ། །འདིར་
བྱེད་ལ་སོགས་པ་ཐམས་ཅད་པ་རྟོག་དུ་བྱིན་པ་ལ་སོགས་པའི་ངོ་བོར་བསྟོམ་ཞིང་
རྣམ་པར་དག་པར་²བསམ་པར་བྱ་བཞིས་པའོ། ༡ །

དངོས་པོ་གང་དང་གང་གིས་ནི། །

མི་རྣམས་ཡིད་ནི་ཡང་དག་སྟེ། །

དེ་ཡིས་དེ་ཡི་དངོས་འགྱུར་³དྲེ། །

སྣ་ཚོགས་གཟུགས་ཅན་མོར་བྱ་འདྲ། ༢ །

ཇི་ལྟར་འདི་བསྟོམས་པས་གཞན་བྱ་བར་རྣམས་སམ་ཞེ་ན། གསུངས་པ།
དངོས་པོ་གང་དང་གང་དག་གིས། །ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་སྟེ། དངོས་པོ་ཞེས་
བྱ་བ་ནི་⁴པ་རྟོག་དུ་བྱིན་པ་ལ་སོགས་པའོ། །དེའི་རང་བཞིན་ཞེས་བྱ་བ་ནི་པ་
རྟོག་དུ་བྱིན་པ་ལ་སོགས་པའི་རང་བཞིན་ནོ། །སྣ་ཚོགས་གཟུགས་ཅན་མོར་བྱ་
འདྲ། །ཞེས་པ་ནི། ཇི་ལྟར་གཤེད་དངོས་⁵དང་ཉི་བར་སྟོན་པོ་དང་སེར་པོ་ལ་
སོགས་པའི་དངོས་པོ་བཞིན་དུ་སྟོན་པོ་དང་སེར་པོ་ལ་སོགས་པར་འདི་ལ་སྣང་

1. བ། ཕུལྱིར་མཉམ་པ།

2. བ། གསེས་པ།

3. ལ། བྱུ་

4. གསེས་པ་ ཞེས་པ་ནི།

5. བ། མོ། གསེས་པ་ རྟོ་རས་དང་།

6. བྱ་དཔེས་ (སྟུང་ཆ) 'གཙང་མ་' ཞེས་པ་འང་འདུག

བར་འབྱུང་རྟོ། །དེ་བཞིན་དུ་འདིར་ཡང་ཡིད་ལས་སྤང་བར་འབྱུང་རྟོ་ཞེས་
པའི་དོན་དོ། ३ །

དེ་བཞིན་འཇིགས་དང་བཅས་པའམ།¹ །

འཇིགས་མེད་ཇི་ལྟ་ཇི་ལྟར་གནས། །

བསམ་གཏན་དག་གམ་སྒྲོམ་པ་ཡིས།² །

ལས་རྣམས་ཐམས་ཅད་རབ་སྐྱབ་བྱེད། ३ །

མཇུག་བསྟུ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པ། དེ་ལྟར་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་
པ་སྟེ། དེ་ལྟར་རིམ་པ་འདིས་སོ། །ཇི་ལྟ་ཇི་ལྟར་གནས་ཞེས་པ་ནི། གང་
དང་གང་པ་རྟོ་དུ་ཕྱིན་པ་ལ་སོགས་པ་ལ་འཇུག་པར་འབྱུང་རྟོ། །འཇིགས་
བཅས་པའམ་འཇིགས་མེད་པ། ཞེས་པ་ནི་གནས་ཞེས་པ་ལྟག་མའོ། །བསམ་
གཏན་ཞེས་པ་ནི་³པ་རྟོ་དུ་ཕྱིན་པ་ལ་སོགས་པ་ནས། སངས་རྒྱུས་ལ་ཐུག་
པར་བསམ་གཏན་བྱ་བའོ། །སྒྲོམ་པ་བདག་གིས་ཞེས་པ་ནི་སངས་རྒྱུས་ཉིད་ཚུན་
ཆད་དུ་བསྒྲོམ་པའོ། །ལས་རྣམས་ཐམས་ཅད་རབ་སྐྱབ་བྱེད། ཅེས་པ་ནི།
རང་དང་གཞན་དག་གིས་དེའི་ཡིད་ལ་གང་ཅུང་ཟད་ཅི་འདོད་པ་དེ་ཐམས་ཅད་
སྐྱབ་པར་བྱེད་ཅེས་པའི་དོན་དོ། ३ །

1. ལྟ། དེ་བཞིན་འཇིགས་བཅས་ཕྱོགས་པའམ།

2. ལྟ། བསམ་གཏན་གྱིས། ལྟ། བསམས་ཙམ་གྱིས། ལྟ། ལྟ། སེམས་ཙན་གྱིས།
སྟོག་རྒྱ་དཔེས། སེམས་ཙམ་གྱིས།

3. རྒྱ་དཔེས། (དཔྱད་ཀྱི་) 'དེའི་' ཞེས་པའང་འདུག

སྤྱད་དང་གྲོལ་བའི་འབྲས་རབ་སྦྱུལ།¹ |
 ཆེ་འདི་ཉིད་ལ་ཐོབ་འགྱུར་ག།² |
 བསྐྱམ་པ་བདག་གིས་བཤད་པར་བགྱ།³ |
 སྤྱང་པོ་ཀུན་ལས་བདུས་པ་ཡིན།⁴ ུ |

དེ་ཉིད་གསུངས་པ་ཆེ་འདི་ཉིད་ལ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པའི་ཆེ་འདི་ཞེས་
 པ་ནི་སྤྱེ་བ་འདི་ལོ། | སྤྱད་དང་གྲོལ་བའི་འབྲས་རབ་སྦྱུལ། | ཞེས་པ་ནི་
 སངས་རྒྱལ་སུ་ཡང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རང་དང་གཞན་གྱིས་མངོན་པར་འདོད་
 པའི་འབྲས་བུ་སྦྱུལ་བར་རྟུག་པ་རབ་དུ་ཐོབ་ཅེས་སྤྱར་བཤད་པ་དང་སྤྱར་པོ།
 བསྐྱམ་པ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ལ། ུ |

ལོག་པའི་ཤེས་པའི་ཤེས་པ་ཅན། |
 གང་ཡང་ཁྱོད་ཀྱིས་བཤད་མི་བྱ། |
 སྤྱི་མའི་རིམ་ལས་ཇི་ལྟར་བསྟན། |
 གང་གིས་སྤྱར་དུ་ཤེས་འགྱུར་ག།⁶ ཡ |

-
1. སྤྱེ་ སྦྱུལ།
 2. སྤྱེ་ བའི།
 3. སྤྱེ་ བཤད་པ་ནི།
 4. བོ། འདོད་པ་ཀུན་ལས་བདུས་པ་ཡིན།
 5. སྤྱེ་ གང་ལའང་ཁྱོད།
 6. སྤྱེ་ གྱུར་པ།

གང་ཡང་ཞེས་པ་ནི་ཅུང་ཟད་ཀྱང་ངོ་། །འོག་པའི་ཤེས་པ་ཞེས་པ་ནི་
མི་ཤེས་པའི་སྒྱུར་གྱུར་པའོ། །ཤེས་པ་ཅན་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཡོངས་སུ་ཤེས་པ་དོན་
དུ་གཉེར་བར་རོ། །གང་གིས་ཞེས་པ་ལ་སོགས་པ་ལ། དེ་ཞེས་པ་ནི་དེའོ། །

སྐྱེ་བ་བྱེ་བ་སྤྱང་ཕྱག་དུ། །
སྐྱེ་འཕུལ་ཡེ་ཤེས་ཀྱིས་བསྐྱལ་བ།² །
དད་པ་ཡང་དག་བསྐྱེད་པ་དང་། །
ནལ་འབྱོར་སྤྱོད་ཚུལ་གནས་པ་ཡིན། །³

ལྷགས་ཤིང་སྒྲིན་ལ་ཐབས་ངན་ལྟ།³ །
བྱིས་པའི་ཤེས་པའི་ཤེས་པ་ཅན། །
སེམས་ཅན་ཡོངས་སུ་མ་སྒྲིན་དང་། །
ཕྱི་རོལ་བསྐྱེད་བཅོས་ཀྱིས་འཆལ་བ། །⁴

སྐྱེ་བ་བྱེ་བ་སྤྱང་ཕྱག་དུ། །ཞེས་པ་ནི་སྐྱེ་བ་སྤྱང་ཕྱག་བྱེ་བར་ཡང་ངོ་།
བདག་གི་ཡེ་ཤེས་ཀྱིས་བསྐྱལ་བ།⁶ །ཞེས་པ་ནི་ཡོངས་སུ་ཤེས་པ་དེའི་དོན་

-
1. ཙ། 'ཞེས་པ་' མི་འདུག
 2. ཕུ། བདག་གིས་ཡེ་ཤེས་ཀྱིས་བསྐྱལ་ཡིན།
 3. ཕུ། སེམས་པོ་སྒྲིན་པ་སྤྱི་ལ་ངན་ལྟ།
 4. པ། བྱེ་བ་
 5. གསེས། གསེས།
 6. གསེས། བསེས།

བདག་གིས་གནས་པར་བྱའོ།¹ རྒྱུ་བ་སྤོང་ཕྱག་བྱེ་བར་མུར་དུའི་སྒྲིམ་བཞེད་པར་
བྱ་བ་ཉིད་དུ་སྒྲུབ་པ་པོས་ཤེས་པར་བྱའོ། །དེ་ནི་དེ་ཉིད་ཀྱིས་གསལ་བར་བྱས་པ་
ཞེས་པའི་དོན་དོ། །རྒྱལ་འབྱོར་སྤྱོད་ཚུལ་གནས་པ་ཡིན། །ཞེས་པ་ནི་གསུམ་
ལ་ནི་²སྒྲོམ་³བཞིན་པ་ཡང་སློན་པ་ལ་སོགས་པའི་སྤྱོད་ཡུལ་དུ་མི་འགྱུར་བར་
གསུངས་པ། རྒྱགས་ཤིང་སློན་པ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་སྟེ། ཐབས་ངན་ལྗན་
ཞེས་པ་ནི་ཐབས་དང་བྲལ་བའོ། །བྱིས་པའི་ཤེས་པའི་ཤེས་པ་ཅན་ནི་བྱིས་པའི་
སྤྱོད་པོ་ཉིད་ཀྱི་ཤེས་པའོ། །ཤེས་པ་ཞེས་པ་ནི་ཡོངས་སུ་ཤེས་པ་དོན་དུ་གཉིས་
ནས་སོ། །སེམས་ཅན་ཡོངས་སུ་མ་སྟོན་དང་། །ཞེས་པ་ནི་དང་པོའི་དོན་གྱི་
དུག་པའོ། ུ - ཎ །

དེ་དག་ཀྱང་གྱིས་མི་ཤེས་ཏེ། །

མི་ཤེས་མུན་པས་ཁེབས་པ་དང་། །

ཁེབས་པ་ལ་ནི་རྟག་⁴པར་དགའ། །

ང་རྒྱལ་ལ་སོགས་བདུན་⁵སེམས་ལྗན། །

ང་རྒྱལ་ལ་སོགས་བདུན་སེམས་ལྗན། །ཞེས་པ་ནི། ང་རྒྱལ་ལས་ཀྱང་
ང་རྒྱལ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པའོ། ། ས །

1. རྒྱ་དཔེར། (བྱུག་གྱི་ཏུམ) གསལ་བར་བྱའོ།

2. གསེར། ལ་ལ་ནི།

3. རྒྱ་དཔེར། (ཨིད་ཅུ་ལྷུ) འདི་ཡང་སྒྲོམ། བཤ། བསྒྲོམས།

4. སྟེ། ཉེན།

5. ལྷ། གདུག

དེ་ཀུན་གྱིས་ཀྱང་སངས་རྒྱས་ཀྱི།

སྒྲིབ་ཡུལ་གསང་བ་མི་ཤེས་སོ།

ཉི་ཤུ་ཀ་དཔལ་ཡང་དག་འཇུག།

སློབ་དཔོན་བདག་ཉིད་ཆེན་པོ་ཡིས། ཅ །

ཉི་ཤུ་ཀ་དཔལ་ཡང་དག་འཇུག། ཅེས་པ་ནི། དཔལ་ཉི་ཤུ་ཀའི་རང་གི་
ངོ་བོའོ། །སློབ་དཔོན་བདག་ཉིད་ཆེན་པོ་ཡིས། ཞེས་པ་ནི་སྐུ་མ་གཅིད་ཉིད་
པོའི་ཞལ་ལྷན་སྐུ་མ་གཅིད་པར་བྱ་ཞེས་གོ་བར་བྱའོ། ཅ །

ཐུར་དུ་དངོས་གྲུབ་སྐྱེད་བྱེད་དེ།

འཕྲལ་དུ་ཡིད་ཆེས་བྱེད་པ་ཡིན།

ཀུན་སྒྲིབ་ཆོ་གའི་ནལ་འབྱོར་ཤེས།

ཆོ་གའི་བྱ་བ་བསྟེན་པར་བྱ། ༡༠ །

ཕན་ཡོན་གསུངས་པ་ཀུན་སྒྲིབ་ཅེས་པ་ལ་སོགས་པ་སྟེ། ཀུན་སྒྲིབ་ཆོ་ག་
ཞེས་པ་ནི་ཀུན་དུ་སྒྲིབ་པའི་ཆོ་གའོ། ཆོ་གའི་བྱ་བ་བསྟེན་པར་བྱ། ཞེས་པ་ནི་
ཆོ་ག་ཇི་ལྟར་བར་བསྟེན་པའོ། ༡༠ །

སྒྲིབ་པ་གསུམ་པོ་མ་ལུས་ན།

དེ་ནི་ཀུན་མཁྱེན་བསྟན་པ་ཤེས།

མཐོང་བ་དང་ནི་རེག་པ་དང་། །

ཐོས་པ་དང་ནི་དྲན་པ་ཡིས། ༡༡ །

དེ་ཡང་ཞེས་པ་ནི་དེ་ཡང་ངོ་། །ཀུན་མཁྱེན་ཞེས་པ་ནི་ཐམས་ཅད་
མཁྱེན་པའི་ཆེ་བའི་བདག་དེ་ཐོབ་པ་ཞེས་པ་ལྟག་མའོ། །སྲིད་པ་གསུམ་པོ་མ་
ལུས་ན། །ཞེས་པ་ནི་འདིར་ཡང་བལྟ་བར་གྱུ་འོ། །མཐོང་བ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་
སོགས་པ་ནི་འདིར་ཐམས་ཅད་དུ་གསུམ་པའི་དོན་གྱི་དང་པོ་འོ། །དེས་བཅོམ་
ལྟ་འདས་མཐོང་ཞེས་པའི་དོན་དོ། ༡༢ །

སྤྲེག་པ་ཀུན་ལས་གྲོལ་འགྱུར་བ། །

དེ་ལྟར་དེ་ནི་ཐེ་ཚོམ་མེད། །

ལྷ་རྣམས་བསྐྱེད་སྤྱོད་པ་དང་། །

སྤྲེག་གི་དབྱེ་བ་བསྐྱེད་པ་དང་། ༡༣ །

ལྷ་རྣམས་བསྐྱེད་སྤྱོད་པ་དང་། །ཞེས་པ་ནི་མཐར་འགྱུར་བའི་
བཅོན་འགྲུས་ཆེན་པོ་མངོན་པར་བཟོད་པ་རྒྱས་པའི་རྒྱད་དུ་དང་པོར་བསྟན་པའོ།
སྤྲེག་གི་དབྱེ་བ་བསྐྱེད་པ་དང་། །ཞེས་པ་ནི་རྣམས་ཞེས་པ་ལ་སོགས་པ་ཕྱིན་ཅི་
ལོག་གི་སྤྲེག་བཟོད་དོ། ༡༣ །

1. བཤེས་གྲུལ།

2. རྒྱ་དཔེ་སྤྲེག་ (རྣམས་ཞེས་པ་)

བསྐྱེམ་པ་གསང་བ་བརྟུག་པ་ནི། |

སྙིང་པོ་ཐམས་ཅད་བསྐྱབ་པ་ཡིན།¹ |

རྒྱུད་རྣམས་ཀུན་གྱི་སྤྱི་ཡི་ནི། |

སེམས་ནི་ཡོངས་སུ་སྒྲིན་པ་དག ² |

བསྐྱེམ་པ་གསང་བ་བརྟུག་པ་ཞེས་པ་ནི་བསྐྱེམ་³པའི་རིམ་པ་ཤིན་ཏུ་
 དཀྱགས་ནས་མངོན་པར་བརྟུག་པའོ། |སྙིང་པོ་ཐམས་ཅད་སྐྱབ་པ་ཡིན།
 ཞེས་པ་ནི་འདི་ཐམས་ཅད་ཀུན་གྱི་སྙིང་པོ་དཔལ་བདེ་མཆོག་རབ་ཏུ་སྐྱབ་པར་བྱེད་
 པ་ཡིན་ནི་ཞེས་པའི་དོན་རྟོ། |རྒྱུད་རྣམས་ཀུན་གྱི་སྤྱི་ཡི་ནི། ཞེས་པ་ནི་བཙུག་
 རྣམ་འདས་འདི་གང་ན་མེད་པའི་དོ་བོ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རྒྱུད་གཞན་ཐམས་ཅད་ཀྱི་
 ཐུན་མཛུང་དོ། |སེམས་ནི་ཡོངས་སུ་སྒྲིན་པ་དག་ཅེས་པ་ནི་སེམས་⁴ཡོངས་སུ་
 སྒྲིན་པ་དེ་ཡང་རིམ་གྱིས་⁵མཐར་མཇུག་ཞེས་པ་སྟེ། དེ་རྣམས་ཀྱི་ཡང་
 ཐུན་མཛུང་པའོ། ⁶ |

-
1. རྒྱུད་པའི་རབ་བསྐྱབ་པའོ། |
 2. པལ་སྐྱེམ།
 3. པལ་ ཙུང་གསེས་ ‘སེམས་’ ཞེས་པ་མི་འདུག
 4. གསེས་ཀྱི།
 5. རྒྱུད་པའི་ ‘མཐར་’ མི་སྟངས།

འདིར་ནི་¹སྤྱོད་སྟོགས་སྟགས་རྣམས་ཀྱི།² |

དམ་ཆིག་དེ་ལྟར་བསྟན་པ་ཡིན། |

བདེ་གཤེགས་དབུགས་འབྱེན་གསུངས་པ་ནི། |

དག་པའི་ལུས་ནི་སྟོན་མེད་པ། ༡༤ |

བསྟོན་རྣམས་ཆུང་བའི་སྟགས་པས་ཀྱང་། |

ང་³དགའ་བས་ནི་རྟེན་པར་འགྱུར། ༡༥ |

འདིར་ནི་⁴སྤྱོད་སྟོགས་སྟགས་རྣམས་ཀྱི། |དམ་ཆིག་དེ་ལྟར་བསྟན་པ་
ཡིན། |ཞེས་པ་ནི་བསྟོན་བཞིན་པ་ཉིད་ཀྱིས་རྣལ་འབྱོར་དང་ཤིན་དུ་རྣལ་འབྱོར་
ལ་སྟོགས་པའི་ཉིང་ངེ་འཛིན་ནང་དུ་ཆུད་པའི་ཕྱིར་དེ་རྣམས་ཀྱི་རང་གི་ངོ་བོ་
བསྟན་མོ་ཞེས་པའི་དོན་ནོ། |འདིར་⁵བསྟོན་རྣམས་དང་མི་ལྟན་པའི་སྤྱོད་ཡུལ་
དུ་མི་འགྱུར་བར་གསུངས་པ། གསུངས་པ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སྟོགས་པ་སྟེ། དེ་
བཞིན་གཤེགས་པའི་དབུགས་དབུང་ཞེས་པ་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ཉིད་ནི་དེ་
བཞིན་གཤེགས་པ་སྟེ། དེ་རྣམས་ཀྱིས་དབུགས་དབུང་བ་དེའི་ཕྱིར་དབུགས་

-
1. རྒྱ་དཔེར། (ཨ་ཁུ) རྟེན་སྟེ།
 2. སྤྱོད་སྟེ། སྟེ། སྟེ།
 3. སྤྱོད་སྟེ།
 4. རྒྱ་དཔེར། (ཨ་ཁུལྟེ།) རྟེན་སྟེ།
 5. རྒྱ་དཔེར། (ཨ་ཁུལྟེ།) འདི་ཡང་།
 6. མོ་སྤྱོད་པ།

ངེས་པར་བསྟན་པ་བཅུ་གཉིས་པ།

དེ་ནས་བསྐྱེད་མིན་བཟའ་མིན་དང་། །

དཀྱིལ་འཁོར་པ་མིན་དཀྱིལ་འཁོར་མིན། །

བཟླས་བརྟུལ་སྤྱིན་སྤྲེག་མེད་མེད་གྱི།¹ །

མདོར་ན་སེམས་འདུས་²ཚུལ་ཅན་ཡིན། ༡ །

དེ་ནས་བསྐྱེད་མིན་ཞེས་པ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་དེ། སྤྱིན་སྤྲེག་མེད་
ཅེས་པ་ཡན་ཆད་གོ་སྟོལ། །གལ་དེ་བསྐྱེད་བར་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ཉི་ཤེས་མཁོ་
བ་མ་ཡིན་ན། འོ་ན་ཅི་བསྟོམ་པར་བྱ་ཞེ་ན། གསུངས་པ། མདོར་ན་ཞེས་བྱ་
བ་ལ་སོགས་པ་སྟེ། མདོར་བསྟུས་པའོ། །བསྐྱེད་མིན་ཞེས་བྱ་ལ་སོགས་པས་
ཀུན་བསྟུས་སོ། །སེམས་འདུས་ཚུལ་ཅན་ཡིན་ཞེས་པ་སྟེ། སེམས་ནི་བདེ་བ་
ཆེན་པོའི་རང་བཞིན་གཉིས་སུ་མེད་པའི་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སེམས་སོ། །དེ་ཉིད་
འདུས་པ་ནི་ཚོགས་པ་སྟེ། ཚོས་ཐམས་ཅད་རོ་གཅིག་པའི་ངོ་བོ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་
རོ། །དེའི་ངོ་བོ་ནི་བཙུག་པའི་འདས་ཞེས་པ་ལྟགས་མའོ། ༡ །

གཟུང་བྱ་རྣམ་ཤེས་ཡི་ཤེས་ནི། །

སྤྲ་མས་བསྟན་ལས་³ཚུལ་བྱ་སྟེ། །

1. ལྟ། བཟླས་དང་བརྟུལ་ཞུགས་སྤྱིན་སྤྲེག་མེད་མིན་གྱིས།

2. ལྟ། ལྟ། འདུལ།

3. ལྟ། ལྟ། ལ།

ཕྱི་ལོ་གྱི་ནི་བསྐྱེད་བཅས་པ་ |

ལམ་དེ་གི་ཏུ་མིང་བ་ཡིན། ३ |

གཟུང་བྱ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ལ། དེ་ལ་བཅོམ་ལྡན་འདས་ནི་གཟུང་
བྱའོ། །རྣམ་ཤེས་ཡེ་ཤེས་ནི་ཞེས་པ་ནི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་དང་བཅས་པ་དང་།
རྣམ་པར་རྟོག་པ་མེད་པ་གཉིས་སོ། །སྒྲ་མས་བསྐྱེད་ལ་ཞེས་པ་ནི་སྒྲ་མས་བསྐྱེད་
པ་ལས་སྒྲིབ་མས་མཆོག་ཉིད་དོ། །ཕྱི་ལོ་གྱི་ནི་བསྐྱེད་བཅས་པ་ལ།
ལམ་ཞེས་པ་ནི་ཉན་ཐོས་པ་ལ་སོགས་པའི་འོ། །ཕྱི་ལོ་གྱི་ནི་བསྐྱེད་བཅས་པ་།
ལམ་དེ་གི་ཏུ་མིང་བ་ཡིན། །ཞེས་པ་ནི་ཕྱི་ལོ་གྱི་བསྐྱེད་བཅས་ཀྱི་རིག་པ་ཡང་
མིང་བར་འགྱུར་ཞེས་པའི་དོན་དོ། ३ |

ཕྱི་ལོ་གྱི་ནི་བསྐྱེད་བཅས་པ་རྣམས་ཀྱིས་ནི། |

སྒྲ་མའི་བསྐྱེད་བྱུང་ལ་བཅོམ་པ། |

སྐྱེད་པའི་མཆོག་ཉིད་བསྐྱེད་པ་དང་། |

དཔལ་བོས་དེ་ཉིད་བསྐྱེད་པ་ཡིན། ३ |

1. ཐུ་དཔེ་ལ། མིན།

2. ཐུ་དཔེ་ལ། (སྐྱེད་) བསྐྱེད་བཅས་པ།

3. ལྟ། དཔལ་བོའི།

ད་ནི་སྟོན་པའི་རང་གི་ངོ་བོ་གསུངས་པ། ཐབས་ཀྱིས་ཁེས་བྱ་བ་ལ་
 སྟོགས་པ་སྟེ། ཐབས་ཁེས་ཡེ་ནི་བསྟོན་བཀུར་གྱི་ཐབས་ཀྱིས་སོ། ། རྣལ་འབྱོར་
 པ་རྣམས་ཁེས་³པ་ནི་རྣལ་འབྱོར་པའོ། ། སླ་མའི་བསྟོན་བཀུར་ལ་བརྩོན་པ་ཁེས་
 པ་ནི་སླ་མ་ལ་བསྟོན་བཀུར་མཆོག་དུ་བྱེད་པའོ། ། སྟོན་⁴པའི་མཆོན་ཉིད་བསྟན་
 པ་དང་། ཁེས་པ་ནི་སླ་མའི་སྟུན་སྲུང་གཞུང་གི་སྟོན་པ་འཁྱུང་དོན་མི་རིགས་
 པའོ། ། དཔལ་བོས་དེ་ཉིད་བསྟན་པ་ཡིན། ། ཁེས་པ་ནི་དཔལ་བོ་བདེ་མཆོག་
 འཁོར་ལོ་བདག་ཉིད་ཀྱིས་འདི་རབ་དུ་སྟོན་པར་འགྱུར་རོ་ཁེས་པའོ། ༣ །

སྐད་ཅིག་རྣམ་པའི་རྣལ་འབྱོར་བདག །

སྐད་ཅིག་རྣམ་པའི་ཕྱག་རྒྱ་ར་ལྟ། །

ཀུན་ནས་ཐམས་ཅད་སྐད་ཅིག་སྟེ། །

སྐད་ཅིག་གིས་ནི་གསང་སྟགས་བརྗོད། ༄ །

ངེ་ལྟར་སྟོན་ཁིན། སྐད་ཅིག་ཅེས་པ་ལ་སྟོགས་པ་སྟེ། སྐད་ཅིག་རྣམ་
 པའི་རྣལ་འབྱོར་བདག ཁེས་པ་ནི། ཕྱག་མཆོན་ལ་སྟོགས་པ་ལ་མི་ལྟོས་⁵
 པར་བདེ་མཆོག་གི་རྣལ་འབྱོར་དང་ལྟན་པར་རོ། ། སྐད་ཅིག་རྣམ་པའི་ཕྱག་རྒྱ་
 ལྟ། ཁེས་པ་ནི། བདག་ཉིད་དང་དུས་མཉམ་པ་ཉིད་དུ་གེས་རབ་དང་ལྟན་

1. གསེས་ཀྱི་ནི། བཤེས་ཀྱིས་ནི།

2. གསེས་ཀྱི་ བཤེས་ཀྱིས་

3. གསེས་ཀྱི་ བཤེས་ཀྱིས་

4. རྒྱ་དཔེ་ (བུ་སྟོན་) བསྟན་པ།

5. བཤེས་ཀྱི་ མི་བཟོས་པ།

པའོ། །ཀུན་ནས་ཀུན་དུ་སྐད་ཅིག་སྒྲི། །ཞེས་པ་ནི་གཞལ་ཡས་ཁང་ལ་སོགས་
པ་རྣམས་དེ་ཉིད་¹ཀྱི་ཆེ་ཆོགས་པའོ། །སྐད་ཅིག་གིས་ནི་གསང་སྤྲུགས་བཟོད། །
ཅེས་པ་ནི། ཡོ་ལྷ་རྩེ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པའི་སྤྲུགས་བཟོད་པར་དགོངས་
པའོ། ར །

གོད་²དང་ལྟ་དང་ལག་བཅངས་དང་། །
འབྱུང་དང་གཉིས་གཉིས་ལ་སོགས་པ། །
དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་དབུགས་འབྱིན་གསུངས། །
གོང་ནས་གོང་དུ་བསྐྱོན་པར་བྱ། ། ་ །

སྤྲུགས་དང་ལྟ་³དང་ལག་བཅངས་དང་། །འབྱུང་དང་གཉིས་གཉིས་ལ་
སོགས་པ། །ཞེས་པ་ནི་འདིར་བདུན་པའི་དོན་གྱི་དང་པོའོ། །གོང་ནས་གོང་དུ་
བསྐྱོན་ཞེས་པ་ནི་གཞན་དང་སྤྱར་རོ། །བྱ་བའི་རྒྱུ་ལ་སོགས་པ་འདི་རྣམས་
ལས་གོང་མའི་གོང་མ་བཅོམ་ལྷན་འདས་ཉིད་ཡིན་⁴ཞེས་པའི་དོན་ཏོ། །དེ་
བཞིན་གཤེགས་པས་དབུགས་འབྱིན་གསུངས། །ཞེས་པ་ནི་བྱ་བ་ལ་སོགས་པའི་
རྒྱུ་དུ། བཅོམ་ལྷན་འདས་ཀྱིས་མངོན་པར་གསུངས་⁵པ་ཡོངས་སུ་མ་གཤིས་

1. བཤེས་པ་གསེས་ 'དེ་ཉིད་' ཞེས་པ་མི་སྤྲང་།

2. སྤྲུགས་

3. བཤེས་པ་གསེས་ བཤེས་

4. རྒྱུ་དཔེས་ (རྒྱ་སྤྱི) མ་ཡིན།

5. རྒྱུ་དཔེས་ (ཡན་ཤིན་རྒྱུ་) མངོན་པར་མ་གསུངས།

པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་རྣམས་མངོན་སུམ་བཞིན་དུ་བྱུགས་མི་བདེ་བ་སྐྱེས་སོ།།
 དེ་ལྟ་བུས་ན་དབྱུགས་དབྱུང་བའི་སྤྱིར་བཙོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་གསུངས་སོ་ཞེས་
 དགོངས་པའོ། ཡ ।

ཐམས་ཅད་འདིར་ནི་བསྟན་པ་ཡིན།

རྒྱལ་པ་གཞན་དག་ཚུ་དང་འདྲ།

དེ་ཉིད་སྟོག་ཆགས་རྣམས་ཀྱི་སྟོག

དེ་ཉིད་མི་འགྱུར་དམ་པ་ཡིན། ༥ །

ཅི་གསུངས་ཤེན་གསུངས་པ། བམས་ཅད་འདིར་ནི་བསྟན་པ་ཡིན།
 ཞེས་པ་ནི་འདིར་མངོན་པར་བསྟན་ཅིང་བཟོད་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་དེ་ནས་བདེ་བ་ལ་
 དབུགས་ཞེས་པའི་དོན་དོ།⁴ །གཞན་དག་སྟོང་པོ་མེད་ཅུ་འདྲ། །ཞེས་པ་ནི་
 སྟོང་འདི་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་ན་བྱ་བ་ལ་སོགས་པའི་སྟོང་གཞན་སྟོང་པོ་མེད་པའི་སོག་མ་
 དང་མཚུངས་པའོ། །ད་ནི་ཆེ་བའི་བདག་ཉིད་གསལ་བར་གསུངས་པ། དེ་
 ཉིད་སྟོག་ཆགས་རྣམས་ཀྱི་སྟོག་ །ཅིས་པ་སྟེ་བདེ་བ་ཆེན་པོ་གཉིས་སུ་མེད་པའི་
 རྣམ་པར་ཤེས་པ་དེ་ཉིད་འགྲོ་བའི་སྟོག་དུ་གྱུར་པའོ། །དེ་ཉིད་མི་འགྱུར་དམ་པ་
 ཡིན་དེ། ༤ །

1. རྒྱ་དཔེས། (ཡུལ་བདུ) རྩོན་བཞིན།

2. རྒྱ་དཔེས། (སུམ་) ཡང་དག།

3. གྱུ་དཔེ་ལ། 'ཐམས་ཅད་' ཞེས་པ་མིང།

4. རྒྱ་དཔེར། (སྤྲུལ་སྐྱེད་མི་བྱུང) དགོ་བ་དམིགས་པར་བྱ་ཞེས་གསུངས་པ།

དེ་ཉིད་ཐམས་ཅད་ཁྱབ་བྱེད་དེ། །

ལུས་ཀུན་ལ་ནི་རྣམ་པར་གནས། །

དེ་ཉིད་སངས་རྒྱས་ཡེ་ཤེས་དྲི། །

ཉི་རུག་དཔལ་ཡིན་པར་བཤད། ། ལ །

ཐོག་མ་དང་ཐ་མ་མེད་པ་ཡིན་ཞེས་པ་ནི་དེའི་ཕྱིར་བསྐྱེད་པའི་དངོས་
 པོའི་བྱེ་བྲག་དེ་ལས་ཐ་དད་མེད་པའི་ཕྱིར་ལོ། །ལུས་ཀུན་ལ་ནི་རྣམ་པར་གནས།
 ཞེས་པ་ནི། དེ་ཉིད་གཡོན་པའི་ཡང་ངོ་བོ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་ལོ། །དེ་ཉིད་སངས་
 རྒྱས་ཡེ་ཤེས་དྲི། ཞེས་པ་ནི་དེ་ཉིད་སངས་རྒྱས་རྣམས་ཀྱི་ཡེ་ཤེས་སོ། །ཉི་རུག་
 དཔལ་ཡིན་པར་བཤད། །ཅེས་པ་ནི། འདི་ཉིད་དཔལ་ཉི་རུག་ར་བཞེད་
 དོ། ། ལ །

སྐྱེས་པ་མ་ནིང་ལ་སོགས་ཉིད། །

ཕྱ་བའི་སྡིང་པོ་འང་འཛིན་པ་ཡིན། །

ཡེ་ཤེས་དག་པུ་བྱུང་དེ་ལ། །

གང་ཞིག་ས་ལ་གནས་རྣམས་དང་། ། ས །

1. རྒྱ་དཔེས། (རྒྱ་) གཡོ་བའི།

2. སྐྱེ། བདག་

ཕྱ་བའི་སྤྱིང་པོ་འང་འཛིན་པ་ཡིན། །ཞེས་པ་ནི་དེ་ཉིད་ཕྱ་བ་དང་རགས་
པའི་ངོ་བོ་དང་འཛིན་རྟེན་ལས་ངེས་པ་ཞེས་པའི་དོན་རྟོ། ༥ །

བསྟན་བཅོས་དག་ནི་མ་ལུས་དང་། །

རིག་བྱེད་གྲུབ་མཐའ་གནས་པ་རྣམས། །

འཛིན་རྟེན་འདི་དང་གཞན་དག་དུ། །

དེ་མེད་པར་ནི་གྲུབ་མི་འགྱུར། ། ༩ །

རིག་བྱེད་གྲུབ་པའི་མཐའ་རྣམས་ལས། །

འདི་ནི་སྤྱིང་པོར་རབ་དུ་བཤད།³ 10 །

བསྟན་བཅོས་དག་ནི་མ་ལུས་དང་། །ཞེས་པ་ནི། རྒྱུད་མ་ལུས་པ་ཐམས་
ཅད་དོ། །རིག་བྱེད་ཅེས་བྱ་བ་ནི་ཕྱི་རོལ་པའི་བསྟན་བཅོས་སོ། །གྲུབ་མཐའ་
ཞེས་པ་ནི་གྲུབ་པ་སྟེ། ཡང་སྤྱིད་པ་མི་འགྱུར་པར་འགྱུར་བ་བརྗོད་པ་ཞེས་པ་
ཉན་ཐོས་ཀྱི་སྤྱི་སྤྱོད་ལ་སོགས་པའི་གྲུབ་པའི་མཐའོ། །ལེགས་པར་གནས་ཞེས་
པ་ནི་དེའི་ཕྱིར་དེ་ཐམས་ཅད་དུ་སྦྱེད་པར་བྱེད་པར་ལེགས་པར་གནས་སོ། ། ༩-10 །

འགྲོ་བ་འདི་ཀུན་སངས་རྒྱུས་ལྡན་བདག་ཉིད། །

གར་མཁན་དག་དང་རི་མོ་བཟང་ལྟར་སྤྱང་།

1. བཤུ་པ་པ་

2. བཤུ་སྤྱིང་པ་

3. རྒྱུད་པེལ་ (པ་རྒྱུ་རྒྱུ་པ་) རབ་དུ་གནས་པ་

བྱིན་གྱིས་བརྒྱབ་དང་དབང་བསྐྱར་དང་། །

དྲིང་འཇིན་མཚན་པ་¹བསྐྱས་པ་ཡིན། ༡༣ །

དུ་མ་ཉིད་དུ་བསྟན་པའི་ཕྱི་ལ། །འདུག་དང་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་སྟེ།
 འདུག་དང་ཞེས་པ་ནི་གནས་པའོ། །ཡང་བ་ཉིད་ཅེས་པ་ནི་ཡང་བ་ཡང་ངོ་།
 འཇུག་པ་ནི་འཇུག་པའོ། །ཇོགས་པ་ནི་ཇོགས་པའོ། །བྱིན་གྱིས་བརྒྱབས་ཞེས་
 པ་ནི་བྱིན་གྱིས་བརྒྱབས་པའོ། །དྲིང་ངོ་འཇིན་ཞེས་པ་ནི་བསམ་གཏན་ནོ།
 བསྐྱས་པ་ཞེས་པ་ནི་བསྐྱས་པའོ། །འདི་ཐམས་ཅད་བདེ་བ་ཆེན་པོའི་མཐུས་ཡིན་
 པར་དགོངས་པའོ། ༡༣ །

དེ་ནས་ཚེ་གའི་མིང་གཞན་²པ། །

ཐབས་དང་ཤེས་རབ་གཉིས་མེད་པ། །

༣དེ་ཉིད་དུ་ནི་ཀུན་སྦྱེས་པ།⁴ །

འབྱིན་དང་སྤྱད་པར་བྱེད་པ་ཡིན། ༡༣ །

ཚེ་ག་མིང་ཞེས་བྱ་བ་ནི། གང་ཚེ་གའི་མིང་དེ་ཚེ་ག་ཞེས་པའི་དོན་དོ།
 ཐབས་དང་ཤེས་རབ་ཀྱི་རང་བཞིན་དག་ནི་ཞུལ་དང་ཀུལ་དབྱེར་མེད་པར་
 དགོངས་པའོ། །དེ་ཉིད་ཅེས་པ་ནི་ཞུལ་དང་ཀུལ་འདི་ངོ་པོ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ།

1. ལྷ། ལྷ། དྲིང་ངོ་འཇིན་མཚན།

2. ལྷ། ཡང་དག་ཤེས། རྒྱ་དཔེ་ལ། (ཨ་ཤུཅ) དེ་ནས་འདིར་ནི།

3. ལྷ། གང་དུ་བདེ་ཆེན་ཞེས་བྱ་བ། ཞེས་པའི་རྐང་པ་གཅིག་ལྷག་པོར་གསལ།

4. རྒྱ་དཔེ་ལ། (ནི་སྤྱི་དྲུག་) ཀུན་འབྱུང་བ།

ཀུན་སྤྱོད་ཅེས་¹ བ་ནི་ཞུལ་དང་² ཞུལ་ནི་ཐབས་དང་གེས་རབ་གྱི་ངོ་བོ་ཡིན་པའི་
 བྱིར་རོ། །འབྱོར་དང་བསྐྱེད་པར་བྱེད་པ་ཡིན་ཞེས་པ་ནི་དཔའ་བོ་ལ་སོགས་
 པའོ། ༡༩ །

ཨ་ཞུ། ཨི་ཞུ། ཨུ་ཞུ། རི་རྒྱ། ལི་ལྒྱ། ཨི་ཨི། ཨོ་ཨོ།
 ཨི་ཨམ། ཀ་ཁ་ག་གླང་། ཅ་ཅ་ཇ་ཇ་ཉ། ཅ་ཅ་ཇ་ཇ་ཉ། ཏ་ཐ་
 ཏ་ཐ་ཉ། པ་པ་བ་བ་མ། ཡ་ར་ལ་ལ། ཤ་ཤ་ས་ས། ཎ། ། ༢༠ །

གཉིས་སུ་མེད་པར་གསུངས་པ། ཞུལ་ནི་ཨ་ལ་སོགས་པའོ། ༢༡ །

འདི་ནི་བཙམ་ལྷན་ལྷ་དེ་³ཡིན། །

མཚལ་ཉིད་ལྷག་པར་གནས་པ་ཡིན། །

ལྷ་ཀུན་གྱི་⁴ནི་སྤྱོད་⁵པ་དང་། །

ལྷགས་རྒྱལ་ས་གྱི་ནི་སྤྱོད་ཉིད་⁶ཡིན། ༢༢ །

འདི་ནི་ཞེས་པ་ནི་བཙམ་ལྷན་འདས་ཏེ། ཞུལ་ནི་བཙམ་ལྷན་འདས་
 མའི་ངོ་བོ་ཡིན་པའི་བྱིར་དང་། བཙམ་ལྷན་འདས་དཔལ་བདེ་མཚལ་དེ་ཉིད་

-
1. དེ། ཞེས།
 2. དེ། གསེས། 'དང་' མི་འདུག
 3. ལྷ། ཉིད།
 4. ལྷ། སྤྱོད།
 5. ལྷ། ལྷ། བསྐྱེད།
 6. སྤྱོད་པེས། (མཚལ་པེས) ལྷགས་ཉིད།

ཀླུ་ལི་འོ་བོ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ། །མཚོག་ཉིད་ལྷག་པར་གནས་པ་ཡིན། །ཞེས་
པ་ནི་འདི་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་ན་བཅོམ་པས་ལྷ་ལ་སོགས་པ་ལྷག་པར་གནས་པར་འགྱུར་
ཞེས་པའི་དོན་དོ། །བསྐྱེད་པ་ནི་དེ་ཉིད་ཀྱི་སྦྱོར་བ་ཐབས་དང་གེས་རབ་ཀྱི་བདག་
ཉིད་དུ་ཚྭགས་པའོ། ༡༥ །

གང་ཞིག་འདི་རྟག་¹སྒྲུལ་པ་དང་། །

རྟག་དུ་སྒྲུལ་ཅིང་སེམས་པ་དང་། །

རྣལ་འབྱོར་པ་ཡིས་དང་པོར་བཅོམ། །

ཉི་རུ་ཀ་དཔལ་གཉིས་མེད་འགྱུར། ༡༦ །

ཐུགས་རྒྱལ་སྒྲུལ་ཀྱི་ནི་རྒྱུད་ཉིད་ཅེས་པས་ནི་ཐུགས་རྒྱལ་སྒྲུལ་ཀྱི་ཕན་ཡོན་
གསུངས་པ། གང་ཞིག་འདི་རྟག་ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་སྒྲེ་གོ་སྒྲུལ། ༡༧ །

དེར་ནི་ལྷ་སོགས་²རྒྱུན་³ཡིན་དེ། །

སྐྱེ་རྣམས་གནས་རྒྱལ་སྐྱེས་ཅད་ཡིན། །

འདི་ནི་རྟག་དུ་འཇིག་བྱེད་པ། །

ཚོས་ཀུན་རྟོགས་པར་བྱེད་པ་ཡིན། ༡༨ །

1. ལྷ་ དག

2. ལྷ་ ལག་སོགས། རྒྱ་དཔེར། (དེབསྐྱེ) ལྷ་ཡི།

3. ལྷ་ བརྒྱུས།

དེར་ནི་ལག་སྟགས་བྱུང་ཡིན་དེ། ཞེས་པ་ནི་མགོ་བོ་ལྔ་བཅུ་ཐམས་པ་
 ནི་ཞུལ་ཀླུའི་ངོ་བོ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ། ལྟ་རགས་གནས་རྣམས་ཐམས་ཅད་
 ཡིན། ཞེས་པ་ནི་ལྟ་རགས་རིག་པས་ཡོངས་སུ་བསྟོར་ཞིང་གནས་པའི་ཕྱིར་
 སྐྱབ་པ་པོ་འཁུག་གྱི་གནས་སོ། མཇུག་བསྐྱབ་པ་ལ་སྟགས་པ་གསུངས་པ།
 འཛིན་བྱེད་པ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སྟགས་པ་སྟེ། ཆོས་ཀུན་རྟོགས་པར་བྱེད་པ་ཡིན།
 ཞེས་པ་ནི་ཆོས་ཐམས་ཅད་ཁོང་དུ་ཆུད་པའོ། འདིས་ནི་ཞེས་པ་ནི། ཆོས་
 ཀུན་ཁོང་དུ་ཆུད་པར་བྱེད་པ་སྟེ། བསྟན་བཅོས་ཐམས་ཅད་ཞུལ་ཀླུའི་རང་
 བཞིན་ཡིན་པར་ཁོང་དུ་ཆུད་པའོ་ཞེས་དགོངས་པའོ། ༡༧ །

ཞུལ་ཀླུའི་མདུན་བསམས་དེ། |
 ནལ་འབྱོར་ཆེན་པོས་རྣམ་གནས་ལ། |
 ལྟ་བའི་དཀྱིལ་འཁོར་ལེགས་པ་ལྟོགས་པ། |
 ཞེས་པའི་རྩ་བར་གནས་པར་བསྟོམས།⁵ ༡༨ །

དེ་ཡི་དབུས་གནས་བསམ་པ་ནི། |
 དམ་པའི་གནས་མཆོག་ཡི་གེ་སྟེ། |

-
1. གསེས་ པལ་ ཅེས།
 2. གསེས་ རིགས།
 3. ཙུང་ སྐྱབ་པོ།
 4. སྐྱུ་ རྣམས།
 5. སྐྱུ་ ལ་གནས་བསྟོམས།

སྒྲུབ་པ་ལྟར་བྱས་ཀྱི་དོ་ཆེ་ཅན།¹ |

ལྷ་ཡི་སྒྲུབ་པ་²ནི་བསྒྲུབ་པར་བྱ། ༡༩ |

ནལ་འབྱུང་ཆེན་པོའི་དྲིང་ངེ་འཛིན་གསུངས་པ། ལྷ་ཡི་ཀླུ་ཡི་ཞེས་པ་ལ་
སོགས་པ་སྟེ། སྒྲུབ་པ་བྱས་ཀྱི་བཤད་སྒྲུར་ལས་སྒྲུབ་པ་ལྟར་གསུངས་པའི་བྱིན་
བརྒྱབས་དེ་གོ་སྟོལ། ༡༨ - ༡༩ |

དེ་ནི་³གཟུགས་ལས་འདས་པ་སྟེ། |

དངོས་པོ་མེད་པའི་སེམས་ཉིད་ཡིན། |

བསམ་མི་བྱུང་པ་⁴ཉིད་བསམས་དེ། |

བསམ་དེ་འང་⁵མཚན་མར་བཏགས་མི་བྱ། ༢༠ |

ཡང་ན་བཤད་ཀྱིད་⁶སེམས་བསམ་པ།⁷ |

དེ་ལས་གཟུངས་⁸ནི་འཕྲོག་པར་འགྱུར། ༢༡ |

-
1. ལྷ། ལྷ། ལྷ།
 2. ལྷ་དཔེས། (དེ་བཏུ་རྩེའི་) ལྷ་ཡི་གཟུགས།
 3. ལྷ། དེའི།
 4. ལྷ། བསམ་ཀྱིས་མི་བྱུང།
 5. ལྷ། དེ།
 6. ལྷ་དཔེས། (སོལྷེའི་) དེ་ཡང་།
 7. ལྷ། ཆེན་ཀྱང་འདི་མེད།
 8. ལྷ། ལྷ། གཟུགས།

1 ནལ་འབྱོར་མའི་ཀུན་དུ་སྤྱོད་པ་ལས་སྤྱད་ཐམས་ཅད་ལས་2 ངས་
 པར་བྱས་པའི་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་ཀྱི་གནས་གཅིག་ལུ་བསྟན་པ་སྟེ་བཅུ་གཉིས་
 པའོ། །

འདི་ནི་ངས་པར་བསྟན་པ་བཅུ་གཉིས་པའོ། །

1. སྤྱད་པེས། 'ཅས་' ཞེས་ཀྱང་འདུག

2. པོ། 'ལས་' ཞེས་པ་མེད།

གནས་ནི་ཡི་གེ་འི་ས་པ་ཡིན།

ཨ་རབ་དེ་ནི་རྒྱལ་ཕྱོགས་ལོ་ལྔ་པ་ལྟར་།³ ༣ །གནས་སོ།

3. ཡ། ཆིགས་སོ། དེ། རྒ། ཆིགས་ལའོ།

གོད་བརྒྱ་ན་བ་གཡོན། |
 རྒྱུ་ཤར་སྒྲིན་མའི་མཆམས། |
 དེ་བློ་ཀོ་ཏ་མིག་གཉིས་ཏེ། |
 མྱལ་བ་¹ནི་དཔུང་མགོ་ར་རྟོ། ३ |ཉི་བའི་གནས་སོ།།

ཀུམ་རྒྱལ་མཆན་ཁང་དགོད། |
 ཞེ་ཏེ་རྒྱ་མ་གཉིས་ལའོ། |ཞིང་ངོ།

དྲི་བཀུན་ལྷ་བའི་དབུས། |
 ཀོས་ལ་ནི་སྒྲ་ཅེ་ར་རྟོ། ८ |ཉི་བའི་ཞིང་ངོ།

ཀལིང་ཀ་²ནི་ཁ་ལ་དགོད། |
 ལྟེ་པ་³ཀ་ནི་མགྲིན་དབུས་ཉིད། |ཆེ་ཏོ། |

ཀུའི་སྒྲིང་ལ་དགོད་པར་བྱ། |
 ཉི་མྱལ་ལ་མཆན་⁴ཅེ་ར་རྟོ། ॥ ཞུཔ་ཆེ་ཏོ། |

1. མེ། བ། ལ།

2. ལྷ་དཔེ་སྒྲ་ག

3. མེ། བ།

4. མེ། མཆན།

ཕྱིད་ཕུ་རི་མཚན་ལ་སྟེ།

གྲིད་ཀྱི་ཐུག་པ་ལྟར་ལྟོག་པར། །འདྲུ་བ་ཅན་མོ། །

སྐྱེ་བའི་ལྷན་པོ་གཉིས་བསམ།

གསེར་གླིང་རྗེ་ངར་གཉིས་ལའོ། ༦ །ཉི་བར་འདྲ་བ་ཅན་ལོ།

ནག་ར་4ནི་སོ་ར་མོ་ར་དགོང་།5

སིན་རྩུ་ཆུང་པའི་བོལ་གཉིས་ལའོ། །དུར་ཁྲོད་དོ།

མཐུ་མཐེ་བོང་། 7གཉིས་ལ་དགོང།

གུལུདྲ་ནི་ཕུས་མོར་གནས། ལ །ཉི་པའི་དུར་ཁྱོད་དོ།

[illegible]

ཀུམ་ཏི་ཤི་ཀུལ་ཀུའི།

པུ་པུ་སྐྱ་ལྷ་སི་མ་གླ། ། ༥

- [illegible]

ཕུལྱི་རམལ་¹ལ་མགོ་ལ་ཞེས་པ་ནི་ཡི་གེ་ཕུ་ཡོངས་སུ་གྱུར་པ་ལས་
 ཕུལྱི་རམལ་ཡི་རང་བཞིན་མགོ་ལ་རིག་²པར་བྱའོ། །དེ་བཞིན་དུ་གཞན་ལ་ཡང་
 དེ་དང་དེའི་ཡི་གེ་ཡོངས་སུ་གྱུར་པ་ལས་དེ་དང་དེའི་གཟུགས་སུ་གོ་བར་བྱའོ།
 དེ་དང་དེར་སོན་པའི་ཆ་རྣམས་ནི་ལྷན་འདྲེ་བོ་སྟེ། བཅུ་བདུན་པའི་ངེས་པར་
 བསྟན་པ་ལས་བསྟན་པར་བྱའོ། ३ - ५ ।

གཉིད་ལོག་མ་ལོག་ལྡང་བ་³དང་། །
 བཟའ་མ་གྲོང་གི་ཆོས་⁴སྤྱོད་པའམ། །
 གང་ཡིན་དེར་ནི་⁵རྣམ་བཞོད་ན། །
 འཇིག་རྟེན་གསུམ་གྱིས་མི་གཡོའོ།⁶ ७ །

འགྲོ་བ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་འགྲོ་བའི་བྱ་བ་ཡང་ངོ་། །གང་ཡིན་དེར་ནི་རྣམ་
 བཞོད་ན། །ཞེས་པ་⁷ནི་དེ་གང་དུ་གནས་ཀྱང་ཡི་གེ་ཕུ་ལ་སོགས་པ་ལས་གནས་
 རིམ་བར་བསྟོམ་པར་བྱའོ། །འཇིག་རྟེན་གསུམ་གྱིས་⁸མི་གཡོས་སོ། །ཞེས་པ་

-
1. དེ། གསེས་ ‘ལ’ མི་གསལ།
 2. གསེས་ རིག
 3. ལྷ། སད་པ།
 4. ལྷ། བཟའ་མ་འགྲོ་བའི་ཆོས། ལྷ། བཟའ་གྲོང་གི་ཆོས།
 5. ལྷ་དཔེས་ (ཡད་དུ་པེ) གང་དང་གང་དུ་འང་། ལྷ། གང་དང་གང་དེར་རྣམ་གནས།
 6. ལྷ། མི་གཡོ་བའོ།
 7. གསེས་ བྱ་བ།
 8. གསེས་ ལྷ།

ནི། དེ་ལྟར་ཉག་དུ་བྱུང་བ་འབྲུག་དང་བདེ་བྱེད་ལ་སོགས་པས་ཟིལ་གྱིས་གཞོན་
པར་མི་འགྱུར་རོ་ཞེས་པའི་དོན་དོ། ༩ །

མིང་གི་¹རྒྱད་ནི་འབྲུམ་སྤེལ་ས། །

སྤྲོམ་པ་བདུས་²པར་གྱུར་པ་ཡིན། །

ནམ་མཁའ་དང་ནི་མཉམ་པའི་རྒྱད། །

འབྲུམ་གཅིག་ནང་ནས་³དེ་བཞིན་བཤད།⁴༡༠།

མངོན་པར་བརྗོད་པ་འབྲུམ་པའི་རྒྱད། ཅེས་པ་ནི་འདིར་ལྟ་པའི་དོན་
གྱི་དུག་པའོ། །དེ་ནས་ཞེས་པ་ནི་ཕན་ཡོན་ཆེན་པོའི་རྒྱ་གང་གིས་དེ་ནས་ཞེས་
དགོངས་པའོ། །བསྐྱུས་ནས་བསྟན་པ་ཉིད་གསུངས་པ། །ནམ་མཁའ་དང་ནི་
མཉམ་པའི་རྒྱད། །ཅེས་པ་ནི། །ནམ་མཁའ་དང་མཉམ་པ་འབྲུམ་སྤེལ་གཅིག་
ནས་ཞེས་པ་ནི་དེའི་ནང་ནས་སོ། །བཤད་ཅེས་པ་ནི་བསྟན་པ་ཉིད་དོ། ༡༠ །

ཤེས་རབ་རྒྱད་ནི་གསང་བ་སྟོ།⁶ །

མིང་འབྲུང་བ་ལས་གནས་པ་ཡིན།⁷ །

1. ལྟ་ རེས་བརྗོད།

2. སྤེལ་ སྤྲོད་པོ་བསྐྱུས།

3. ལྟ་ རྟའང་།

4. ལྟ་ གནས།

5. གསེས་ བསྟན།

6. ལྟ་ རྒྱ་དཔེས་ བསྐྱུས་པའི་སྤྲོད་པོ་ཁྱོད་ལ་བཤད།

7. ལྟ་ སྤྲོད་འབྲུང་རེས་ལེགས་གནས་ལ་ཡིན།

བསྟན་པ་ཡིས་ནི་སྤྱལ་པ་ཡིན། |
བཤད་པས་ཡོངས་སྤྱོད་ཚེ་པར་འདོད། ༡༡

སྟོང་པོ་བསྟུས་པ་ཞེས་པ་ནི་སྟོང་པོ་བསྟུས་པའི་ངོ་བོ་ནི་སྟོང་པོ་བསྟུས་པ་
སྟོང་པལ་ཉི་ཤུ་ཀའི་1ངོ་བོའོ། |མདོར་བསྟན་པ་ཡི་སྤྱལ་པ་ཡིན།2 |ཞེས་པ་ནི་
མདོར་བསྟན་ཅིང་བཤད་པ་སྤྱལ་པའི་སྤྱི་བདག་ཉིད་བསྟན་པའོ། |རྒྱས་བཤད་
ཡོངས་སྤྱོད་ཚེ་གསུམ་པར་འདོད། |ཅེས་པ་ནི། རྒྱས་པར་བཤད་པ་ནི་ཡོངས་
སྤྱོད་ཚེ་གསུམ་པའི་བདག་ཉིད་དོ། ༡༡ |

སོ་སོར་བསྟན་པ་མ་ལུས་ཉིད།3 |
མྱ་ངན་འདས་པའི་དེ་ཉིད་བསྟན།4 |
སྐྱ་གསུམ་འཁོར་ལོ་གསུམ་དུ་བཤད། |
ཆོས་སོཾ་ཡོངས་སྤྱོད་ཚེ་མཚན་5ཉིད། ༡༢ |

ཤིན་དུ་རྒྱས་བསྟན་མ་ལུས་ཉིད། |མྱ་ངན་འདས་པའི་དེ་ཉིད་བསྟན།
ཞེས་པ་ནི་ཤིན་དུ་རྒྱས་པར་བསྟན་པ་མ་ལུས་པ་ཆོས་ཀྱི་སྐྱ་ལ་དབྱེར་མེད་པའི་
དོན་དོ། |ནམ་པ་གཞན་གྱིས་ཀྱང་སྐྱ་གསུམ་བསྟན་པ་གསུངས་པ། སྐྱ་

-
1. རྒྱ་དཔེས། དཔལ་བདེ་མཚན།
 2. རྒྱ་དཔེས། བསྟན་པ་ཡིས་ནི་སྤྱལ་པ་ཡིན།
 3. ལྷ། མི།
 4. ལྷ། པ་དེ་ཉིད་སྟོན།
 5. མེ། རྩོགས་པ།

གསུམ་¹འཁོར་ལོ་ཞེས་པ་ལ་སོགས་པ་ནི་ཚས་དང་ལོངས་སྤྱོད་དང་། སྤུལ་
པའི་མཚན་ཉིད་ཀྱིས་ཐུགས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་ལ་སོགས་པ་རིམ་པ་ཇི་ལྟ་བུར་ཚས་ཀྱི་
སྤུལ་སོགས་པའི་རང་བཞིན་ཞེས་བྱ་བའི་དོན་དྲི་² ༡༣ །

བསོད་ནམས་ཡེ་ཤེས་ཚྭགས་དག་ནི། །

3བདེན་པ་གཉིས་ལ་གནས་པ་ཡིན། །

སློང་ན་སྟེན་⁴ཞིང་ལྷགས་པ་དང་། །

ཤེས་རབ་དམན་ཞིང་ལོག་ལྟ་དུ་⁵ ༡༣ །

བསོད་ནམས་དང་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་ཚྭགས་ཀྱིས་ཐོབ་པའོ། །བདེན་པ་གཉིས་
ལ་བརྟེན་པ་ཡིན། །ཞེས་པ་ནི་བདེན་པ་གཉིས་ལ་བརྟེན་པར་གྱུར་པ་ནི་བདེན་པ་
གཉིས་ཀྱི་བདག་ཉིད་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ། །གང་ནམས་ཀྱིས་འདིར་རུས་
པར་⁶འགྱུར་བ་དེ་ཉིད་བརྟག་པའི་ཕྱིར་⁷གསུངས་པ། །སློང་ན་ཞེས་བྱ་བ་ལ་
སོགས་པ་སྟེ། །སློང་ན་ཞེས་པ་ལ་སློང་ན་པ་ནི་རང་བཞིན་མ་རུངས་པའི་སློང་ན་

1. བོ། གསེས། གསུང་།

2. གསེར་བྱིས་ལས་གཞན་པའི་བོད་དཔེ་རྣམས་སྤྱ དོན་དྲི། ཞེས་གསལ།

3. ལྟ། ‘བདེན་པ་གཉིས་ལ་གནས་ལ་གནས་པ་ཡིན།’ ཞེས་པའི་རྟེན་པ་གཅིག་ལྟ་བུར་གསལ།

4. ལྟ། སེམས།

5. ལྟ། ཅན།

6. རྒྱ་དཔེས། (གློ་བུ་) གསེས་པས།

7. རྒྱ་དཔེས། (དཔྱད་པའི་ཕྱིར་) བསྟན་པའི་ཕྱིར་

ཆ་དང་ཆ་ཡི་ཁྱད་པར་ལ། |

དེར་ནི་གཉིས་སུ་མེད་པར་བཤད། |

མཚན་བྱ་འདབ་གི་ལྷ་མོ་དང་། |

བཀའ་བསྐྱེད་ལྷ་མོ་དཔའ་བོ་སྐྱེས། ༡༥ |

སྐལ་དང་སྐལ་མིན་ཞེས་པ་ལ་སོགས་པ་ལ། སྐལ་པ་ནི་ཐབས་དང་
ཤེས་རབ་དག་གིས་རྣམ་པའི་ཆ་དང་ལྡན་པའོ། སྐལ་མེད་ཅེས་པ་ནི་དེའི་ཆ་
ཐབས་དང་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཡུལ་གྱི་ཐབས་མེད་པ་སྟེ། དེ་ཉིད་ཀྱི་ཁྱད་པར་དེས་སོ།།
དེར་ཞེས་པ་ནི་གཉིས་སུ་མེད་པར་འདྲེས་པའོ། འདབ་གི་ལྷ་མོ་མཚན་བྱ་ཞེས་
པ་ནི། དེ་ལ་རྣལ་འབྱེད་མ་རྣམས་གཙོ་མོར་གྱུར་པའི་ཕྱིར་འདབ་གི་ལྷ་མོ་རྩ་
ཕག་མོ་དང་པོར་མཚན་པར་འོས་པའོ། བཀའ་བསྐྱེད་ལྷ་མོ་ཞེས་པ་ནི།
བཀའ་གནང་སྟེར་བའི་ལྷ་མོ་བདག་པོ་བཙུམ་ལྡན་འདས་མཚན་པར་བྱ་བར་འོས་
སོ། ༡༥ |

དེ་འོག་མ་ལུས་ཀྱན་སྦྱོར་པ། |

འཁོར་བ་ལས་གྲོལ་གཙོ་བོ་ཡིན། |

1. བོད་དཔེ་ཅུ་གཞུང་དུ་'དག་བྱེད་' ཞེས་ཡོད་ཀྱང་འདིར་འགྲེལ་པ་དང་ལྟ་དཔེ་མཐུན་པར་
བཞག་ཡོད།
2. ལྟ་དཔེར། 'ཐབས་དང་ཤེས་རབ་ཀྱི་' ཞེས་པ་མེད།
3. གསེར། སྐྱེད།

མ་ལུས་རིག་བྱེད་ལས་སྐྱུལ་པ།¹ ।

གྲུབ་པའི་མཐར་ནི་དེ་རབ་²བསྒྲུབ། ༡༥ ।

དེ་འོག་ཅེས་པ་ནི་གཞན་དང་སྦྲུལ་པ། །དཔའ་བོ་ཞེས་པ་ནི་དཔའ་བོའི་
གཟུགས་ཀྱིས་འབྲུགས་པའོ། །མ་ལུས་ཀུན་སྒྲིབ་ཅེས་པ་ནི་མ་ལུས་ཀུན་དུ་སྒྲིབ་
པའི་དོན་དྲ། །འཁོར་བ་ལས་གྲོལ་ཞེས་པ་ནི་སེམས་ཅན་འཁོར་བ་ལས་སྒྲོལ་
བར་བྱེད་པའོ། །གཙོ་བོ་ཞེས་པ་ནི་ཁམས་གསུམ་གྱི་བདག་པོའོ། །མ་ལུས་
རིག་བྱེད་སྐྱུལ་པ་སྟེ། ཞེས་པ་ནི་རྒྱུད་ལ་སོགས་པ་ནི་ཐམས་ཅད་ཀྱང་སྐྱུལ་པའོ། །
དེ་གཉིས་སུ་མེད་པ་དེ་ཇི་ལྟ་³བྱུར་བ་ཞེས་བྱ་ཞེ་ན། གསུངས་པ་གྲུབ་⁴པའི་
མཐར་ཞེས་པ་ནི་སངས་རྒྱས་པ་རྣམས་ཀྱིས་ངེས་པར་བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་དེ་ཉིད་
དམ་ཆིག་གོ། །དེ་ཞེས་པ་ནི་གཉིས་སུ་མེད་པའོ། ༡༦ ।

དཔའ་བོ་ཁྱོད་ཀྱིས་ང་ལ་བཤད། ।

སངས་རྒྱས་མུ་སྟེགས་ཅན་ལ་སྟེ། ।

སྒྲིབ་དང་སྒྲིབ་ཉམས་བརྒྱ་རྣམས་ཀྱི།⁵ ।

ལམ་འདི་ཉིད་ཀྱི་ཆེས་སུ་འབྲང་། ༡༧ ।

1. ལུ རིག་བྱེད་མཐར་དང་གྲུབ་པའི་མཐའ།

2. ལུ རྒྱུད་དེ་རུ་ནི་རབ་དྲ།

3. གསེས། ལྟ་པ།

4. གསེས། འབྲུག་

5. ལུ དང་།

6. ལུ དེ་ཉིད་ཀྱིས།

ཁྱོད་ཀྱིས་ཞེས་པ་ནི་ཁྱོད་ཀྱིས་སྟོ། །སངས་རྒྱས་ལྷ་སྟོན་ཞེས་པ་ནི་
 ཉན་ཐོས་ལ་སྟོན་པ་རྣམས་སྟོ། །ཉིད་དཀའ་པ་ཉིད་དུ་བསྟན་པའི་ཕྱིར། སྟོ་
 དང་སྟོ་ཉམས་པ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སྟོ་པ་སྟོ། སྟོ་དང་སྟོ་ཉམས་པའི་ཡུལ་གྱིས་བད་
 དེ་ཉིད་ཀྱིས་དོན་ཐོབ་པའི་ཕྱིར་ན་ལམ་དེའི་རྗེས་སུ་འབྱུང་བའོ། ༡༧ །

བསྟུས་དོན་ཡང་དག་སྒངས་པ་དང་།⁴ །

བད་ཡི་ཆིག་ནི་རྒྱས་པ་ཡིན། །

གང་གིས་ཀུན་སྟོད་མི་ཤེས་པར། །

རྣལ་འབྱོར་བ་ནི་རྣལ་འབྱོར་སྟོན། ༡༨ །

བསྟུས་དོན་ཞེས་པ་ནི་བསྟུས་པའི་ངོ་བོ་དཔལ་བདེ་མཆོག་མཆོད་པའོ།
 སྒངས་པ་ཞེས་པ་ནི་བསྟན་པའོ། །ཡང་དག་ཅེས་པ་ནི་ཕྱིན་ཅི་མ་ལོག་པའོ།
 བད་ཡི་ཆིག་ནི་རྒྱས་པ་ཡིན། །ཞེས་བྱ་བ་ནི་བདར་བདགས་ཉམས་པའི་ཆིག་ཉིད་རྒྱ་

1. རྒྱ་དཔེར། (དུཐོན) རྟོགས་དཀའ།

2. མོ་ ཉམས་པ།

3. གསེར། གྱི།

4. སྟོ་ བསྟུས་པའི་དོན་ཉིད་ཡང་དག་སྒངས།

5. སྟོ་ བདའི་ཡ།

6. སྟོ་ ཤིན་ཏུ།

7. གསེར། 'དོན་ཞེས་པ་ནི་' ལན་གཉིས་སུ་ལྷལ་ཏེ་གསལ།

8. བོ་ བདའི།

9. མོ་ བདགས།

ཆེ་བའོ། །ཁང་གི་ཕྱི་རྒྱ་དང་སྒྲ་ཉམས་གཉིས་ཀྱིས་བཞེད་པ་དེའི་ཕྱི་རྒྱ་རྟོགས་
 དཀའ་བ་ཞེས་པའི་དོན་ནོ། །ཁང་གིས་ཀུན་སྨྱོད་མི་ཤེས་པ་ལ། ཞེས་པ་ནི་
 ཁང་གིས་ཀུན་དུ་སྨྱོད་པའི་དོན་མི་ཤེས་པར་ཞེས་པའོ། །རྣལ་འབྱོར་པ་ཞེས་པ་
 ནི་རྣལ་འབྱོར་པའོ། །རྣལ་འབྱོར་སྟོན་ཞེས་བྱ་བ་ནི་བདག་ཉིད་རྣལ་འབྱོར་པར་
 སྟོན་པའོ། ༡༥ །

དེ་ཡི་ངལ་བ་དོན་མེད་དེ། །
 འབྲས་བུ་དེ་ནི་ཐོབ་མི་འགྱུར། །
 འགྲོ་ལ་འཕགས་པས་²སྟོན་གསུངས་པ། །
 སྤྲུལ་ཏེ་གཞན་དུ་གསུངས་པ་ཡིན། ༡༦ །

དེའི་ཞེས་པ་³ནི་དེའོ། །འབྲས་བུའི་དེ་ཉིད་⁴ནི་ཞེས་པ་ནི་ཀུན་དུ་
 སྨྱོད་པའི་དོན་གྱི་འབྲས་བུའོ། །རྣམ་པ་གཞན་གྱིས་ཀྱང་རྟོགས་དཀའ་བ་ཉིད་
 བསྟན་པའི་ཕྱི་རྒྱ་གསུངས་པ། གསུངས་ཞེས་པ་ལ་སོགས་པ་སྟེ། སྟོན་ཞེས་པ་
 ནི་སྤྲུལ་ཏེ། །སེམས་ཅན་དང་པོ་ཞེས་པ་ནི་དང་པོའི་སེམས་ཅན་ལ་བདེ་མཆོག་
 གིས་སོ། །གཞན་དུ་གསུངས་པ་ཞེས་པ་ནི་ཆེག་མེད་པའི་བདུན་བསྟན་པའོ། ༡༧ །

1. གསེས་ 'ཕྱི་རྒྱ་' ཞེས་པ་མི་སྟངས་།
2. སྒྲ་ འགྲོ་ལ་ཕན་པ་ལ། ལྷན་ཁྲིམས་ (ཞུ་དེས་རྒྱུ) སེམས་ཅན་དང་པོ་ལ།
3. ཙོ། ཞེས་བྱ།
4. ཤེ། ལྷན་ཁྲིམས་ འབྲས་བུ་དེ།

ཀུན་སྤྱོད་འདིར་ནི་བཤད་པ་ལས།¹ |

སྐྱབ་པ་པོས་ནི་རབ་མཉམ་གཞག |

སྐྱལ་བས་སྤོན་ནི་སྤྱད་ཆེན་པོའི། |

ཐུགས་ཀྱི་ཡི་གེ་སྐྱབ་མཛད་པ། 30 |

སྐྱབ་པ་པོས་ནི་རབ་མཉམ་གཞག | ཅེས་པ་ནི་ཐོས་པ་དང་བསམ་པའི་
ཡུལ་ལ་མཉམ་པར་གཞག་པའི་ཡིད་ཅན་གྱི་སྐྱབ་པ་པོས་ཤེས་པར་བྱ་ཞེས་པའི་
དོན་དོ། །ད་ནི་ཞུའི་ཀུའི་མཐུ་གསུངས་པ། སྐྱལ་བས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་
པ་སྟེ། 30 |

ལས་ཀྱི་བྱ་བ་གང་ཡང་བྱེད།² |

དག་དང་མི་དག་བརྟགས་དེ་བྱ། |

ཡི་གེ་མཐའ་དང་དབུས་དག་དྲ། |

དེར་ནི་ཐམས་ཅད་རབ་དྲ་བྱུང། 31 |

ལས་ཀྱི་བྱ་བ་གང་ཡང་རུང་། | དག་དང་མི་དག་བརྟགས་དེ་བྱ།
ཞེས་པ་ནི། སྐྱབ་པ་པོས་གང་ཅུང་ཟད་དག་བའམ། མི་དག་བ་སེམས་པ་དེ་
ཐམས་ཅད་དེས་བསྐྱབ་པར་བྱ་ཞེས་དགོངས་པའོ། | ཡི་གེ་མཐའ་དང་དབུས་
དག་ཅེས་པ་ནི་ཞུའི་ཀུའི་སྤངས་སུ་བསྟོར་བའོ། | དེར་ནི་ཞེས་པ་ནི་དེའི་

1. ལྷ། ཀུན་སྤྱོད་ཀྱི་ནི་སྤྱོད་འདི་ལ།

2. ལྷ། རུང་།

གནས་སུའོ། །ཐམས་ཅད་རབ་དྲུག་བྱུང་ཅིས་པ་ནི་ཐམས་ཅད་བྱུང་པར་འགྱུར་
ལོ། ३༡ །

¹རྣལ་འབྱོར་མའི་ཀུན་དུ་སྤྱོད་པ་ལས། ཞུལ་ཀུལ་དང་།
ལས་ཐམས་ཅད་ཀྱི་ངེས་པ་གཉིས་སུ་མེད་པར་བསྟན་པ་སྟེ་བཅུ་
གསུམ་པའོ། ॥ ॥

འདི་ནི་ངེས་པར་བསྟན་པ་བཅུ་གསུམ་པའོ། ॥

1. ལྷ་དཔེས། (ཨིན) 'ཅིས་' ཞེས་ཀྱང་འདུག

2. དེ། གསེས། འདི་ནི་བཅུ་གསུམ་པའི་ངེས་པར་བསྟན་པའོ།

ངེས་པར་བསྟན་པ་བརྒྱ་བཞི་པ།

དེ་ནས་རྒྱད་རྣམས་ཐམས་ཅད་དུ། །

སྤྲུལ་གསང་ཆོ་ག་བཤད་ཀྱི་སྒྲ། །

སངས་རྒྱས་བཞི་ཡི་གདན་བཞུགས་པ། །

དོན་ལ་སྟགས་དཔའ་རྣམ་འགྲུབ། ༡ །

མཁའ་འགྲོ་ལ་སྟགས་དོན་ཡི། །

དཔའ་བོ་རྣམ་འགྲུབ་དབང་ཕྱག་གཙོ། །

མེ་ལོང་ལ་སྟགས་རྣམ་པ་བཞི། །

གཉིས་མེད་གཉིས་སུ་མེད་སྟུང་ཉིད།² ༢ །

དེ་ནས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སྟགས་པ་ལ། རྒྱད་རྣམས་ཐམས་ཅད་དུ་ཞེས་པ་
ནི་བྱ་བ་ལ་སྟགས་པའི་རྒྱད་རྣམས་སོ། |སངས་རྒྱས་བཞི་ཡི་གདན་བཞུགས་པ།
ཞེས་པ་ནི་བདག་ཉིད་ཀྱི་མདུན་གྱི་ཕྱོགས་སུ་བའི་ཕྱི་བ་ལ་སྟགས་པས་རྣམ་པར་
སྤྲུལ་པའི་སངས་རྒྱས་བཞིའི་གདན་རྣམ་པར་དག་པ་དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་བཞི་པར་
གྱུར་པ་རི་རབ་ཀྱི་སྤང་དུ་གནས་པའི་ཉི་མའི་དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་གདན་ལ་བཞུགས་
པའོ། |དོན་དང་པོ་ཞེས་པ་ལ་སྟགས་པ་ནི་དང་པོ་ནི་དོན་སེམས་དཔའ་སྟེ་

1. སྒྲ། བེས།

2. ཕྱ། ཆོག་ཁང་འདི་མི་སྤང་།

རིགས་ལྔ་མཚན་པའོ། །བདེ་མཚན་ལ་སོགས་གཞན་གྱི་མཚན་ཅན་ནོ།།
 མཚན་པར་བྱ་ཞེས་པ་གོ་སྟེ། །ཅིར་གྱུར་པ་ཞེ་ན། །གསུངས་པ། རྩི་རྩེ་ལ་
 སོགས་དཔལ་བོ་²ནལ་འབྱོར། །ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ལ། །དཔལ་བོ་ནལ་
 འབྱོར་ཞེས་པ་ནི་རྩི་རྩེ་ཕག་མོ་དང་མཁའ་འགྲོ་མ་ལ་སོགས་པ་བཞིའོ། །དཔལ་
 བོ་ནལ་འབྱོར་དབང་ཕུག་གཙོ། །ཞེས་པ་ནི་འཁོར་ལོ་གསུམ་ལ་བཞུགས་པའི་
 དཔལ་བོ་ཐོད་པའི་དུམ་བུ་ལ་སོགས་པ་དང་ནལ་འབྱོར་མ་ནམས་དང་། དེ་
 བཞིན་དུ་བྱ་གདོང་མ་ལ་སོགས་པ་བརྒྱད་དང་གཙོ་བོའོ། །མེ་ལོང་ལ་སོགས་
 ནམ་པ་བཞི། །ཞེས་པ་ནི་མཚམས་ནམས་སུ་མེ་ལོང་དང་སྒྲ་དང་རོ་དང་རིག་བྱ་
 དང་། ཚོས་ནམས་ནམ་པར་དག་པ་བདུད་ཅི་ལྷས་གང་བའི་ཐོད་པ་བཞི་ཡང་
 རོ། །རྩི་ལྔ་མཚན་པ་ཡིན་ཞེ་ན། །གསུངས་པ། །གཉིས་མེད་གཉིས་སུ་མེད་
 སྒྱུར་གྱིང། །ཅིས་པ་ལ་གཉིས་མེད་ནི་དཔལ་རྩི་རྩེ་ཕག་མོ་དང་ལྷན་པའི་བཙམ་
 ལྷན་འདས་སོ། །དེ་གཉིས་སུ་མེད་པར་སྒྱུར་བ་དང་ཐ་མི་དད་པས་ང་རྒྱལ་ལོ།།
 དེ་ནས་བདག་གིང་འཁོར་ལོ་གསུམ་གྱི་གཙོ་བོར་གྱུར་པའི་བཙམ་ལྷན་འདས་
 མཚན་པར་བྱ་ཞེས་པའི་དོན་དོ། ། ༡ - ༣ །

གཉིས་མེད་རྣམས་ནི་མེ་དོག་སོགས། །

རེ་རེ་ནས་ནི་⁴དབུལ་བར་བྱ། །

-
1. གསེས་ ཞེས་གོ
 2. གྲེ། ཅོ། ཤ། 'བོ' མི་གསལ།
 3. རྒྱ་དཔེས་ 'གསུམ' ཆིག་འདི་མི་འདུག
 4. རྒྱ་དཔེས་ (ཀུས་མི་ཀུས་) མེ་དོག་རེ་ནི།

ཕྱག་རྒྱུ་ལྟ་སྟགས་མཚོག་¹ལུས་ཀྱི།

པ་རྟེན་སྟོན་པས་པར་ཕྱིན་དུག་² 3 །

གཉིས་མེད་ཅེས་པ་ནི་སེམས་ཙམ་ཉིད་ཀྱིས་མཚོད་པར་བྱ་བ་དང་།

མཚོད་པ་པོ་དང་། མཚོད་པ་རྣམས་ཐ་མི་དང་པར་བཟུ་བར་བྱའོ། །ཇས་ནི་
མེ་རྟོག་སྟགས་³ཞེས་པ་ནི་ཞུ་བའི་ཇས་དང་། མེ་རྟོག་དང་སྟོས་ལ་སྟགས་པའོ།
དེ་ཉིད་⁴གསུངས་པ། དབུལ་བར་བྱ་ཞེས་པ་ལ་སྟགས་པ་སྟེ།⁵ མེ་རྟོག་ཅེས་
པ་ནི་མེ་རྟོག་ལ་སྟགས་པའོ།⁶ །རེ་རེ་ནས་ཞེས་པ་ནི་སོ་སོར་ལྟ་རྣམས་ལ་
དབུལ་བར་བྱ་ཞེས་པའི་དོན་རྟོ། །དེ་ལྟར་ཕྱི་རྟེན་གྱི་⁷མཚོད་པ་བསྟན་ནས།
ལག་པའི་མཚོད་པ་བསྟན་པའི་ཕྱིར་གསུངས་པ། ཕྱག་རྒྱུ་ལྟ་སྟགས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་
སྟགས་པ་སྟེ། ཕྱག་རྒྱུ་ལྟ་སྟགས་མཚོག་⁸ལུས་ཀྱི། །ཞེས་པ་ནི་དཔལ་བདེ་
མཚོག་གི་ང་རྒྱལ་སྟོན་དུ་འགྲོ་བས་སྐྱེ་ལ་འཁོར་ལོ་ལ་⁹སྟགས་པའི་ཕྱག་རྒྱུ་
འཆང་བའོ། །སྟགས་པའི་སྟོས་ནི་ཐལ་བ་གཟུང་ངོ་། །པ་རྟེན་ཕྱིན་དུག་པ་

1. རྒྱ་དཔེར། ‘མཚོག་’ ཞེས་པ་མི་སྣང་།

2. ལྟ་ མཐར་ཕྱིན་འགྲུག་

3. གསེར། སེམས།

4. རྟེ། དེ་གཉིས།

5. བཤ། སྟགས་པའོ།

6. བཤ། ‘མེ་རྟོག་ཅེས་པ་ནི་མེ་རྟོག་ལ་སྟགས་པའོ།’ དེར་ཆད་འདུག་

7. གསེར། ཕྱི་རྟེན་དུ།

8. རྒྱ་དཔེར། ‘མཚོག་’ མི་གསལ།

9. རྒྱ་དཔེར། ‘འཁོར་ལོ་ལ་’ ཞེས་པ་མེད།

ལྷར་གོ་བའི་སྐབས་སུ་བསྟན་པའི་ས་ཐོན་གྱི་བདག་ཉིད་དོ། །རྡོ་རྗེས་སེམས་
སྟགས་ཞེས་པ་ནི་རྡོ་རྗེ་སེམས་དཔའ་ལ་སྟགས་པ་དུག་གོ། །བཅུ་གཉིས་ཞེས་པ་
ནི་དཔའ་མོ་དུག་དང་དཔའ་བོ་དུག་སྟེ་ལྷ་བཅུ་གཉིས་སུ་འགྱུར་དེ། ལྷ་གཞན་
དང་གཞན་ནི་ཅ་བའི་རྒྱད་དུ་གོ་བར་བྱའོ། ༥ །

དཔའ་བོ་ཆེན་པོར་སྐར་བྱ་ལ།² །

ལག་པའི་མཆོད་ལ་སྟགས་པས་བསྟོད།³ །

ལྷ་པོ་ལྷ་དང་ཡང་དག་བསྟེ། །

འོ་མ་དང་ཡང་བསྟེ་བར་བྱ། ། ༥ །

སྐར་བ་ཞེས་པ་ནི་དེ་དག་ཅེས་པ་ཉིད་དོ། །དཔའ་བོ་ཆེན་པོ་ཞེས་པ་ནི་
དཔའ་བོ་ཆེན་པོ་ནི་སྐབས་པ་པོ་འོ། །ལྷ་པོ་ལྷ་དང་ཡང་དག་བསྟེ། །ཞེས་པ་ནི་
བདུད་ཅི་རྣམ་པ་ལྷ་དང་། སྟོན་མ་ལྷ་ལ་སྟགས་པ་དང་ལྷན་ཅིག་དུ་མེ་ཏོག་ལ་
སྟགས་པ་རྣམས་དང་བསྟེ་བའོ། །འོ་མ་དང་ཡང་བསྟེ་བར་བྱ། །ཞེས་པ་ནི།
དངོས་པོ་དེ་དང་ལྷན་པ་མེད་ན་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སེམས་ཙམ་དང་ལྷན་ཅིག་དུ་ཞེས་
པའི་དོན་དོ། ༥ །

1. ཐོད་འགྱུར་པར་མ་རྣམས་སུ་ས་ཐོན་གྱི་བདུན་ཉིད་ཞེས་གསལ་གྱིང་འདིར་བྱ་དཔེ་ལྷར་བཅོས།

2. རྒྱ་དཔེ་ལ། (ཡེ་ལྷ་ཉི་མ་དུ་བྱེད་པར་) གང་གིས་གིས་དེ་དཔའ་ཆེན་པོ།

3. རྒྱ་དཔེ་ལ། (ཞུ་དེ་དུང་ལྟ་བུར་) སྟགས་ཆེད་དགའ།

མཚན་པ་དེས་ནི་ལེགས་གནས་ལ།¹ |

སྤྱོད་དང་གྲོལ་བའི་འདྲོད་དང་ལྷན། |

ལག་པའི་མཚན་པས་ནལ་འབྱོར་པ། |

དབུལ་བའི་འདྲོད་དོན་འབྲུབ་པར་འགྱུར། ཅ |

མཚན་པ་དེས་ནི་ཞེས་པ་ནི་མཚན་པ་ཡིས་སོ། །ལེགས་གནས་ཞེས་པ་
ནི་ཡང་དག་པའི་གནས་ལག་པ་གཡོན་པའོ། །སྤྱོད་དང་གྲོལ་བའི་འདྲོད་དང་
ལྷན། །ཞེས་པ་ནི་དེའི་སྤྱོད་པ་དང་གྲོལ་བའི་མཚན་ཉིད་མངོན་པར་འདྲོད་པ་
ཐོབ་པར་འགྱུར་རོ། །བཞེན་ཞེས་པ་ནི་དབུལ་བའོ། །ལག་པའི་མཚན་པས་
ཞེས་པ་ནི་ལག་པའི་མཚན་པས་སོ། ཅ |

སེམས་ནི་གཞན་²དུ་གྱུར་པ་དང་། |

བཟའ་བདུང་གོས་³སྤྲོས་ཐོབ་པར་འགྱུར། |

ལྷ་ཡི་⁴མཚན་པ་བྱས་ན་ནི། |

དེ་ལ་བསམ་པ་རྣམ་གྲུབ་འགྱུར། ཎ |

ཐོབ་པར་འགྱུར་ཞེས་པ་ནི་དོན་ཐོབ་པར་འགྱུར་བའོ། །མཚན་པ་ཞེས་
པ་ནི་མཚན་པས་སོ། ཎ |

1. ལྷ་ ལ།

2. ལྷ་ མཚན་པ་དུ།

3. ལྷ་དཔེས་ (བསྐྱེད་ལྷ) དངོས།

4. ལྷ་དཔེས་ (ནིའི) ལྷ་དུ།

དཔའ་བོ་འདི་ནི་དཔའ་ཆེན་པོ། |

ས་སྤང་རྣལ་འབྱུང་མ་རྟེན་དཀའ། |

རྣལ་འབྱུང་པ་ཡི་སྤྱོད་བརྟུལ་ཞུགས། |

རྣལ་འབྱུང་དབང་ལྷུག་ཀུན་གྱི་གཙོ། ་ |

དཔའ་བོ་འདི་ནི་དཔའ་ཆེན་པོ། | ཞེས་པ་ནི། འདིར་དོ་རྩེ་སེམས་
དཔའ་ལ་སྟགས་པའི་དཔའ་བོའི་བདག་ཉིད་དཔལ་བདེ་མཆོག་གོ། | རྟེན་དཀའ་
ཞེས་པ་ནི་རྟེན་པར་དཀའ་བའོ། | སྤྱོད་བརྟུལ་ཞུགས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སྟགས་པ་ནི།
འདོད་པའི་འབྲས་བུ་ཀུན་རབ་སྟེར། | ཞེས་གཞན་དང་སྦྲར་བར་བྱའོ། ་ |

གང་ཞིག་རྟག་དྲུ་འདིས་¹རང་མཆོད། |

འདོད་པའི་འབྲས་བུ་ཀུན་རབ་²སྟེར། ་ |

འདིས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ལག་པའི་མཆོད་པ་བསྟན་པའི་རྩེ་སྟགས་སུའོ།
རང་མཆོད་ཅེས་བྱ་བ་³བདག་ཉིད་ཀྱིས་བྱ་བའོ། | འདོད་པའི་འབྲས་བུ་ཀུན་
རབ་⁴སྟེར། | ཞེས་བྱ་བ་ནི་དེའི་མངོན་པར་འདོད་པའི་འབྲས་བུ་ཐམས་ཅད་སྟེར་
རྣམས་པའི་བདེ་མཆོག་གི་སྦྲར་འབྱུར་རོ་ཞེས་པའི་དོན་རྟོ། | སྤྱོད་བརྟུལ་ཞུགས་
ཞེས་པ་ནི་འོག་ནས་འཆད་པར་འབྱུར་བའི་སྦྲར་བའི་ཆོག་ཡང་ཐོབ་པར་འབྱུར་

1. ལྷ། འདིར།

2. ལྷ། འབྲས་བུ་རབ་དྲུ།

3. ལྷ། གསེར། བ་ནི།

4. ལྷ། གསེར། 'འབྲས་བུ་ཀུན་རབ་' ཅེས་པ་མི་འདུག

རོ་ཞེས་གོ་བར་བྱའོ། །ནལ་འབྱོར་པའི་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ནལ་འབྱོར་པའོ། ། ནལ་
འབྱོར་དབང་ཕུག་ཀུན་གྱི་གཙོ། །ཞེས་པ་ནི་ནལ་འབྱོར་གཞན་ཐམས་ཅད་ཀྱི་
བདག་པོར་འགྱུར་རོ་ཞེས་དགོངས་པའོ། ཅ །

¹ནལ་འབྱོར་མའི་ཀུན་དུ་སྤྱོད་པ་ལས། དཔའ་བོ་བཞི་དང་ཡང་
དག་པར་སྤྱོད་བའི་ལག་པའི་མཚོད་པ་བསྟན་པ་སྟེ་བཅུ་བཞི་པའོ། །

འདི་ནི་ངེས་པར་བསྟན་པ་བཅུ་བཞི་པའོ།² །

1. ཟུ་དཔེར། (མིདྱི) 'ཅེས་' ཞེས་ཀྱང་གསལ།

2. ཤེ། གསེར། འདི་ནི་བཅུ་བཞི་པའི་ངེས་པར་བསྟན་པའོ།

ངེས་པར་བསྟན་པ་བཅོ་ལྔ་པ།

དེ་ནས་དཔའ་བོ་¹རྣལ་འབྱོར་མ། |

གཉིས་མེད་སྟོད་པའི་ཚོ་ག་བཤད། |

དང་པོར་མཉམ་གཞག་རྣལ་འབྱོར་པས། |

འབད་དེ་རྣམ་པ་བསྟེན་པར་བྱ། ༡ |

དེ་ནས་སྟོད་པའི་ཚོ་ག་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སྐབས་པ་ལ། དཔའ་བོ་ཞེས་པ་ནི་
བདེ་མཚོག་གི་བདག་ཉིད་ཀྱི་སྒྲུབ་པ་པོའོ། །གཉིས་མེད་རྣལ་འབྱོར་མ་ཞེས་པ་ནི་
རིག་དང་ཐབས་གཅིག་དང་གཉིས་སུ་མེད་པའི་རྣལ་འབྱོར་དང་ལྷན་པ་སྟེ།
ཤེས་རབ་དང་བཅས་པ་ཞེས་བྱ་བའི་དོན་དོ། །རྣམ་པ་ཞེས་པ་ནི་ཅུང་ཟད་རྣལ་
འབྱོར་པའི་རྣམ་པའོ། ༡ |

རྣམ་པ་བསྟེན་པའི་ཇེས་ཐོགས་ལ། |

ཡིད་ལ་འདོད་པའི་བརྟུལ་ཞུགས་སྟུང། |

སེམས་ཅན་ཇེས་གཟུང་དོན་གྱི་ཕྱིར། |

དཔའ་བོ་ཆེན་པོ་འགྲོ་བྱ་ཞིང་། ༣ |

བརྟུལ་ཞུགས་སྤྱོད་ཅེས་པ་ནི་སྤྱོད་པའི་བརྟུལ་ཞུགས་སོ། །ཡིད་ལ་
འདྲོད་པ་ཞེས་པ་ནི་སྤྱོད་པ་གསུམ་ལ་སོགས་པ་གང་རུང་ངོ་།¹ དཔལ་བོ་ཆེན་པོ་
ཞེས་པ་ནི་སྤྱོད་པ་པོའོ། ३ །

སྤྱོད་ཆགས་ཡན་ལག་གོ་བགོས་ལ། །

བདེ་དོན་གཉེར་བས་བདེ་བ་བསྐྱེད།² །

མཚོད་ཕྱིར་ཐོགས་ནི་ཀུན་སྤངས་ལ། །

དེ་རུ་ཀ་དཔལ་གཙང་སྤྱར་གནས། ३ །

སྤྱོད་ཆགས་ཡན་ལག་གོས་བགོས་པ། །ཞེས་པ་ནི་སྤྱོད་གི་པགས་
པས་³གཡོགས་དེ་བགོས་པའོ། །བདེ་བ་དོན་གཉེར་བསྐྱེད་པར་བྱ།⁴ །ཞེས་པ་
ནི་སྤྱོད་པས་འབྲུག་གི་བདེ་བ་དོན་དུ་གཉེར་བར་གྱུར་ན་དེའི་བདེ་བ་སྐྱེ་བར་འབྱུར་
རོ་ཞེས་པའི་དོན་དོ། །མཚོད་ཕྱིར་ཐོགས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ནི་རིག་བྱེད་
དང་དྲང་སྤྱོད་གིས་བྱས་པའི་མཚོད་ཕྱིར་ཐོགས་ཡོངས་སུ་སྤངས་ནས་གཙང་སྤྱར་
གཞན་གྱིས་ལུས་དག་པར་བྱའོ་ཞེས་དགོངས་པའོ། ३ །

1. གསེར། གང་ཡང་རུང་།

2. སྤྱོད་ བོ། ལྷ། བསྐྱེད་།

3. གསེར། གིས་ལྷགས་པ། བོ། པགས་པ།

4. གྱུ་དཔེར། (རྒྱལ་ཡོད) གཡོ་བར་བྱ།

5. གསེར། དོན་གཉེར།

6. གསེར། བྱས་པའོ།

གྲོལ་བའི་འབྲས་བུ་འདྲོད་པ་ཡིས། |
 རྣལ་འབྱོར་མ་ཀུན་མཉེས་པར་བྱ། |
 ཅུ་བའི་ལྷགས་ཀྱི་དཔའ་བོ་གང་། |
 ཆངས་པའི་སྐྱད་པ་ལ་སོགས་བརྟག་ རྩ་ |

འདྲོད་ཅེས་པ་ནི་ཡིད་ལ་འདྲོད་པའོ། | རྣལ་འབྱོར་མ་ཀུན་ཞེས་པ་ནི་
 རིགས་ལྟ་དང་འབྲེལ་བའི་རྣལ་འབྱོར་མ་ཐམས་ཅད་དོ། | འདྲོད་པ་ཞེས་པ་ནི་
 ཡིད་ལ་འདྲོད་པར་གྱུར་པའོ། | སྐྱོད་གྲོལ་དོན་གཉེར་ཞེས་པ་ནི་སྐྱོད་པ་དང་གྲོལ་
 བའི་འབྲས་བུ་དོན་དུ་གཉེར་བར་བྱེད་པའོ། | ད་ནི་ལྷགས་ཀྱིས་གཟུགས་ལ་
 སོགས་པ་རྣམ་པར་དག་པ་གསུངས་པ། ཅུ་བའི་ལྷགས་ཞེས་པ་ལ་སོགས་པ་སྟེ།
 ཅུ་བའི་ལྷགས་ཞེས་པ་ནི་ཕྱིང་བའི་ལྷགས་སོ། | དཔའ་བོ་གང་ཞེས་པ་ནི་དཔའ་
 བོ་གང་གིའོ། | ཆངས་པའི་སྐྱད་པ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ནི་ཐོག་མ་ནས་ཀུན་
 དུ་བསྐྱབས་པའི་ཆངས་པའི་སྐྱད་པའོ། རྩ་ |

ལྷ་ཡི་སྤྲིང་པོའི་གསང་ལྷགས་³ཀྱི། |
 བརྒྱ་ཕྱིད་ཕྱིང་བས་བརྒྱན་པ་ཡིན།⁴ |
 ཐོད་པའི་དུམ་བུ་ལ་སོགས་ཀུན། |

1. བཤུ་གསེར། ཞེས་པ་ལ།
2. གསེར། ཀུན་ནས།
3. ལྷ། 'ལྷགས་' ཞེས་པ་མེད།
4. ལྷ། ལྷ། ཡི།

ལུས་ཀྱི་ཁམས་སུ་བརྟག་པར་བྱ།¹ |

དཔའ་བོའི་གོ་ཆ་དུག་གི་ནི། |

ཐུ་འདྲིས་ལུས་ནི་མངའ་པ་ཡིན།² |

བརྟ་ཕྱེད་ཕྱེད་བས་བརྟན་པ་ཡིན། | ཁྱིམ་པ་ནི་མགོ་བོ་ལ་བཅུའི་ཕྱེད་
བའོ། | གོ་ཆ་དུག་ཅེས་པ་ནི་གོ་ཆའི་ལྷགས་དུག་གིས་སོ། | དཔའ་བོ་ཁྱིམ་པ་ནི་
དཔའ་བོའི་འོ། | ཐུ་འདྲིས་ལུས་ནི་མངའ་པ་ཡིན། | ཁྱིམ་པ་ནི་སྐྱུ་ལ་ཕྱག་ཐུ་
དུག་གིས་བརྟན་པའོ།³ |

དྲོ་ཇི་ཕག་མོ་སྐྱགས་པ་ལྷགས་པར་། |

མགུར་རུས་སྐྱེ་ནི་མངའ་པ་ཡིན། |

སངས་ཐུས་ཀུན་གྱི་མཁའ་འགྲོ་མའི། |

པར་པའི་གོས་ནི་འདྲིན་པའི་མཆོག་⁴ ༥ |

དྲོ་ཇི་ཕག་མོའི་ལྷགས་པར་ཡིན། | ཁྱིམ་པ་ནི་ཅ་བའི་ལྷགས་སོ།
མགུར་རུས་སྐྱེ་ནི་ཁྱིམ་པ་ནི་མགྲིན་པ་ལ་སྐྱགས་པའི་མགུལ་རུན་ནོ། | མངའ་

1. ཆིག་རྒྱུ་བར་པ་འདྲི་གཉིས་ཐུ་དཔེར་མི་སྤང་།

2. ལུ ཐུན།

3. བཤ ཐུ་འདྲི།

4. ཐུ་དཔེར་སྐྱགས་མེད།

5. སྐྱེ སྐྱེ་བཤ སྐྱེ ལྷ རྒྱུ་པ།

6. ལུ འདྲིན་པ་ཡིན།

7. བཤ སྐྱེ་བཤ སྐྱེ སྐྱེ་བཤ

ཞེས་པ་ནི་མངེས་པར་སྟོ། །སངས་རྒྱས་ཀྱི་མཁའ་འགྲོ་མ། ཞེས་པ་ནི་
ཨོམ་བུ་རྒྱ་རྒྱ་རྒྱ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་སྟོང་པོའི་སྟགས་སོ། །པགས་པའི་
གོས་ནི་འཛིན་པའི་མཚོག་ ཅེས་པ་ནི་སྟག་གི་པགས་པའི་ན་བཟའི་མཚོག་གམ་
ཐབས་སུ་བྱས་པའོ། ༤ །

ཁྲུག་འཛིན་ལྷ་ཡི་སྒྲ། །
ཤེས་རབ་ཏུ་མཐུ་ཏུ་བཏགས། །
ཐོད་པ་དུམ་བུ་ལ་སོགས་ཀྱི། །
ལུས་ཀྱི་ཁམས་སུ་བཏགས་པར་བྱ།⁴ ལ །

ལྷ་ཡི་སྒྲ་ཞེས་པ་ནི་བདེ་མཚོག་གི་སྒྲའོ། །ཤེས་རབ་ཏུ་མཐུ་ཞེས་པ་ནི་
ཕག་མོའི་ཅང་ཉེའོ། །ཁམས་སུ་བཏགས་ཅེས་པ་ནི་སོ་དང་སེན་མོ་ལ་སོགས་
པའི་གཟུགས་ཀྱི་རྣམ་པར་གཞག་པའོ། ལ །

ཡི་གེ་བདུན་གྱི་གསང་སྟགས་ཀྱིས་ཀྱང་།⁵ །
རྣམ་པར་སྟན་པ་མངེས་པ་ཡིན། །

-
1. ལྷ། (ཁྲུག་)
 2. ཐོད་འགྲུར་པར་མ་རྣམས་སུ་ཏུ་མཐུ་ཞེས་གསལ།
 3. ལྷ། རྒྱ་བྱ།
 4. ཆིག་རྒྱ་ལྷ་མ་འདི་གཉིས་པེ་རྒྱ་དང་སྟར་ཐང་པར་མར་བཞགས་མེད།
 5. ལྷ། ཀྱི།

རྣལ་འབྱོར་མ་དུག་གསང་སྤྲུག་གང་།¹ ।

སྐྱེ་རྒྱས་བྱས་པ་བརྒྱན་པ་ཡིན། ༥ ।

ཡི་གེ་བདུན་གྱི་གསང་སྤྲུག་གི། ཞེས་པ་ནི་ཉེ་བའི་སྤྱིང་པོའི་སྤྲུག་སོ།
 རྣལ་འབྱོར་མ་དུག་གསང་སྤྲུག་གང་། ཞེས་པ་ནི་རྣལ་འབྱོར་མ་དུག་གི་གོ་
 ཆའི་སྤྲུག་སོ། ༥ ।

འཁོར་ལོ་ཀུན་གྱི་རྣལ་འབྱོར་མའི།² ।

སྤྲུག་ནི་ལག་པའི་³ཐོད་པ་ཡིན། ।

རྣམ་པར་སྤང་མཛད་ཡུམ་⁴སྤྲུག་གང་།⁵ ।

ཐོད་པས་མགོ་བོ་བརྒྱན་པ་ཡིན། ༧ ।

འཁོར་ལོ་ཀུན་གྱི་རྣལ་འབྱོར་མའི། ཞེས་པ་ནི་འཁོར་ལོ་གསུམ་ལ་
 སྤྲུག་པའི་རྣལ་འབྱོར་མའི་སྤྲུག་སོ། སྤྲུག་ནི་བདུང་བའི་ཐོད་པ་ཡིན།
 ཞེས་པ་ནི་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་བདུང་ཅིའི་སྤྱོད་དོ། རྣམ་པར་སྤང་མཛད་ཡུམ་
 སྤྲུག་ཅད་། ཞེས་པ་ནི་ལྷ་མོའི་ཉེ་བའི་སྤྱིང་པོའི་སྤྲུག་སོ། ༧ ।

-
1. བཤ ༥༤།
 2. སྤྲུ ༥༤།
 3. སྤྲུ ལག་ན།
 4. ཐུ་དཔེས། (ཨིནྟི) ཞེས། སྤྲུ ཡུལ།
 5. སྤྲུ ༥༤།
 6. ཅོ། བ།

དེ་ལྟར་བདག་ཉིད་རྣམས་བསམས་ནས། |

ཚམ་ངམ་¹ཐུགས་ཀྱིས་ཡིགས་པར་བསྐྱེད་། |

རྟག་དུ་ཚངས་པར་སྤྱོད་འགྱུར་ག། |

གསང་ཐུགས་ཀྱང་པ་བརྒྱད་མཆོད་པའོ། ༡༠ |

དེ་ལྟར་བདག་ཉིད་རྣམས་བསམས་ནས། |ཞེས་པ་ནི་དེ་ལྟར་བསྐྱེད་
པའི་རིམ་པས་བདག་ཉིད་གོ་བོ་བའོ། |ཚམ་ངམ་ཐུགས་ཀྱི་ཡིགས་པར་བསྐྱེད་༥
ཞེས་པ་ནི་ཞལ་བཞི་པའི་ཐུགས་ཀྱིས་ཡང་ནས་ཡང་རྒྱུན་དུ་བརྗོད་ཅིང་བསྐྱེད་བར་
བྱ་བའོ།² |ཚངས་པར་སྤྱོད་པ་ཞེས་པ་ནི་ཚངས་པ་³ནི་བདེ་མཆོག་གི་བདག་
ཉིད་འོ། |སྤྱོད་པ་⁴སྤྱོད་ཅིང་བསྐྱེད་པར་བཞུགས་བར་བྱའོ། |རྟག་དུ་བསམ་ཞེས་པ་
ནི་རྒྱུན་དུ་བྱེད་པའོ། |ཀྱང་པ་བརྒྱད་པའི་ཐུགས་ཀྱིས་⁵མཆོད། |ཅེས་པ་ནི་
ཀྱང་པ་བརྒྱད་པའི་ཐུགས་ཀྱིས་རང་དང་གཞན་དང་སྤྱི་མ་དང་སངས་རྒྱུས་ལ་
སྐྱབས་པ་རྣམས་མཆོད་པར་བྱའོ། ༡༠ |

ཉིན་མོ་བཅོམ་ལྡན་དཔའ་བོ་སྟེ། |

མཚན་མོ་རྣལ་འབྱོར་⁶མ་བརྟག་བྱ། |

1. ཐུ། ཚང་ངམ།

2. ཅོ། བྱའོ།

3. གསེས། པའི།

4. གསེས། སྤྱོད་པ།

5. གསེས། ཀྱི།

6. ཐུ། བཅོམ་ལྡན།

མི་བྱ་ཅི་ཡང་ཡོད་མིན་དེ། |

དྲི་བ་དུ་མི་བསམ་ཡོད་མ་ཡིན། ༡༡ |

ཉིན་མོ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སྐྱེས་པ་ནི་གོ་སྤྱོད། ༡༢ |

མི་བཟུང་ཅི་ཡང་ཡོད་མིན་ལ། |

དགེ་དང་མི་དགེ་མི་སྤྱོད་མེད།¹ |

བདག་ཉིད་²ཇི་བཞིན་འགྲོ་དེ་བཞིན། |

བདག་ཅི་འདྲ་བར་གཞན་དེ་བཞིན།³ ༡༣ |

དེ་ལྟར་རྒྱུ་བསམ་རྒྱུ་ལྟོ་རྒྱུ་བདག་ |

འཇིགས་པ་ཐམས་ཅད་ཡོངས་སྤངས་དེ།⁴ |

དཔའ་བོ་སངས་ཀྱི་བཞིན་དུ་སྤྱོད། |

བསམ་པ་ཐམས་ཅད་ཇོགས་བྱེད་ཡིན། ༡༤ |

བདག་ཉིད་ཇི་བཞིན་ཞེས་པ་ནི་བདག་ཉིད་ཀྱི་བྱེད་པ་ཇི་ལྟར་བར་སྤྱོད།

འགྲོ་དེ་བཞིན་ཞེས་པ་ནི་སེམས་ཅན་རྒྱུ་སྤྱོད། |བདག་དེ་བཞིན་ཞེས་པ་ནི་ཇི་

1. ལྟོ་རྒྱུ་ བཞིན་མི་བྱེད།

2. ལྟོ་རྒྱུ་ རང་བཞིན།

3. ལྟོ་རྒྱུ་ ཆེན་པོ་ལྟོ་རྒྱུ་ལྟོ་རྒྱུ་

4. ལྟོ་རྒྱུ་ (སེམས་ཅན་ལྟོ་རྒྱུ་བཞིན་ལྟོ་རྒྱུ་) ལྟོ་རྒྱུ་དང་ལྟོ་རྒྱུ་ལྟོ་རྒྱུ་སྤངས་སྤངས་དེ།

ལྟར་གཞན་འདོད་པའི་ང་གྱལ་བྱེད་པ་དེ་བཞིན་དུ་བདག་ཀྱང་ངོ། །ང་གྱལ་
མཆོག་ཅེས་པ་ནི་ང་གྱལ་གྱི་མཆོག་བདེ་མཆོག་ཅེས་པའི་དོན་དོ། ༡༣ - ༡༣ །

ཉེ་རྒྱལ་དཔལ་གཞིར་གནས་པའི། །
ཡན་ལག་བསྐྱོད་པའི་ཇི་སྟེད་དང་། །
ཆེག་དུ་བཇོད་པ་ཇི་སྟེད་པ།¹ །
དེ་སྟེད་ཕྱག་རྒྱ་གསང་སྤྲུགས་ཡིན། ༡༤ །

ཉེ་རྒྱལ་དཔལ་གྱི་འཕང་གནས། །ཞེས་པ་ནི་དཔལ་ཉེ་རྒྱལ་གྱི་གྱི་འཕང་ལ་
ནལ་འབྱོར་པ་གནས་སྤོ་ཞེས་དགོངས་པའོ། ༡༤ །

རིགས་ལྡེའི་ཀུན་དུ་སྤྱོད་པ་ནི། །
རིགས་གཅིག་ཉིད་དུ་སྤྱོད་པར་བྱ། །
དེ་ལྟར་ཤེས་པའི་བདག་ཉིད་ཅན། །
གྱི་འཕང་མཆོག་དུ་འགྲོ་བར་འགྱུར། ༡༥ །

རིགས་ལྡེའི་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སྤྲུགས་པ་ནི་རིགས་ཀྱི་དངོས་པོ་གཅིག་ཉིད་ལ་
སྤྲུགས་ལྟར་བརྟགས་ཏེ། དེ་དང་དེར་སྤྱོད་པ་ལ་འགལ་བ་མེད་དོ་ཞེས་བྱ་
བའི་²དོན་དོ། །སྤྱོད་པའི་འབྲས་བྱ་གསུངས་པ། དེ་ལྟར་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སྤྲུགས་

1. ལུ ཆེག་རྒྱང་འདི་མེད།

2. གསེས་ བྱ་བ།

པ་ལ་དེ་ལྟར་ནི་¹སྤྱོད་པའི་སེམས་ཅན་ནོ། །གོ་འཕང་མཚོག་དུ་འགྲོ་བར་འགྱུར། །
ཞེས་པ་ནི་དཔལ་བདེ་མཚོག་ལ་ཉི་བར་གནས་པའོ། ༡༥ །

གཉིས་མེད་ཡེ་ཤེས་སེམས་ལྡན་ལ། །
མི་བྱ་བ་ནི་ཅི་ཡང་མེད། །
མི་དྲག་བདག་ཉིད་སེམས་ཀྱིས་ནི། །
འདོད་པའི་ཡོན་ཏན་ལྡན་མས་སྤྱད། ༡༦ །

གཉིས་མེད་ཡེ་ཤེས་སེམས་ལྡན་ལ། །ཞེས་པ་ནི་དཔལ་བདེ་མཚོག་གི་
ང་གྲུལ་གྱིས་སོ། ༡༦ །

²ནལ་འབྱོར་མའི་ཀུན་དུ་སྤྱོད་པ་ལས་གཉིས་སུ་མེད་པའི་བརྟུལ་
ཞུགས་³དང་གསང་སྤྲགས་བསྟན་པ་སྟེ་བཙུ་ལྡེ་⁴པའོ། །

འདི་ནི་ངེས་པར་བསྟན་པ་བཙུ་ལྡེ་པའོ།⁵ །

-
1. གསེས། དེ་ལྟར་མི།
 2. རྒྱ་དཔེས། (ཨིན) 'ཅེས' 'ཞེས་ཀྱང་འདུག
 3. རྒྱ་དཔེས། (ཅུ་) 'སྤྱོད་པ་' 'ཞེས་ཀྱང་གསལ།
 4. སྟེ། བརྟུ་ལྡེ།
 5. བོ། གསེས། འདི་ནི་བཙུ་ལྡེ་པའི་ངེས་པར་བསྟན་པའོ།

ངེས་པར་བསྟན་པ་བཅུ་དྲུག་པ།

གཞན་ཡང་¹ཕྱི་མའི་དུས་ཀྱི་ཆེ།

དུས་མཐར་དངོས་གྲུབ་མི་ཐོབ་སྟེ།

སློ་ནི་²གཞན་དུ་རྣམ་འབྲུགས་པས།³

ཕུག་གྱི་⁴འཁོར་བཞུགས་པ་ཡིས།⁵ ོ།

གཞན་ཡང་ཕྱི་མའི་དུས་ཀྱི་ཆེ། །ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ལ།⁶ ཕྱི་
མའི་དུས་ཀྱི་ཆེ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཅོད་པའི་དུས་སོ། །དུས་མཐར་ཞེས་པ་ནི་ཉོན་
མོངས་པས་གིན་དུ་འབྲུགས་པས་སོ། །དངོས་གྲུབ་མི་ཐོབ་སྟེ་ཞེས་པ་ནི་སྟེ་བ་
འདི་ལ་ཞེས་རིག་པར་བྱའོ། །སྟེ་བ་ཞེས་པ་⁸ཆེ་འདི་ཉིད་དོ། །གཞན་དུ་ཞེས་
པ་ནི་གཞན་དུའོ། །ཅི་རྣམ་པ་ཐམས་ཅད་དུ་མི་འབྲུབ་བམ་ཞེ་ན། གསུངས་པ།

1. གྱི་དཔེར། (ཨང) འདིར་ནི།
2. གྱི་དཔེར། (བརྒྱ) སངས་བྱུང་།
3. ལུ། ཁྱེད་ནི་སློ་དང་ལྡན་བྱས་པས།
4. ལུ། གཞན་དུ།
5. ལུ། ཡིན།
6. ཅི། པའོ།
7. ཅི། པ།
8. ལུ། གསེར། པ་ནི།

གཞན་དུ་སངས་རྒྱུ་མིང་ཅན་གྱི། །ཞེས་པ་ནི་དཔལ་བདེ་མཆོག་ལས་གཞན་གྱི་
སངས་རྒྱུ་ཀྱི་མིང་ཅན་གྱིས་འབྲུབ་པར་མི་འགྱུར་རེ་ཞེས་བྱ་བར་དགོངས་པའོ།
ཕྱག་རྒྱ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ནི་1འོ་མཆར་དྲུག་གམ་ཡུལ་ཡང་ངོ་ ༡ །

བདེ་བར་འབྲུབ་པར་མི་འགྱུར་གྱི། །
བགྱིས་དང་སྒྲོམ་གྱི་སྒྲུག་བསྐལ་འབྲུར། །
འབད་དེ་འདོད་བྱ་དམིགས་ནས་ནི། །
དེ་ཉིད་ཀྱིས་བདག་ནལ་འབྱོར་པ། ༣ །

མི་འགྱུར་ཞེས་པ་ནི་འདིར་འགྲོ་བས་ཞེས་པས་གཞན་དང་སྒྱུར་རོ། །ཇི་
ལྟ་བུ་ཞེ་ན། གསུངས་པ་བདེ་བར་མི་འགྱུར་ཞེས་པ་ལ་སོགས་པ་སྟེ། ཇི་ལྟར་
ནད་ཀྱི་དབང་གིས་སྒྲོམ་འཕྲུངས་པ་དང་ཟས་ཟས་པས་བདེ་བར་མི་འགྱུར་རོ།
དེ་ལྟར་མེད་པ་ཞེས་པ་སྒྲུར་གྱི་དང་སྒྱུར་དེ། དེ་བཞིན་དུ་ཞེས་པའི་དོན་དོ།
འདོད་པ་ཞེས་པ་ནི་ཡིད་ལ་འདོད་པར་གྱུར་པའོ། །འབད་པས་ཞེས་པ་ནི་གུས་
པས་སོ། །བདག་ཅེས་པ་ནི་སྒྲུབ་པ་པོའོ། །དེ་ཉིད་ཅེས་པ་ནི་གཟུགས་ཀྱིས་སོ།
ནལ་འབྱོར་པ་ཞེས་པ་ནི་འཁོར་ལོ་སྒྲོམ་པའི་ནལ་འབྱོར་པའོ། ༣ །

ཇི་ལྟར་ཉེ་རུ་ཀའི་ཡེ་ཤེས། །
ཇི་འདོད་པར་ནི་ཡོངས་སུ་གྱུ། །

1. རྒྱ་དཔེ་ (མུདྲུདྲི་ལྟེ།) ཕྱག་རྒྱ་སོགས་ཀྱིས་ཡང་ངོ་།

ན་བས་¹འིང་ནས་ཐོས་པ་དང་། །

སྐད་ཅིག་གིས་མཐོང་ནལ་འབྱོར་པས།² ༣ །

ཇི་ལྟར་ཉེ་རུ་ཀའི་ཡི་ཤེས་ཞེས་པ་ནི་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་དུ་དཔལ་ཉེ་རུ་ཀའི་ནམ་
པར་དག་པ་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་དུ་ཤེས་པའོ། །ཡོངས་སུ་རྒྱ་བ་ཞེས་པ་ནི་འབྲུམ་པའོ། །
ཇི་ལྟར་འདོད་པར་ཞེས་པ་ནི་གནས་ལ་སོགས་པར་པོ། །ཡོངས་སུ་རྒྱ་བའི་
འབྲུམ་བུ་གསུངས་པ། འིང་གནས་ཞེས་པ་ལ་སོགས་པ་སྟེ། ནལ་འབྱོར་པའི་
བཀའ་དྲིན་གྱིས་ཐག་འཇོག་པ་ཡང་ཉེ་བ་བཞིན་དུ་ཐོས་པར་འབྱུང་པོ། །མིག་གིས་
སྐད་ཅིག་གིས་མཐོང་ཞེས་པ་ནི་གཟུགས་ལྡན་པ་ཡང་ཉེ་བ་ལྟར་མཐོང་བར་འབྱུང་
པོ། །དེ་ལྟར་⁴ཤེས་པ་གཞན་གྱི་རོ་རིག་བྱ་གསུམ་པ་ལ་ཡང་རིག་པར་བྱའོ། ༣ །

ཆོས་འདི་དེ་ལྟར་ཤེས་ནས་ནི། །

བསམ་པ་ཐམས་ཅད་ཚྭ་གས་བྱེད་ཡིན། །

ཤེས་རབ་ཆེན་པོར་བྱས་པ་ཉིད། །

གཉིས་མེད་ཡི་ཤེས་བརྒྱལ་ཞུ་བ་བཟང་། ༤ །

དེ་ལྟར་ཆོས་འདི་ཤེས་ནས་ནི། །ཞེས་བྱ་བ་ནི་དེ་ལྟར་བསྟན་པའི་རིམ་
པས་འདིར་ཕན་ཡོན་དུ་རིག་པར་བྱ་བ་ཉིད་དོ། །བསམ་པ་ཐམས་ཅད་ཚྭ་གས་

-
1. རྒྱ་དཔེར། (འབྲུག་རྒྱུ་མ) མིག་གིས།
 2. རྒྱ་དཔེར། (ཡོག་རྒྱུ་མ) ནལ་འབྱོར་མས།
 3. གསེར། 'ལྟར་' མི་གསལ།
 4. དེ། ལྟ།

བྱེད་ཡིན། །ཞེས་པ་ནི་མང་པོའི་ཆིག་གོ །གཉིས་མེད་ཡེ་ཤེས་བརྟུལ་ཞུགས་
བཟང་། །ཞེས་པ་ནི་གཉིས་མེད་པའི་ཡེ་ཤེས་ཐོབ་པར་བྱེད་པའི་ཐབས་ཡིན་
ནི་ཞེས་བྱ་བའི་དོན་དོ། རྒྱུ་ ༥ །

ཞུལ་ཀུལ་མ་གཏོགས་པར། །
གལ་ཏེ་ཆོས་འདི་འདྲོད་ན་ནི། །
དེ་ཡི་ངལ་བ་²དོན་མེད་དེ། །
འབྲས་བུ་ཐོབ་པར་མི་འགྱུར་རོ། རྒྱུ་ ༥ །

འགྲོ་བ་ཐབས་དང་ཤེས་རབ་གྱི་ངོ་བོར་རིག་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར་གསུངས་པ།
ཞུལ་ཀུལ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་སྟེ། ཞུལ་ཀུལ་མ་གཏོགས་པ་ཞེས་པ་ནི་དབྱེར་
མེད་པའི་ཐབས་དང་ཤེས་རབ་དང་བུལ་བའོ། །ཆོས་འདིས་³ཤེས་པ་ནི་ཕྱི་དང་
ནང་གིའོ། །གལ་ཏེ་ཆོས་འདི་འདྲོད་ན་ནི། །ཞེས་པ་ནི་སྟེ་བོ་གལ་ཏེ་གཞན་
ཡིན་ན་ཞེས་པར་གོ་བར་བྱའོ། །དེ་ཡི་ངལ་⁴བ་དོན་མེད་དེ། འབྲས་བུ་ཐོབ་
པར་མི་འགྱུར་རོ། །ཞེས་པ་ནི་གོ་སྟེའོ། རྒྱུ་ ༥ །

མདོ་དང་བྱ་བའི་སྦྱོང་པ་རྣམས། །
རྣལ་འབྱོར་གསང་སོགས་དབྱེ་བ་ཉིད། །

-
1. བྱ་དཔེར། ཐོབ་པར་བྱེད་པའི་(ཅུ་བྱ་དྲུག་) སྦྱོང་པའི་བརྟུལ་ཞུགས།
 2. ལུ། བརྟུལ་ཞུགས།
 3. ཤེ། གསེར། འདི།
 4. སྟེ། ཤེ། དལ།

འཇིག་རྟེན་ཀུན་ལ་བཤད་པ་ནི། |

བྱང་ཆུབ་དོན་གྱི་བྱ་ཉིད་ཡིན། ༥ |

1མདོ་ལ་སོགས་པ་རྣམས་སུ་ཡང་འདི་ཉིད་སངས་རྒྱུས་གྱིས་ཕན་པའི་དོན་ཀུན་
རབ་དུ་བསྟན་པ་བསྟུས་པའི་དོན་དོ། ༦ |

ང་ཡིས་2འཇུག་པར་བཤད་པ་ནི། |

ཚོགས་གཉིས་གཉིས་སུ་མེད་པ་ཡིན། |

དེ་ཉིད་ཚས་ཀྱི་རང་བཞིན་གྱིས།3 |

ཟུང་ན་འདས་པ་འབའ་ཞིག་འདོད། ༧ |

ཡང་ཅི་ཐབས་དང་གཤམ་རབ་ཀྱི་ངོ་བོ་གང་ཞིན། གསུངས་པ་འཇུག་
པར་གསུངས་པ་ནི་དཔལ་བདེ་མཚོག་དུ་བསྐྱེད་པའོ། |ཇི་ལྟར་བསྟན་པ་ཞེས་པ་ནི་
སྤར་ཇི་ལྟར་བསྟན་པའོ། |ཚོགས་གཉིས་ཞེས་པ་ནི་ཚོགས་གཉིས་ཐོབ་པའོ།
གཉིས་སུ་མེད་པ་ཞེས་པ་ནི་རིག་པ་4དང་ལྟན་ཅིག་ཐ་མི་དད་པར་རོ། |དེ་ལྟར་
ཀུན་རྫོབ་ཀྱི་བདེན་པ་བསྟན་ནས། དོན་དམ་པའི་བདེན་པ་བརྗོད་ཅིང་གསུངས་
པ། དེ་ཉིད་ཚས་ཀྱི་རང་བཞིན་གྱིས། |ཞེས་པ་ནི། དུག་པའི་དོན་གྱི་དང་
པོའ། |དེ་ཉིད་ཅེས་པ་ནི་མདོར་བསྟན་པའོ། |ཚས་ཞེས་པ་ནི་བྱས་པར་

1. ལྟ་དཔེར་པ། ‘མདོ་ལ་སོགས་པ་ཞེས་པ་ནི།’ ཞེས་ཀྱང་གསལ།

2. ལྟ་དཔེར་པ། (ཡལ་ལྟ་) ཇི་ལྟར་

3. ལྟ། ཞེས།

4. ཅི། ལྟ། དེ། གསལ་པ། རིམ་པ། འདིར་‘རིག་པ་’ ལྟ་དཔེར་ལྟར་བཞག་ཡོད།

བཤད་པའོ། །རང་བཞིན་གྱིས་ཞེས་པ་ནི་གིན་དུ་གྱུས་པར་བཤད་པའོ།
 འབའ་ཞིག་ཅིས་པ་ནི། སྤྱི་ནི་གཉིས་མེད་ཡེ་གེས་ཏེ། ཞེས་པ་ལ་སོགས་པ་སྟེ།
 བསྐྱེད་པ་ཚྭ་ལ་མེད་པའི་དོན་དམ་པའི་བདེན་པའོ། །འདྲོད་ཅིས་པ་ནི་བསྐྱེད་
 པའོ། ལ །

ཐམས་ཅད་བདེན་པ་གཉིས་པ་ནི། །
 བདེན་པར་ངས་ནི་སྤྱོད་བཤད་པ། །
 རྣལ་འབྱོར་པ་ཡིས་དངོས་གྲུབ་གྱིས། །
 སྒྲུབ་པ་མངོན་དགར་གྱུར་པ་ཡིན། ། །

མཇུག་བསྐྱེད་པ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པ། ངས་ནི་སྤྱོད་བཤད་ཅིས་
 གསུངས་ཏེ། ཅི་བཤད་ཅི་ན། གསུངས་པ། བདེན་པ་གཉིས་ལ་བདེན་ནས་
 ཞེས་པ་ནི་འདྲིར་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གོ་བར་བྱའོ། །རྣལ་འབྱོར་པ་ཞེས་པ་ནི་
 རྣལ་འབྱོར་པའོ། ། །

སྤྱོད་པ་ཀུན་ལ་དམིགས་ནས་ནི། །
 སྤྱོད་པས་སྤྱོད་པ་མེད་པར་བྱ། །

-
1. བོ། གསེར་གྱི་གེས།
 2. རྒྱ་དཔེར་ 'ཚྭ་ལ་མེད་པའི་' ཞེས་པ་མེད།
 3. རྒྱ་དཔེར་ (སའབྲེལ་བཞིན་) སྒྲུབ་ཀུན་གྱིས།

རྒྱུད་རྣམས་ཀུན་དུ་གསང་བ་གང་། །

སྤྱལ་པ་¹རྣམས་ཀྱི་དེ་ཉིད་བསྟན། ལ །

སྤྱིས་པ་ཀུན་ལ་ཞེས་པ་ནི་ལྟ་དང་ལྟ་མའི་སྐྱེའོ། །དམིགས་ནས་ཞེས་པ་
ནི་དམིགས་པར་བྱའོ། །ཇི་སྤྱད་བརྟོག་པའི་སྤྱིད་ཡུལ་དུ་ཤེས་པ་ནི་རྣམ་པར་
དག་པ་ལ་ཐུག་པར་བྱའོ། །རྒྱུད་ཐམས་ཅད་ཀྱི་དོན་དམ་པའི་བདེན་པ་བསྟན་
པའི་ཕྱིར་རོ། །གསུངས་པ་རྒྱུད་རྣམས་ཀུན་དུ་²ཞེས་པ་ལ་སོགས་པ་ནི་བྱ་བའི་
རྒྱུད་ལ་སོགས་པ་རྣམས་སུ་གང་ཞིག་གསང་བའི་ལྷ་ངན་ལས་འདས་པ་དེ་འདིར་
ཡང་བསྟན་ཞེས་པའི་དོན་དོ། ལ །

རྒྱུད་⁴འདི་ཡིས་ནི་རྣལ་འབྱེད་པ། །

བདེན་པ་གཉིས་ལ་ཡང་དག་བརྟེན། །

སེམས་རྣམས་⁵ཐམས་ཅད་བསལ་ནས་ནི། །

ཡོངས་སྤྱིད་ཀུན་ལ་ཉིར་སྤྱད་བྱ།⁶ གྲུ །

1. རྒྱ་དཔེར། (ནི་རྟུ་རྟུ་) ལྷ་ངན་ལས།

2. རྒྱ་དཔེར། (སྤྱི་རྟུ་རྟུ་) 'སྤྱི' ཞེས་པའི་ཆིག་ལྷག་པོར་སྤྱད།

3. ཅོ་ སྤྱི་ ཀུན་དུ།

4. སྤྱི་ རྒྱ་དཔེར། རྒྱ།

5. སྤྱི་ བསལ་པ། སྤྱི་ སེམས་ཅན།

6. སྤྱི་ སྤྱིད་ཕྱིད།

ཁྱིམ་ལྔ་ལ་སོགས་ཡུལ་རྣམས་སུ། །
 རྣལ་འབྱོར་མ་ནི་ལྔ་¹ཉིད་གནས། །
 བསྐྱབ་པར་བྱ་བའི་གནས་ཀྱན་དུ། །
 གཡོན་ནས་བསྐྱོར་བ་ལ་རབ་བཙོན། ༡༢ །

ཁྱིམ་ལྔ་ལ་སོགས་གྲང་ཞེས་པ་ནི་ཁྱིམ་ལྔ་པོས་ཁྱད་པར་དུ་བྱས་པའི་གྲང་
 ལ་སོགས་པ་རྣམས་སོ། །གནས་ཞེས་པ་ནི་གནས་པ་ཉིད་དོ། །བསྐྱབ་པར་བྱ་
 བ་ནི་ཞེས་པ་ནི་འདྲོད་པའོ། །ཀྱན་དུ་²ཞེས་པ་ནི་རྒྱ་དེའི་ཕྱིར་དེ་ཐམས་ཅད་
 བསྐྱབ་པར་བྱ་བའི་གནས་ཞེས་པའི་དོན་དོ། །གཡོན་ནས་བསྐྱོར་བ་ལ་རབ་
 བཙོན། །ཞེས་པ་ནི་གཡོན་གྱིས་སྤྱོད་པའི་རྣལ་འབྱོར་པའོ། ༡༣ །

ཇི་ལྟར་སྤར་བཤད་འཁོར་ལོ་ཡི།³ །
 བྲངས་ཀྱི་⁴ཆོ་གས་བརྟུལ་ཞུགས་ཅན། །
 དཔའ་བོའི་སྤགས་སོགས་⁵རྣལ་འབྱོར་མའི། །
 ཡིད་ལ་འདྲོད་པ་དགོད་པར་⁶བྱ། ༡༤ །

-
1. རྒྱ་དཔེས (ཅུག) འཁོར་ལོ།
 2. གསེས་ རྒྱ། ཅོ། ཀྱན་དུ།
 3. སུ། སྤ།
 4. རྒྱ་དཔེས (སྤལྱུ) སྤ་བྱ།
 5. སུ། དང་།
 6. སུ། དགོས་པ།

ཡར་བཤད་འཁོར་ལོའི་ཞེས་པ་ནི་གཉིས་པའི་དོན་གྱི་དྲུག་པའོ། །
 བར་བྱ་ཞེས་པ་ནི་རྣམ་པར་བསྐྱེམ་པའོ། །ད་ནི་ཉེ་རྒྱུའི་མཛད་པ་གསུངས་པ།
 དཔལ་བོའི་ལྷགས་སོགས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ། དཔལ་བོའི་
 ལྷགས་སོགས་རྣལ་འབྱོར་མ། །ཞེས་པ་ནི་དཔལ་བོ་ལ་སོགས་པ་རྣལ་འབྱོར་
 མའི་ལྷགས་སོ། །དགོད་པར་བྱ་ཞེས་པ་ནི་གནས་ཇི་ལྟ་བར་བསྐྱེམ་པར་བྱའོ།
 ཡིད་ལ་འདོད་པ་ཞེས་པ་ནི་ཡིད་ལ་མཛོད་པར་འདོད་པའི་བོང་བུའི་རྣམ་པ་ལ་
 སོགས་པའོ། ༡༩ །

གར་གྱི་འདབ་མར་¹མཁའ་འགྲོ་མ། །

བོང་བུའི་རྣམ་པར་བསྐྱེམ་པར་བྱ། །

ཉེ་རྒྱུ་དཔལ་ཞེས་བྱ་བ། །

ལས་རྣམས་ཐམས་ཅད་བྱེད་པ་ཡིན། ༢༠ །

གར་གྱི་འདབ་མར་ཞེས་པ་ནི་གར་ལ་སོར་པའི་འདབ་མ་རྣམས་སུའོ།
 མཁའ་འགྲོ་མ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་མཁའ་འགྲོ་མ་ལ་སོགས་པའོ། །བོང་བུའི་རྣམ་
 པར་བསྐྱེམ་པར་བྱ། །ཞེས་པ་ནི་བོང་བུའི་²རྣམ་པར་བསྐྱེམ་པར་བྱའོ།³
 ཉེ་རྒྱུ་དཔལ་ཞེས་བྱ་བ། །ཞེས་པ་ནི་⁴དཔལ་ཉེ་རྒྱུའི་སྐྱར་བསྐྱར་ལ་བསྐྱེམ་མོ་

1. ལྷ་ པལྷ།

2. གསེས་ དེ། བུང་བུའི།

3. དེ། གསེས་ བསྐྱེམ་པའོ།

4. དེ། གསེས་ ཞེས་བྱ་བ་ནི།

ཞེས་པའི་དོན་ནི། །ལས་རྒྱམས་ཐམས་ཅད་ཅེས་པ་ནི་ལས་ཐམས་ཅད་དང་ཉི་
བར་ལྷན་པའོ། ༡༩ །

ཉི་རུག་དཔལ་གྱི་འཕང་གནས། །

ལུས་ངག་ཡིད་གྱི་ལས་རྒྱམས་ལ། །

བཤད་དང་མ་བཤད་གང་བསམ་པ། །

དེ་དག་ཐམས་ཅད་མྱུར་དུ་འགྲུབ། ༢༠ །

ལུས་ངག་ཡིད་གྱི་ལས་རྒྱམས་ཞེས་པ་ནི་ལུས་དང་ངག་དང་ཡིད་གྱི་བྱ་
བའོ། །བསྟན་དང་མ་བསྟན་ཞེས་པ་ནི་བཤད་དང་མ་བཤད་པའོ། །གང་¹
བསམས་ཞེས་པ་ནི་བྱ་བ་ལ་མངོན་པར་ཞེན་པའོ། །ཉི་རུག་དཔལ་གྱི་འཕང་
གནས། །ཞེས་བྱ་བ་ནི་དཔལ་པོ་པོང་²བའི་རྒྱལ་པའི་རྒྱལ་འབྱོར་གྱིས་གནས་
པའོ། ༢༡ །

3རྒྱལ་འབྱོར་མའི་ཀུན་དུ་སྦྱོད་པ་ལས་དངོས་གྲུབ་གྱི་4ངེས་པ་དང་
དཔལ་ཉི་རུག་འི་མཇེད་པ་བསྟན་པ་སྟེ་བཅུ་དྲུག་པའོ། །

འདི་ནི་ངེས་པར་བསྟན་པ་བཅུ་དྲུག་པའོ།⁵ །

1. རྒྱ་དཔེར། ‘གང་’ ཞེས་པ་མི་འདུག

2. བོ། བུང་།

3. རྒྱ་དཔེར། (ཨིནི) ‘ཅེས་’ ཞེས་ཀྱང་གསལ།

4. ལྷ། དངོས་གྲུབ་ཀུན་གྱི།

5. བོ། གསེར། འདི་ནི་བཅུ་དྲུག་པའི་ངེས་པར་བསྟན་པའོ།

ངེས་པར་བསྟན་པ་བཅུ་བདུན་པ།

དེ་ནས།

ཉི་རུག་དཔལ་སྤྱུལ་པ་ནི།¹ |

ཡན་ལག་དྲུག་པ་སེམས་ཀྱིས་སྤྱུལ་² |

དག་པའི་ཚོས་ཀྱི་སྤྱུལ་པ་ནི། |

ཕག་མོའི་གཟུགས་སུ་བསྟན་པ་ཡིན། ། |

དེ་ནས་ཞེས་པ་ལ་སོགས་པ་ལ། དཔལ་ཉི་རུག་ཞེས་པ་ནི་དཔལ་
ཉི་རུག་འོ། །དྲུག་པ་ཞེས་པ་ནི་དྲུག་པ་རྩི་ཆེ་སེམས་དཔའོ། །སེམས་ཀྱི་སྤྱུལ་པ་
ཞེས་པ་ནི་སེམས་ཀྱི་རང་བཞིན་ནོ། །དག་པའི་ཚོས་ཞེས་པ་ནི་ཐམས་ཅད་³སྤང་
པ་ཉིད་དོ། ། |

ཐབས་དང་ཤེས་རབ་སྦྱར་བ་ལས།⁴ |

དེ་ཉིད་དང་ནི་ཐམས་ཅད་འབྱུང་། |

1. བོད་འབྲུར་རྒྱམས་སུ་ 'དེ་ནས་ཉི་རུག་དཔལ་སྤྱུལ།' ཞེས་འདུག་ཀྱང་འདིར་བྱ་དཔེ་ལྟར་
བཞག་ཡོད།

2. སྤྱུ་ སེམས་ནི་དྲི་མེད་ཡིན་པར་བཤད།

3. བྱ་དཔེ་ས། 'ཐམས་ཅད་' ཅེས་པ་མི་སྤང་།

4. བྱ་དཔེ་ས། (མཐུམ་རྒྱན་ཡོགས་ཏེ་) བསྐྱེད་དང་བསྐྱེད་པའི་སྦྱར་བ་ཡིས། |

མེ་ལོང་ལ་སྟགས་རྣམ་པ་བཞི། 1

མཚན་པ་བཞི་རུ་བཅོད་པ་ཡིན།¹ 3

དེ་ཉིད་ཅེས་པ་ནི་དེ་ལས་ལྷན་སྐྱབས་གཉིས་སོ། །བསྐྱབ་བྱ་བསྐྱབས་²པའི་
སྒྱུར་བ་ལས། །ཞེས་པ་ནི་མངལ་ནས་སྐྱེ་བར་དཀྱིལ་འཁོར་བསྐྱེམ་པའི་ཕྱོགས་
སོ། །མེ་ལོང་ལ་སྟགས་རྣམ་པ་བཞི། །ཞེས་པ་ནི་མེ་ལོང་ལ་སྟགས་པ་རྣམ་
པར་དག་པ་ཐོད་པ་བཞི་པོ་³མཚམས་བཞིར་སྟོ། །མཚན་པ་བཞི་རུ་བཅོད་ཅེས་
པ་ནི་འདིར་⁴དེ་ཉིད་མཚན་པ་བཞིར་བཅོད་པའོ། 3

མཁའ་འགྲོ་མ་བཞི་པ་རྣམས་གནས། 1

མུམགྱི་སྟགས་བཟང་མོ་⁵ཡིན། 1

ཐོད་པའི་དུམ་སྟེར་འཁོར་ལོར་གནས། 1

ཉི་ཤུ་རྩ་བཞི་གཉིས་མེད་ཡིན། 3

མཁའ་འགྲོ་མ་བཞི་འདབ་མར་གནས། །ཞེས་པ་ནི་པ་རྣམས་འདབ་མ་
བཞི་ལ་མཁའ་འགྲོ་མ་བཞིའོ། །མུམགྱི་སྟགས་བཟང་མོ་ཡིན། །ཞེས་པ་ནི་

1. ཐོད་འགྱུར་རྣམས་སུ་ 'པ་རྣམས་འདབ་གནས་རྣལ་འབྱོར་མ།' ཞེས་ཡོད་ཀྱང་འདིར་རྒྱ་དཔེའི་
ཆེན་ (ཙང་ལུང་ཉི་ཤུ་ལྷན་) དང་མཐུན་པར་བཅོས།
2. པེ། གསེས། བསྐྱབ།
3. རྒྱ་དཔེས་ 'བཞི་པོ་' ཞེས་པ་མེད།
4. རྒྱ་དཔེས་ (ཞེད་དེབ) འདི་ཉིད།
5. རྒྱ་དཔེས་ (སུ་རྩ་) མཛེས་མ།

མཁའ་འགྲོ་མ་ལ་སྟགས་པ་བཞི་པོ་དེ་ཉིད་ཇི་ལྟར་རིགས་པར་སྐྱེ་མཁྱེལ་སྟགས་
 པའི་རང་བཞིན་ནི་ཞེས་པའི་དོན་དོ། །འཁོར་ལོར་གནས་ཞེས་པ་ནི་འཁོར་ལོ་
 གསུམ་ལ་གནས་པའོ། །གཉིས་མེད་ཅེས་པ་ནི་ནལ་འབྱུང་མ་དང་སྟོམས་པར་
 འབྱུག་པའོ། ३ །

སེམས་ཅན་འཁོར་བ་ལས་གྲོལ་བ།¹ །

དཔའ་བོ་ཉིད་ནི་ཡིན་པར་བརྟག །

ཁྱོ་བོ་རྣམ་རྒྱལ་ལ་སྟགས་ཀུན། །

སྟོ་དང་མཐའི་མཚམས་བར་དུ་བརྒྱད།² ར །

སེམས་ཅན་འཁོར་བ་ལས་གྲོལ་བ། །ཞེས་པ་ནི་སེམས་ཅན་རྣམས་
 འཁོར་བ་ལས་གྲོལ་བར་བྱེད་པའོ། །ཁྱོ་བོ་རྣམ་རྒྱལ་ལ་སྟགས་ཞེས་པ་ནི་ཁྱོ་བོ་
 རྣམ་པར་རྒྱལ་བ་ལ་སྟགས་པ་དང་། །ཁྱ་གདོང་མ་ལ་སྟགས་པའོ། །སྟོ་དང་
 མཐའི་མཚམས་ཞེས་པ་ནི་སྟོ་རྣམས་དང་མཚམས་རྣམས་སྟུང་། །བར་དུ་
 བརྒྱད་ཅེས་པ་ནི་ཇི་སྟེ་དུ་བརྒྱད་དུ་བྱུང་པའོ། ར །

སྟོ་ཚྭ་གས་གདུལ་བའི་ཐབས་ཅན་གྱིས། །

སེམས་ཅན་དོན་ལ་བརྩོན་པར་མཇེད། །

1. ལུ་ སྟོལ་བ།

2. བོད་འབྱུང་པར་མ་རྣམས་སུ་ 'སྟོ་དང་མཐའ་ཡི་མཚམས་རྣམས་སྟུང་' ཞེས་གསལ།

3. ཙ་ རྣམས་རྒྱལ།

གསང་བའི་གནས་¹ཀྱི་རྣམ་གནས་པ། |

རབ་དྲུ་འབད་དེ་སྤྱ་བར་བྱ། ཡ |

རྣལ་འབྱོར་བའི་འཆི་བ་ནི་སེམས་ངལ་སྟོང་པ་ཙམ་ཡིན་ནི་ཞེས་བསྟན་
 པའི་ཕྱིར་གསུངས་པ། ལྷ་ཚྭ་གས་ཞེས་ཕྱ་བ་ལ་སྟོང་གས་པ་སྟེ། ལྷ་ཚྭ་གས་འདུལ་
 བའི་ཐབས་ཞེས་པ་ནི་རྣམ་པ་ལྷ་ཚྭ་གས་ཀྱིས་འདུལ་བའི་སེམས་ཅན་ལ་དེ་དང་
 དེའི་ཐབས་ཀྱིས་སྟེ། །སེམས་ཅན་དོན་ལ་བརྩོན་པར་མཇེད། །ཅིས་པ་ནི་དུག་
 པའི་དོན་གྱི་དང་པོའོ། །སྤྱ་བར་བྱ་ཞེས་པ་ནི་གསང་བར་བྱ་བའོ། །གསང་བའི་
 གནས་²ཞེས་པ་ནི་ཤིན་དུ་ཡང་གསང་བའི་ཚས་ཡིན་པས་གསང་བའོ། །ངལ་
 སྟོང་ཞེས་པ་ནི་སེམས་ངལ་སྟོང་པ་ཙམ་མོ། །འདི་ཉིད་ནི། སེམས་ནི་ངལ་
 སྟོང་རྣལ་འབྱོར་པ། །ལྷ་ངན་འདས་པ་མི་སྟོན་པ། །ཞེས་བྱ་བར་སྦྱར་སྟེ།
 རྣལ་འབྱོར་པ་ཞེས་པ་ནི་སྤྱ་བ་པའི་³རྣལ་འབྱོར་པའོ། །ལྷ་ངན་⁴འདས་པ་ནི་
 འཆི་བའོ། ཡ |

1. ལྷ་དཔེས། (གུར་མཛོད་) གསང་བའི་སྟངས།
2. ལྷ་དཔེས། (མཐུ) སྟངས།
3. ལྷ་དཔེས། ‘སྤྱ་བ་པའི་’ ཞེས་པ་མེད།
4. པེ། གསེས། ལྷ་ངན་ལས།

ནལ་འབྱུང་མ་སྟགས་དཔའ་བོ་དང་། །

ཇི་སྤྱོད་དངོས་གྲུབ་འདོད་ཀྱི་བར། །

ནལ་འབྱུང་འབྲས་བུ་ཐོབ་ནས་ནི། །

སྤྱོད་མཚར་ལྟར་བར་མི་འབྱུང་རོ། ༥ །

ནལ་འབྱུང་མ་སྟགས་དཔའ་བོ་དང་། །ཇི་སྤྱོད་དངོས་གྲུབ་འདོད་ཀྱི་
བར། །ཞེས་པ་ནི་ནལ་འབྱུང་མ་ལ་སྟགས་པ་དང་། །དཔའ་བོ་ནམས་བསྐྱེམ་
པ་ཇི་སྤྱོད་ཀྱི་བར་དུ་ཞེས་པའི་དོན་ནོ། །འབྲས་བུ་ཐོབ་པ་ཞེས་པ་ནི་འབྲས་བུ་
ཅུང་ཟད་ཐོབ་ཀྱང་ངོ་། །ནལ་འབྱུང་ཞེས་པ་ནི་ནལ་འབྱུང་བྱེད་པའོ། ༥ །

འཁོར་བ་ལས་ནི་སྦྱོལ་²བའི་ཐབས། །

སྤྱོད་ཀྱི་སྤྱིང་པོ་བསྐྱུས་པ་ཡིན། །

སྒྲ་མ་སྦྱོབ་མས་རྟོགས་སྒྲའི་ཕྱིར། །

ཚོ་ག་རྒྱ་ཆེར་³མ་བཤད་དེ། ། ལ །

འཁོར་བ་ཞེས་པ་ནི་འཁོར་བའོ། །སྦྱོབ་མ་ལ་ཕན་ཕྱིར་ཞེས་པ་ནི་སྦྱོབ་མ་
ལ་ཕན་པའི་ཆེད་དུའོ། ལ །

1. བོད་འབྱུང་ཅ་གཞུང་དུ་ཆིག་ཀྱང་འདི་གཉིས་ཀྱི་སར་ “ནལ་འབྱུང་མ་དང་དཔའ་བོ་ཡི།
ཇི་ལྟར་འདོད་པའི་དངོས་གྲུབ་སྟེར།” ཞེས་འདུག་ཀྱང་འདིར་བོད་འབྱུང་ཀྱི་འབྲེལ་པ་དང་གྱུ་
དཔའ་མཐུན་པར་བཞག་ཡོད།
2. པེ། སྤྱ། སྒྲ། བསྐྱུས།
3. སྤྱ། ཇི་བཞིན།

སེམས་ནི་ངལ་སོ་རྣལ་འབྱེད་པ། །

མྱ་ངན་འདས་པ་བསྟན་མི་བྱ། །

གང་ཞིག་¹སྤྱོད་པའི་སྒྲིམ་མཚེག་འདི། །

སྒྲིག་པ་ཐམས་ཅད་རྣམ་དག་འགྱུར། ༥ །

གང་ཞིག་སྤྱོད་པའི་²ཞེས་པ་ནི་གོ་སྟོལ། ༥ །

འཇིག་རྟེན་འདི་འམ་པ་རྩལ་དུ། །

སྐད་ཅིག་³སངས་རྒྱས་ཉིད་མཐོང་⁴འགྱུར། །

ངེ་ལྟར་སྤྲུང་བཤད་⁵སྒྲིག་པ་རྣམས། །

དམན་པར་གྱུར་ནས་⁶མཚན་ཉིད་ཡིན། ༧ །

གང་ཞིག་འདི་སྒྲོམ་རྣལ་འབྱེད་པ། །

འདྲོད་པའི་དབང་ཕྱག་ཐམས་ཅད་སྟེར།⁷ །

1. རྒྱ་ དེ་ལྟར།

2. མོད་དཔེ་རྣམས་སུ་ 'དེ་ལྟར་' ཞེས་གསལ་ཁྱེད་འདིར་ཅ་བ་དང་རྒྱ་དཔེ་ལྟར་བཞག་ཡོད།

3. རྒྱ་ དེ། རྒྱ་ རྒྱ། འདིས་ནི།

4. དེ། འཐོབ། རྒྱ། ཐོབ།

5. རྒྱ་དཔེས། (རྒྱ་དཔེ) སྤྲུང་སྟོགས།

6. རྒྱ་ དེ། རྒྱ་ རྒྱ། སྤང་བར་བྱ་བའི།

7. རྒྱ་ དེ། རྒྱ་ རྒྱ། འདྲོད་པའི་དབང་ཕ་ཐམས་ཅད་སྟེར།

ཉི་རུཀ་དཔལ་མཚན་བཟོད་པས། |

ལྷ་སོགས་ཀུན་གྱི་གསང་གང་དང་། ༡༠ |

མི་ལ་སོགས་པའི་གང་ཞིག་དགེ། |

དེ་ཡི་བསོད་ནམས་དེས་ཐོབ་པོ། |

བསམ་གཏན་གྱིས་ནི་བསམས་ཙམ་མམ། |

འདོན་ཅིང་སློག་གམ་བྲིས་པ་ཡིས།³ ༡༡ |

ཇི་ལྟར་སྤར་བཤད་སྤྱིག་པ་རྣམས།

|ཞིས་པ་ནི་གསུམ་པའི་དོན་

དོ། ༩ - ༡༡ |

མཐོ་རིས་ལོངས་སྤྱོད་འཐོབ་འབྱུར་ཏེ། |

ཡང་ན་འཁོར་ལོས་སྐྱུར་ཉིད་འབྱུར། |

ཀླུ་འབྱོར་པ་ནི་འཕྲོ་བའི་ཆེ། |

དཔལ་ལྷན་ཉི་རུཀ་ལ་སོགས། |

1. ཐེ། དེ། ལྷ། ལྷ། མི་ལ་སོགས་ལ་གང་ཞིག་ཡོད།

2. ཐེ། དེ། ལྷ། ལྷ། འཐོབ།

3. ལྷ། ཙམ་གྱིས།

དཔའ་བོ་དག་ནི་ཐམས་ཅད་དང་། །

ནྟལ་འབྱོར་མ་ནི་ཇི་སྟེད་པ།¹ ༡༣ །

ལག་ན་སྒྲ་ཆོགས་མེ་དོག་བསྐྱམས།² །

བ་དན་རྒྱལ་མཆན་སྒྲ་ཆོགས་དང་། །

རྟལ་མོའི་སྒྲ་ནི་སྒྲ་ཆོགས་དང་། །

སྒྲ་ཆོགས་སྒྲུས་ནི་ཉེ་བར་མཆོད། ༡༣ །

ནྟལ་འབྱོར་པ་ཞེས་པ་ནི་ནྟལ་འབྱོར་པའོ། །དཔལ་ལྷན་ཉི་ཤུ་ཀ་ལ་སོ།།

ཞེས་པ་ནི་གཞན་ཀུན་ལ་ཡང་གསུམ་པར་རིག་པར་³བྱའོ། ༡༣ - ༡༣ །

འཆི་བ་ཞེས་བྱ་ནམ་རྟོག་སྟེ། །

མཁའ་ལ་སྟོད་པའི་གནས་སུ་འབྱེད། །

དེ་ལྟའི་⁴དཔའ་བོ་ཆེན་པོ་དང་། །

ནྟལ་འབྱོར་མ་ནི་ས་སྟོང་དགོན། ༡༤ །

1. རྒྱ་དཔེར། (ལྷོ་ལོ་ལོ་ནི) དཔའ་བོ་ནྟལ་འབྱོར་མ་ཞེས་གསལ་བ་བོད་སྐད་དུ་ཆོག་ཀང་སྟེ་མ་
ཕྱིར་ཆོག་ཀང་གཉིས་སུ་བསྐྱར་བར་བཞེན་རྒྱ་དཔེར་ཆོགས་བཅད་གཅིག་ལས་མེད་ཀྱང་བོད་
འབྱུར་དུ་ཆོགས་བཅད་ཕྱིད་དང་གཉིས་སུ་སྒྲུང་།

2. རྒྱ་དཔེར། (བྱུ་) སྟེ་ལ།

3. བཤུ་ གསེར། པའི།

4. རྒྱ་དཔེར། (དེ་ལྟེ) ལ།

དཔའ་བོ་དང་ནི་ཞེས་པ་ནི་ལྷ་ཆེན་པོའི་དཔའ་བོ། །ནལ་འབྱོར་མ་
ཞེས་པ་ནི་ལྷ་མོ་རྣམས་དང་ངོ་། །དཀོན་ཞེས་པ་ནི་རྩྭ་པར་དཀའ་བོ། ། ༡༥ །

ཇི་ལྟར་བྱད་མེད་བྱིས་གཏམ་རྗེས་ཡི་རང་། །

ཀུན་སྤྱོད་བསྟེན་པའི་གཏམ་ཡང་རྗོད་པར་བྱེད། །

ལམ་ཡང་བཤད་ཅིང་འཆིང་བར་མི་འགྱུར་ཡིན།¹ །

ཇི་ལྟར་རིག་པ་ནལ་འབྱོར་ལམ་ནི་བསྟན།² ། ༡༦ །

ཇི་ལྟར་བྱད་མེད་བྱིས་གཏམ་རྗེས་ཡི་རང་། །ཞེས་པ་ནི་ཇི་ལྟར་ཆགས་
པ་ཅན་སྦྱིས་པ་དང་བྱད་མེད་ཀྱི་གཏམ་བརྗོད་པས་དགའ་བ་སྦྱི་བོ། །ཀུན་སྤྱོད་
བསྟེན་པའི་གཏམ་ཡང་རྗོད་པར་བྱེད། །ཅིས་པ་ནི་ཇི་ལྟར་དགའ་བའི་དོན་དུ་
སྦྱིས་པ་དང་བྱད་མེད་དག་དུས་འདི་བས་པའི་གཏམ་ལ་སྦྱོར་བ་བརྗོད་པོ། །
ལམ་ཡང་བཤད་ཅིང་འཆིང་བར་འགྱུར་བ་མ་ཡིན་ཞེས་པ་ནི་³ །དེ་ལྟར་ལམ་
དང་འཆིང་བའི་དངོས་པོ་མེད་པར་བརྗོད་པ་སྟེ་འཆང་བྱ་ཞེས་པ་ལྟག་མཐོ། །ཇི་
ལྟར་རིག་པ་⁴ནལ་འབྱོར་ལམ་ནི་བསྟན། །ཞེས་པ་ནི་དེ་ལྟར་རིག་པའི་སྒྲུབ་

1. ལམ་ཡང་མ་བཤད།

2. སྤྱོད་ བཤད་ སྤྱོད་ ལྷ་ འཆིང་བར་འགྱུར་བ་ཡིན། ལྷ་ འཆིང་བར་མི་འགྱུར་ཡིན། ཞེས་
བོད་དཔེ་རྣམས་སུ་གསལ་ཀྱང་འདིར་བྱད་པའི་ཅུ་འབྲེལ་གཉིས་ཀ་དང་མཐུན་པར་བཞག་ཡོད།

3. བོད་འགྱུར་ཅུ་གཞུང་རྣམས་སུ་ 'ནལ་འབྱོར་ལམ་ངན་དེ་དང་འབྲེལ་བར་བཤད།' ཅེས་
གསལ་ཀྱང་འདིར་བྱད་པའི་ཅུ་འབྲེལ་པ་ལྟར་བཞག་ཡོད།

4. བཤད་ ལམ་ཡང་བཤད་ཅིང་འཆིང་བར་འགྱུར་བ་ཞེས།

སྤྱོད་ ལམ་ཡང་བཤད་ཅིང་འཆིང་བར་འགྱུར་བ་ཡིན་ཞེས།

5. བོད་འགྱུར་པར་མ་རྣམས་སུ་ 'རིག་པ་' ཞེས་གསལ།

ལྷར་རིག་པ་¹རྣལ་འབྱོར་ལམ་ནི་བསྟན། |ཞེས་པ་ནི་དེ་ལྷར་རིག་པའི་སྐབ་
པ་པོའི་བྱ་བ་ལྟ་དང་ལྟ་མའི་རྣལ་འབྱོར་གྱི་མཚན་ཉིད་ཀྱི་ལམ་ཞེས་པའི་དོན་

དོ། ༡༥ ।

དེ་ནས་གཞན་ཡང་བཤད་བྱ་བ། |
གནས་སྟགས་རྣལ་འབྱོར་མ་ཡི་གནས། |
དེ་རྟུག་དཔལ་སྟགས་རྣལ་འབྱོར། |
དཔལ་བོ་གཉིས་མེད་རྣལ་འབྱོར་མ།² ༡༦ ।

གནས་སྟགས་རྣལ་འབྱོར་མ་ཡི་གནས། ཞེས་པ་ནི། གནས་ལ་སྟགས་
པའི་གནས་རྣམས་སྟ། |རྣལ་འབྱོར་མ་རྣམས་སྟ་བསྟན་ཞེས་པའི་དོན་དོ།
དཔལ་བོ་གཉིས་མེད་རྣལ་འབྱོར་མ། |ཞེས་པ་ནི་དཔལ་བོ་དང་སྟོམས་པར་
ཞུགས་ནས་གནས་ཞེས་པའི་དོན་དོ། ༡༦ ।

ཕུལྱི་རམལཡར་རབ་གདུམ།³ |རྒྱལ་རྒྱར་རབ་གདུམ་པའི་མིག།
ཞོ་བྱེན་⁴ནི་འོད་ལྡན་མ། |ཨ་རབུད་ར་ནི་⁵སྣ་ཆེན་མོ།

1. བོད་འབྱོར་པར་མ་རྣམས་སྟ་ 'རིག་པ་' ཞེས་གསལ།
2. རྒྱ་དཔེས། (ཕུལྱི་རམལཡར་སྟོན་པའི་) དཔལ་བོ་གཉིས་མེད་ལ་ལེགས་གནས།
3. དེ། ཕུལྱི་རམལཡར་དཔག་གདུམ། ལྟ། ཕུལྱི་རམལཡར་རབ་གདུམ་མ།
4. སྟ། ཞུ་བྱེན།
5. སྟ། ཨ་རབུད་ར་ནི། དེ། ཨ་རབུད་ནི།

ཡུལ་འདི་རྣམས་ཀྱི་བྱ་མོ་གང་། །
 དཔའ་བོ་གཉིས་མེད་རྣལ་འབྱོར་མའོ། །
 གསང་བའི་སྒྲགས་ལ་རྟག་གནས་ནས། །
 རབ་དྲུ་འབད་དེ་བསྐྱབ་པར་བྱ། ༡༥ །

དཔའ་བོ་གཉིས་མེད་རྣལ་འབྱོར་མའོ། །ཞེས་པ་ནི། དཔའ་བོ་དང་
 གཉིས་སུ་མེད་པ་ལྷན་ཅིག་དྲུ་གཉིས་མེད་ཀྱི་སྦྱོར་བ་ལ་སྦྱམས་པར་ཞུགས་པའི་
 དོན་དོ། ༡༥ །

རྣལ་འབྱོར་མ་ནི་རེ་རེ་ཞིང་། །
 བྱེ་བ་གངས་སྟེང་དག་གིས་བསྐྱར། །
 མཚན་མ་མཚན་ཉིད་ཕྱག་སྒྲུ་སོགས། །
 གཡོན་པའི་སྐྱབ་པ་པོ་ཡིས་སྒྲ། ༡༦ །

མི་བཟད་ལས་¹ནི་གང་གང་གིས། །
 རྒྱེ་བོ་རྣམས་ནི་འཆིང་འགྱུར་བ། །
 ཐབས་དང་བཅས་ན་དེ་ཉིད་ཀྱིས། །
 སྤྱིང་པའི་འཆིང་བ་ལས་གྲོལ་འགྱུར། ༢༠ །

1. ཕྱ། མི་བཟད་ལ།

ཞུམའི་¹བདག་པོ་ཡང་དག་མཚན། |

རྩི་རྩི་བྱེད་པུ་སྐྱེ་ལ་²འབྱུང། 33 |

གཤམ་³ནས་ཞེས་པ་ནི་པ་རྩོལ་དུ་གཤམ་བའོ།⁴ |སྒྲིམ་པའི་རིམ་པ་ལྟར་
གསུངས་པ། |མགར་ཆུ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སྟགས་པ་ནི་གོ་སྟོན། 32 - 33 |

དེ་རྩུག་དཔལ་རྒྱལ་པོ་ཆེ། |

གོ་འཕང་མཚན་ནི་བསྒྲིམ་པར་བྱ། |

དེ་ནས་རྟག་དུ་སྟོན་ཆུས་འདིར། |

རྟག་དུ་ལུས་ནི་ཡན་ལག་བྱེད། 34 |

བྱེད་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སྟགས་པ་ནི། བྱེད་ཕྱིས་ཀྱིས་བྱེད་ཞེས་པར་བྱ་བའོ།
ཆུས་ཞེས་པ་ནི་མི་བསྟོད་པས་སོ། བྱེད་ཞེས་པ་ནི་རྣམ་པར་སྤང་མཇད་དོ། 35 |

བྱེད་ཞེས་ཡན་ལག་གིས་བརྒྱན་ཅིང་། |

ཐལ་བའི་ཕུག་རྒྱ་སྟགས་པས་བསྒྲིམ། |

-
1. རྒྱ་དཔེར། གོ་རི།
 2. རྒྱ་དཔེར། (ཅེ་ལྷོ་ལྷོ་ལྷོ་) མཚན་མར།
 3. བཤ། གསེར། བཤམ།
 4. ཅོ། པ་རྩོལ་དུ་སྟོན་གཤམ་བའོ།
 5. བྱ། དེ་ནས་དཔལ་བོ།
 6. གསེར། ཀྱི།

ཁ་དོག་ལ་སོང་གཡོགས་པའི་གཟུགས། |

རང་གི་ལུས་ནི་¹ཡོངས་སུ་བསྐྱུར། ३५ |

ཁ་དོག་ལ་སོགས་པའི་གཟུགས་ཞེས་པ་ནི་ཁ་དོག་དཀར་པོ་ལ་སོགས་
པའི་གཟུགས་སུ་བྱ་བའོ། |དབྱངས་ཀྱི་ཡི་གེ་ཡོངས་བསྐྱུར་བ། |ཞེས་པ་ནི་
དབྱངས་ཀྱི་ཨོ་པོ་ཨི་²ཨི་³ཡི་གེ་རྒྱུ་གིས་དེ། དེ་ལས་བདག་ཉིད་ཚོགས་པར་
བསྐྱེམ་པར་བྱའོ། ३५ |

སྤྱོད་པའི་བརྟུལ་ཞུགས་ལ་ཞུགས་པར།⁴ |

ཤེས་ནས་རྣལ་འབྱོར་ལ་ལེགས་གནས། |

ཡན་ལག་ཅན་དང་ཆོགས་ཅན་དང་།⁵ |

སྤྱད་དང་དེ་བཞིན་སྤྱིང་སྤྱོད་སྤྱོད་དང་།⁶ ३६ |

གར་གྱི་རྒྱལ་ནི་བཞི་པོ་འདི། |

དེ་ཉིད་མཐོང་བས་⁷ཤེས་པར་བྱ། |

1. ལྷ། ལྷལ་དུ།

2. བཤ། ཀྱིས།

3. བཤ། ཆོག

4. ལྷ། སྤྱོད་པའི་བརྟུལ་བཞུགས་པ།

5. ལྷ། ཡན་ལག་བསྐྱེམ་དང་བརྟུང་བ་དང་།

6. ལྷ། སྤྱོད་དཔོན་དེ་བཞིན་སྤྱིང་སྤྱོད་སྤྱོད་ཅན།

7. ལྷ། ཆོ་ག་རིག་པས།

གདུང་བའི་¹ཚུལ་ཞེས་བྱ་བ་ནི། །

རྣལ་འབྱོར་གྱིས་པ་ཡིན་པར་བཤད། ༣༧ །

སྤྱོད་པའི་བརྟུལ་ཞུགས་ལ་ཞུགས་པར། །ཞེས་པ་ནི་སྤྱོད་པ་དང་བཅས་
པའི་སྤྱོད་པའོ། །རྣལ་འབྱོར་ལ་ལེགས་གནས་ཞེས་པ་ནི་ཡང་དག་པའི་རྣལ་
འབྱོར་གྱི་དོན་ལ་གནས་པའོ། །དཔལ་ཆེན་ཞེས་པ་ནི་དཔལ་པོ་དང་།
འཛིགས་སུ་རུང་བ་ལ་སོགས་པ་གར་དགའི་²རྣམས་སོ། ༣༨ - ༣༧ །

དེ་ལ་འབད་དེ་བྱ་བ་ནི། །

སྐལ་བ་བཟང་པོའི་གར་ཆེན་³ཡིན། །

གར་གྱི་གནས་སུ་གནས་པ་ཀུན།⁴ །

བྱུང་རྣམས་དེ་ནི་ཡིན་ཞེས་⁵བྱ། ༣༩ །

སྐལ་བ་བཟང་པོའི་གར་ཞེས་བྱ་བ་ནི། །གར་བྱས་པས་རྣལ་འབྱོར་མ་
གིན་ཏུ་ཡུལ་དུ་བྱུང་བར་བརྩོན་པར་འབྱུར་རོ་ཞེས་པའི་དོན་ཏོ། ༣༩ །

-
1. ལྷ། སློབ་དཔོན།
 2. རྒྱ་དཔེར། 'དགའི' ཞེས་པ་མི་འདུག
 3. ལྷ། རྒྱལ་ཆེན།
 4. ལྷ། ཡིན།
 5. རྒྱ་དཔེར། (མི་ལྡིངས་) གཤམ།

དུ་སྤྱོད་པ་ཚྛལ་སོ།། །།ཞུ་ཆེན་གྱི་ལོ་རྒྱུ་བ་འགོས་ལྷ་བཙས་ཀྱིས་
བསྐྱར་ཅིང་ཞུས་དེ་གཏན་ལ་ཕབ་པ་།།¹ །

འདི་ནི་ངེས་པར་བསྐྱན་པ་བཅུ་བདུན་པའོ།² །

བདག་གིས་ཀུན་སྤྱོད་འདི་གསལ་བར་བྱས་པའི།³ །

གང་ཞིག་ཟླ་འདྲའི་⁴བསོད་ནམས་མཁའ་ཁུབ་པ། །

དེ་ཡིས་འགྲོ་བ་ཀུན་ལ་ཕན་པའི་⁵ཕྱིར། །

དཀའ་བ་མེད་པར་བྱང་ཆུབ་སྤྱར་ཐོབ་ཤོག །

ནལ་འབྱོར་མ་ཀུན་དུ་སྤྱོད་པའི་བཤད་སྐྱར་སློབ་དཔོན་ཏམ་གཏར་རྒྱུ་
མཇེད་པ་ཚྛལ་སོ།། །

ཐུག་ར་གྱི་མཁན་པོ་དེ་ཉིད་དང་། བོད་ཀྱི་ལོ་རྒྱུ་བ་རིན་ཆེན་གྲགས་
པས་བསྐྱར་བའོ།།⁷ །

1. དེ། ལྷ། སྤྱོད་བྱང་མི་འདུག
2. དེ། གསེས། འདི་ནི་བཅུ་བདུན་པའི་ངེས་པར་བསྐྱན་པའོ། །
3. གསེས། བྱས་པ་ཡིས། བོད་འབྱོར་པར་མ་གཞན་ནམས་སྤྱ། བྱས་པ་ཡི།། ཞེས་ཡོད་པ་
ལས་འདིར་ཆེག་ཀང་སྟོམ་ཕྱིར་'བྱས་པའི་' ཞེས་བཀོད་པ་ཡིན།
4. བོད་འབྱོར་པར་མ་ནམས་སྤྱ་'ཟླ་བ་འདྲ་བའི་' ཞེས་གསལ་ཀྱང་ཆེགས་བཅད་ཀང་པ་སྟོམ་
ཕྱིར་འདིར་ཆེག་བསྐྱར་བྱས།
5. གསེས། དེ། ཕན་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར།
6. ཅི། ཟླ། ཀུན་དུ།
7. དེ། གསེས། སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་བདེ་བ་དང་ཕྱན་གྱར་ཅིག ཞེས་ཀྱང་གསལ།

